2022

ISSN 2231-1041

स्तौम

कलाभिव्यक्ति का माध्यम

यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

'शिवम्' सांस्कृतिक मंच, छपरा

ISSN 2231-1041

2022

संस्थापक
चन्द्र किशोर सिंह, अधिवक्ता

आदि मुद्रक
श्यामा सिंह

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ० कुमार विमल मोहन सिंह
डॉ० कुमार निर्मल मोहन सिंह

प्रकाशक
'शिवम्' सांस्कृतिक मंच, छपरा

मुद्रक
कुमार प्रिन्टर्स,
लाह बाजार, छपरा-841301

पत्राचार का पता
प्रो० लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'
फ्लैट नं०- 108
न्यू टीचर्स फ्लैट
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
दरभंगा (बिहार)
मोबाईल नं० : 9835296330
ई-मेल : editor.stomresearchjournal@gmail.com

सहयोग राशि- **425/-**

पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी संगीतसेवी अवैतनिक हैं ।

लेखकों के विचार से सम्पादकीय सहमति आवश्यक नहीं है ।

स्तोम

कलाभिव्यक्ति का माध्यम

(यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका)

प्रधान सम्पादक
प्रो० लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

सह सम्पादक
डॉ० कुमार विनय मोहन सिंह

'शिवम्' सांस्कृतिक मंच, छपरा

स्तोम

कलाभिव्यक्ति का माध्यम

(यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका)

सलाहकार मण्डल :
प्रो० पंकजमाला शर्मा
प्रो० द्वारम वी.जे. लक्ष्मी
विदुषी काजल शर्मा
प्रो० दर्शन पुरोहित
प्रो० के० शशि कुमार

सम्पादक मण्डल :
प्रो० संगीता पण्डित
प्रो० बी० राधा
डॉ० विधि नागर
डॉ० अनीता शिवगुलाम
डॉ० हिमांशु द्विवेदी

सहयोगी मण्डल :
प्रो० अर्चना अम्भोरे
प्रो० निशा झा
डॉ० राजश्री रामकृष्ण
डॉ० बिन्दु के०
डॉ० आरती एन० राव
डॉ० अरविन्द कुमार
डॉ० ज्योति सिन्हा
डॉ० मधुरानी शुक्ला
डॉ० अवधेश प्रताप सिंह तोमर
डॉ० रवि जोशी
डॉ० शिखा समैया
डॉ० अमित कुमार पाण्डेय
डॉ० समीर कुमार पाठक

शिवम्-सरगम

आङ्गिकं भुवनं यस्य वाचिकं सर्ववाङ्मयम् ।
आहार्यं चन्द्रतारादि तं नुमः सात्विकं शिवम् ।।

नृत् कला की इस दुनिया में,
है अपना नया कदम ।
जहाँ सुर का संगम होता,
वो सरगम बना शिवम् ।।

लेकर हम चाँद सितारे
आपस में प्रीत सँवारे ।
प्रीत के इस मंदिर में,
नित शीष झुकाते हैं हम ।।

संगीत हो मन्त्र हमारा,
अभिनय हो शस्त्र हमारा ।
हम नेक, एक, जग जीते,
यही नाद सुनाते हैं हम ।।

हो विकसित जग में कलायें,
संस्कृति की अलख जगाएँ ।
यही भावना हमारी,
यही लक्ष्य बनाते हैं, हम ।

मूल रचना : रविभूषण 'हँसमुख'
परिकल्पना : विनय मोहन 'वीनू'
संगीत : लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

सम्पादकीय....

अनेकता में एकता का देश है हमारा भारतवर्ष । सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का एक अत्यन्त सक्षम उपकरण है संगीत तो साहित्य, कला, संस्कृति, विज्ञान आदि सामाजिक समृद्धि के उपकरण हैं । मानव और संगीत में बहुत गहरा तादात्म्य है । हमारे राष्ट्र की भावनात्मक एकता के अनेक प्रसंग संगीत-जैसी कला में विद्यमान हैं । भावना के धरातल पर हम सभी एक हैं और यह भावनात्मक एकता कलाओं से ही सम्भव प्रतीत होती है, संगीत में तो यह कूट-कूट कर भरी है । मन से मन को जोड़ने की अद्‌भुत क्षमता है इसमें । यह कला पूरे राष्ट्र को समेट लेती है, अपने अनुरूप ढाल लेती है । गायन-वादन और नृत्य के संयोग का संगीत हमारी राष्ट्रीय एकता का सबल सम्बल है, प्रतीक है- इसके अनेक ऐतिहासिक साक्ष्य हैं । भारतीय संगीत की दो पद्धतियाँ हैं- हिन्दुस्तानी अर्थात् उत्तर भारतीय और कर्नाटकी अर्थात् दक्षिण भारतीय । कई परिस्थितिजन्य विभिन्नताओं के कारण पद्धतियाँ भिन्न हो गईं परन्तु भारतीय संगीत की आत्मा एक ही है । कर्नाटक संगीत भी हिन्दुस्तानी वा भारतीय ही है । केरल, कर्नाटक, आन्ध्र, मद्रास में प्रचलित पद्धति कर्नाटकी है और शेष हिन्दुस्तानी । इसका कारण सम्भवतया रचनाओं में हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी की बहुलता अर्थात् पदों अथवा बदिशों की रचनाएँ पूरे उत्तर भारत में- आसाम से गुजरात व कश्मीर से महाराष्ट्र तक हिन्दुस्तानी में ही मुख्यतया होती हैं । समूचे भारतीय संगीत को पूरे राष्ट्र ने संजोया है, सींचा है । यह कला अनेकता में एकता का बहुत प्रबल साक्ष्य है, उदाहरण है । हमारी समन्वित संस्कृति का अनूठा रूप है संगीत । गीत-वाद्य-नृत्य के माध्यम से इसने संगीत की विभिन्न शैलियों द्वारा एकरूपता को मुखर किया है । स्वर-लय-ताल धर्म और भाषा की सभी सीमाओं को तोड़कर हमें एकरूप समृद्धि देता है । ध्रुपद-धमार, ख्याल-ठुमरी, भजन-कीर्त्तन हों या लोकगीत, वाद्य-वादन या नृत्य- इनके वैविध्य में भी एकात्मकता है । अनेकानेक परिवर्त्तनों के बावजूद यह यथावत गतिमान है, यही तो इसकी विशिष्टता है । कालान्तर में अनेकानेक गायन-शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ, विविध वाद्यों का सृजन हुआ, नृत्य की अनेकानेक शैलियों का विकास हुआ, कभी अध्यात्म तो कभी मनोरंजन का वाहक बनता हुआ संगीत वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी परिमार्जित है । इतने परिवर्त्तनों के साथ इसे सबने एक-साथ अपनाया है । इससे सभी आत्मविभोर हुए । संगीत आनन्द की अनुभूति और अभिव्यक्ति का शाश्वत सत्य है । संगीत मनुष्य के अन्तर्मन को प्रकाशित कर स्नेह, सदाशयता, सहिष्णुता और भाईचारे की भावना को संचारित करने में सफल भूमिका का निर्वहण करता है । अनगिनत सबूत हैं, भारत की अखण्डता को बल प्रदान करने में सहायक संगीत के- कहते हैं, बैजू बावरा का मुगल सम्राट वध करना चाहते थे परन्तु उनका संगीत सुनकर सम्राट ने अपना निर्णय बदल डाला । पं. पलुष्कर तथा पं. भातखण्डे ने पूरे देश का भ्रमण कर दीर्घ अभियान चलाया । विश्व शान्ति परिषद् के अधिवेशन में शान्ति-दूत बन कर पं. ओंकार नाथ ठाकुर ने इंगलैण्ड, जर्मनी, बुडापोस्ट आदि स्थानों पर तथा गाँधी जयन्ती के अवसर पर नेपाल सरकार के आमंत्रण पर पूरे देश भारत

का प्रतिनिधित्व किया । यहूदि मैनुहिन अद्वितीय वायलिन वादक थे परन्तु भारतीय विचारधारा एवं संस्कृति में ही उन्हें नवजीवन मिला । 'अनेकता में एकता' के देश भारत में एक नई रोशनी मिली, पं. रविशंकर ने उन्हें भारतीय संगीत से अवगत कराया तब मैनुहिन ने पाया कि यहाँ का संगीत और यहाँ की संस्कृति पश्चिमी देशों से श्रेष्ठ है । पं. ओंकारनाथ ठाकुर का 'वन्देमातरम्' गायन और उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ का 'हरि ओम् तत्सत्' गायन राष्ट्रीय और दैवी अनुभूतिजन्य है । यहाँ एक प्रसंग उल्लेखनीय है- पाकिस्तान के प्रसिद्ध गायक उस्ताद सलामत अली काशी आए थे । मंच पर आते ही उन्होंने जो कहा था वह साम्प्रदायिक सद्भाव का सर्वाधिक श्रेष्ठ उदाहरण है- 'मुल्क के अन्दर सरहदें डाल देने से दिलों में सहरदें नहीं पड़ जातीं । सियासी दिवारें दिलों के बीच की दीवारें नहीं बन सकतीं । चाहे कहीं की जनता हो संगीत सुनने और दाद देने की नफासत एक है । अरे, कोई मालकोष को भी बाँट देगा क्या ? राष्ट्रीय एकता का अनुपम उदाहरण है यह । भारत की पूर्व प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी चाहती थीं कि दूरदर्शन का सिग्नेचर ट्यून इकबाल रचित राष्ट्रीय गीत 'सारे जहाँ से अच्छा' की धुन पर आधारित हो और यह चिरस्मरणीय धुन, आंशिक परिवर्त्तन के साथ, तैयार भी हुआ । राष्ट्रीय एकता के अनेक सन्देशों के लिए संगीत को ही माध्यम बनाया जाता है- एक, अनेक और एकता (एकता के बल का संदेश) 'एक चिड़िया अनेक चिड़िया; हिन्द देश के निवासी सभी जन एक हैं; मिले सुर मेरा तुम्हारा तो सुर बने हमारा आदि । ऐसे अनेक प्रेरणादायक साक्ष्य हैं ।

आज के परिप्रेक्ष्य में भी हम संगीत और अन्य कलाओं के माध्यम से सांस्कृतिक आदान-प्रदान द्वारा एकता और अखण्डता के प्रति सहज प्रतिबद्ध हैं । मंचीय प्रदर्शनों, सांस्कृतिक आयोजनों, पर्व-त्यौहार आदि के लोक गीतों, शिक्षा जगत में लेखन-सम्पादन-प्रकाशन द्वारा भी हम राष्ट्र-स्तर पर एक-दूसरे को जान पाते हैं और एक-दूसरे की संस्कृतिक विरासत को सहज स्वीकार करते हैं, इससे हमारा ज्ञानवर्द्धन भी होता है । ऐसे ही सांस्कृतिक आदान-प्रदान का मार्ग पत्र-पत्रिकाओं की लेखकीय सामग्रियों में निहित चिन्तन-मनन द्वारा भी प्रशस्त होता है । प्रौढ़ लेखकों का चिन्तन युवा शोधार्थियों के लिए प्रेरणास्त्रोत है । दोनों ही लेखकीय स्रोतों का सादर अभिवादन है **'स्तोम'** शोध-पत्रिका (2022) में । इस अंक में अनेकानेक शोध-सामग्रियों का समावेश है जो निश्चय ही कला जगत के लिए उपयुक्त सिद्ध होगा, ऐसी आशा है । पत्रिका से जुड़े सभी सम्मानित सदस्यों के प्रति सादर आभार प्रेषित करती हूँ । त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी भी हूँ । आगे, सुधी पाठकों के प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी ।

मंगल कामनाओं के साथ,

Lavanya

(लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या')

अनुक्रम

			पृ.सं.
	सम्पादकीय		iv-v
1.	गत सात दशकों के भारतीय संगीत का मूल्यांकन	प्रो. अर्चना दीक्षित	01
2.	पं0 लालमणि मिश्र द्वारा रचित बन्दिशों में व्याप्त विशेषताएँ	प्रो. बिरेन्द्र नाथ मिश्र	03
3.	अनंगरंग और रागों का रहस्य	डॉ. सरिता पाठक यजुर्वेदी	07
4.	बंदिश एक, रूप अनेक : उपशास्त्रीय गान-विधाओं के संदर्भ में	डॉ. दीप्ति बंसल	11
5.	वैष्णव रास–परम्परा एवं भारतीय संगीत	डॉ. नीता माथुर	14
6.	The Rhythmic Variety, Taal and Musical Instruments in Bhaoaiya Songs	Dr. Krishnendu Dutta	17
7.	IrayimmanThampi – First composer of Malayalam Keertanas	Dr. Bindu. K	26
8.	The Cult of Goddess Pattini (Kannaki) in Sri Lankan Traditional Dance	Dr. S. A. N. Perera	30
9.	Patachitra of Bengal: Traditional Folk Art with Pictorial Performance	Dolanchanpa Ganguly	36
10.	Misinterpretation in the identities of Chola Bronzes with references to the icons of Siva-Tripurantaka, Rama, Bhudevi, Lakshmi and Parvati	Dr. Loveneesh Sharma/Dr. Agnimitra Majumder	42
11.	संगीत में अंक विलास	डॉ. अमित कुमार वर्मा	48
12.	Significance and Value of Sustainable Fashion : Its Detrimental Effect on the People during Pandemic	Subarna Ghosh	53
13.	भक्ति नृत्य एवं मीरा बाई	डॉ. चारु हाण्डा	61
14.	राग सारंग और उसके प्रकार : वृन्दावनी सारंग तथा मध्यमाद सारंग	डॉ. कुमार अम्बरीष चंचल	64
15.	आधुनिक संस्कृत रंगमंच : परम्परा और प्रयोग	डॉ. हिमांशु द्विवेदी	68
16.	श्रुति-स्वर-विभाजन : एक विश्लेषण	डॉ. अवधेश प्रताप सिंह तोमर	72
17.	संगीत एवं चिकित्सा-विज्ञान में सम्बन्ध : एक अवलोकन	श्रीमती दीपा नंदा/डा. निर्मला जोशी	75
18.	अप्रतिम कला साधक रबीन्द्रनाथ टैगोर का सांगीतिक योगदान	डॉ. आकांक्षा गुप्ता	79
19.	उपन्यास 'चित्रलेखा' की शास्त्रीय संगीत ऑपेरा प्रस्तुति : द्वारा 'पद्मभूषण' विदुषी डॉ. शन्नो खुराना	डॉ. प्रियंका	83
20.	सांगीतिक प्रचार-प्रसार का स्वर्णिम युग	डा. मोनिका दीक्षित	87

21.	हरियाणा की लोक गायन-शैलियाँ	योगेश कुमार	91
22.	Musical Luminary in the Mughal Court : Tansen	Dr. Suniti Datta/Dr. Parul Lau Gaur	96
23.	किन्नौर के विभिन्न लोकवाद्य : एक अध्ययन	डॉ. सरिता नेगी	100
24.	विदुषी सुमति मुटाटकर - व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ मल्लिका बैनर्जी	104
25.	योग और संगीत चिकित्सा का अंतर्सम्बंध	डॉ. शालिनी ठाकुर	108
26.	Role of Ustad Zakir Hussain in Internationalization of Indian Classical Music	Dr. Samidha Vedabala/Yadav Sharma	112
27.	रामपुर की सदारंग-परंपरा व थाट-पद्धति	डॉ. रवि पाल	117
28.	कठपुतली कला में सूत्रधार की भूमिका	इन्दिरा बाली / मोनिका	120
29.	तकनीक के माध्यम से संगीत-शिक्षा का विकास	डॉ. शिल्पी श्रीवास्तव	122
30.	The European Style of Art at Bengal as a Document of Time	Dipto Narayan Chattopadhyay	127
31.	Contribution of Tawaifs to the Indian Independence Movement	Dr. Tapasi Ghosh/Aritri Majumder	131
32.	The musical practices of people of Dima Hasao, Assam	Priyanka Howladar	137
33.	Peculiarities of *Guru Debaprasad Das* Tradition of Odissi Dance	Monidipa Ghosh	145
34.	Value-Based Education and its impact on the tradition of Indian music	Prof. Neelam Paul/Prafulla Kumar Meher	150
35.	बिहार के लोक संगीत में प्रयुक्त विविध लोक वाद्य : एक अध्ययन	प्रो. बिरेन्द्र नाथ मिश्र / आलोक कुमार	155
36.	औपनिवेशिक आधुनिकता और भोजपुरी के स्त्री-लोकगीतों में स्त्री-संसार	डॉ. अरविंद कुमार / कुमारी अभिलाषा	160
37.	संगीत रामायण का सौन्दर्य	डॉ. राजीव कुमार	166
38.	भारतीय संगीत में लोक गीत का महत्त्व	डॉ. सोनी कुमारी	169
39.	संगीत में ईश्वर-भक्ति और आध्यात्मिक तत्त्व	डॉ. नमिता कुमारी	171
40.	भारतीय संगीत शास्त्र की अनुपम विदुषी डॉ. विमला मुसलगॉवकर : व्यक्तित्व एवं सांगीतिक योगदान	प्रो. संगीता पण्डित / पूनम यादव	173
41.	दादरा : एक विशिष्ट गायन शैली व ताल प्रकार तबला संगत के सन्दर्भ में	प्रो. सुधा सहगल / डॉ. शिवेन्द्र प्रताप त्रिपाठी / भानु प्रताप सिंह	176
42.	ध्रुपद-परम्परा में डागर घराना का योगदान	प्रो. पंडित प्रेम कुमार मल्लिक / मोनिका धर	179
43.	'संगीत रत्नाकर' में वर्णित 'पटह' के 12 वाद्यों (विशिष्ट बंदिशों) का अध्ययन	प्रो. रेनू जौहरी / कीर्ति महेन्द्र	183
44.	Musicians and Intellectual Property Rights in India	Prof. Revati Sakalkar/Bhanu Pratap Sahoo	186

45.	उपशास्त्रीय एवं लोक संगीत की परम्परा में 'कजरी'	प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या' / मणिकान्त कुमार	190
46.	मुनव्वर-ए-मौसिकी : उस्ताद मुनव्वर अली खां साहेब	डॉ. वन्दना तिवारी / दीपक वर्मा	194
47.	हिन्दुस्तानी संगीत में विद्युत (इलेक्ट्रॉनिक) वाद्यों का प्रयोग : वरदान या अभिशाप	प्रो. पं. विद्याधर प्रसाद मिश्रा / रेखा सेन	197
48.	राग ध्यान	साक्षी कुलश्रेष्ठ	201
49.	The Psychological and Physiological Effect of Music Training	Prof. K. Sashi Kumar/Sumedha Singh	203
50.	Indian Classical Music: An antidote to the human health	Prof. Sangeeta Pandit/Nibedita Shyam	208
51.	उपशास्त्रीय गायन विधा 'ठुमरी और दादरा' में बंदिशों का महत्व - एक संक्षिप्त अध्ययन	प्रो. शारदा वेलंकर / अमरीष प्रजापति	212
52.	उपशास्त्रीय संगीत में बनारस की कतिपय महिला कलाकारों का योगदान	कुमारी सुरुचि	217
53.	संगीत-शिक्षा का महत्व एवं उद्देश्य	डॉ. ज्ञानेशचन्द्र पाण्डेय / शिवानी जायसवाल	221
54.	वेदों में संगीत का स्वरूप	डॉ. कुमार अम्बरीष चंचल / बागीश पाठक	224
55.	संस्कृत वाङ्मय में अभिनय के अंश	गुलिस्ता	227
56.	संगीत में शोध-कार्य के विभिन्न क्षेत्र	डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय / प्रमोद कुमार	230
57.	तबला वाद्य के प्रयोग में मध्यकाल से वर्तमान काल तक आए बदलाव	प्रो. ऋचा कुमार / अभिनव जायसवाल	233
58.	बनारस घराना और 'पद्मभूषण' पं. छन्नूलाल मिश्र	डॉ. इन्द्रेश कुमार मिश्र	237
59.	श्रीकपिल के गीतों में पाखंड-परिमार्जन	डॉ. सतीश कुमार सिंह / अमितेश कुमार	240
60.	पारंपरिक लोक संगीत और चिकित्सा	डॉ. ममता रानी ठाकुर / रीना दत्त	245
61.	मानव जीवन में गजल का वैचारिक महत्त्व	डॉ. अंशु वर्मा / सुरुचि गहलोत	250
62.	कथक नृत्य व योग में सम्बन्ध	प्रो. नीलू शर्मा / रूबी वर्मा	254
63.	जनजातीय महिलाओं के दमित संवेगों को उजागर करने में संगीत की भूमिका	डॉ. संतोष मीणा / वर्षा मीणा	258
64.	साहित्य, संगीत तथा सिनेमा का आधुनिक दौर	डॉ. सिम्मी आर. सिंह / अमृतपाल सिंह	262
65.	Fundamentals of Kashmiri Sufiana Music	Waseem Raja	265
66.	भिखारी ठाकुर द्वारा रचित लोक नाटकों में उल्लेखित विस्थापन का आधुनिक स्वरूप एवं निरूपण	डॉ. अशोक कुमार सिंह / संजीत कुमार	270
67.	भारतीय चित्रपट में ठुमरी का प्रयोग एवं स्थान	प्रो. संगीता सिंह / श्यामा चरण गुप्ता	274
68.	ग़ज़ल गायकी के उम्दा कलाकार गुलाम अली खाँ	डॉ. सौरव कुमार नाहर / योगेश गर्ग	277

गत सात दशकों के भारतीय संगीत का मूल्यांकन

प्रो. अर्चना दीक्षित*,सूरत

भारतीय संगीत के इतिहास में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के सात दशकों का समय अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। परिवर्त्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है तथा संगीत–जैसी गतिशील कला कालक्रम में अपरिवर्तित नहीं रह सकती। उसमें परिवर्त्तन आते रहे हैं। सदियों के संगीत का इतिहास बताता है कि जाति–गायन के पश्चात् राग–गायन, ग्रामिक स्वर एवं स्वर–साधारण के स्थान पर शुद्ध एवं विकृत स्वर, प्रबन्ध–गायन के स्थान पर ध्रुवपद तथा तत्पश्चात् ख्याल आदि परिवर्तन होते रहे हैं किन्तु विगत सात दशकों में भारतीय संगीत के परिवर्त्तनों में अत्यन्त वेग आ गया है। इन सात दशकों के संगीत में निम्नलिखित बदलाव दृष्टिगोचर होता है–

1. गुरुकुल एवं घरानों में दी जानेवाली संगीत–शिक्षा विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में दी जाने लगी है। 1950 का वर्ष भारतीय संगीत–शिक्षा के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसी वर्ष वाराणसी की बनारस हिन्दू यनिवर्सिटी और बड़ौदा की महाराज सयाजीराव यूनिवर्सिटी में 'संगीत' मान्यता पा गया। इन विश्वविद्यालयों में संगीत का स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम प्रारम्भ हो गया। संगीत–शिक्षा के इच्छुक हर व्यक्ति के लिए संगीत–शिक्षा सुलभ हो गयी है। घराना–पद्धति विश्रृंखल हो गई है।
2. स्वतंत्र भारत की सरकार ने देशी राज्यों के राज्याश्रय से वंचित भारतीय संगीत एवं संस्कृति के सरंक्षण एवं संवर्धन के लिए संगीत नाटक अकादमियों की स्थापना की।
3. आकाशवाणी तथा उसके कुछ वर्षों बाद दूरदर्शन के प्रसारण के कारण भारतीय संगीत, नृत्य, नाट्य आदि कलाएँ पूरे देश में सुनी एवं देखी जाने लगीं। इन कलाओं का अभूतपूर्व प्रचार–प्रसार इन दशकों में हुआ।
4. अनेक वैज्ञानिक शोध के कारण (खास कर माइक्रोफोन) आवाज लगाने का ढंग बदल गया। मधुर एवं हल्की आवाज में गाने का प्रचलन हो गया।
5. ग्रामोफोन, रेकर्ड्स, टेप रेकर्ड्स तथा सीडी इत्यादि के कारण 'संगीत' को वर्षों तक संग्रहित रखने का मार्ग खुल गया। इसके पूर्व काल में 'संगीत' को संरक्षित रखने की कोई विधि विकसित नहीं हो पाई थी। आज का 'संगीत' दीर्घजीवी हो गया है।
6. समाज में संगीत एवं संगीतकारों के सम्मान में वृद्धि हुई है। इससे पहले संगीत एवं संगीतकारों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। भारत सरकार ने कलाकारों को 'पद्म' सम्मान एवं 'भारत रत्न' सम्मान से सम्मानित किया है। भारतीय संगीत के प्रति भारतीय समाज के दृष्टिकोण में बदलाव आया है।

'संगीत' शब्द को इसके विशाल अर्थ में लेते हुए मैं भारतीय संगीत के अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत (अभिजात्य संगीत), 2. उपशास्त्रीय संगीत, 3. सुगम संगीत, 4. लोक संगीत, 5. चलचित्र संगीत, 6. संगीत शास्त्र, 7. संगीत शिक्षा इत्यादि में पिछले सात दशकों में क्या–क्या परिवर्तन हुए, इसकी संक्षिप्त चर्चा करूँगी–

1. **शास्त्रीय संगीत–**

(क) एकल–गायन के साथ–साथ एकल–वादन के कार्यक्रम प्रचलित हुए। सारंगी, तबला, पखावज जैसे संगत के वाद्यों के भी स्वतंत्र एकल कार्यक्रम होने लगे। युगल–गायन, युगल–वादन आदि भी प्रचलित हुए।

(ख) नवीन वाद्यों का आविष्कार हुआ। अनेक इलेक्ट्रॉनिक वाद्य, जैसे– तानपूरा, तबला, श्रुति बॉक्स, लहरा देने वाले वाद्य, सिन्थेसाइजर आदि प्रचार में आए।

(ग) प्रचलित वाद्यों में भी अनेक परिवर्तन हुए तथा विदेशी वाद्य, जैसे– गिटार, क्लेरियोनेट आदि पर भारतीय राग बजने प्रांरभ हुए।

(घ) ध्रुपद–गायन का पुनरुद्धार हुआ। 1975 में वाराणसी के तुलसी घाट पर प्रथम ध्रुवपद मेला का आयोजन हुआ। इसके बाद तो अनेक ध्रुवपद मेले अनेक स्थानों पर हुए। भोपाल में ध्रुपद केन्द्र की स्थापना हुई।

(ङ) शहरों आदि में सुरक्षा की दृष्टि से रात–भर के कार्यक्रमों के स्थान पर दो–दो, तीन–तीन घंटों की छोटी महफिलें प्रारंभ हुईं।

(च) बंदिशों में सुरुचिपूर्ण शब्द, अच्छी कविताएँ प्रयुक्त होने लगीं। नये–नये वाग्गेयकार आए जिन्होंने

*अवकाशप्राप्त अध्यक्ष, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अनेक नवीन सांगीतिक रचनाएँ की जिसकी धुन एवं शब्द स्तरीय थे। इनमें पं. बलवन्त राय भट्ट 'भावरंग' तथा पं. रामाश्रय झा 'रामरंग' की रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हुईं।

(छ) बिलंबित ख्याल अत्यधिक बिलंबित गति में गाने का प्रचलन हुआ।

(ज) विदेशों में भारतीय संगीत का अत्यधिक प्रचार हुआ। विदेशियों ने हमारे संगीत में गहन रुचि ली।

2. **उपशास्त्रीय संगीत**– ठुमरी, दादरा इत्यादि गायन–विधा भी सम्मान की दृष्टि से देखी जाने लगी। अच्छे भद्र घर की महिलाएँ भी ठुमरी, दादरा, टप्पा गाने लगीं। ठुमरी की गायिकाओं का भी सम्मान होने लगा। उदाहरण रूप में सिद्धेश्वरी देवी, नैना देवी, बागेश्री देवी, गिरिजा देवी आदि को समाज ने भी सम्मानित किया।

3. **सुगम संगीत**– गीत, गजल, भजन में श्री अनूप जलोटा, श्री जगजीत सिंह, श्री गुलाम अली आदि के अनेक कैसेट बाजार में आए। इनकी अनेक महफिलें हुईं जिसे जनता ने खूब पसन्द किया। रेडियो, टी.वी इत्यादि पर नियमित सुगम संगीत बजने लगा। स्कूलों में, शहरों–गाँवों में सुगम संगीत की प्रतियोगिताएँ होने लगीं।

4. **लोक संगीत**– लोक संगीत को भी सरकारी संरक्षण मिला। संगीत अकादमियों ने लोक संगीत का डॉक्यूमेन्टेशन किया। लोक संगीत की भी महफिलें होने लगीं। 26 जनवरी, 15 अगस्त जैसे राष्ट्रीय त्यौहारों पर लोक नृत्य आदि के कार्यक्रम होने लगे। विदेशों में भारत महोत्सव के आयोजन पर लोक संगीत एवं लोक नृत्य के कार्यक्रम हुए। लोक गायिकाओं को भारत सरकार ने 'पद्म' सम्मान से सम्मानित किया। लोक संगीत पर अनेक शोध–प्रबन्ध लिखे गए।

5. **चलचित्र संगीत**– चलचित्रों के माध्यम से विपुल मात्रा में संगीत जनता के बीच आया तथा जनता द्वारा इसे बहुत पसन्द किया गया। श्रव्य–दृश्य माध्यम होने के कारण इस संगीत ने लोगों पर जादू कर दिया। आबाल, वृद्ध एवं युवा वर्ग इस संगीत को गाने लगा तथा इस पर नाचने लगा। इस संगीत की पहुँच गाँव–गाँव, गली–गली तक हो गई।

6. **संगीत शास्त्र**– संगीत शास्त्राध्ययन की लुप्त परम्परा पुनः प्रारंभ हुई। पं. भातखण्डे, पं. ओंकारनाथ ठाकुर, पं. कैलाश चन्द्रदेव वृहस्पति, प्रो. प्रेमलता शर्मा आदि ने संगीत शास्त्रों का गहन अध्ययन किया तथा अनेक नवीन ग्रन्थों की रचना की। संगीत के प्राचीन ग्रन्थों के पाठ संशोधित किए गए तथा संगीत के अनेक प्राचीन ग्रन्थों का हिन्दी या अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी तथा इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ में संगीत–शास्त्र के विभाग खोले गए।

संगीत में बहुत विपुल मात्रा में शोध–कार्य हुए। अनेक शोधार्थियों ने शोध–प्रबन्ध तैयार कर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

प्राचीन आचार्यों जैसे भरत, मतंग आदि के लेखन पर गहन चिन्तन–मनन हुआ तथा उनके ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। संगीत पर अनेक विचार गोष्ठियों का आयोजन हुआ।

7. **संगीत शिक्षा**– घराना पद्धति का ह्रास एवं संस्थागत शिक्षा–पद्धति का उदय हुआ। संगीत के पाठ्यक्रम बने, पाठ्य पुस्तकें बनीं, शिक्षा की समय–सारिणी बनी, परीक्षा–पद्धति विकसित हुई तथा उपाधियाँ प्राप्त होना प्रारंभ हुआ। संगीत–लेखन की नोटेशन–पद्धति का विकास हुआ।

वर्त्तमान समय में दूरस्थ संगीत–शिक्षा तथा बहुआयामी संगीत शिक्षा पर अनेक विचार–गोष्ठियाँ आयोजित हो रही हैं।

विगत दो वर्ष कोरोना–काल था। सभी कार्यक्रम तथा शिक्षण–संस्थाएँ बन्द थीं। लोगों को घर में ही रहने का सरकार द्वारा आदेश था। ऐसे समय भी दूरस्थ संगीत–शिक्षा, आभासी विचार–गोष्ठियाँ आदि आयोजित होती रहीं। कम्प्यूटर तथा नवीन तकनीकी साधनों की सहायता से संगीत–जगत में ये सब गतिविधियाँ चलती रही हैं। इस समय जनता के पास कैसेट एवं रेकर्ड के रूप में विपुल मात्रा में संगीत घर पर ही उपलब्ध हो गया है।

इस प्रकार, देखा जाय तो विगत सात दशकों में संगीत का चतुर्दिक विकास एवं प्रचार–प्रसार हुआ है । संगीत एवं संगीतकारों का सम्मान बढ़ा है। संगीत–शास्त्र पर भी गहन मंथन किया गया है। भारतीय संगीत भारत की सीमाओं को लाँघ कर विदेशों में भी प्रचलित हुआ है। विदेशी श्रोताओं ने भारतीय संगीत को शांति प्रदान करने वाला संगीत माना है। अनेक विदेशी छात्र एवं शोधकर्त्ता भारतीय संगीत सीखने एवं उस पर शोध करने भारत आए। निश्चित रूप से पिछले सात दशक का काल भारतीय संगीत का स्वर्ण–युग माना जाना चाहिए।

पं0 लालमणि मिश्र द्वारा रचित बन्दिशों में व्याप्त विशेषताएँ

प्रो0 बिरेन्द्र नाथ मिश्र*

सारांश

भारतीय संस्कृति के गौरव को विश्व में प्रतिष्ठित करने में लोक एवं अध्यात्म से समन्वित जिन विधाओं का योगदान है उनमें संगीत विधा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामवेद से संगृहीत मूल सिद्धान्तों के आधार पर भारतीय मनीषी इस संगीत विधा का निरन्तर अनुसंधान, परिष्कार एवं व्याख्यान करते रहे हैं। भारत के सांगीतिक इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक काल में संगीत विधा के अनेक शास्त्र व्याख्याता एवं प्रयोक्ता विद्वानों ने संगीत की सभी विधाओं में नवीन प्रयोग किये हैं। पं0 लालमणि मिश्र बीसवीं शताब्दी के प्रतिष्ठित संगीत के आचार्य थे। सम्पूर्ण विश्व में उनकी ख्याति तो एक उच्च कोटि के वीणावादक के रूप में थी, किन्तु वे सितार, सन्तूर, सरोद, जलतरंग एवं तबला के भी कुशल ज्ञाता एवं प्रयोक्ता थे। उक्त वाद्यों के प्रतिष्ठित प्रयोक्ता होने के साथ वे सुयोग्य विद्वान् शिक्षक एवं शास्त्र–मर्मज्ञ भी थे। अपनी उक्त योग्यताओं के कारण संगीत के समस्त समालोचकों ने पं0 लालमणि मिश्र को विगत शताब्दी के सर्वमान्य वाग्गेयकार के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की है। इनके द्वारा लिखित उच्च कोटि के ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं।

पं0 लालमणि मिश्र ने अनेक प्रचलित एवं अप्रचलित रागों में ऐसी विशिष्ट बन्दिशों की रचना की जो प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिये सरल, सहज, और बोधगम्य थीं, तो उच्च स्तर के विद्यार्थियों एवं कलाकारों के लिये मंचीय प्रस्तुति के अनुकूल थीं।

सूचक शब्द : बन्दिश, प्रस्तुति, मिश्रबानी, गत–तोड़ा, कूटबाज।

पं0 लालमणि मिश्र का जन्म 11 अगस्त 1924 को कानपुर (उ0प्र0) में हुआ। उन्होंने बाल्यावस्था में हारमोनियम तथा गायन की शिक्षा प्राप्त करने के बाद सितार, तबला और ध्रुपद गायन की विधिवत शिक्षा ग्रहण की। कालान्तर में अपनी प्रतिभा के बल पर वे सन्तूर, सरोद और जलतरंग आदि वाद्यों के भी अधिकृत प्रयोक्ता हो गये।

पंडित मिश्र उस्ताद अब्दुल अजीज खाँ का विचित्र वीणा सुनने के बाद अत्यन्त प्रभावित हुए थे और कठिन परिश्रम एवं साधना के बाद देश के उच्चकोटि के वीणा वादकों में गिने जाने लगे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सितार के प्राचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के साथ–साथ आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी, अनेक वाद्यों के सिद्धहस्त कलाकार, ख्यातिलब्ध मंच प्रदर्शक, कुशल शिक्षक एवं शास्त्र मर्मज्ञ भी थे। आपने अनेक पुस्तकें लिखीं–जिनमें भारतीय संगीत वाद्य, तन्त्री नाद, संगीत सरित, तबला विज्ञान आदि प्रमुख हैं। गायन, वादन, नर्तन की विभिन्न शैलियों के विशेषज्ञ, संगीत के सैद्धान्तिक एवं क्रिया–पक्ष के प्रबुद्ध विद्वान् तथा अनेक वाद्यों के कुशल वादक पं0 लालमणि मिश्र देश के सिद्धहस्त वीणा वादक थे। विश्वविख्यात नर्तक पं0 उदयशंकर को अपनी विलक्षण संगीत प्रतिभा से प्रभावित कर उनकी नृत्य–मण्डली के विशिष्ट सदस्य के रूप में सम्मिलित होकर आपने सफल विदेश–यात्रा करने का गौरव अर्जित किया।[1] आपने अनेक विशिष्ट बन्दिशों की रचना की जो झूमरा एवं झपताल में निबद्ध हैं। आपने कई रागों का सृजन किया जिनमें–राग 'मधु भैरव', राग 'श्याम बिहाग', राग 'मधुकली', राग 'सामेश्वरी', राग 'बालेश्वरी', राग 'जोग तोड़ी' एवं 'आनन्द भैरवी' प्रमुख हैं।

19वीं शताब्दी में सितार–वादन की शैली एवं वादन–सामग्री क्रमशः विकसित होकर अपनी एक विशिष्ट पहचान बना चुकी थी। प्रारम्भ में ध्रुवपद तत्पश्चात् ख्याल एवं ठुमरी गायकी से प्रभावित सितार वादन में आलाप, जोड़–आलाप, गतकारी, (विलम्बित, मध्य एवं द्रुत गतें) झाला आदि के मिश्रण से इसे विद्वान् कलाकारों ने सुसज्जित किया।[2] वाद्य–संगीत में वादन–शैली को ही 'बाज' कहा गया है। प्रारम्भ में उत्तर भारत में सितार के दो मुख्य बाज 'सेनी बाज' (दिल्ली बाज) एवं 'पूर्वी बाज' ही प्रचार में थे। सितार–वादन की विभिन्न वादन–शैलियों में मसीतखानी, रज़ाखानी, अमीरखानी, फिरोजखानी के साथ–साथ रहीम

*पूर्व–संकाय प्रमुख, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सेन, हुसैन खां, दुल्हे खाँ, बहादुर खाँ और उस्ताद इमदाद खाँ आदि की वादन–शैलियों तथा उनकी बनाई गतों का प्रचार था।[3] उ0 मसीत खाँ ने सितार के तारों और परदों में वृद्धि कर सितार वाद्य को एक नया रूप दिया। सितार के एकल वादन के लिए गतों का निर्माण किया जिसे 'मसीतखानी गत' के नाम से जाना जाता है। इस गत का प्रारम्भ प्रायः 12वीं मात्रा से होता है तथा उसके मिज़राब के बोल निश्चित हैं– दिर दा दिर दा रा दा दा रा, दिर दा दिर दा रा दा दा रा। कुछ विद्वानों के अनुसार मसीतखानी गत 12वीं के स्थान पर अन्य मात्राओं से भी प्रारम्भ होते थे पर ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। मसीत खां के सितार में गत–तोड़ा (स्थायी–अन्तरा) ही बजाने का प्रचलन था।[4] आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति ने ''खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार'' के पृ0 248 पर ''गुलाम रजा'' को रज़ाखानी गतों का प्रवर्तक माना है।[5] रज़ाखानी गतों के प्रारम्भ होने की मात्रा तथा मिज़राब का बोल निश्चित नहीं प्राप्त होता। ये मध्य एवं द्रुत लय में बजाई जाती रही हैं।

वर्तमान समय में वादक मसीतखानी गतों में मिज़राब के बोलों का प्रयोग बढ़ा कर उसे अतिविलम्बित लय में मींड आदि से सुसज्जित कर विलम्बित गत के नाम से तथा रज़ाखानी गतों को द्रुत लय की बन्दिश कह कर बजाते हैं। इसके अतिरिक्त अमीरखानी और फिरोज़ गतों का प्रचार था परन्तु अब उन गतों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

पं0 लालमणि मिश्र ने अनेक बन्दिशों की रचना की। वाद्य की विशेषताओं एवं तकनीक की दृष्टि से पूर्ण इन रचनाओं में उन्होंने वादन की एक विशेष शैली 'मिश्र बानी' गत का निर्माण किया। उनकी बन्दिशों में राग की स्पष्टता, बन्दिश की पूर्णता, सहज प्रवाह, बोलों एवं छन्दों की विशेषता तथा विभिन्न ताल, लय एवं छन्द में मिजराब के बोलों का सुन्दर समायोजन दिखाई पड़ता है। तीनताल में प्रथम मात्रा से लेकर 16 मात्रा तक की प्रत्येक मात्रा से उठने वाली (प्रारम्भ होने वाली) 16 गतों का निर्माण किया। प्रत्येक गत में मिज़राब के बोलों का संयोजन अलग–अलग है। राग 'बसन्त बहार' में सम से प्रारम्भ गत में मिज़राब के बोलों का विशेष सौन्दर्य स्पष्ट दिखाई देता है–

ग म॑म॑ ग, म॑	–म॑ ग, म॑ पप	म॑, प –प म॑	ध सां नि ध
दा दिर दा, दा	ऽर दा, दा दिर	दा, दा ऽर दा	दा रा दा रा
x	2	0	3

प – – धध	प ध म प	ग मम गग मम	ग गरे –रे सा
दा ऽ ऽ दिर	दा रा दा रा	दा दिर दिर दिर	दा रदा ऽर दा
x	2	0	3

राग 'हेमन्त' में दूसरी मात्रा से प्रारम्भ गत में मिज़राब के बोलों का अलग वैशिष्ट्य है –

ऽ दा रा दा	दा ऽ ऽ दा	रा ऽ दा रा	ऽ दा ऽ रा
दा ऽ ऽ दिर	दा रा दिर दिर	दा रदा ऽर दा	रदा ऽर दा रा
x	2	0	3

विद्यार्थियों के हित को ध्यान में रखते हुए विभिन्न बन्दिशों का निर्माण किया। प्रारम्भिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए सरल बन्दिशें, मध्यम स्तर तथा उच्चस्तर के विद्यार्थियों के लिए उनके अनुरूप विशेष बन्दिशें बनाईं। इन बन्दिशों में सम से प्रारम्भ होने वाली अनेक गतें हैं जिनके छन्द, मिज़राब के बोल और उसकी बनावट भिन्न है। इसी प्रकार, सातवीं मात्रा से, खाली से और बारहवीं मात्रा से प्रारम्भ गतों में भी भिन्नता पाई जाती है। खाली से प्रारम्भ होने वाली कई बन्दिशों में भिन्न–भिन्न मिज़राब के बोलों से पृथक छन्द दिखाई देता है। सरल बन्दिशों में राग 'भैरवी' में–

दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	दा ऽ दा रा	दा दिर दा रा
0	3	x	2

राग 'जौनपुरी' में –

दा दिर दिर दिर	दा रदा ऽर दा	दा ऽ दा रा	दा दिर दा रा
0	3	x	2

राग 'हिण्डोल' में –

दा दिर दा, दा	ऽर दा, दा रा	दा ऽर दा रा	दा रदा ऽर दा
0	3	x	2

अलग प्रयोग दिखाई देता है। प्रायः सम पर दा का प्रयोग दीर्घ रूप में अर्थात् दा के बाद अवग्रह (ऽ) का प्रयोग अधिकतर होता है। राग 'यमन' की मध्य लय की बन्दिश में सम पर ''दिर'' का प्रयोग किया गया है जो कम सुनाई पड़ता है, यथा–

राग यमन – तीनताल गत मध्य लय, (पृ0सं0 202)

(ध़) ^नि^ध़ नि़ ध़ नि़	– रे ग ^ग^म॑ध	पम॑ प – म॑	ग रे सा –
द रा दा, दा	ऽ दा रा दिर	दिर दा ऽ रा	दा रा दा ऽ
0	3	x	2

पं. मिश्र द्वारा रचित सभी गतों में अधिकतर दो लाईन की गत एवं दो लाईन का अन्तरा प्राप्त होता है। कुछ गतों में स्थायी के बाद मंझा अंग भी है। प्राचीन काल

में सितार एवं सरोद में 3 या 4 आवर्तन की विशिष्ट गतों का वादन होता था। ऐसी गतों में कहीं प्रत्येक आवर्तन पर 'सम' स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता था तो किन्हीं गतों में एक मुख्य सम दिखता था पर अन्य आवर्तन में सम को छिपा कर वादन करते थे। दो आवर्तन की गतों को 'दो मुँही' गतें कहते थे, ऐसा प्रदर्शन में 'वैशिष्ट्य' के लिए किया जाता था। इन गतों में पन्द्रहवीं मात्रा से प्रारम्भ राग 'मधुवन्ती' एवं 'देव गन्धार' में स्थायी एक आवर्तन की है। राग 'हेमन्त' एवं 'भैरवी' आदि की कई बन्दिशें दो आवर्तन की हैं जो चिकारी से प्रारम्भ होती हैं और दूसरी आवर्तन पर सम दिखता है । 'बरवा' एवं 'देवगिरी बिलावल' आदि रागों में तीन आवर्तन की गतें हैं तथा राग 'खमाज', 'बसन्त मुखारी' और राग 'बसन्त बहार' आदि कुछ रागों में चार आवर्तन की भी गतें हैं। आपकी बन्दिशों में मींड़, मुर्की, कण स्वर आदि का सुन्दर प्रयोग मिलता है। आपकी तान की गतें (विशेष रूप से मालकौंस की) अत्यधिक सुमधुर एवं आकर्षक हैं। तन्त्रकारी के साथ–साथ ख्याल–शैली की गतें भी हैं।

आपने अपनी विशिष्ट–शैली की 'मिश्रबानी' नाम की गतों की रचना किया। सितार, सरोद, संतूर, विचित्र वीणा आदि पर बजाने के लिए 'मिश्रबानी' या 'कूट बाज' के नाम से एक नवीन वादन–शैली का निर्माण किया। इस बाज में विलम्बित लय में बजाने के लिए झूमरा ताल (14 मात्रा) व झपताल (10 मात्रा) में अनेक रागों की गतें बनाईं। तीनताल के अतिरिक्त अन्य तालों में भी मध्य लय एवं द्रुत लय की बन्दिशों की रचना की ।

पंडित मिश्र द्वारा रचित विशिष्ट गतों में राग 'मधुवन्ती' में छठीं मात्रा से प्रारम्भ होने वाली द्रुत गत का अलग सौन्दर्य है[6]–

	पप म॑म॑ धध	प पम॑ –म॑ ग॒	रे (सा) –सा ग
	दिर दिर दिर	दा रदा ऽर दा	रा (दा) ऽर दा
x	2	0	3
रे – – नि़	सा सा नि़ सा	प नि़नि़ नि़नि़ सा	–सा सा नि़ सा
दा ऽ ऽ दा	रा दा दा रा	दा दिर दिर दा	ऽर दा दा रा
x	2	0	3
– म॑म॑ ग ग म॑म॑	ग गरे –रे सा	ग म॑म॑ ग, म॑	पप म॑ प निनि
ऽ दिर दिर दिर	द रदा ऽर दा	दा दिर दा, दा	दिर दा दा दिर
x	2	0	3
ध धप –प ध	म॑		
दा रदा ऽर दा	रा		
x	2		

राग 'भटियार' में चौदहवीं मात्रा से प्रारम्भ तीनताल की द्रुत गत[7] –

			सा ध प
ध – प म	– पप मम पप	ग गरे॒ –रे॒ सा	– दा रा दा
दा ऽ दा रा	ऽ दिर दिर दिर	दा रदा ऽर दा	ऽ
x	2	0	3

राग 'मालकौंस' में सम से प्रारम्भ होने वाली तिहाईदार रज़ाखानी गत[8]–

सा ग॒ – ग॒	म – म ध॒	– ध॒ नि॒ –	ध॒ सां – नि॒
द दा ऽ र	दा ऽ द दा	ऽ र दा ऽ	द दा ऽ र
x	2	0	3
सां – – नि॒नि॒	ध॒ नि॒ सां –	ध॒ नि॒नि॒ ध॒ म	ग॒ मम ग॒ सा
दा ऽ ऽ दिर	दा रा दा ऽ	दा दिर दा रा	दा दिर दा रा
x	2	0	3

राग 'श्याम कल्याण' में मध्यलय की आड़ा चारताल में निबद्ध मिश्रबानी गत[9]–

रे म॑म॑	प ध	म॑ प	म॑ पप	गग मम	रे रेनि़	–नि़ सा
दा दिर	दा रा	दा रा	दा दिर	दिर दिर	दा रदा	ऽर दा
x	2	0	3	0	4	0
नि़ सासा	रे सा	नि़ सा	म॑ पप	ध प	गम –रे	–रे सा
दा दिर	दा रा	दा रा	दा दिर	दा रा	दरा ऽदा	ऽर दा
x	2	0	3	0	4	0

राग 'बिलासखानी' में झूमरा ताल में विलम्बित लय की मिश्र बानी गत[10]–

			रे॒ग॒ रे॒ नि़॒सा –रे॒
ग॒ ग॒ ग॒	रे॒रे॒ ग॒ पध॒ –म	रे॒ग॒ रे॒ सा	दिर दा रदा ऽर
दा दा रा	दिर दा रदा ऽर	दाऽ दा रा	
x	2	0	3

पं. लालमणि मिश्र ने लगभग सभी प्रचलित रागों में प्रारम्भिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए सरल गतों की रचना की जो तीनताल में निबद्ध विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय में हैं। कुछ परिश्रमी विद्यार्थियों के लिए मध्यम स्तर की विशेष गतें हैं जिनको अच्छी तरह सीख कर एवं अभ्यास कर कुशलतापूर्वक वादन किया जा सकता है। आपकी कई गतों में सुन्दर मिज़राब के बोलों का प्रयोग, लय एवं छन्द से सुसज्जित कठिन गतें भी हैं तथा कुछ तान की गतें हैं, जो उच्च स्तर के विद्यार्थियों या गुणी कलाकारों के बजाने योग्य हैं।

कई ऐसे रागों में गतों का निर्माण किया, जिनमें बहुत कम गतें सुनाई पड़ती हैं और कलाकार उसे कम

बजाते हैं। ऐसे रागों में 'अहिर ललित', 'देवगिरी बिलावल', 'यमनी बिलावल', 'गांधारी', 'नारायणी', 'जैत', 'देव गन्धार', 'बिहागड़ा' आदि हैं।

कुछ रागों का प्रचलन अब नहीं रह गया और वे अप्रचलित तथा प्रायः लुप्त रागों की श्रेणी में आते हैं। ऐसे कई रागों में अति सुन्दर रचनाएँ की, उन्हें मंच पर बजाया और विद्यार्थियों को सिखाया भी। ऐसे रागों में प्रमुख हैं–बसन्त बहार, बड़हंस सारंग, सामन्त सारंग, लंकदहन सारंग, कौंसी भैरव, बंगाल भैरव, सौराष्ट्र भैरव, प्रभात भैरव, बरवा, लक्ष्मी तोड़ी, सरपरदा, कुकुभ, षट, मुल्तानी धनाश्री, टंकेश्री, माली गौरा, ललिता गौरी, ललित पंचम, जलधर केदार, मालश्री आदि।

तीनताल, रूपक, झपताल, एकताल आदि प्रचलित तालों के अलावा झूमरा, अष्ट मंगल, पंचम सवारी और आड़ा चारताल आदि तालों में भी रचनाएँ निबद्ध की।

सन्दर्भ :

1. मिश्र, पं. कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परम्परा, पृ.सं. 172
2. निगम, रेखा, सितार की उत्पत्ति का विस्तृत विवेचन, पृ.सं. 139
3. गुप्ता, रश्मि, स्वतन्त्रोत्तर काल में सितार वादन की परम्परा एवं घराना, पृ.सं. 184
4. भटनागर, रजनी, सितार वादन की शैलियाँ, पृ.सं. 109–110
5. गुप्ता, रश्मि, स्वतन्त्रोत्तर काल में सितार वादन की परम्परा एवं घराना, पृ.सं. 196
6. मिश्र, डॉ. लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, पृ.सं. 310
7. वही, पृ.सं. 320
8. वही, पृ.सं. 326
9. वही, पृ.सं. 333
10. वही, पृ.सं. 335

अनंगरंग और रागों का रहस्य

डॉ. सरिता पाठक यजुर्वेदी*

ध्वनि एक ऐसा माध्यम है जो अभिव्यक्ति को प्रकट करती है। इसका साम्राज्य सृष्टि के आदिकाल से ही रहा है। ध्वनि चाहे किसी भी प्रकार की हो, कहीं–न–कहीं मानव–जीवन से उसका कोई–न–कोई संबंध जरूर रहता है। विभिन्न ध्वनियों के उतार–चढ़ाव से अलग–अलग भाव अभिव्यक्त होते हैं फिर चाहे वह हर्ष का हो या शोक का, चीखने का हो या फिर रोने का, हास्य का हो या फिर करुणा का। यानि विभिन्न ध्वनियों का प्रयोग यदि विभिन्न अनुपात से किया जाए तो वे विशिष्ट भावों का बोध कराती हैं और इस ध्वनि को यदि भाषा, या कहैं, शब्द मिल जाय तो उनमें प्राण आ जाते हैं। और, किसी भी चीज में प्राण आना यानि वो जीवन के बेहद करीब आ जाती है।

संगीत भी मानव–जीवन को बेहद महत्वपूर्ण ईश्वरीय देन है जो ध्वनि पर ही आधारित है, इसे भारतीय संस्कृति में 'नाद' कहा गया है। नाद हमें सीधे ईश्वर से जोड़ता है। नाद, आहत और अनाहत दो रूपों में है। आहत यानी जो हमें प्रत्यक्ष रूप में सामने प्रकट होते सुनाई या दिखाई देता है और अनाहत यानी जो सामने प्रत्यक्ष तो नहीं परंतु सदैव ब्रह्मांड में गूंजता रहता है और जिसे ईश्वर का संगीत माना जाता है। आचार्य बृहस्पति जी की राग भैरव की एक बंदिश इसका बड़ा सुंदर वर्णन करती है:

स्थायी : अनहद नाद अंतर गूंजे
आहत नाद ताकौ प्रकास।
अंतरा : आहत साधि साधि सुख पावै
'अनंगरंग' ताको सहज निस्तार।।

अर्थात् अनहद नाद हमारे भीतर निरंतर घूमता रहता है और आहत नाद उसी का प्रकाश है। आहत नाद के निरंतर साधने से जिस सुख की प्राप्ति होती है उससे निश्चित ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। भावों की अभिव्यक्ति में भाषा का भी बहुत बड़ा योगदान रहता है। भाषा को मात्र शब्दों का समूह नहीं कहा जा सकता बल्कि शब्दों को बोलते समय ध्वनि का उतार–चढ़ाव उसे एक रूप प्रदान करता है, इसी के आधार पर 'वाचन', 'पाठ', व 'गान' तीनों को भिन्न किया जा सकता है।

भारतीय संगीत की बहुत ही समृद्ध परंपरा रही है जिसमें स्वर, पद व ताल के समन्वित रूप को 'गीत 'कहा गया और इसीलिए सम्यक् (भलीभांति) रूप से गाया गया गीत 'संगीत' कहलाया। शास्त्रीय संगीत की बात करें तो यह रागदारी संगीत पर आधारित है। सात शुद्ध, पांच विकृत स्वरों (कोमल व तीव्र) के सुंदर ताने–बाने से विभिन्न रागों का निर्माण हुआ और इन रागों के अंतर्गत की गई रचनाओं को 'बंदिश '(गायन के क्षेत्र में)' 'गत (वादन के क्षेत्र में) कहा गया क्योंकि 'स्वर' और 'ताल' के साथ 'पद' यानि भाषा भी थी । अतः इस सुंदर बंधन को 'बंदिश' कहकर शोभित किया गया।

राग के लिए कहा गया है कि स्वर और वर्ण से विभूषित ऐसी रचना जो चित्त का रंजन करे 'राग' है। यहां रंजकता का होना एक अहम् पहलू है। राग के इस पहलू को ध्यान में रखते हुए बहुत से रागों का निर्माण हुआ है और बरसों से ये राग गुरु–शिष्य–परंपरा, घरानेदार–परंपरा या आज के दौर में संस्थागत शिक्षण की सहायता से पीढ़ी–दर–पीढ़ी गाए–बजाए जाते रहे हैं। इस शृंखला में एक बात तो निश्चित रही है कि यह मौखिक रूप से या कहें कि सीना–ब–सीना तालीम या आंग्ल भाषा में कहें तो प्रैक्टिकल रूप में स्वयं करके आगे की पीढ़ी को कराया जाता रहा है। ऐसे में राग की शुद्धता, उसके रहस्य, उसकी विशिष्टता, उसके स्वरूप को विशेष ध्यान दिया गया और बंदिशों या गतों ने इसमें एक अहम् भूमिका निभाई है। इस यज्ञ में बहुत से विद्वान, गुरु, आचार्य, वाग्गेयकार, कलाकार, संगीतकारों ने अपने संपूर्ण जीवन का परिश्रम आहुति के रूप में दिया। ऐसी ही एक महान विभूति भारतीय संगीत के क्षेत्र में एक वाग्गेयकार व संगीत के महान पंडित के रूप में उभरी जिनका नाम था– आचार्य बृहस्पति। आचार्य को संगीत जगत 'अनंगरंग' के उपनाम से भी जानता है जो इसी मुद्रा से अपनी रचनाएँ करते थे। आचार्य बृहस्पति न केवल संगीत के शास्त्र–पक्ष में निष्णात थे बल्कि क्रियात्मक पक्ष पर भी उनकी विद्वत्ता उतनी ही उच्च कोटि की थी। उन्होंने भारतीय शास्त्रीय संगीत में शास्त्र व क्रिया दोनों को अपनी प्राचीन परंपरा से पुनः प्रयुक्त किया, इसलिए

*अध्यक्ष, संगीत विभाग, भारती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

उनके कार्यों को अधिक भारतीय व अनुसंधानपरक माना जाता है। अद्वितीय व्यक्तित्व व अपरिमेय विद्वत्ता के धनी आचार्य संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, ब्रजभाषा व हिंदी के परम विद्वान थे। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' के साथ पंडित शारंगदेव के 'संगीत रत्नाकर', मतंग मुनि कृत 'बृहद्देशी' जैसे अनेक ग्रंथों का गहन अध्ययन कर उनके गूढ़ रहस्यों को उन्होंने आधुनिक पीढ़ी के सामने रखा। उनके ग्रंथों में 'भरत का संगीत सिद्धांत', 'संगीत चिंतामणि' (भाग 1, भाग 2) 'ध्रुवपद एवं उसका विकास', 'मुसलमान एवं भारतीय संगीत', 'नाट्यशास्त्र का 28 वां अध्याय', 'खुसरो, तानसेन व अन्य कलाकार' आदि प्रमुख हैं।

आचार्य वीणा पुस्तकधारिणी के परम उपासक थे, इसीलिए जहाँ एक ओर संगीत के क्षेत्र में उन्हें सर्वोपरिता प्राप्त हुई वहीं दूसरी ओर साहित्य के क्षेत्र में भी उनका एक सम्मानित स्थान रहा। 'मेघ का कवि', 'ब्रज–बल्लरी बिलास' जैसी उनकी रचनाएँ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अनेक पत्र–पत्रिकाओं में उनके लेख छपते रहते थे। संगीत कार्यालय, हाथरस की मासिक पत्रिका 'संगीत' में तो उनके द्वारा एक श्रृंखला के रूप में अनेकों लेख व रचनाएँ छापी गईं, इसमें शास्त्र–पक्ष व क्रियात्मक पक्ष दोनों ही सम्मलित थे।

रागों की शुद्धता व उसके रहस्यों पर विशेष रुप से आचार्य जी बल देते थे। आचार्य जी को रामपुर की तालीम विरासत में मिली थी, उनके प्रपितामह पंडित दत्त राम जी व उस्ताद बहादुर हुसैन खान साहब में अनन्य प्रेम था और संगीत के विषय में दोनों में ज्ञान का आदान–प्रदान होता था, जहाँ उस्ताद बहादुर हुसैन खान साहब सदारंग के वंशज थे, वहीं पंडित दत्तराम जी रामपुर दरबार में राजपुरोहित के रूप में सुशोभित थे। विद्वानों के परिवार में जन्मे आचार्य जी को जहाँ संस्कृत की शिक्षा स्वयं अपने पिता पंडित गोविंदराम यजुर्वेदी जी से प्राप्त हुई वहीं संगीत की शिक्षा मिर्जा नवाब हुसैन से प्राप्त हुई जो संगीत–जीवी नहीं थे बल्कि सैय्यद थे। भारतीय संगीत को एक शोध की दृष्टि से देखने व उसके पुनरुत्थान के लिए कार्य करने की प्रेरणा उन्हें रामपुर की रजा लाइब्रेरी के प्रबंधक मौलाना इम्तियाज अली खां अर्शी से प्राप्त हुई। संगीत–जीवी परिवार से न होते हुए आचार्य जी को संगीत क्षेत्र में स्वयं को स्थापित करने में बहुत अधिक संघर्ष करना पड़ा परन्तु सदारंग–परम्परा की संगीत निधि जो रामपुर के नवाबों व उस्तादों, पंडितों के पास थी उसको विश्व–पटल पर लाना उन्होंने अपना परम कर्तव्य समझा तथा अपना संपूर्ण–जीवन इन रहस्यों को उजागर करने में लगा दिया।

आचार्य जी के अनुसार रामपुर की संगीत–परंपरा में ठाठों के निर्माण की प्रक्रिया 'ठाठ– भेद' कही जाती है। एक ठाठ से अन्य ठाठ प्राप्त करने की प्रक्रिया मूर्च्छना–पद्धति से पृथक् है जिस पर विदेशी प्रभाव है। कल्याण ठाठ अन्य ठाठों का जनक है यानि प्रथम ठाठ है। कल्याण के तीव्र म (म) को उलट दें तो बिलावल ठाठ बनता है। बिलावल के निषाद को कोमल करने पर खमाज ठाठ और खमाज की गांधार को कोमल करने से काफी ठाठ बनता है। काफी के धैवत को कोमल करने से आसावारी ठाठ प्रकट होता है।आसावारी के ऋषभ को कोमल करने से भैरवी ठाठ बनता है। कल्याण ठाठ के ऋषभ को कोमल करने से मारवा ठाठ बनता है, मारवा ठाठ के धैवत को कोमल करने से पूर्वी ठाठ बनता है। पूर्वी ठाठ के गांधार को कोमल करने से तोड़ी ठाठ बनता है और तोड़ी ठाठ के गांधार को तीव्र (शुद्ध) और मध्यम को कोमल (शुद्ध) करने से भैरव ठाठ उत्पन्न होता है। इस परंपरा में कोमल मध्यम का तात्पर्य शुद्ध मध्यम से है। इस प्रकार देखें तो एक क्रम से कल्याण से बिलावल, खमाज, काफी, आसावरी, भैरवी और दूसरे क्रम से कल्याण से मारवा, पूर्वी, तोड़ी और भैरव ठाठ उत्पन्न होता है और इसे ही 'ठाठ–भेद' कहा गया।

ठाठ–भेद के अलावा स्वर–भेद प्रक्रिया भी रामपुर की परम्परा में प्रचलित है । जहां एक ठाठ के प्रत्येक स्वर को'सा' मानकर अलग–अलग राग की प्राप्ति होती है। ये मूर्च्छना पद्धति के आस–पास ही है परंतु उससे अलग है। मूर्च्छना–पद्धति का आधार षड्जग्रामीय और मध्यमग्रामीय मूल सप्तक है परंतु रामपुर परंपरा में दसों ठाठ मूर्च्छनाओं के आधार बनते हैं।कल्याण ठाठ के प्रत्येक स्वर को 'सा' मानने से अलग रागों की प्राप्ति होती है, जैसेः

कल्याण के सा से कल्याण
कल्याण के रे से खमाज
कल्याण के ग से आसावरी
कल्याण के म से मेल दलन

(मेलदलन का तात्पर्य है जिसमे पंचम का अभाव हो और दोनों म होते हों– जिसका नामकरण आचार्य जी ने स्वयं किया)

कल्याण के प से बिलावल
कल्याण के ध से काफी
कल्याण के नि से भैरवी

एक और बात महत्वपूर्ण है कि मूर्च्छना– पद्धति में स्वरों के नाम नहीं बदलते, परंतु स्वर–भेद प्रक्रिया में स्वर अपना नाम भी बदल देते हैं।

इसी प्रकार बिलावल ठाठ की मूर्च्छनाओं से काफी, भैरवी, कल्याण, खमाज, आसावरी और मेलदलन ।

खमाज ठाठ की मूर्च्छनाओं से खमाज, आसावारी, मेलदलन, बिलावल, काफी, भैरवी और कल्याण। काफी ठाठ की मूर्छनाओं से काफी, भैरवी, कल्याण, खमाज, आसावारी, मेलदलन और बिलावल। आसावारी ठाठ की मूर्छनाओं से आसावारी, मेलदलन, बिलावल, काफी, भैरवी, कल्याण और खमाज।

भैरवी ठाठ की मूर्च्छनाओं से भैरवी, कल्याण, खमाज, आसावरी, मेलदलन,बिलावल और काफी ठाठ प्राप्त होते हैं। गायक किसी भी स्वर को आधार मानकर प्रधान राग से अन्य रागों को दिखाते थे। यह स्वर–भेद का नियम मारवा, पूर्वी, भैरव व तोड़ी ठाठ में नहीं चल पाया । मारवा, पूर्वी और भैरव के रे (कोमल) ग में सा रे (कोमल) का अंतर था न कि सा रे का और यह रे (कोमल) ग का अंतर सा ग (कोमल) के अंतर के सदृश था परंतु इन ठाठों में ऋषभ को 'सा' मानने पर इन ठाठों के परदों पर किसी भी ऋषभ की प्राप्ति नहीं होती थी। ऐसे ही तोड़ी ठाठ के कोमल रे को सा मानने पर तोड़ी ठाठ के परदों पर कोमल या तीव्र किसी भी गांधार की प्राप्ति नहीं होती थी, क्योंकि तोड़ी ठाठ में कोमल 'रे' की अपेक्षा तीसरा स्वर तीव्र 'म' है जिसके साथ षड्ज–मध्यम भाव है। अतः इस कठिनता को देखते हुए छम्मन साहब (साहबजादा सआदत अली खां) की परम्परा में कुछ ठाठों से औडव रागों की उत्पत्ति मानी गई थी, जो इस प्रकार हैः

मारवा ठाठ के सा से मारवा
रे से मालकोस
ग से दुर्गा
म से धानी
प से हिंडोल
ध से भोपाली
नि से मेघ

इसी प्रकार,

पूर्वी ठाठ के सा से पूर्वी
रे से धानी
ग से भोपाली
म (तीव्र) से मेघ
प से मारवा
ध (कोमल) से मालकौंस
नि से दुर्गा

तथा,

तोड़ी ठाठ के सा से तोड़ी
रे (कोमल) से मेघ
ग (कोमल) से मालकौंस
म (तीव्र) से दुर्गा
प से ललित
ध (कोमल) से धानी
नि से भोपाली

रामपुर की परंपरा में ये भेद गुरु–शिष्य– परंपरा में बताए जाते थे। आचार्य जी ने यह रहस्य पूरी तरह से खोलकर रख दिया जो राग मारवा में उनकी एक बंदिश में भी मिलता हैः

राग मारवा (तीन ताल)

स्थायी : जानत नाहि सार सीख बिन
कहा होत है कौन सुरन सो

अंतरा : षाडव को करे औडव
तब तानन सो पावे पार

अर्थात् बिना सीखे कुछ भी नहीं आता । किस सुर से क्या राग बन जाता है, जैसे मारवा जो षाडव जाति का राग है उसके धैवत को सा मानो तो राग भूपाली बन जायेगा, यह औड़व जाति का राग है।

इसी प्रकार, रामपुर की 'ठाठ लौटने' के भेद को भी आचार्य जी ने सामने रखा जो छम्मन साहब की देन थी। जैसे– काफी ठाठ को लौटने से पूर्वी ठाठ बन जाता हैः

काफी ठाठ : सा रे ग (कोमल) म प ध नि (कोमल) सां

पूर्वी ठाठ : सा रे (कोमल) ग म (तीव्र) प ध (कोमल) नि सां

यानि कोमल स्वरों को तीव्र और तीव्र स्वरों को कोमल कर देने से ठाठ बदल जाता है। ऐसे ही

खमाज ठाठ : सा रे ग म प ध नि (कोमल) सां

तोड़ी ठाठ : सा रे (कोमल) ग (कोमल) म (तीव्र) प ध (कोमल) नि सां

रामपुर सदारंग–परम्परा में राग–निर्माण के कुछ रहस्य ऐसे भी थे जिनका पालन करने से रागों को बरतने में बहुत ही

सुविधा होती है। जैसे :

ठाठ के कुछ स्वरों को वैसा ही रखने तथा कुछ स्वरों को उलट देने से दूसरा राग बन जाता है :

जैसे भीमपलासी के :

नि (कोमल–मंद्र सप्तक का) सा ग म प नि (कोमल) सां

सां नि (कोमल) ध प म ग (कोमल) रे सा

से मुल्तानी

नि (मंद्र) सा ग (कोमल) म (तीव्र) प नि सां

सां नि ध (कोमल) प म (तीव्र) ग (कोमल) रे (कोमल) सा

यहां ग को कोमल ही रखा गया, बाकी उलट दिया गया यानि शुद्ध नि, ध और रे को कोमल कर दिया गया तो मुल्तानी गाना आसान हो गया।

ठाठ के स्वरों के स्वरूप को वैसा ही रखा परंतु स्वरों में विश्रांति से या उनकी गति बदल देने से अलग–अलग राग सामने आते हैं, जैसे : पूरिया, मारवा और सोहनी।

ठाठों को लौटा कर और विश्रांति के स्वरों को भी बदल कर नए राग सामने आए, जैसे– मालकौंस, हिंडोल। दो विभिन्न ठाठों में एक का आरोह और दूसरे का अवरोह लेकर नए राग बने। ठाठ के किसी एक स्वर को कम कर उसकी गति को उन्मुक्त करने से भी नए राग की सृष्टि हुई।

इन रहस्यों के अतिरिक्त आचार्य जी ने राग को किस प्रकार सीखा जाए, इस पर भी विस्तार से बताया । सर्वप्रथम राग के चार स्वस्थान नियमों को बताया गया जो राग–विस्तार की नींव को मजबूत करते हैं। रागों के सवाल–जवाबरूपी स्वर–गुच्छों को बताया, जैसे– ऐमन में नि रे ग का जवाब मं ध नि है। इन सवाल–जवाबों से राग के स्वरूप को बखूबी जाना जा सकता है और राग गाते–बजाते समय एक संतुलन कायम किया जा सकता है। रागों के अभ्यास में पलटों का बहुत बड़ा योगदान होता है । आचार्य जी ने रागों के विस्तार के साथ ही लिखित सामने रखा। ये पलटे व विस्तार न केवल राग की जानकारी प्रदान करते हैं बल्कि आवाज की निर्मिति, तैयारी व राग के शुद्ध रूप से रियाज करने की ओर अग्रसर करते हैं।

'अनंगरंग' की मुद्रा में रची अनेक बंदिशों को अनेक रागों में उन्होंने पिरोया और साथ ही रियाज का तरीका भी बताया जिसमें कितने ही रहस्य छुपे हुए हैं जो अभ्यास से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। अनंगरंग को मात्र musicologist या संगीत शास्त्रकार कह देने वाले लोग यदि इन रहस्यों से अवगत हों तभी जान पाएँगे कि बिना अभ्यास के स्वर–विस्तार, पलटे, बंदिशें, थाट–भेद, स्वर–भेद, राग निर्मिती कैसे की जा सकती हैं ? इसके लिए दीपक की भांति स्वयं जलना पड़ता है । अनंगरंग कृत 'राग–रहस्य' इसका जीता जागता प्रमाण है, जो रामपुर के रहस्यों को अनंगरंग की मुद्रा से अंकित कर एक शोधकर्ता की कर्मठता, लगन, उसकी अक्षुण्ण प्रतिभा ,उसकी शोधपूर्ण दृष्टि तथा संगीत और साहित्य पर पूरी पकड़ का ही परिणाम है । ये रहस्य वर्तमान पीढ़ी को उपलब्ध हुए हैं। अब भावी पीढ़ी का यह कर्तव्य है कि इसे पढ़ें, समझें, जानें और प्रयोग कर इसकी गूढ़ता को पहचानें।

आचार्य कहते थे गुरु–ऋण से हम कभी उऋण नहीं हो सकते परन्तु हमारे पूर्वजों के द्वारा प्रदान की गई इस निधि को यदि हम संरक्षित कर उसको आगे बढ़ाएँ तो वही सही रूप में उनके प्रति तर्पण होगा ।

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

बंदिश एक, रूप अनेक : उपशास्त्रीय गान-विधाओं के संदर्भ में

डॉ. दीप्ति बंसल*

सार

वर्तमान युग में हिन्दुस्तानी गायन–शैलियाँ सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। इसके अंतर्गत ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती, होरी आदि गान–विधाएँ आती हैं। इनकी अनेक पुरानी, परम्परागत बंदिशें मिलती हैं जो गुरु से प्राप्त सीना–ब–सीना तालीम के द्वारा आगे बढ़ती हैं। इनमें से बहुत–सी ऐसी बंदिशें हैं जो अनेक शास्त्रीय व उपशास्त्रीय कलाकारों ने गाई हैं। बंदिश भले ही एक हों मगर उसे हर कलाकार ने विविधता से प्रस्तुत किया है। इनमें से कुछ चुनिंदा बंदिशें हैं– भैरवी की ठुमरी 'रस के भरे तोरे नैन', राग तिलक कामोद की ठुमरी 'अबके सावन घर आजा', होरी की बंदिश 'उड़त अबीर गुलाल, लाली छाए रही है'; झूला गीत विधा की बंदिश–'झूला धीरे से झुलावो बनवारी रे साँवरिया' इत्यादि। राग, ताल, लय, अलंकरण, काव्य, प्रस्तुतिकरण, घरानेदार विशेषताऐं इत्यादि के आधार पर विभिन्न कलाकारों द्वारा गाए जाने पर इनमें एक ही बंदिश के विविध रूप नज़र आते हैं। उस्ताद बरकत अली खाँ, ठुमरी साम्राज्ञी सिद्धेश्वरी देवी, विदुषी हीराबाई बड़ौदेकर, विदुषी बेग़म अख़्तर, विदुषी शोभा गुर्टू, विदुषी गिरिजा देवी, विदुषी सविता देवी, आदि दिग्गज कलाकारों द्वारा जब इन बंदिशों को कला के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है तो इनका रूप निखर आया है। इन बंदिशो ं का अवलोकन और विश्लेषण एक शोध–परक विषय है। बंदिशें हमारे संगीत की अनमोल धरोहर हैं जिनमें हमारा संगीत सुरक्षित है।

मुख्य शब्द : *उपशास्त्रीय, बंदिश, गुरुमुखी, कलाकार, अदायगी प्रारूप*

अनुसंधान पद्धति : *उपशास्त्रीय गायक कलाकारों की उपलब्ध रिकॉर्डिंग*

अध्ययन क्षेत्र : उपशास्त्रीय गायन शैलियों की लोकप्रिय बंदिशें

चर्चा : बंदिशों के काव्य, राग, ताल, लय, सौन्दर्य, अभिव्यक्ति, प्रस्तुतिकरण पर चर्चा

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में अनेक प्रकार की गायन शैलियाँ हैं जैसे ध्रुपद, धमार, ख़्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना इत्यादि। इन सभी गायन–शैलियों में अभिव्यक्ति का माध्यम 'बंदिश' है। 'बंदिश' शब्द मूल रूप से फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है बाँधने की क्रिया या भाव। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में राग व ताल में बद्ध रचना को सामान्यतः बंदिश कहा जाता है। वर्तमान युग में उपशास्त्रीय गायन–शैलियाँ सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। इसके अंतर्गत ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती, होरी आदि गान–विधाएँ आती हैं। ठुमरी–दादरा इत्यादि की अनेक पुरानी, परम्परागत बंदिशें मिलती हैं। पीढ़ी–दर–पीढ़ी किसी बंदिश का गायन उसे परम्परागत बना देता है। कला का संवर्धन और विकास इन्हीं बंदिशों से होता है। ये बंदिशें संगीत जगत की अनमोल धरोहर हैं जिनमें हमारा शास्त्रीय संगीत सुरक्षित है। संगीत एक गुरुमुखी विद्या है जो सीना–ब–सीना तालीम द्वारा आगे बढ़ती है। ग्रामोफोन कंपनी के प्रादुर्भाव से संगीत–कलाकारों की कला का ध्वन्यंकित रूप उपलब्ध होने लगा। आज सी.डी., कैसेट, आकाशवाणी व दूरदर्शन, संग्रहालय यू–ट्यूब आदि पर विभिन्न कलाकारों द्वारा गाई गई अनेक बंदिशें उपलब्ध हैं जिनके माध्यम से कलाकारों द्वारा उनके प्रस्तुतिकरण का अध्ययन एक शोध–परक विषय है। इस प्रपत्र के माध्यम से मैं उपशास्त्रीय गायन–शैलियों की कुछ चुनिंदा बंदिशों पर चर्चा कर अपने विचार अभिव्यक्त करना चाहूँगी।

उपशास्त्रीय संगीत की मुख्य गायन–शैली है **'ठुमरी'**। बंदिश के बोलों को राग के विभिन्न स्वर–संयोजनों में पिरो कर बोल–बनाव द्वारा भावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करना इस शैली की विशेषता है। ठुमरी गायन में इसे 'अदा' करना कहा जाता है। बोल–बनाव ठुमरी गायिकी की जान है। ठुमरी की एक पुरानी, परम्परागत और सर्वाधिक प्रचलित बंदिश है– 'रस के भरे तोरे नैन सांवरिया', जो राग भैरवी में रचित है। सुप्रसिद्ध ठुमरी गायिका गौहरजान द्वारा रचित इस बंदिश के शब्द श्री विक्रम सम्पत द्वारा लिखित पुस्तक 'माई नेम इज़ गौहर जान!' में निम्न प्रकार से दिए गए हैं–

अरे पथिक गिरधारी सुन इतनी कहियो टेर/दिग झर लई राधिका अब ब्रिज भूलत फेर/आजा सांवरिया तोहे गरवा लगा लूँ रस के भरे तोरे नैन सांवरिया/जेहि चितवत तेहि बस करी राखत/नाहि पड़े मैका चैन सांवरिया/रस के भरे तोरे नैन

*एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग (गायन), दौलत राम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

इस बंदिश को शास्त्रीय और उपशास्त्रीय संगीत के अनेकानेक कलाकारों ने अपनाया और अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत किया। अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि एक ही बंदिश के कितने विविध रूप हो सकते हैं। बंदिश की रचयिता गौहर जान की रिकार्डिंग सुनें तो हम देखेंगे कि उन्होंने इस बंदिश को दादरा ताल में प्रस्तुत किया है। रिकार्डिंग में उन्होंने केवल स्थायी का गायन किया है, अंतरे का नहीं। संभवतः रिकार्ड की समय–अवधि कम होने के कारण ऐसा किया गया हो। बीच–बीच में शेरो–शायरी का बहुलता से प्रयोग किया गया है। बंदिश को उन्होंने बोल–बनाव, सपाट तान, द्रुत गति की तान, पुकार आदि से अलंकृत किया है, मगर संपूर्ण प्रस्तुति दादरा–शैली में नज़र आती है। उस्ताद बरकत अली खाँ द्वारा इसी बंदिश की प्रस्तुति में हम पाते हैं कि भैरवी की इस बंदिश को उन्होंने ठुमरी–शैली में दीपचंदी ताल में गाया है। पंजाब–अंग को दर्शाती टप्पा–अंग की तानों का प्रयोग कर, चपल बोल–बनाव द्वारा बंदिश को अलंकृत किया है। लग्गी का प्रयोग ठुमरी के बीच में किया है। उनकी गाई इस ठुमरी के बोल हैं –

'रस के भरे तोरे नैनवा साँवरिया/ आजा सांवरिया तोहे गरवा लगा लूँ/दिन नाहि चैन रात नाहि निंदिया/तड़पत हूँ दिन रैन'

पूरब अंग की ठुमरी सम्राज्ञी विदुषी सिद्धेश्वरी देवी ने इसी ठुमरी को कहरवा ताल में अत्यंत उत्कृष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। मुखड़े की सम पंचम स्वर पर है। उनके द्वारा गाए गए ठुमरी के अंतरे में 'गौहर' नाम का प्रयोग किया गया है जो इस बात की पुष्टि करता है कि यह गौहरजान की रचना है।

'गौहर प्यारी तोपे बलि–बलि जाऊँ
मोरा जिया पिया तरसे, साँवरिया'

खनकती हुई आवाज़ की धनी बेग़म अख्तर ने भैरवी की इस ठुमरी को विलंबित दीपचंदी ताल में अत्यंत ठहराव के साथ बोल–बनाव करते हुए गाया है। शब्दों को तोड़ कर प्रस्तुत करना उनकी अपनी विशेषता थी जिस कारण उनकी आवाज़ में ये ठुमरी कुछ अलग ही रंग लिए हुए नज़र आती है। सुप्रसिद्ध गायिका विदुषी गिरिजा देवी ने इस ठुमरी का मुखड़ा षड्ज स्वर पर रखा है। अंतरे के शब्दों में भी थोड़ा अंतर नज़र आता है।

'दिन नाहीं चैन रात नहीं निंदिया/नाहि पड़त मन को चैन'

इतने सारे कलाकारों की प्रस्तुति के अवलोकन के पश्चात् हम इस बंदिश का मूल स्वरूप क्या मानेंगे ? राग एक है–'भैरवी', पर बंदिश के रूप अलग–अलग नज़र आते हैं।

साहित्य की दृष्टि से देखें तो कमी–कभी कुछ बंदिशें शब्दों की फेर–बदल के कारण विविधता लिए हुए दिखाई देती हैं। ऐसी ही एक ठुमरी की बंदिश है–

'अबके सावन घर आजा हो विदेसी सैंया हूँ अकेली
उड़ियो रे कगवा, ले जइयो संदेसवा पिया के पास ले जा
तेरी सोने चोचं मढ़ाऊँगी पंख के ऊपर कलम से लिख दूँ'

बेगम अख्तर जी की रसपूर्ण अदायगी ने इस बंदिश को अत्यधिक लोकप्रिय बनाया। उनके द्वारा राग तिलककामोद में इस ठुमरी की अभिव्यक्ति बहुत सुंदर बन पड़ी है। ठुमरी गीतों में प्रायः स्त्री के प्रेम अथवा विरह की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इसलिए इस गीत विधा की बंदिशें स्त्रियोचित और शृंगार–प्रधान होती हैं। उपरोक्त ठुमरी में भी प्रतीक्षारत नायिका के मन की टीस और इच्छा का चित्रण किया गया है। यद्यपि इस ठुमरी का स्मरण होते ही ज़हन में बेग़म अख़्तर की खनकती हुई आवाज़ उभर आती है । तथापि अन्य कलाकारों ने भी इस ठुमरी को बखूबी प्रस्तुत किया है। पूरब–अंग ठुमरी की सुप्रसिद्ध गायिका विदुषी सविता देवी द्वारा इस ठुमरी की प्रस्तुति में 'विदेसी सैंया' की जगह 'ननदी के विरना' (ननद के भैया) शब्दों का प्रयोग किया गया है।

अबके सावन घर आजा मोरी ननदी के बिरना/उड़ जा रे कागा मोरे पिया को संदेसवा ला/सोनवा मढ़ाऊँ तोरे चोंच

विदुषी हीराबाई बड़ौदेकर द्वारा गाई इस ठुमरी के शब्द निम्न प्रकार से मिलते हैं–

अबके सावन घर आजा, मोरे सैंया/ए री पपैया, तोरी सोने चोंच, मढ़ाऊँगी/पिया से मिलन को हाँ

पंजाब–अंग की ठुमरी–शैली के सिद्धहस्त उस्ताद बरकत अली खाँ ने इसी ठुमरी में विदेसी सैंया के स्थान पर विदेसी बालम शब्दों का प्रयोग किया है। विदुषी शुभदा मराठे द्वारा गाई गई इस लोकप्रिय ठुमरी के शब्द कुछ और ही हैं–

'अबके सावन घर आजा, बिदेसिया मोरा हो
मन की तलैया सूखी पड़ी है प्रेम बूंद बरसा जा'

मोटे तौर पर देखें तो सभी कलाकारों द्वारा गाई इस ठुमरी का भाव तो एक हैं पर अभिव्यक्ति हेतु जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे पृथक हैं। यूँ तो ये ठुमरी राग तिलक कामोद में मानी जाती है मगर कुछ कलाकारों ने इसे राग मांझ खमाज और राग देस में प्रस्तुत किया है। ठुमरी एक भाव–प्रधान शैली है और इसमें राग–मिश्रण की भी छूट रहती है। एक कलाकार इसे अपनी कल्पनाशीलता से सजाता है। संभवतः इस कारण भी एक ठुमरी कभी–कभी विभिन्न कलाकारों द्वारा अलग–अलग रागों में प्रस्तुत कर दी जाती है। महत्त्व इस बात का है कि प्राबल्य किस राग का है।

उपशास्त्रीय संगीत की एक ऋतु–प्रधान गायन–शैली है 'होरी' जो अधिकतर फागुन मास में गाई–बजाई जाती है। राधा–कृष्ण के फाग खेलने का, रंग, अबीर, गुलाल व होरी की मस्ती का वर्णन लिए अनेक बंदिशें उपलब्ध हैं। ऐसी ही एक खूबसूरत होरी की बंदिश है–

'उड़त अबीर गुलाल, लाली छाई है / मोर चन्द्रिका लाल भयो है, मुरली लाल विशाल / लाल श्याम लाल भई राधे, लाल नवल ब्रज बाल'

विदुषी गिरिजा देवी जी ने इसे राग मिश्र गारा में कहरवा ताल के अंतर्गत होरी गीत के रूप में प्रस्तुत किया है जबकि विदुषी सिद्धेश्वरी देवी और उनकी सुपुत्री सविता देवी ने इसी बंदिश को काफी की ठुमरी के रूप में जत अथवा दीपचंदी तालों में गाया है। उनके द्वारा गाई गई इस बंदिश में निम्नलिखित अन्तरा भी सुनने को मिलता है।

'अम्बर लाल, लाल भई जमुना लाल गाय गोपाल'

यह उदाहरण भी एक ही बंदिश के विविध रूपों को दर्शाता है।

'**झूला**' उपशास्त्रीय संगीत की एक ऐसी गान विधा है जिसका गायन वर्षा–ऋतु में किया जाता है। झूला पर झूलते राधा–कृष्ण अथवा नायक–नायिका का वर्णन, कदम्ब की डार व हिंडोले का वर्णन, कारी बदरिया व बूंदों का वर्णन इत्यादि इसके वर्ण्य–विषय रहते हैं। पूरब क्षेत्र में झूले की अनेक बदिशें मिलती हैं। झूले की एक सर्वाधिक प्रचलित बंदिश है जिसे बहुत से कलाकारों, जैसे– पं. छन्नू लाल मिश्र, विदुषी गिरिजा देवी, विदुषी सविता देवी, विदुषी शोमा गुर्दू आदि ने अत्यंत भावपूर्ण ढंग से गाया है।

'झूला धीरे से भुलावो बनवारी रे साँवरिया / झूला झूलत मोरा जियरा डरत है, लचके कदमवा की डारी / अगल–बगल सब सखियाँ झूलत हैं, बिचवा में झूले राधा प्यारी / राधे झूलें कृष्ण झुलावें, निरखत सब नर नारी'

किसी भी कलाकार की प्रस्तुति उसके घराना की विशेषताओं, व्यक्तिगत विशेषताओं, गायिकी और कल्पनाशीलता से प्रभावित रहती है। इस झूला–बंदिश की प्रस्तुति भी सभी कलाकारों ने अलग–अलग ढंग से दी है। स्थायी के बोलों का स्वर–संयोजन और लगाव, ताल की लय, बोल–बनाव का ढंग इत्यादि– ये सभी तत्त्व बंदिश की प्रस्तुति को पृथक–पृथक रंग देते हैं। सविता देवी जी द्वारा गाए इस झूले की पंक्तियाँ निम्न प्रकार से हैं–

'झूला धीरे से झुलावो बनवारी, अरे संवरिया ना / चार सखी मिल झूला झुलावें, बिचवा में झूले राधा प्यारी / राधा झूलें कृष्णा झुलावें, लचके कदमवा की डारी / राधा कृष्णा मिल के झूलें, युगल छवि लागे न्यारी'

उपर्युक्त की गई चर्चा के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि उपशास्त्रीय संगीत के अंतर्गत एक ही बंदिश का गायन–प्रारूप भिन्न हो सकता है। उसी बंदिश को विभिन्न रागों, तालों व लय में बाँधा जा सकता है। हम देखते हैं कि जब कोई शिष्य एक कलाकार के रूप में खिलने लगता है तो वह गुरु–मुख से प्राप्त विद्या में अपनी कल्पनाशीलता द्वारा नव–परिवर्तन करने लगता है।

सौन्दर्य तत्त्व, साहित्य, लय, अलंकरण, प्रस्तुति का ढंग, घरानेदार विशेषताएँ, कलाकार का व्यक्तित्व– ये सभी अवयव मौखिक रूप से प्राप्त बंदिशों पर अपना प्रभाव डालते हैं। फलस्वरूप एक ही बंदिश विभिन्न कलाकारों के मुख से अलग–अलग प्रारूप लिए प्रगट होती है। चूंकि उपशास्त्रीय गान–विधाएँ भाव–प्रधान होती हैं, अतः मूल बंदिश का प्रारूप थोड़ा–बहुत बदल भी जाए तो श्रोताओं द्वारा स्वीकार्य होता है चूंकि बंदिश का भाव उसी रूप में क़ायम रहता है।

परिणाम और निष्कर्ष :

1. पुरानी बंदिशों के मूल प्रारूप को समझना।
2. एक ही बंदिश के विविध रूप होना।
3. बंदिश का भाव एक होते हुए भी उसे भिन्न–भिन्न रागों व तालों में बाँधा जाना है।
4. गुरुमुख से प्राप्त बंदिशों में शिष्य–वर्ग द्वारा नवप्रवर्तन

संदर्भ सूची :

1. शुक्ल, डॉ. शत्रुघ्न, ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ (प्रथम संस्करण 1983), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
2. Sampath, Vikram, My name is Gauhan Jaan (2011), Rupa Publications India Pvt. Ltd., Daryaganj, New Delhi.
3. संगोराम, डॉ. श्रीरंग, मुक्त–संगीत संवाद (1995), गानवर्धन, मुकुन्दनगर, पुणे।
4. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, निबन्ध संगीत (1978), संगीत कार्यालय, हाथरस।
5. https://youtu.be/WlwnCNSoaVM; https://youtu.be/ezfNRXjh1cQ; https://youtu.be/4EsSFwHKBWI; https://youtu.be/yXjCrmqHjUY; https://youtu.be/8ezCh_bw3UQ; https://youtu.be/975N1Qjgsqg; https://youtu.be/aMPMGpWPkKw; https://youtu.be/t2tqAQVSsr8; https://youtu.be/yre9uygMNTI; https://youtu.be/Coumoyf4jR8; https://youtu.be/hVsznF1IYZw; https://youtu.be/Hk3EGupdY98; https://youtu.be/i_8GhcZX1Mk;https://youtu.be/O9Fj7uAyeKE

वैष्णव रास-परम्परा एवं भारतीय संगीत

डॉ. नीता माथुर*

सारांश

'रास' शब्द एक व्यापक परम्परा का संवाहक है जिसके अन्तर्गत विविध गान, नृत्य, अभिनय, नाट्य आदि परम्पराओं का समावेश हुआ है। वैष्णव रास और उसमें व्यवहृत संगीत के स्वरूप का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। रास में साहित्य, काव्य, संगीत एवं नृत्याभिनय का सुन्दर संगुम्फन है। कृष्ण–लीलापरक रास साहित्य अपरिसीमित है। मध्य युग में ब्रज को केन्द्र मानकर एक समृद्धिशाली कृष्णोपासक संगीत, साहित्य और नृत्याभिनय विधाओं का नवोत्थान, प्रचार एवं प्रसार हुआ। यह सत्य है कि ब्रज–भूमि संगीत की वास्तविक महिमा, उसकी गरिमा और संरक्षण का केन्द्र रही है। ब्रज के उपासना–केन्द्रों में भक्त–संगीतज्ञों, वैष्णव आचार्यों ने राधा–कृष्ण, गोप–ग्वालाओं, ब्रजवासियों की सरस लीलाओं का गुणगान करते हुए अपनी पदावलियों को काव्य के विविध छन्दों, रस, अलंकार एवं संगीत की विभिन्न राग–रागिनियों में आबद्ध कर उन्हें अपनी श्रद्धा एवं भक्ति की अभिव्यक्ति का मध्यम बनाया।

कृष्ण–चरित्र प्रधान रास में वर्णित कथावस्तु से उत्तर भारतीय संगीत में ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि विभिन्न गान–विधाएँ भी प्रभावित रही हैं। इसी रास की विविध धाराओं का व्यापक प्रचार देश के विभिन्न भागों में हुआ जो वहाँ की विभिन्न गीत–नृत्य प्रकारों में दृष्टिगोचर होता है।

मुख्य शब्द : *वैष्णव रास, ब्रज भाषा, संगीत, परम्परा, कृष्ण चरित्र*

शोध प्रविधि : *इस आलेख को तैयार करने के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।*

'रास' शब्द से विशिष्ट छन्द, लोक प्रचलित नृत्य विधा, ताल, विशिष्ट काव्य–रचना–प्रकार एवं गेय नृत्य–रुपक का बोध होता है। 'रास' से जहां ब्रज प्रदेश में होने वाले रासानुकरण का संकेत मिलता है, वहीं विभिन्न प्रदेशों मे आज भी इसके अनेक रूप दिखाई देते हैं और यहां वह उन प्रदेशों के गीत, नृत्य, नाट्य विधाओं से जुड़ा हुआ है।

रास अपनी आरम्भिक अवस्था में एक मंडलाकार नृत्य विशेष था। रास के आदि स्वरुप का विशद् वर्णन ब्रह्म पुराण, भागवत, हरिवंश पुराण और विष्णु पुराण में मिलता है। इसमें श्रीमद्भागवत के दशम् स्कंध में वर्णित रास कृष्ण–भक्त–वैष्णवों का सबसे बड़ा प्रेरणा स्रोत रहा है। इसके 29 से 33वें अध्यायों में वर्णित रास, जिन्हें 'रास पंचाध्यायी' कहा जाता है, के आधार पर ही 15–16 वीं शताब्दी के कृष्णोपासक सम्प्रदायाचार्यों द्वारा रास लीला का पुनरुत्थान किया गया।[1] कृष्ण चरित्र प्रधान वैष्णव रास में काव्य, गान, नृत्य एवं अभिनय का मंजुल समन्वय दिखाई देता है। कालान्तर में रास में प्रयुक्त गीत, वाद्य, नृत्य, अभिनय आदि विविध अंग विविध विधाओं के रूप में विकसित हुए।

वैष्णव रास और उसमें व्यवहृत संगीत के स्वरूप का प्राचीनतम उल्लेख हरिवंश पुराण (ईसा की दूसरी शताब्दी के लगभग) में मिलता है। इसमें मंडलाकार रास का प्रसंग 'हल्लीस" के नाम से किया गया है : –

चक्रवालैः मण्डलैः हल्लीस क्रीडनम्।
एकस्य पुसो बहु भिः स्त्रीभिः क्रीडनं सैव रास क्रीडा ।।"[2]

अर्थात् एक पुरुष व अनेक स्त्रियों के साथ रचे गए क्रीडन (नृत्य) को 'हल्लीस' और उसी को 'रास क्रीडा' भी कहा जाता है। इस प्रकार, हल्लीस नृत्य का ही दूसरा नाम 'रास' है और शास्त्रकारों ने दोनों में अभेद माना है। हल्लीस नृत्य की संगति में वाद्य विधानयुक्त संगीत के रूप में 'छालिक्य गान्धर्व' का महत्वपूर्ण प्रसंग हरिवंश पुराण में उपलब्ध होता है[3] जिसके आधार पर 'छालिक्य गान्धर्व' गान्धर्वों द्वारा संप्रयुज्य तथा मृदंगादि, वीणादि वाद्यों की संगति में अभिनय सहित प्रस्तुत किया जाने वाला संगीत सिद्ध होता है। एक अन्य स्थल पर गांधार ग्राम में गाए जाने वाले आसारित गीत से युक्त 'देव गांधार' नामक छालिक्य को भीम स्त्रियों के दवारा गाए जाने का उल्लेख भी मिलता है।[4] हरिवंश में छालिक्य को स्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किया जाना इसके लोकरंजक पक्ष का परिचायक है।

*एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, विवेकानन्द महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रास–नृत्य को आधार मानकर भारोपीय काल का जन–साहित्य निर्मित हुआ। नर–नारी श्रृंगार–प्रधान उन काव्यों का गान करते हुए उपयुक्त ताल, लय एवं गति के साथ मंडलाकार नृत्य करते थे। कभी केवल पुरुष, कभी केवल स्त्रियां इस नृत्य में भाग लेतीं। इस नृत्य के मूल प्रवर्तक श्रीकृष्ण ब्रजवासी थे जिन्होंने ईसा से शताब्दियों पूर्व इस नृत्य को गोप–समाज में प्रचलित किया। वृष्णि, सात्वत, आभीर आदि जातियों ने इस नेता की आराधना की और रास को धर्मोन्मुखी नृत्य के रूप में प्रतिष्ठित किया।[5] ईसा की दशमी शताब्दी से ही भारत के विभिन्न प्रदेशों मे संस्कृत नाटकों की एक नवीन शैली का प्रचलन हो चुका था। नाट्यकारों ने इस विधा को, जो संगीत, नृत्य एवं अभिनयपूर्ण सम्वादों से युक्त थी, 'संगीतक' संज्ञा से अभिहित किया था। वाणभट्ट की 'कादम्बरी' में 'संगीतकों' एवं 'संगीत–गृह' का उल्लेख प्राप्त होता है। 14–15 वीं शताब्दी तक आते–आते संगीतक की इस विधा में गीत, ताल एवं वाद्यों का ही प्रयोग सन्निहित था किन्तु मध्य युग में मिथिला, नेपाल और असम के संगीतकों में गद्य एवं पद्यमयी संवाद–शैली की नियोजना दिखाई देती है। जयदेव के 'गीत गोविन्द" के माध्यम से श्रीमद्भागवत में वर्णित रास के काव्य को संगीतमय सम्वाद–शैली एवं नृत्य के साथ प्रस्तुति की आधार–भूमि प्राप्त हो चुकी थी।[6] ऐसी स्थिति में 15–16 वीं शताब्दी में ब्रजमंडल को केन्द्र बनाकर भक्ति की जो धारा भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रवाहित हुई, उसके समक्ष वैष्णव–धर्म के प्रचार–प्रसार की दृष्टि से इन संगीताभिनययुक्त संगीतकों के प्रयोग और उनकी जन–जन में प्रसार की उपयुक्तता स्वयं सिद्ध थी। संगीतक की शैली नृत्य, गान एवं सम्वाद–प्रधान थी। भाषा गीतों के साथ गद्य सम्वादों की नियोजना इस शैली के प्रस्तुतिकरण की विशेषता थी। 15–16 वीं शताब्दी में ब्रज की ओर उन्मुख हुए संत आचार्य संगीतकों की इस विधा से पूर्णतः परिचित होने के साथ ही उनके प्रयोग एवं प्रदर्शन के लिए रंगमंचीय प्रस्तुति एवं गान नृत्य–परम्पराओं में भी पारंगत थे।

मध्ययुग के प्रारम्भिक चरण में कृष्णलीला के अभिनयात्मक स्वरूप की व्यापक भावना सर्वत्र व्याप्त थी और इसी का नवोत्थान ब्रजभूमि को केन्द्र मानकर कृष्णोपासक धर्माचार्यों एवं भक्तों द्वारा सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ।[7]

कृष्ण–लीलापरक साहित्य अपरिसीमित है। श्रीकृष्ण चरित्र से सम्बद्ध अनंत लीलाओं का विपुल साहित्य–सृजन अनेक ब्रजभाषा कवियों एवं वाग्गेयकारों द्वारा हुआ है जिनमें महाकवि सूरदास आदि अष्टछाप कवि संगीतज्ञों के साथ ही स्वामी हरिदास, गदाधर भट्ट, गो. हरिराय, राजा आसकरण, वल्लभ रसिक, चंदसखि, नागरीदास, जगन्नाथ रत्नाकर आदि का स्थान प्रमुख है। इनके अतिरिक्त रसखान, ताज, आलम आदि की भी रचनाएँ प्राप्त होती हैं जो कृष्ण लीला से अनुप्राणित हैं। ब्रज के उपासना केन्द्रों में भक्त संगीतज्ञों, वैष्णवाचार्यों ने राधा–कृष्ण, गोप–ग्वालाओं की सरस लीलाओं का गुणगान करते हुए अपनी पदावलियों को काव्य के छन्दों, रस, अलंकार एवं संगीत की विभिन्न राग–रागिनियों में आबद्ध कर उन्हें अपनी श्रद्धा एवं भक्ति की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया। संगीत व साहित्य का चरमोत्कर्ष मध्यकालीन भक्त संगीतज्ञों एवं वाग्गेयकारों की रचनाओं में मिलता है। भारतीय संगीत की प्राचीन परम्परा का जो सूत्र 'संगीत रत्नाकर' (तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रचित संगीत ग्रन्थ) की रचना के साथ टूट–सा गया था, वह अपने तन्तुओं को समेट कर पुनजीवित हो गया। ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर (1486–1526 ई.) ने ब्रजभाषा के माध्यम से उच्छिन्नप्राय ध्रुवपद–परम्परा की पुनर्प्रतिष्ठा कर संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। ग्वालियर ब्रज प्रदेश की ही उपत्यका पर स्थित है। मानसिंह के शासन काल में विष्णुपद एवं ध्रुवपद गान–शैलियों को राजदरबारों में नव प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। राजा मानसिंह ब्रज मंडल के मंदिरों में कृष्णोपासक सेवा पद्धति में प्रचलित राग–रागिनियों एवं तालों में निबद्ध भक्ति–पदों एवं विष्णु–पदों तथा अन्य स्तुतिपरक गान–प्रबंधों से भली भांति परिचित थे। उनके सद्प्रयासों से प्राचीन प्रबंध शैली के आधार पर ब्रज–भाषा में ध्रुवपद गान–परंपरा को एक नवीन कलेवर प्राप्त हुआ।

कृष्णचरित्र–प्रधान रास में वर्णित कथावस्तु से उत्तर भारतीय संगीत के धुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि सभी गान–विधाएँ भी प्रभावित रही हैं। ठुमरी और कत्थक नृत्य, दोनों के विषय भी ब्रज के कृष्ण चरित्र, रास–साहित्य से अनुप्राणित हैं। लखनऊ में रास–लीला का प्रचार ब्रज के रासधारियों द्वारा हुआ था और अवध के नवाब वाजिद अली शाह को 'रहस' (रास) की प्रेरणा उन्हीं रासधारियों से मिली थी। वाजिद अली शाह 'अख्तर पिया" की बनाई कई ठुमरियों का संकलन उनके युग में लिखे गए 'इन्दर सभा' और 'रहस' नाटकों में मिलता है जिनपर ब्रज की रास–परम्परा का

स्पष्ट प्रभाव झलकता है। अब्दुल हलीम 'शरर' 'गुजिश्ता लखनऊ' (उर्दू) पुस्तक में लिखते हैं "बादशाह ने श्रीकृष्णजी का रास, जो हिन्दुओं में प्रचलित था, देखा था"..... 'रहस" खास मथुरा और ब्रज की कला है। वहीं के रासधारियों ने आ आकर लखनऊ को इसका शौक दिलाया।'[8]

इस प्रकार, रास एक विस्तीर्ण परम्परा का संवाहक है। आगे चलकर, ब्रज के इसी रास का व्यापक प्रचार सौराष्ट्र (गुजरात), उत्कल (उड़ीसा), मिथिला, बंगाल तथा कामरूप (आसाम) तक हुआ जो आज भी हमें गुजरात के गरबा नृत्य, जगन्नाथपुरी में जयदेव कवि की अष्टपदियों पर आधारित उड़ीसी नृत्य एवं आसाम के मणिपुरी नृत्यों मे परिलक्षित होता है।

सन्दर्भ सूची :

1. मीतल, प्रभुदयाल, ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, षष्ठ अध्याय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966, पृ.सं. 164–168
2. पाण्डे, वीणा पाणि, हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन, लखनऊ प्रकाशन शाखा, उत्तरप्रदेश, 1960, पृष्ठ सं.– 30
3. आज्ञापयामास ततः स तस्यां निशि प्रहृष्टो भगवानुपेन्द्रः।
   छालिक्यगेयं बहु सन्निधानं यदेवगान्धर्वमुदाहरन्ति।।67।।
   जग्राह वीणामथ नारदस्तु षड़जग्रामरागादि समाधि युक्ताम्।
   हल्लीसकं तु स्वयमेव कृष्णः सवंशघोष नरदेव पार्थः।।68।।
   – विष्णु पर्व छालिक्य क्रीडा (89), हरिवंशः, (उत्तराधः) रामचन्द्र शास्त्री (संपादक), चित्रशाला प्रेस, पूना, 1936
4. "भैमापिबद्ध नेपथ्या नटवेषधरास्तथा।"
   ततस्तु देवगान्धारं छालिक्य श्रवणामृतम्।
   भैमस्त्रियः प्रजगिरे मनः श्रोतृ सुखावहम्।।
   आगान्धार ग्राम रागं गंगावतरणं तथा।
   विद्धमासारितं रम्यं जगिरे स्वर सम्पदा।।
   –हरिवंशः, 93 अध्याय, श्लोक संख्या 2,22,23,24,25, शास्त्री, रामचन्द्र (संपादक), चित्रशाला प्रेस, पूना, 1936
5. शर्मा, डॉ. दशरथ, भूमिका, रास और रासान्वयी काव्य, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 1959, पृष्ठ सं.– 41,
6. यामदग्नि, डॉ. वसंत, रास लीला और रासानुकरण विकास, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली, 1980, पृष्ठ सं.– 147
7. ओझा, डॉ. दशरथ, हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, 2011 विक्रमी, पृष्ठ सं.– 100
8. शरर, अब्दुल हलीम, गुजिश्ता लखनऊ, अनुवादक नूर नवी अब्बासी, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1971, पृष्ठ सं.–61

The Rhythmic Variety, Taal and Musical Instruments in Bhaoaiya Songs

Dr. Krishnendu Dutta*

Abstract

The 'Bhaoaiya' is a very popular form of music in Northern part of the West Bengal. The Rajbanshi community people of North Bengal practices this song with emotion. It is an inseparable part of their life which also creates a soundscape of the land. This paper has been studied with a purpose to explore this bhaoaiya songs from structural aspect. This song represents a region. Parallelly, it has a very unique structure of rhythm embedded in and Taals used in bhaoaiya. These songs and its rhythm, taal are the innate attitude of local thinking which demands a thorough discussion so that this unique rhythmic varieties may come in front of the world that enriches our cultural heritage. Along with these bhaoaiya has its own set of taal which are played in some ethnic musical instruments. These musical instruments also demand the exclusiveness within themselves. But with the time this rich heritage is being obsolete due to various reasons. So, this paper aims to discuss the rhythmic varieties, the taals and the musical instruments that are used in bhaoaiya in detail.Also,the waysof conservation and rejuvenation of this form of music to retain and revive in the world of music.

Keywords: *Bhaoaiya, rhythm, taal, musical instrument, music.*

Methodology : *The conventional data collection methods for music research has been applied to study the papers, alongwith field studies documented and researches has been explored regarding this purpose.*

Introduction:

'Aare o bangormoisher ore dafaadaar
Aajinakarang tor bangormosherchaakiri |
Aajibangormosher ore emni re dudh
Chokhernaadhore nin$_1$ |
Aaji mosh charaang$_2$ mor maishaalbondhu re
O maishaalkonbacharaarmaajhe
Aajielaokene ghaantir$_3$daang
Naashonoaarkaane |
Aajiaathaandichhi o mor kanyaare
O kanyaaghaaterujaane
Jol aanibaarchholekanya
Dekhaakoran more |'[1]

1. nin- sleep, 2. *Charaang*- pasture, 3. *Ghaanti*- buffalo neck bell.

Naming: First of all, Bhaoaiya is a love-oriented solo vocal- song. Bhaoaiya word considered to be originated from thoughts. The lexical meaning of the word *bhaba* - towards, romance, nature, disposition, type, meaning, thought, devotion, emotion, etc. In other words, the person who does not know the feeling of love, has nothing to do with Bhaoaiya songs. Many have described it as a folk and human version of the Radha-Krishna song[2].

Secondly, the regional pronunciation of the word *bhav* is *'bhao'*. It means dodge, style, directions or compromises. The word bhaoaiya is formed by adding the suffix '*ya'* to the word '*bhao'*. The suffixed word means 'who thinks' or 'who let's think'. According to other way, the answer to the place-meaning word 'bhava' is thought to have been added by the suffix 'ya'[3].

Thirdly, the word bhava means 'river basin'. This song used to be sang by the 'maishaal's (the cattle care taker or cowboy) along with playing '*dotara'* while grazing the buffaloes for months. *'The song used to flow from Bhava*

*Associate Professor and Head of Department, Sikkim University, Gangtok, Sikkim

to the surrounding locality' hence the name of this song is Bhaoiaya.[4]

Fourthly, some landless people in North Bengal have adopted music as their only means of life-journey. They are called 'Bawaiya' in the local language. They live a life without chaos. The song sung by the Bawaiya community is called Bhaoaiya song.[5]

Fifthly, the word bhaoaiya means buffalo grazing land. Bhaoaiya is the song that the *Maishaals* used to sing with the help of *Dotara* in the Bhava region when the buffaloes were grazing. Bhaoiaya songs have a very close relationship with Maishaal's buffalo herding, it's taking care etc.[6]

Sixthly, Bhaoiaya is basically *Ramalia* labour music. Songs like Bhaoaiya, Chatka, Jag etc. were not popular in the locality. During the leisure time in the agricultural work, while grazing buffaloes, this song was sung outside the locality in the distant field and the reed forest. At that time, singing with dotara, byana, saringa or flute in the locality or playing those musical instruments was considered illegal and criminal ofense in the social law.[7]

Seventhly, the word Bhaoiaya means bored or chaotic in the Rajbangshi dialect. So, the song of Bhaoiaya is Udasi (unconcern) or Bibagi.[8]

There are various opinions on naming Bhaoiaya. This argument has not been resolved. But there is no doubt about that the Rajbangshi community of North Bengal is the main holder and carrier of the Bhaoaiya song.

Dhimdhikdhikmaishaal re
Maishaal Dhik Tamaar Hiya
He henasundarinaari
Kaarejaibendiya (maishaal re)
Tamraajaibenmaish bathane$_1$*... O*
O maishaalaamaarbaade ki
Tamaarparanershamlaidhuti
Amaardaantermishimaishaal re |
O baanijje$_2$*najaan mor swami he*
Bia hobar mor bochornaa pure |

1 bathan - accommodation, 2 baanije - trade

Jayant Kumar Barman, a music teacher at Sikkim University, has made a different classification of Bhaoaiya. This category has the following subcategories like 'Gitabitan'. The outline is as follows

1) Education-conscious, 2) Piriti (love), 3) Separation, 4) Love of homeland, 5) Puja and Parvani (festivals), 6) Diversity, 7) Occasional, 8) Natural, 9) Society centred, 10) Work music, 11) Dehatattva (spiritual), 12) Krishna-centric, 13) Palagan, 14) Abstinence, 15) Rangras (fun)

The above layout matches the initial direction of Bhaoaiya's rhythm-essence-smell-color.

Rhythm:

If the folk cultures are tied in rules, it will no longer be the folk culture. Folk culture is like an unobstructed fountain. It moves at its own pace. May be for this reason, there is probably no special discussion of Bhaoaiaya's rhythm in almost any text is not found. The exception is Jayant Kumar Barman's 'BhaoaiayaSwaralipi'. There are seven self-written rhythms in this book-

1) Hasti, 2) Jhatka, 3) Choddo Sawari, 4) Saitol, 5) Baramaishya, 6) chabbisha, 7) Chukri.[9]

1. Taal : Hasti (Elephant)

Identity

Matra - 16, Division - 4, Rhythm - 4/4

Mark- + / 2/0/3, clap - 1.

Theka

|| Dhing gay ta ghe | Te gay na -|
+ 2
| Ta di dik dik | dik dik dik dik | Dhing
0 3 +

2. Taal : Jhatka (Chal-Chatkalaya)

Identity

Matra - 12, Division - 4, Rhythm - 3/3

Symbols - + / 2/0/3, clap - 3, blank - 1

Theka

|| Dhing gay ghe | Re te te| Na dhing dhing

+ 2 0

| Dhing Ghe -| Dhing

3 +

3. Taal : Choddosawari

Identity

Matra - 14, Division - 6, Rhythm - 3/2/2/3/2/2

Symbols - + / 2/3/0/4/5, clap - 5, blank - 1

Theka

|| Dhik na ka | Dhing -| Dhing -|

+ 2 3

| Te te ka | Te te| La -| Dhik

0 4 5 +

4. Taal : Saitol

Identity

Matra - 6, Division - 4, Rhythm - 1/2/1/2

Symbols - + / 2/3/4, clap - 4, blank - no

Theka

| Dhi | Na Dhingla Dhi | Na - | Dhi

+ 2 3 4 +

5. Taal : Baromaishya

Identity

Matra - 12, Section - 8, Rhythm - 1/2/1/2/1/2/1/2

Symbols - + / 2/3/0/5/6/7

Theka

| Dhi | Na Dhingla| Dhi | Na - |

+ 2 3 4

| Ti | Na Dhingla| Dhi | Na coeba | Dhi

0 5 6 7

Or

Zing	Za tete	Crorar	Ja tete	
+	2	3	4	
Crorar	Ja tete	ta	dirdir dirdir	zing
0	5	6	7	+

6. Taal : Chabbisha (Khachra Loy)

Identity

Matra - 24, Division - 6, Rhythm - 3/3/3/3/3/3

Symbols - + / 0/2/0/3/0/4/5, clap - 5, blank – 3

Theka

Dhing ge ghe	Le tak -	
+	0	
- - ka	te tak -	
2	0	
- - ka	te tak -	
3	0	
korar de korar	de la -	dhing
4	5	+

7. Taal : Chukri (Chalanti or Gao Dholani Loy)

Identity

Matra - 6, Division - 2, Rhythm - 4/4

Symbols - + / 0, clap - 1, blank - 1

Theka

Dhing naghet taghe	kat naghet tage nao	dhing
+	0	+

Je din mahutshikare jay
Narirmon mar jhuriyaroy re|
Baluti-tiponkhirekandebalutepariya
Aar gouripuriyamahutkande o
Sakhi, gharbarichariya, sakhio
O mor, dantalhatirmahut re
Jedinmahuthutan e jay
Narirmon mar jhuriyaroy re ||
Akashetenaire Chandra, tara Kemon jwole
Je narirpurushnai o
O tar rupe ki kam kore, sakhio
O mor sarin hatirmahut re
Dyashermahutchariya jay
Narirmon mar Kandia roy re|

Puthuritenaikopani
Nouka Kemon chole
Je-naritarsowamio
O tar jaibon ki kam kore sakhio ||

The beauty of love (philandering) in all these songs. The song is sung to the tune of Bhaoaiya.

Laya :

The laya or rhythm of Bhaoaiya song is divided into three parts

1) *Darya Laya*: Delayed Laya or rhythm. The slow-paced song belongs to this speed. It is divided into four subcategories
   a) Chitan: The speed of expression of separation
   b) Garaan: The expressive motion of the love of men and women
   c) Dighalnasha: Long breathing speed
   d) Kshirol: A special playing style of Dotara, the main musical instrument of Bhaoaiya.
2) *Chalantilaya*: moderate speed. It is divided into two subcategories.
   a) Chala-chalanti: Sampadi rhythm of 4/4 rhyme
   b) Sawari rhythm: 2/3/3, 3/2/2 etc. bisamapadi rhyme. However, the existence of 3/3 rhythm also exists.
3) *Chatkalaya*: Fast rhythm. It is also divided into two subcategories.
   a) Chal-Chatka: A fast pace suitable for the main song about dehatattva (spirituality).
   b) Khachra-chatka: suitable for chatul or jocular rhythmic humorous songs.[10]

The rhythmic structure of Bhaoaiya songs is not similar to Hindustani classical music. According to the ancient scriptures, there were three types of rhythms in classical music – *tattva*(theory), *anugata* (loyal) and *ogha* - now known as *bilamwit* (delayed), Madhya (medium) and drut (fast) rhythms. The number of rhythms in *Bhaoaiya* songs is equal to that of classical music. However, its nature is completely different. The rhythm of classical music is determined by the no. of *matras* (beats). But Bhaoaiya'slaya depends on emotion. Rajbangshi society is a matriarchal society. Women are much more independent here. Women's desires, love-separation are politely expressed in this song. The main preoccupation of the worldly desires is that they are happily expressed in their songs. Therefore, the success of the rhythm or motion is to evoke the appropriate emotion of the main lyrics of song. Things like too delayed or too fast rhythms are naturally missing in this song.

'Sarinzabajay Saud Saudagar
Banshibajaychor
Byanabajaytyanapinda…'

Musical instruments:

Dotara-

Dotara is the main accompaniment of the bhaoaiya song. Although the name is dotara (do-two; tara- srtings), but it has four/five strings. In ancient times there was Nakul veena with two strings attached to it. This Nakul Veena can be called the original version of Dotara. More wire insertion occurred as time changed. Patary has changed. The wires are being laid on the side of the patary with nistir wood. Steel sheets are also wrapped around the patary. As a result, Dotara has become a smaller version of Sarod or Rabab[11]. Dotara has two more names - Swaraj and Sur Sangraha.[12]

Different parts of Dotara-

The bridge over the musical box is called the Ghora (horse)

The thick wire on the far left is called- 'Bomb'

The second wire is called - 'Gin'.

The third string is called 'Sur'.

The fourth string is called 'Agini'.

The key that is turned and tied to tune is called

the 'kaan' (ear).

dotara is played with (plectrum) - 'Nagor'

Dhol (drum):

Rural, external percussion instruments. Dhol looks like dholak. Only shorter in length than the dholak and larger in the middle. The two ends of this drum are covered with leather. Although 'khiran' was given earlier, khiran or gab is not used now. It is played in standing position hanged on the shoulder. One end is played with the hand only and the other end with the stick. This Drum is not tuned in a particular scale. The drum always plays in a preset tune.

Aar Banshi (flute):

The Aar Banshi is a flute made of Nol bamboo or tube bamboo or cocoa bamboo. nodes are cut on both sides of a bamboo. Then one end of the pipe is closed with a piece of wood or bamboo. A little farther on this edge is pierced with a pointed iron rod. The large rod is burned red in the fire and then used to make multiple bigger holes. Six more holes are made 2/3 inch away after the first hole. A distance of less than one inch is kept in the middle of each hole. The flute sounds when blown with the mouth in the first hole of the pipe. The six holes are pressed with the fingers of both hands. When playing with the blow, the finger of the hole is freed and the melody is raised as required. Aar Banshi (flute) is used as an accompanying musical instrument with different types of music.[13]

Ghultung:

Ghultung is a one sringed prominent musical instrument. A piece of wood as thick as a betel tree, 10/12 inches long, is peeled off like a drum. Then one end is wrapped with dry goat skin. Then a hole is made in the middle of the wrapped leather and a wire was attached to it. The wire is one and a half to two feet long. The other end of the wire is attached to a small piece of bamboo. So that it is convenient to pull the wire. Ghultung needs a plectrum (chukti) to play, which is slightly larger than the Dotara's plectrum. Now the Ghultung is pressed under the left shoulder with the help of left hand and the wire is also pulled tight. It is played with right hand with the help of plectrum (chukti). A conventional rhyme-

'BairagiGhultungbajaisna,
Ninderchhaoauthile kale
Bhikshapabuna|'[14]

Dukduki or khamakah:

'*Lauer aagaa go khailam, gora go khailam,*
Lau diabanailamdukduki |'

The neck part of the gourd is cut into small piece and then the dried skin of the goat is wrapped to make dukduki or khamak. At present, however, a piece of wood is made into a dukduki or khamak like the neck of a gourd. Dukduki or khamak is played with the fingers of the right hand holding the open end on the left hand.[15]

Mukhabanshi:

Mukhabanshi is made from Makla bamboo. The bamboo tube (internodes) should be extended. The bark of the bamboo tube kept for to be light. Then the knots on both sides of a bamboo pole is cut. At one end a round piece of bamboo is attached, similar to Gain's Sammar. This part is about an inch long. A part of the bamboo tube should be inserted into the small part of the sphere and hardened. Then the holes are made like a flute. By blowing in the mouth, the hole is pressed with the fingers of both hands and the hole of the finger is emptied as required. As a result, the tune of the flute can be raised. Mukhabashi is used in 'Bishahara' songs. Besides, there is still a tradition of playing the flute in the bamboo playing Jag's song and Sonarai's song group.[16]

Sarinja:

Sarinja is made from small pieces of wood. One end is thick and round. The main part

of the sarinja looks a lot like the empty stomach part you get when you slice half of the stomach of a pitcher or a gourd. Its other end is narrow. In this part, three pieces of wood are drilled into the *Sarinja* to keep the strings of *Sarinja* wrapped. These three ears are specially used in pulling and loosening the strings. One by one the strings are tied to a piece of wood. On the other hand, there are three wires attached to the head of the bottom of the Sarinja. The hollow part of the main abdomen of the Sarinja is wrapped with goat or cow skin. A Ghuri (kite) is used to loosen the wires in the skin. In the kite, three small spaces are cut at equal distances for loosening three wires. The horse's tail hair is tied in a crescent-shaped wood or bamboo. It is used to play melodies. Sarinja usually used by bairagi Sampradaya (monastic community) to sing spiritual songs, mind education songs of North Bengal. At present, Sarinja are also used in Bhaoaiya songs, kirtan etc.[17]

Khol:

Khol is a devotional joyous percussion. It was born and developed in the eastern part of India. It is made of terracotta. There are khiran or gab at both ends. The Khol has enough canopies (chhat). As a result, the tension of the membrane at both ends is very high and it does not have to be tied to the tune. The sound of the khol is echo free. Three types of baaj (playing style) are observed in the khol

1) Normal open baaj (playing)
2) NammalaBaaj
3) Gupabaaj. Gupabaaj is also divided into three subcategories –

   A) Open Gupa, b) Chapa Gup c) Tuki Gupa.

Khol was the main percussion instrument in Bhaoaiya songs. Although its *patprakarana* (bol or words style) and playing style are different. At present drums are used more in the place of khol.

Sanai, Tasi, Dhak, Nagara are used in traditional or natat music. The use of some musical instruments is declining. Such as Mukhabansi, Arkai or Yugiyantra. Ghungur, kartal and mandira are used as metal instruments in Bhaoaiya songs.

Any regional characteristic folk culture is free from contamination of mechanical application of instrument. Then with the spread of Bhaoaiya, the flood of civic light contamination has penetrated it. Pre-set ruled songs are out of the familiar table of folk culture. Folklore is not a tied train. So, the application of electronic instruments along with the distortion of pronunciation will help the Bhaoaiya song to move backwards in the name of expansion. Apart from thses there are more instruments used in bhaoaiya songs like- Tasih, Nagara, Sanai, Dhak etc.

"phandote$_1$ poriyabogakande re|
Phan$_2$ bosaichephandire bhaya$_3$ putimachodiye
Macher nobhote$_4$ bokaboga pore urao$_5$ diya re|
Phandote$_6$ poriyaboga kore tanatuna
Aharekunkurarsutaholu nohar$_7$ gunare||
Phandoteporiya re boga kore hayre hay
(ore) aharedarunbidhi sati$_8$ chhariyajayo re|
Uriya jay re chakoyare$_9$ ponkhi, bagikkoyrethare
Tomarbogabondihoiche dhalla$_{10}$ nadir parot re||
Aei kota$_{11}$ sunia re bogi dui dyana$_{12}$ melilek$_{13}$
Dhallanodir parot$_{14}$ jaya$_{15}$ darshan dilek re||
Bogakdekhiyabogikande re|
Bogikdekhiyabogakande re||"

Summary: Boga tries to free himself from the trap of the hunter's but failed. Meanwhile, the eagerness of the Bogi waiting for the message given by the chakoya bird, finally appeared in front of the Boga and offered love in a helpless way. This phenomenon is also reflected in human society. The key word of the song is to highlight and warn an aspect of human life through song.

Meanings: 1. Trap, 2. Put, 3. Brother, 4. Greed, 5. Fly, 6. Tough yarn, 7. Iron, 8. Companion, 9. Chakoya, 10. Dharla river, 11. Talk, 12. Wings, 13. Spread, 14. bank, 15. Going.

Inference:

Abbasuddin Ahmed is the soul of Bhaoaiya songs. In 1939 AD, August, his record 'phandeporiyabogakande re' was released. Since then, the promotion and dissemination of Bhaoaiya songs has been increasing rapidly. Abbasuddin's *'Torsha Nadir Utal Patal Karba Chale Nao'* (June, 1941), *'Tui Mor Nidayar Kalia'* (January 1949), Suren Das's *'Dayal Re - Kar jonno Rakhibare Sonar Yauvan'* (July 1941), *'O MorKalare Kala'* (July 1941), Rahim Mia's (Dhyapa) *'Are O Ho Kala Tui Chhariya Na Jais Re'* (December 1940), Biraja Sen's *'Kanya Mo'ke Thyakalyu'* (June 1943), Dr Bhupen Hazarika and Pratima Baruah's *'Aare Gayle Ki AsibenMor Mahut Bandhure'* (June 1954), Nayer Ali's (Unu) *'Ore Dhik Dhik Moisal Re Moisal'* (February 1941), *'Gaan Gaan Kariya Sarbanash Tabu Na Mete Moner House'* (October 1940), *'Ore Diner Shobha Saruj Re Mor'* (1947), Dhiren Sarkar's *'Bhati Te Asilen Bhari'* (1940), Kedar Chakraborty's *'O Ahare Janiao Jaane Na'* (1948), Abbasuddin's*'Ki O Bandhu Kajal Bhomra Re'* (1937), *'O Bhai Mor Gaowalia Re'*(1952), *'O Ki Garoyan Bhai'* (1937), *'Haat Dhariya Kaun je Kotha*' (1953), *'Torsha Nadir Dhare Dhare Oi*' (1932), *'Kiser Mor Bandhan Kiser Mor Baron'* (1938), *'Ore Aga Nawe Dub Dub*' (1939), Kedar Chakraborty's *'Kala Ar Na Bajan Banshi Re'* (1951), Nayer Ali's *'Aji Panyara Ghungura Bajre'* (1949) records of Bhaoaiya has made a significant contribution to the growth of music popularity in all over Bengal including Bangladesh.

At present Bhaoaiya is not limited to North Bengal. Its door is open. As a result, Bhaoaiya folk culture has become a part of world culture. But it is important to remember that the source of folk culture is the village. So, it is important to know the village life. Secondly, the role of the dance accompaniment is especially important in folklore. Thirdly, folk music is not so-called system ruled. So, it basically relies on memory. Fourthly, it is necessary to have an idea about the singing style, the variation of the tone and the movement of the voice. Fifth, to become proficient in dialectal pronunciation.[18]

The above-mentioned points are absolutely necessary for the correct formulation of Bhaoaiya songs.

The taals, rhythm and musical instruments used in Bhaoaiya songs are not the only one that enhance the beauty of the song. Its application, technique and derived combined form is one can claim special uniqueness. Which is due to the innate attitude of local thinking, but requires proper teaching and practice. Otherwise, extinction is inevitable due to the evolution of negligence due to the rules of time.

Finally, it can be said that the present time is the era of product culture. Art is also a delightful product somewhere. But what is beautiful needs to be sustained. This should not be asked or given up as it is old. The only thing that can be done smoothly is through diligent research and relentless practice. Hope is a number of organizations have been doing this work non-stop without expecting rewards in North Bengal.

References :

1. Dutta Roy, B. [ed.] (2015), North Bengal Folk Music Literary Academy, New Delhi, p. 83
2. Chowdhury, A. H. (2001), *Bangladesher Lokosongite Premcetana,* Dhaka, p. 38
3. Ahmed, W. (2015), *Bangla Loksangiter Dhara,* Dhaka, p. 229
4. Burma, S. (1992), 'Bhaoaiya sanjyautpattikramabikash', *Loksanskrity Gaveshana,* Kolkata, p. 111
5. Bhattacharya, S. (1980), *Folk Literature and Culture of North Bengal*, Calcutta, p. 100
6. Banerjee, S. (1992), 'Bathan-Sanskrit and Bhaoaiya', *Loksanskrity Gaveshana,* Kolkata, p. 109
7. De Sarkar,(2003), *Uttar Banger Loksanskrity*, Kolkata, p. 30

8. Chattopadhyay, B. C. (1991), *Uttar Banglar Loksangit Bhaoaiya o Chatka*, Kolkata, p. 75
9. Burman, J. K. (2018), *Bhaoaiya Swaralipi,* Kolkata, p. 165-168
10. Burman, J. K. (2018), *Bhaoaiya Swaralipi,* Kolkata, p. 165
11. Ghosh, L. (1975), *Gitabangam*, Calcutta, p. 210
12. Sanyal, C. (2012), *Uttar Banger Rajbangshi*, Kolkata, p. 396
13. Burman, P. (2012), *Uttar Banger Rajbangshi Samajerlokprayukti*, Kolkata, p. 23
14. Burman, P. (2012), *Uttar Banger Rajbangshi Samajerlokprayukti*, Kolkata, p.72
15. Ibid, p. 57
16 . Ibid, p. 88
17. Burman, P. (2012), *Uttar Banger Rajbangshi Samajerlokprayukti*, Kolkata, p. 92
18. Burma, S. (2018), *Uttar Banga Parikramay Prabandha Sankalan* [Vol. II], Cooch Bihar, p. 408

Bibliography:

1) Datta Ray, B. [ed.] (2015) *North Bengal Folk Music Literary Academy*, New Delhi.
2) Chowdhury, A. H. (2001) *Bangladesher Loksongite Premchetana*, Bangla Academy: Dhaka.
3) Ahmed, W. (2015) *Bangla Loksangiter Dhara*, Batayan Prakashan: Dhaka.
4) Burma Sukhbilas (1992) 'Bhaoaiya sanjyautpattikramabikash': *Loksanskrity Gaveshana* : Shravan- Ashwin.
5) Bhattacharya, S. (1980) *Folk Literature and Culture of North Bengal*, Bharati Book Stall: Calcutta.
6) Banerjee, S. (1992) 'Bathan-Sanskrit and Bhaoaiya': *Loksanskrity Gaveshana*: Shravan-Ashwin.
7) De Sarkar, [ed.] (2003) *Uttar Banger Loksanskrity*, Patralekha: Calcutta.
8) Chattopadhyay, B. C. (1991) *Uttar Banglar Loksangit Bhavaya o Chatka*, Granthamandir: Calcutta.
9) Barman, J. K. (2018) *Bhaoaiya Swaralipi*, Bangiya Sahitya Sansad: Calcutta.
10) Ghosh, L. (1975) Gitabangam: Calcutta.
11) Sanyal, C. (2017) Uttar Banger Rajbangshi, Ananda Publishers: Kolkata.
12) Burman, P. (2012) *Uttar Banger Rajbangshi Samajerlokprayukti*: Upjanbhui Publishers: Cooch Behar.
13) Burma, S. (2018) *Uttar Banga Parikramay PrabandhaSankalan* [Volume II] Upjanbhui Publishers: Cooch Bihar.

IrayimmanThampi – First composer of Malayalam Keertanas

Dr. Bindu. K*

Abstract

Kerala is the land of 'Keram' which means 'Coconut', and has been noted for its cultural heritage for centuries. The musical genres mainly existed in ancient Kerala were Folk, Nadan pattu, manipravalam. It was during the period of His Highness Swati Tirunal Maharaja, that Carnatic music in Kerala has achieved its glory and reached its extreme zenith. Having the vision of keeping then existed music, he also nurtured the art of music by bringing several musicians/scholars to his court. The style of Carnatic music from the sopanam style has developed in to a broader as well as distinguished form. For Kerala also, the second part of the 19th century can be called as a golden age of carnatic music, as the prominent musicians such as Irayimman Thampi, Kuttikunju Thanakachi, Thanjavur Quartette, Palakkad Parameswara Bhagavathar, Shadkala Govindamarar, Merusvami and many were contemporaries of Musical Trinity-Tyagaraja, Muthusvami Deekshitar and Syamasastri. This article focuses on the contributions of Irayimman Thampi, author of the Royal Lullaby and the pioneer of Malayalam Keertanas.

Keywords: *Kerala, Irayimman Thampi, Svati Thirunal, Malayalam, compositions, varnas.*

Iravi Varman Thampi, who is called commonly as Irayimman Thampi occupies a distinct place as a composer in Malayalam. In fact he is the first person to compose keertanas in Malayalam. Born in the year 1783, in Thiruvananthapuram, as the son of Kerala Varma Thampuran and Parukkutty Thankachi, he has got a sound education under eminent scholars in Sanskrit, Kavya and Sastra. However, it is not known that whether he had received any formal training in music. Irayimman thampi was around 30 years of age, when Swati Tirunal Maharaja was born.

'Omanathingalkidavo' – The Royal Lullaby

There would not have been any mother who is not familiar with the well-known and sweet lullaby "Omana Thingal Kidavo" written by Irayimman Thampi. This was composed for the young prince Swati Tirunal, who was born on 16thApril 1813 under the asterism "swathi"/chothi. For the mothers of Kerala, this stands as the most popular and lovely lullaby for ever. The speciality of this lullaby is that there is not even a single word in this song, which talks about sleep.

'Omana thinkal kidavo-nalla

'Komala thamara poovo….'(Is this young moon or a beautiful lotus flower?)

Destinymade the composer to write obituary or 'charamakkurippu' also, for the same person, on whom he wrote the beautiful lullaby. Irayimman thampi had the privilege of being a minister in the court of the following rulers of Travancore, namely H.H. Karthika Tirunal Balarama Varma, her highness Rani Lakshmi bai, Her highness Rani Parvaty bai, H.H. Swatitirunal and H.H. Uthram Tirunal. He was the prominent figure, as a vaggeyakara, among the royal court musicians, during the whole period under the reign of His highness Swatitirunal maharaja. He retained the same during the half period of the reigning by Uthram Tirunal Maharaja also.

*Associate Professor, Department of Music, University of Kerala

Attakadhas

Irayimman thampi has mainly composed in Malayalam and Manipravalam, which is the mix of Malayalam and Sanskrit. He has composed compositions of Carnatic music, Folk music, Kadhakali, Mohiniyattam and Thiruvathirakkali/ Kummi etc. Irayimman thampi has 3 Attakkadhas to his credit, namely, Keechaka Vadham, Uthara Swayamvaram and Daksha yagam. These 3 Attakkadhas are used for music and dance purposes by many artists. The Attakadha is composed in Manipravalam (Mix of Malayalam and Sanskrit). The word 'Atta-Kadha' literally means 'story for dancing and acting'. It contains Slokas and Padams. The structure of 'kummi Vira viratakumara….' in his Uthara Swayamvaram, has been worth mentioning. Here, the arrangement of Prasa seen in the last 'pada' of each charana, adds beauty to the song. The second and third words are repeated as 'ra' in 'Cha***ra***thiha Pa***ri***l thava Ne***ri***l …..'and ka/ly***ani***ghana/ v***en***isuka/ V**an**isu /Sr***oni***nam…which add more beauty to the composition. Along with other sentiments, he could combine bhakti and srungara also in these Attakadhas. 'Kshoneendra patniyude……' is a very popular 'Dandakam', which reveals his skill and mastery over the language and kadhakali. 'Sasimukhi varika suseele…' in Kamboji is a song from Attakadha and is sung in the raga Kamboji. 'Karunam videhi mayi kamala nabha…' in Malahari raga is currently sung in Carnatic Concerts in Kerala.

The musical compositions of Irayimman thampi comprise three categories such as Varnas, Keertana and Padas. His other contributions are Single Slokas, Murajapa pana, Subhadra Haranam, Thiruvathira pattu, Kilippattus like "Rasakreeda" and "Vasishtam". The simplicity and the sweetness of the poems and songs in Malayalam are brought out through these compositions "Prana nadhan enikku nalkiya paramananda rasathe…" of Irayimman thampi can be considered as the most beautiful sringara pada of all time in Malayalam language. There is a reference of his 'sringara', in the popular film song of Sreekumaran thampi,

"Irayimman thampi nalkum sringara pada lahari" ….

Irayimman thampi was the only composer who had contributed in all the three categories of Carnatic music, such as Varnam, Keertanam and Padam. Swati tirunal has composed a Varna in Malayalam and padas, but there is no Keertana in Malayalam composed by him. Kuttikunju thankachi, daughter of Irayimman Thampi, and K. C. Kesavapillai have credited with Keertanas in Malayalam, but they have not composed Varnas and Padas. He has contributed malayalam keertanas, sankeertanas, varnas, padas, and a beautiful lullaby. Through his different compositions, he has excelled in all the bhavas in addition to sringara bhava and bhakti. .

VARNAS

There are total 5 varnas attributed to Irayimman thampi. The pada varna "manasime paritaapam" in the sankarabharana is in Malayalam and the other varnas, "saayam kim mama" in neelambari, "Tava saabhimata" in bhairavi, and "Haasaloke" in punnagavarali are in Sanskrit.

1. Ambagouri in arabhi , triputa
2. Manasi me paritapam, in sankarabharana, adi
3. Thavasaabhimatha, in Bhairavi, rupaka
4. Saayam kim me, in nilambari, chempada
5. Haasaa loke, in in punnagavarali, chempata.

'Amba Gauri' in Arabhi : The arabhi varna "Amba gouri…" is in praise of the Goddess of Thiruvarattu kavu, the family deity of him. This temple is situated at Kizhakepuramand is around 4kms from Attingal town, Thiruvanathapuram. The kshetra mudra is seen in the sahitya of chittaswara, *"Sadhu loka saranye, kambu kanti, Thiruvarattukavil vaneedum devi…"* This is in manipravalam.

This Varna–amba gouri- can be considered as a pada varna in certain aspects, such as it has sahitya for both the chitta swara and the charana swaras. But, the main difference is seen in the sahitya part. Here the sahithya, is completely immensed in bhakthi towards Devi in the temple of "Thiruvarattu kavil", Whereas the sahithya of pada varnas may generally contain more of the sringara rasa also, and with scope for abhinaya.

Certain similarities are seen with the pancharatna "sadhinchene" in arabhi raga. Both the 'sadhinchene' and 'amba gouri' start with the note 'Pa' and almost with a same prayoga *"p. mgr' in amba and p. ppmgr,,s* in sadhinchene. The anu pallavi and charana also start on 'Pa' in both compositions. *"Bodhinchina san marga"* …in the pancha ratna, and "*Ambu jaasanaadi manye…"* in the stava varna. The charana starts as "*Samayaniki taku mata.."* The charana of "Amba gouri" also start as '*Vara devi, jita daitye'*. The swaras used as *P, ds pd, p* in both these varnas. The style of tana singing can be noticed in the 2nd charana*" mgrr ppmgrr ddppmgr mpddp mpdsnd r, s mgrsr s,nddp mpds,n dsddp pdp mpmgr srm"…'subhakari paramadakari*…'… A blend of tana varnas and pada varnas can be seen in this varna. There are many janta swara prayogas like*"dd pp*", dhaattu prayogas like *"ri dha pa da pp- mpdpmgrr- ri magaririsa sani da ri sa sa-ri pa ma ga ri ri- dada pa pa- sa sa ni da- ri ri sa sa ma ga ri ri da ri,* which add beauty and colour of the raga. There are total 4 charanas in this varna and the charana swaras start with the swaras, pa, ma, dha, and ri respectively. Except the last charana, all the three charanas end with the word, amba as "jagadinee amba", "jagadamba", "amba", and it is "jagadeeswari" – in the 4th and last charana. This varna prays for bestowing all the prosperities like "*ayussu, vidya, bhagya, arogya , putra".*

"Padmanabhanuje Paramayusree vidya bhaagyaarogya Putradi

Paradevate tannu pahimam vazhi pole…"

Range and Tala of the varna

The range of all the varnas seems to be very normal and confirms to the limits prescribed for the raga. In the pallavi of this arabhi varna, the range extends from mandra stayi dhaivata to Madhya stayi panchama. The anupallavi touches upto tara stayi madhyama, and it is only the part of chittaswara which connects to tara stayi panchama in the whole composition. All the other sections like charana and charana swaras, the prayogas extend only upto tarastay imadhyama from mandrastayi dhaivata.

It is not seen commonly to use triputa tala for varnas. The pallavi, anupallavi, and chittaswara start in the sama graham, where as the charana start in the Anagathagraha. All the charanaswaras start with sama graham.

Keertanas

His varnas and keertanas have taken him to a place next to H H Swati tirunal maharaja, and in his krities he has given importance for both the musical and literary aspects. Most of his keertanas confirm to the general format of having the presence of all the sections like Pallavi, Anupallavi and Charana. "Paradevate' in todi, adi tala and "Karthyayani devi sadaa maam" in sankarabharana raga, adi tala have 4 charanas.

Malayalakirtanas

1. Neelavarna pahimam in surutti raga- chempata tala
2. Pahimamgirithanaye in saveri–chempatatala
3. Karunacheyvan enthuthamasam sree raga - chempata
4. Adimalarinnathanne in Mukhari–chempata

Paradevate in Todi

IrayimmanThampi has also composed a krition Paradevata, the Godess of Thiruvaraattu

kavil, near Attingal. This kriti has the usual pallavi, anupallavi and charanam. It contains 4 charanas, in which normally sung is 'Lokeswari…" and it ends up with the madhyamakala. This is a beautiful kriti in the raga todi, which starts in the Madhya shadja, then goes to mandra dha, again to shadja. "*Sanida'* – *paradevate* –clearly brings out the raga bhava in the very beginning itself, and Not a usual starting of todi krities. It is composed in Adi tala, the eduppu is anagata in all the sections.

Rhetorical Beauties

All the requirements of rhetorical beauties like yati and prasa occur in this kriti, For example, Dviteeyakshara prasa can be seen in:

Pallavi : Pa***ra****d*evate

Anupallavi : Su***ra***danava

Anuprasa is seen in the charana,

"Lo**ke**svarininkripalesamlabhichenna**kil**

Lo**ke**deenandhani**ka**na**ku**nnathum**ka**nunnu

Example for antyaprasa is also seen in the same charana, "chol**lum**"

" Naa**lum"**

Padas

1. **Kamaladikal – Kamodari raga-chempadatala**
2. **Prana Nathan enikkunalkiya- Kamodari raga-chempadatala**
3. **AroducholveneAzhal -Indisa-Jhampatala**
4. **Enthunjanihacheyvu – Neelambari-Chempada**

Multiple number of charanas can be seen as a special feature of all these padas, and the pada 'Arodu cholven azhalullathellam.."in the raga "Indisa" may be the longest one. which has 26 charanas. The dhatu for all these charanas, may be the same. This pada is now sung in 'Nadanamakriya' raga in music concerts. The theme of his padas may be sringara and the hero/ nayaka of padams is the maharaja himself. Rakti ragas are used in his padas. and rare ragas such as 'Maradhanasi, kaanakkurinji, Samantha malahari, Indisa are also used by him.

MurajapaPana and Navaratri Prabandha

A Literary work, 'Murajapapana', authored by IrayimmanThampi, describes the Murajapam conducted in Sree Padmanabha swami temple in Thiruvananthapuram. Navaratri Prabandham, as the name suggests, is a description of the navaratri festival conducted in Travancore palace during the navaratri festival. He has composed this prabandha similar to the Utsava Prabandha kirtanas of swatiTirunal.

The contributions given by Irayimman thampi to the field of karnatic music, particularly to kerala, are highly remarkable. The musician, Late Sri. Chertala R Gopalan Nairhas taken a great effort to compose almost all the songs of Irayimman thampi as well as other Malayalam composers. As the original music was not available, his service in this regard should be highly appreciated and honoured. Musicians/ Singers may take an effort to add more and more Malayalam kritis in concerts and popularize these priceless compositions.

References:

1. Sharma, V S, Sri Swathi Thirunal Jeevithavum kruthikalum, Kerala Bhasha Institute, 2012.
2. Nair, Achuthsankar S, Swathi Thirunal A Composer born to a Mother, State Institute of Languages, Thiruvananthapuram, 2021.
3. Pillai, Shoornadu Kunjan, Irayimman Thampiyude Attakadhakal, Kerala Sahitya Academy, Thrisur.
4. Nair, V Madhavan, Kerala Sangeetham, D C Books, Kottayam, Kerala.
5. List of Works, Kerala Sahitya Academy, 2019

The Cult of Goddess Pattini (Kannaki) in Sri Lankan Traditional Dance

Dr. S. A. N. Perera*

Abstract

Sri Lanka's population follows a variety of religions. Around 70% are Buddhists, 12% are Hindus and others included Muslims, Christian and other religions. Apart from Buddhism, Hinduism takes the greatest dominance as a secondary religion in Sri Lanka. Obviously, many Hindu gods and goddesses are integrated with Buddhist culture. The god Vishnu, Kataragama (Karthikeya) Ganesha and Shiva as well as The goddess Pattini, Sarasvati and Kali, take dominant roles among them. The worship of goddess Pattini or Kannaki came from South India as a Hindu goddess, but in Sri Lanka, Buddhists believe that Pattini is their Buddhist goddess and that she aspires to future enlightenment.

There are three major dancing forms that can be seen in Sri Lanka, namely Kandyan, Low country and Sabaragamu dance. practically these three of them differ from each other in dance movements, music, musical instruments, costumes and divisional hereditary but basically all three dance traditions deeply associated by their rituals and ritualistic theatre with based on the same dance principles.

The cult of god and goddess can be seen in all dance rituals and the worship of Goddess Pattini or Kannaki is prominent in all three dance traditions. There are inherent dance rituals, culture and choreography that celebrate Goddess Pattini in various ways.

Keywords: *Goddess Pattini, Kannaki, Kandyan dance, Low country dance, Sabaragamu dance, Dance rituals*

Introduction

Sri Lanka has been facing many Hindu influences, in accordance with the Chola invasion, some Hindu rulers attached their Hindu culture to Sri Lankan people as well as introduced many Hindu traditions and customs such as Vaishnavism (the cult of god Vishnu) and Shaivism (the cult of god Shiva) that played a prominent role in early society. At present Hinduism is not prevalent all over the island. Mostly the people who live in the north and Northeastern provinces practice Hinduism. But some Hindu beliefs, traditions and customs are still attached to Sri Lankan Sinhalese culture. Evidently many Hindu gods and goddesses merge with Buddhist culture. Indeed some Hindu gods have been introduced as Buddhist gods and Sri Lankans believe that these deities are protecting Buddhism from various deprivations.

The cult of goddess Pattini (Kannaki) in Sri Lanka

Goddess Pattini or Kannaki has been worshipped in Sri Lanka for many centuries; she is a local guardian deity who procures fertility, prosperity and success for everyone. This Pattini cult is most popular in the southern and western provinces as well as in the region of Sabaragamuva. The people who live in coastal and central areas of the country called her goddess "Pattini", but the people who belong to north or north eastern areas called her goddess "Kannaki Amman".

The "Cilappatik ram" which is the great epic of Tamil literature in the Sangam age, written by Ilanko Adigal mentioned the origin of the god story) the story of an anklet. It is not only a simple story but also a valuable legend which annotates culture, religion, literature, arts, regions, society,

*Department of Performing Arts, Sri Palee Campus, University of Colombo, Sri Lanka

and political goddess Pattini as Kannaki the lady of chastity who demands her husband's justice.

According to the story Cilappatikaram, Later this great chaste woman Kannaki began to be worshipped by south Indian people as "Pattinikkatavu" to obtain good wealth. In the early century CE, King Senkuttuvan who ruled the Chera Kingdom ordered build of an image of this goddess from the stone of the Himalayas and built a temple in honour of the goddess Pattinikkatavu.

This marvellous epic also denotes how this cult of goddess Pattinikkatavu expands to Sri Lanka. It says that the Ceylon King Gajabahu I (introduce as Kayavaku) also worshipped this goddess and arranged daily festivals for her. Indeed, it tells that King Gajabahu participated in religious festivals for goddess Kannaki in the Chera kingdom and invited her to Ceylon (Sri Lanka) to obtain protection and blessings.

Today, her impact continues to be visible in Sri Lanka: she is worshipped by the people who believe in her magical power and who obtain prosperity. Generally, images of goddess Pattini are depicted as a beautiful lady who holds golden anklets in her both hands (figure), but in some figures, she holds a filled pot which is the symbol of prosperity in her right hand while left-hand holds a golden anklet.

Figure I : Goddess Pattini (Kannaki)

Most of the devotees who were Sinhalese Buddhists, worship her as Pattini Amma or Pattini Meyni. Since then around 593 temples of Goddess Pattini can be found in Sri Lanka (Lankathilake, 2002, p.39). Pattini shrine at Navagamuva is the major holy place,

Nevertheless, in India, this cult of goddess Pattini or Kannagi gradually diminished. For the last twenty centuries, this goddess cult has been changing in different ways. At present this cult of goddess Kannaki has been converted to goddess Kali, Durga and Draupadi (Halpe, 2011, p.26).

Unlike south India, the cult of goddess Pattini is celebrated in Sri Lanka with different paths. Once invoked as seven incarnations (Satpattini) it contains seven various birth of goddess Pattini such as Uramala Pattini, Karamala Pattini, Le Pattini, Mal Pattini, Gini Pattini, Veera Pattini and Siddha Pattini. Some devotional verses say that goddess Pattini will be born seven times from demata malin (the demata flower), jalayen (the water), saluven (the shawl), galen (the rock), nayi dalen (snake), ginnen (the fire) and amben (the mango) (Koparahewa, 2006, p.21). But according to some other legends and folk traditions, these seven births are described in several other names. Later it became 12 incarnations (Dolospattini).

The people of Sri Lanka are dedicated to goddess Pattini on their every major or minor social occasion, religious festival and celebration. "Kiri ammavarunge dane" (the alms giving to seven mothers), is the famous folk ritual which obtains blessings from goddess Pattini to rescue from diseases, especially pregnant women, newly born children all women and children as well as attain good wealth for the whole family. On the other hand, some traditional and folk games, which are associated with the Pattini cult, have been very popular in the country, Ankeliya (horn game), Polkeliya (coconut game), Olindakeliya, Likeliya (stick dance), and Nerenchikeliya. Even today, some of them are usually played on Sri Lankan

cultural occasions.

Goddess Pattini (Kannaki) and Sri Lankan Traditional dance

Evidently, all Kandyan, Low country and Sabaragamu dance forms are highly associated with the cult of goddess Pattini. She always takes a prominent place in traditional dance rituals which are especially dedicated to the deities.

Basically, every traditional ritual which is dedicated to the goddess Pattini is the same but differs from each other in its way of presentation. As an example, the "Pahan maduva"(lamp ritual) which is the main ritual of Sabaragamu dance tradition attributed to the goddess Pattini by lighting many lamps. This same Pahan maduva was once presented as Gammadu or Gini madu according to its distinctive features. Besides them, goddess Pattini is offered by other popular rituals like Geemadu, Dane madu, Hellum madu, Malmadu, Devol madu and Kirimadu. In general, all these traditional rituals are held to obtain protection from diseases, good wealth for their agricultural works and prosperity for their villages and finally to get divine blessings from her. Pahanmaduva is also offered to other gods Kataragama (Karthikeya), god Vishnu, god Saman, god Dedimunda and god Vahala, god Devol as additional deities. All these deities are offered veneration by lighting and shining with many oil lamps. The Gammaduva ritual is common for all dance traditions and is held to obtain prosperity, especially in the respective village where it's held. Generally, it is organized by the village headman outside of the temple garden. Ginimadu (fire ritual) presents the same as Pahanmadu but it has a special event called Gini pegima (walking on fire) thus the name derives from this. The Kolmura yagaya is the special ceremony or ritual which is offered to goddess Pattini. It presents thirty-five text poems named "Panthis kolmura kavi", describing only goddess Pattini through various characters. Some Kolmura poems are presented as dance performances while some of them are presented orally (Kottagoda, 2008, p-122)

Some special ritual customs which relate to the goddess Pattini

Halamba vedamavima or devabharana vedamavima -

In this, the jewellery of gods and the sacred anklet of goddess Pattini are brought by the chief priest named Pattinihami or Kapupattini with great hospitality while drumming. Some rituals carried the anklet of goddess Pattini on their shoulders(Dissanayake, 1998 , p.173). In this custom, the chief priest disguised as goddess Pattini performs like a female dancer with charming and delicate movements. There is a special dance step named "Pattini pada", traditionally presented with seven Pada and seven Sural (Kottagoda, 2009, p.2

Figure II : Jewelery of gods

Figure- III Pattini Pada or Pattini dance, Pahanmaduva Ritual

Devaradhanava– All relevant gods are invited to the mal yahana (flower couches) of the ritual arena by various inviting verses. Some rituals presented are dance performances called Malyahan netima (Malyahan dance) or Mal asna netima (mal asna dance) after the inviting gods. Each deity has its own malyahan kavi (verses). While inviting gods to the ritual arena first presenting the sloka and Sanna, then ashirvada kavi (blessings) and performing beautiful dance steps with charming rhythm while singing long verses (Kottagoda, 2009, p.88).

Example- Pattini Mal asna

"Darā ata salambat - pūra tada teda agapat
Virājita kama lat - Saraha namadimi salamba mudunat"(Halpe, 2011, p.103)

(Giving obeisance to goddess Pattini who carried anklet on her hand showing her magnificent power)

Amba vidamana – This is the drama part of the ritual, especially this item presented in Devol Madu or Pahanmadu. It tells the story of goddess Pattini that who was born on the mango in one of her incarnations. According to the story, the royal garden of King Pandu had found one wonderful mango which couldn't be plucked by anyone. But one day the God Sakra disguised as an old man and takes permission to pluck this mango. He plucked it off with his arrow, but suddenly the third eye of King Pandu was blinded by the milk drop of mango. Therefore he sent this mango to the river Kaveri on the golden boat. Later this was taken by Manavara the businessman and his wife. They kept it in their palace on a golden pot, later one beautiful little princess born from this mango was known as Pattini. In this item first, the chief priest tells the first part of the story through charming verses. Then the dancer who is disguised as an old man tries to pluck the mango. One artificial copper mango or mango bunch is hanging in the corner of the ritual place. The actor plucks it off in his third attempt while drumming rhythmical beats.

Mara ipeddima - this is also the drama part which describes the life story of goddess Pattini. The story begins with the performance of the part in which the Palanga (Kovalan) was killed by the maruva who was the horrible character who killed Kovalan with one shot. Then Kannaki searched for her husband, and when she had seen his dead body she suffers more and more this incident is presented in the ritual with a lot of sympathies while singing some verses of Pattini hella. Finally, the god Shakra came to them as an old man and resurrects Kovalan with his holy water. It is the most interesting dramatical part of this ritual which causes the audience to become extremely emotional.

Salamba Shantiya–

Figure IV : Blessings from the sacred Pattini salamba (Anklet of goddess Pattini)

In this event, the chief priest "Pattinihami" blesses everyone who participated in this ritual with the sacred anklet of goddess Pattini. He prays for everyone by touching their heads with the sacred anklet.

Besides these traditional rituals, the traditional dance of Sri Lanka attributes to the goddess Pattini through its various dance performances.

Pattini Savdama - There are 64 numbers of Savdam in Sri Lankan traditional dance. Among this Pattini savdama is the greatest savdam which is dedicated to the goddess Pattini. This savdam later became to be performed. First, it narrates the lyrics then contains dance syllables, and as

mentioned before Savdam formerly represented as a kind of recitation and later became to be known as a dance performance.

Example- Some verses of **Pattini Savdama**

"Nitini danamana nayana pinavana dulsirin devaganka vilasa

Pattini devinduta nemeda kiyanemi Naran hata seta dena lesa

Atini Ghana ran salamba aragena naran uvaduru harina vilasa

Pattini savdama natami ada mama me sabe meda puduma vilasa"

(I dance Pattini savdama in this theater, goddess Pattini is divine lady holding anklet in both hands and she came to cure several sicknesses)

Some Poems of Lekeli netuma (stick dance) and Udekki netuma (narrow drum) and Panteru netuma (tambourine) are offered to goddess Pattini.

Example - *"Bō attata venda sirasa namanne-āpassata venda muna peralanne*

Ēpette aya apa hadunanne - ***Bō Pattini*** *mta avasara denne"*

(Having venerated the Bo-branch, to you I bow my head while worshipping and turning with face backwards you recognizing all of us who paid homage)

Goddess Pattini is also celebrated in other dance forms like Pattini sirasa pada kavi, Pattini abhinaya and Panteru kavi.

On the other hand, the great epic Cilappatik ā ram takes a special position among the standard works in ancient literature. The influence of this epic is seen in some of the Sinhala poetical works in Sri Lanka and most of them are dedicated to the goddess Pattini by describing her life of her. These popular works are, Yahan hē lla, Mevan pana, Pattini hēlla, Amārasaya, Madu pura, Vayanti Mālaya and Vitti pota. Among them is a famous poem named Among them a famous poem named "Vayanti Mālaya" written by Vīdagameti Sinhala kavithilake and it reveals the story of Kōvalan, (the husband of Kannaki or Pattini) and Mādavi. It reveals the fascinating and delicate dance performance of "Vayanti" or "Mādavi" she was a beautiful young dancer who performed in the royal court. "Vayanti Mālaya" gives extraordinary compliments about her dance and her dancing movements, steps and expressions are highly attractive. The author described her graceful performance with attractive verses. Some verses of this "Vayanti Mālaya" poem are attached to Sri Lankan dance forms; especially in Low country dance, they composed dance movements on these verses. Some famous dance compositions like Giridevi, Shuddha matra, Suramba valliya and Sarala kavi tala are based on these verses and they are always performed with charming and delicate movements.

Conclusion

This study denotes that the worship of Goddess Pattini or Kannaki plays a prominent role in all three traditional dance forms in Sri Lanka. Various incarnations of goddess Pattini and dance traditions celebrate this Pattini worship with various sacrifices. It is true that the worship of Pattini or Kannaki deity, was introduced from South India, but in Sri Lanka Goddess Pattini is worshipped by styles specific to her, and dance forms and traditions also influence this cult of Goddess Pattini. Especially Goddess Pattini or Kannaki plays an important role in celebrating the deity during dance rituals. This study describes the deep connection of goddess Patthini in all three traditional dance forms of Sri Lanka.

References :

1. Disanayaka, M. (2009). *Sri Lankave Damila Sanskrutiya.* Colombo, Sri Lanka: S.Godage and Bros.
2. Disanayaka, M. (1998). *Sinhala Nartana Kalava (Danes of Sinhalese).* Colombo, Sri Lanka: S.Godage and Bros.

3. Godakumbura, C.E. (1970). *Sinhalese dance and music*. Colombo, Sri Lanka: Archeological department.
4. Halpe, H.M. (2011). *Pattini Deviyo*. Dankotuwa, Sri Lanka: Wasana Publication.
5. Koperahewa, S. (2006). *Navagamu devalaye Pattini adahilla*, . Colombo, Sri Lanka: S.Godage and Bros.
6. Kottagoda, J. (2009).*Prayogika Pahatarata Nartanaya 01.*Borelesgamuwa, Sri Lanka: J K Publication
7. Kottagoda, J. (2009).*Prayogika Pahatarata Nartanaya 02.* Borelesgamuwa, Sri Lanka: J K Publication
8. Kottagoda, J. (2008). *Ruhune Janashruti saha Purakata sahitya.* Borelesgamuwa, Sri Lanka: J K Publication
9. Lankathilake, D. (2002). *Sabaragamu Shani Karma Vigrahaya*. Ediriweera, S. (1999). Sinhala Gemi Natakaya. Colombo, Sri Lanka: S.Godage and Bros.
10. Susilarathne, K.E. (2006). *Sabaragamu Netum Kalava*. Imbulgoda, Sri Lanka: Senarath publication.

Patachitra of Bengal: Traditional Folk Art with Pictorial Performance

Dolanchanpa Ganguly*

Abstract

The practice of painting on cloth was widespread in ancient India. The cloth on which the picture is painted is called Pata'. This art was prevalent in different regions of the country along with Bengal in the form of local craft direction. This Pata was prepared by craftsmanship, especially for religious reasons and various cultural combinations of the people. It is believed that the Sanskrit word 'Chitralekha' is an ancient form of 'Patachitra'. Basically, this craft is executed only by some Art form, the material of preparing the picture and the skill of presentation. This cultural, traditional and mythological folk-craft has been developed over the years and along with civilization, this religious panel painting is still widespread in the folkart form of the heritage of Bengal. In this craft, kavya-geet (poetry) with music is used more than Patachitra presentation. Thousands of years ago, the trend of painting was awakened in human life.

In the prehistoric period, the pigmented and similar primitive paintings in the caves were coordinated in a systematic way. These Patachitra were not made for the sake of craft beauty but out of faith and culture. This art was done in the lineage tradition by the artists of rural area. Its eligibility in the masses is the success of this craft. This craft uses natural and easy-to found natural objects are used, such as natural minerals colors, cloths, paper etc.

There are two types of Pata'- 1)- Chouko Pata and 2)- Dirgh Pata (Scroll painting). Along with this there are various aspects of Patachitra of Bengal such as Durgapata, Adivasi pata etc. These Patachitra mostly depict the stories of Hindu gods- goddesses, religious story, local folklore etc. Patua craftsmen, who are devoted to folk-culture, are entertaining the audience by composing and singing innocuous pictures and protecting this craft. The endangered Patachitra is an Indian heritage and ethnic asset; it should be protected by all.

Keywords- *Patachitra, Patua song, Picture description, Technique and Conclusion.*

Methodology - *In the subject matters to collect the document from published Bengali books and websites. Patachitra was a traditional folk culture of Bengal and I have been observing this folk-art since early childhood. This art has been seen at various festivals, fairs and exhibitions in Bengal. And in that context there have been conversions with the artists about their art. I have tried to complete this article with information found from various sources.*

Purpose of the Study

In the past, for the entertainment of people, Patua (craftsman) artists used to draw and paint these 'Pata' with immense devotion and devotional pursuit. Artists display the painted Pata's through poetry and music in various forms. This form of painting has evolved over the years in the traditional style of folk-art and has become lost as a result of modern life and the increasing use of machinery. Due to these various reasons, the number of traditional painters was gradually decreasing. The purpose of studying this subject is to discuss and keep alive this historical art of painting.

Aim

Our country has a rich and long history in Patachitra. In ancient India, painting on cloth

*Assistant Prof (Sr.) & Research Scholar, Applied Art, Faculty of Visual Arts, Rabindra Bharati University, Kolkata-50

was widely practiced.

It is considered as a local artifact and a folk-art. The folk-art of Bengal is rich in diversity. It is the reflection of Bengal's religious life practice, group thinking, its poetic mind and the result of its way of practicing life. It is to feel the subjects; the color of art is sometimes the conscious mind of the creator of the society, sometimes the conscious mind. This thought is in the construction of art, in its beautiful color and rhythmic lines.

Once upon a time, the socio-economic status of the craftsman of Bengal depended on the tradition of this Pata-painting. It was customary to making and combination with different cultures existing in the society. Patachitra could be identified by certain forms, manufacturing materials and limited techniques. It is a conventional practice to keep these Patachitra in a rolled-up or folded after the performance. This is why Patachitra is revered by the people.

Patachitra of Bengal: traditional Folkart with pictorial performance

The practice of painting on cloth was widespread in ancient India and has a rich history. The cloth on which the picture was painted is called Patt' Pot' or Pata'. This art was prevalent in different rural regions of the country along with Bengal in the form of local craft direction. It dates back to the Pre-Pala period.[1]This Pata' was prepared by craftsmanship, especially for religious reasons and various cultural combinations of the practice, which was present in the society. It is believed that the Sanskrit word 'Chitralekha' is an ancient form of 'Patachitra'. So Patua say that, they write Pata or 'Pata lekha' (pata writing) instead of Pata painting, the antiquity of this art is established.[2] Basically, this craft is executed only by some Art form, the material of preparing the picture and the skill of presentation. This cultural, traditional and mythological folk-craft has been developed over the years and along with civilization. This religious panel painting is still widespread in the folk-art culture form of the heritage of Bengal. In this craft, kavya-geet or poetry with music is used more than Patachitra presentation. Thousands of years ago, the trend of painting was awakened in human life.

In the prehistoric period, the pigmented and similar primitive paintings in the caves were coordinated in a systematic way. These Patachitra (Potochitro in Bengal) were not made for the sake of craft beauty but out of faith and culture. Folk art and its culture were very close to the social life of our country and people tried to express their joy and enthusiasm through these art works. This art was done by the lineage tradition by the artists of rural area. In this sequence aesthetic environment and mythical are the main subjects. Its eligibility in the masses is the success of this craft. In this craftsmanship, natural and easy-to found natural objects are used, such as natural minerals colors, cloths, paper etc. They living close to the nature and their simple expressions were expressed in these works of village art.

Patachitra-

Sanskrit word 'Patta' or 'Patt' literally means a strip of cloth (canvas) and 'Chitra' meaning picture. Patachitra is thus a painting done on cloth (canvas). The craftsmen who paint or draw on this cloth are called 'Patua'. There are two types of Patachitra- 1)- Chaukosh or Chouko Pata (square or rectangular size) and 2)- Dirgh Pata or Jarano (rolled) Pata which means Narrative Scroll painting. Along with this there are various aspects of Patachitra of Bengal such as Durga Pata (sora), Kalighat Pata, Chalchitra Pata (background of the Durga pratima), Adivasi or Santhali Pata etc. This traditional craft is prevalent in the eastern states of Bengal and Orissa in India. These two dimensional image oriented Patachitra, mostly mythological depicted in the simple stories of the Hindu gods-goddesses, religious story, local folklore etc. Orissa's painting

are intricately ornamented and depicted with stylized characters and shapes. Orissa's painting images belonging to their Ishtdev Jagannath and the epic of Vaishnavas.

Storyteller artist of Patachitra, presenting their picture scroll performance through with imagination and the eloquent speech. Bengal Patachitra is known for its exquisite work of bright colors and it's widespread in the major places of like, Vardhman, Birbhum, Jhargram, Purulia, Mednipur (Pingla) and Murshidabad of West Bengal. The best example of 'Chouko Pata' is Kalighat Patachitra.

Kalighat temple is an important pilgrimage (goddess Kali) place in city Kolkata and a long time ego some of the Patua artist migrated and stayed near area of Kali temple. People of Bengal identified with their profession as 'Pata-Para' or artist locality. The artist or 'Chitrakar' of the Patachitra, adoption of the term 'Patua' as a community surname and were originally in Hindu. They produced small size of Patachitra which was cheaply made work of art to make a living by selling to a mass market.[3]Temple visitors used to buy Patachitra and take them with as souvenirs. This is way the locals used to call Kalighat Pata. The stylistic line drawing of Kalighat paintings was strong yet simple, charming and bright colors were used sparingly. Artist painted religious theme with Hindu deities along with Contemporary subjects were marked with everyday life. In 18th century Bengal, the emerging middle class bhadralok (rich urban gentleman) and there malicious gossips oriented subjects revealed in Patachitra, like- babu & bibis, hookah with lady, sura-paan, cat & prawn, fishes etc.[4] The images mainly criticized on social evils such as crime. Patachitra it dealt with Hindu mytho-religious themes. Gradually, it embraced secular themes and style. Artists also painted Duldul (Imam Husain's horse).[5] The influence of Mughal painting fell on Kalighat Patachitra, after which this trend continued in Hindu society as well.[6] Opinion expressed by Mohammed Sirajul Islam. These Kalighat Patachitras were full of intense satire and life satisfaction, contrary to the religious concern created by the artist's own creation. The Kalighat Patachitra, the last tradition of Bengal Patachitra is developed by Jamini Roy.[7]

A scroll painting containing multiple images is called a Dirgh Pata or Jarano Pata. The shapes of a scroll are made by combining with small image and create a long size picture. How many pictures will be in a scroll, it is kept according to the demand of the stories. This Pata's size is mostly 12 to 30ft long and 2ft wide and it is kept wrapped.[8] Patua artists walk from village to village and unrolling (display) the scroll narrating the picture by singing the songs and making a living out of it. From the time of Buddha we find propagation of folkart by showing pictures among the sects bearing the title of 'Maskari' and these Pata artists are called 'Patidar'. In the Sanskrit play 'Mudrarakshas' there is a mention of the business of taking money from the public by portraying such Patachitra.[9]

The theme of the Dirgh Pata is mainly Ramayana, Mahabharata, Kali, Krishna-Kaliyadaman, Taraka-Vadh, Manasa-Mangal, Behula-Lakhinder etc. Scroll Patachitra is also used for social work and publicity, such as family planning, literacy, tree planting, vaccination, local vote etc. many times their stories have inspired by the Jatra (popular theater) performance and the storyline.[10]

In the Muslim sector of Bengal 'Gazir-Pot' or 'Gazi-Pata' was also performed from house to house. It is the illustrating story of miracle-working Muslim saints (Pir). The existence of these Patachitra is seen in the districts of South-East Bengal, Birbhum and Bangladesh. They sang praises of Muslim Sufisaints, such as Satyapir and Gazipir. Even Hindu also worships him under the name of Satyanarayan.[11] In some places, the image

of Gangadevi' is marked on the Gazi. In fact, there is a combination of Hindu-Muslim worldly ideas.

Adivasi or Santhali (tribal) communities of Bengal (Purulia and Bankura) are painted there Patachitra independently. Jadu Pata (magic and mysticism) also known as Chakchudan Pata (gift of sight). Chakchudan Pata' painting of the iris in the blank eyes of the portrait in order to free the dead person's soul and send it to heavens.[12] Patua painters residing around the rural Santhali society compose these pictures. These are supernatural magic rests on faith and fear of religion. Jesus Christ Pata is also seen in the Christian community area.

Patua song-

These craftsmen are simultaneously poets, singers and exhibitors. Patachitra is also mentioned in Indian literature. In the oldest Pata context found from two and a half thousand years ago and a tribal source for the tradition. Narrative Patachitra, was the source of education, knowledge, entertainment and various religious propaganda of the common man.

Patua artist or shilpi composes songs (Poter Gaan) according to the theme of Patachitra, it is called 'Patua Sangeet'. Rhyme-poetry or singing is composed in relation to the Gods-goddesses mentioned in the Patachitra. During the performance, these Patuas or storytellers narrate various religious epics and stories in detail to the audience. The purpose of the Patuas is to motivate people towards moral and social ideals. The Storytellers not only describe what is depicted in the picture, they also express the inherent feeling of the story in the easy language. Patuas entertain or perform free voice with typical folk instruments in the middle of the streets, villages, suburbs, fair etc. Artisan Patua' are a devotee saint and their folk songs are associated with religious beliefs. Thus, Patachitra and Patua Sangeet are mutually inclusive.

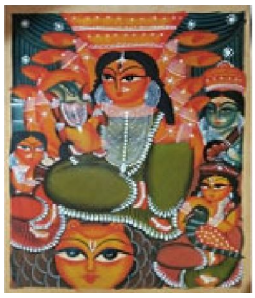

Chouko Pata

Performance with Patua Sangeet'

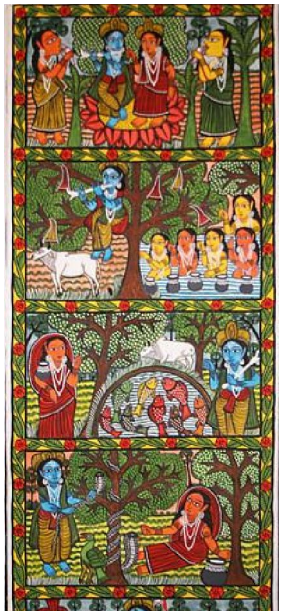

Krishna Leela (Scroll)

Picture description-

The concept of the Patachitra is based on traditional stories prevalent from the past. But the other side such popular art forms to address current issues or urban based interpretations. For instance, in 18th century colonialism is addressed in a scroll, like- Lal memsahib (foreign lady) from the independence era, and a Sahib pat depicting British oppression of Indian freedom fighter.[13] It means Patachitra reflected topics far and wide, from myths to current social issues. Scroll has 8 to 20 series of images narrative segments. Patua artist hold scroll in one hand and unfolded each frame and explain every image with tune. In this social role Panchkali Pata of Birbhum is very important. The Panchkali Pata includes the images of various gods and goddesses and at the time of upasthapana (presentation), in contact with these gods and goddesses, rhymes and poems are performed. Its contents include- Shiva, Radha-Krishna, Gouranga, Rama and Savitri-Satyavan stories.[14] Manasa Devi or 'Manasa-Mangal' worship is also prevalent in this area of Birbhum. The scene of

Yama, the king of death and Yampuri (Sabha of Yamraj) is presented in end portion or closing frame of each Patachitra. This tradition is going on since the beginning and the incident of imagining Yama and his idol in the scroll is no less important. This picture shows the victory over the dharma and the defeat of adharma. Here Sun and Yama are integral parts, that is, Yama is a part of the deity Sun. The Patua artist, by giving a specified place to the deity Yama in the Patachitra, has a proof of his inseparability with the Sun God. After the performance rural people (audience) provide or donate money, rice, cloth etc.

Picture description in Patachitra, the religious story is composed in the form of folklore or folktale and is presented as a reflection of folk life. For example, Shiva (Mahadeva) is presented as fat, old, consuming ganja, a rural man troubled by the world, means the selfless common man. Goddess Manasa' as an anti-violent village woman, Krishna- 'Nagar-Kanhai' teasing the village women etc. In all these subjects, the pictures of Shiva-Parvati Leela (play) are composed according to the married life of Bengali family- Shiva is marked as a homeowner and Parvati as housewife.

The others popular theme of the Pata is Nagasaki and Hiroshima Atom bomb tragedy, French Revolution, Babri Masjid, Tram journey, Natural calamities, Political events, etc. Patuas understand their artistic tradition in dynamic terms but the process of transformation since its inception. If today transforming more rapidly, due to better technology and opportunity.[15] Beside Patachitra, they are decorating the handicrafts, household items, cloths etc., for sustaining a living.

Technique-

Patua-artist has been drawing pictures by following the rules and regulations from the lineage tradition. First the size of Pata is fixed according to the subject. And after that the scroll is made by adding pieces of paper. The paper scrolls are affixed to the old sari cloth on the back side of the scroll for the stability of the Pata and coated (for thickness) with chalk and gum. The picture is marked in different frames and created with simple bold strokes and used minimal color. Space is left around each frame for ornamentation by flower, leaf vines etc., like Alpona', Bengali traditional and ritual floor design. Picture background is filled with mostly in red color. In the end the outermost line is marked with black color. For this purpose, brush- craftsmen prepare themselves and mineral or natural colors are used. Mineral colors like, sindoor for red color, bean leaves for green, harital or turmeric root for yellow, natural indigo for blue, black for burning coconut shells or lamp-black, chalk powder for white color etc. The existence of Patachitra is found in Orissa, Bihar, Assam, Gujrat and other places in outside Bengal.

Conclusion-

The traditional Patachitra painting was largely dependent on the social and economic status of the people. It was characterized by the certain limited forms, motifs, religious elements and techniques. The art of Pata is seen from generation to generation. In the past the people of the country were away from the light of education. Puranas and other religious books oriented story in a simple way through words and poetry to all the people. People were educated by watching and listening. The theme and the execution of the picture find a way to create a meaningful harmony of the Patachitra.

The folkart culture of the country used to paint this art form with immense devotion and to entertain the nation through performs the religious rituals. The people of the country were educated through demonstrations along with Patachitra with poetry and music.

Patua craftsmen, who are devoted to folk-culture and traditional crafts, are entertaining the audience by composing and singing innocuous

pictures and protecting this craft. The endangered Patachitra is an Indian heritage and ethnic asset; it should be protected by all.

Footnotes:

1. https://en.wikipedia.org/wiki/Pattachitra
2. Ghosh, Dr. Pradyot, 2004, Banglar Lokshilp, Kolkata- 700023, P-67
3. www.vam.ac.uk
4. Islam, Mohammed Sirajul, 2007, Banglar Lokshilp, Shova Prokash, Dhaka 1100, P-107
5. en.banglapedia.org
6. Ibid, P-107
7. https://en.wikipedia.org/wiki/Pattachitra
8. Ghosh, Dr. Pradyot, 2004, Banglar Lokshilp, Kolkata- 700023, P-73
9. Ibid, P-67
10. Korom, Frank J., 2006, Village of painters narrative scrolls from West Bengal, New Mexico Press, P-15
11. Ibid, Pp-40-41
12. ofindianorigin.com
13. Korom, Frank J., 2006, Village of painters narrative scrolls from West Bengal, New Mexico Press, P-22
14. Ghosh, Dr. Pradyot, 2004, Banglar Lokshilp, Kolkata- 700023, P-69
15. Korom, Frank J., 2006, Village of painters narrative scrolls from West Bengal, New Mexico Press, P-31

Images:

shopchaupal.com
encyclocraftsapr.com
directcreate.com

Misinterpretation in the identities of Chola Bronzes with references to the icons of Siva-Tripurantaka, Rama, Bhudevi, Lakshmi and Parvati

Dr. Loveneesh Sharma** **Dr. Agnimitra Majumder***

Abstract

Metal icons of gods and goddesses particularly form south India called the Chola bronzes have enchanted the whole world with their beauty, serenity, and iconographic details. They have been casted in lost wax method and become collections in reputed platforms, galleries, museums across the globe. The iconography of these deities has been referred from the ancient Hindu and other religious texts which mentions manifestations of these deities in Indian mythology. But these Icons have been misidentified over time at various auction houses, galleries, and museums. The misidentification of these icons can be attributed to two main factors: first, a lack of familiarity with iconography and second is the misinterpretation of ancient iconographical scriptures and texts written in Sanskrit and Tamil during their translation and due to these flaws became apparent as a result. The current study analyzes the Chola bronze statues of Rama, Bhudevi, Lakshmi, and Parvati as well as Siva-Tripurantaka. It also emphasizes on the essentiality of understanding the Iconography without which these mistakes cannot be avoided.

Keywords: *Iconography, Chola Bronzes, Art, Icons, Identities.*

Introduction

From the late ninth until the late thirteenth centuries, the Cholas ruled on most of southern India. Poetry, theatre, music, and dance all flourished during the rule of the Chola monarchs because they were such devoted supporters. They also constructed enormous stone temple complexes that were both inside and out decorated with painted and carved depictions of Hindu deities. The most famous creative artefacts from this period, however, are the bronzes that were made for each temple. Although the stone sculptures and the inner sanctuary images of the temple remained static, changes in religious beliefs throughout the 10th century demanded that the deities shall open for public responsibilities (the concept of Darshana and hearing) comparable to those of a human ruler. Large bronze statues were then made to be transported outside the temple to take part in daily rites, processions, and temple celebrations.[1] Many of these sculptures have round lugs and holes on their bases for the poles that were used to lift the bulky images. Chola-period bronzes were produced using the lost wax process called *Madhu Uchchishtta Vidhana* and are admired for the sensual representation of the figure and the meticulous handling of their attire and jewelry.[2] Although the art of casting bronze has a long history in south India, the Chola period saw the casting of a far larger and greater quantity of bronze sculptures than ever before, thus demonstrating the significance of bronze sculpting at this time. It should be emphasized that these figures would not seem as they do outside of a religious environment because they are wrapped in silk cloths, garlands, and jewels when used in worship. This method of metal ornamentation dates back at least a thousand years, according to Chola inscriptions from the tenth century, which mention it.[3] These icons follow a traditional style of creation of each image of deity, particularly inspired by ancient texts or treaties written such

*Independent Art Historian & Artist, Kolkata, India
**Assistant Professor, School of Fine Arts, Amity University Kolkata, India

as *Bharata Natyashastra, Vishnu Samhita, Vishnudharmottara Purana, Sukranitisara, Manasara Silpa,* and epics such as *Ramayana* to make idols of such kind.[4] This tradition of making metal idols could move from one generation to the next sustaining its prestige and value till date. Also, idol making of bronzes could considered as a living tradition in south India. But unfortunately, with the passage of time and complexities to earn livelihoods during British colonial era and later after independence the young generation could not find interest in icons making thereby knowledge of rendering figures of different deities could not survived the way it was kept by the precursors or ancient artisans.[5] The other reason of the misinterpretation is lack of understanding of south Indian iconographic texts which majorly have been written either in Sanskrit or Tamil and if been translated, they could not match to those interpretations which originally make sense to understand details for correct interpretations of the icons. Therefore, when these Chola icons of Hindu God and Goddesses appeared as an antiquity of any museum nationwide or abroad, identification of the same has not been done properly. At times several attempts have been done to make the corrections done but no sincere results could come out from the efforts. The only solution can seem fruitful in this context is the proper and intense knowledge of iconography regarding Chola Bronzes without which proper identification of these icons can not be done. Following are some examples of the errors found in the interpretation of the identities of the bronze image of Siva-Tripurantaka, Rama, Bhudevi, Lakshmi and Parvati.

Research Methodology

For the present paper, images of Chola bronze icons of Siva-Tripurantaka, Rama, Bhudevi, Lakshmi and Parvati are considered as references for research which are a part of different collections available in museums and online.

Analysis of the mentioned images has been done based on iconographical attributes including their features and expression on the faces, poses, and gestures.

A comparative study among the mistaken and correct identities of the mentioned icons has been carried out as a result.

Study Area

To introduce the legacy of Chola Bronze art.

To trace the misidentified icons of Chola bronzes which are a part of museum collections and auction houses.

To discuss iconographical details of Chola icons mentioned in the paper for the correct identification.

An elaboration on the essentiality of these corrections which could help in sustaining the value and legacy of these icons across the globe.

Discussion

There is a wide variety of icons of Siva in Chola Bronzes such as *Vinadhara, Kalyanasundram, Natraja, Somaskandha, Gangadhara, Dakshinmurti, Chandrashekhara* and many more. All appear according to their identities along with their attributes they carry or *vahanas* (vechiles) and *mudras* (Hand gestures) and *bhangas* (standing and seated positions). Usually, Siva appears with four hands carrying *parsu* (axe), *mraga* (antelope) in the rear hands and front right hand have majorly been appeared either in *Abhaya Mudra* (hand gesture for protection) or *Kataka Mudra* (to hold something) whereas per the theme other attributes such as *Damru*, Bow, Trident, Veena, Snake and other attributes are placed in the left hand.[6]

The misinterpretation happens when icon Siva-Tripurantaka appeared with two arms is misidentified as Rama where both the images have same hand gestures of holding a Bow in right and

kataka-mudra (suggestion of holding some object in fingers) in the left hand, a suggestion of holding an arrow. Siva-Tripurantaka (*image.1*) almost appeared like the image of Rama (*image. 2*) in its position and gestures. Siva and Rama both standing in Tri-bhanga on a lotus pedestal. Both are bejeweled and wearing a thick sacred thread and a *udarabandha* (an ornament just above the stomach. A gridle around waist with *kirti-mukha* in the center is rendered in both the images. *Padasaras* (ankelets) can be seen in both the images. What makes the major difference in both icons is the *jatamukuta* (metalocks) on Siva's head is different than that of the *kirita-mukuta* (a conical crown) on Rama's head. At times, a serpent on right or left shoulder of Siva suggests the identity which also has not done by the artist in *image:1*. According to Bharata's Natyasastra, the expression of the face of Siva-Tripurantaka appears with the *rudra-dristi* (furious emotion)[7], with his consort, but when Siva appeared to public in a procession to bestow grace, artist selected the particular movement of after-destruction of Tripuras when Siva bestowed boons even to the three Demons and created icon of Siva-Tripurantaka with *soumayata* (serenity) and calmness suggesting Tripur-vijaya aspect thereby justifies the purpose of *darsana* (to view).[8] The particularity in Rama (*image. 2*) is that from the facial expression he appeared as a worrier prince owing prowess as an archer. The face expression of Rama in the present figure represents the valor and passion. Moreover, icons of Rama are a part of group along with the images of Lakshmana Sita and Hanuman.[9] Observed that the bodily contours of Siva-Tripurantaka (*image.1*) are more relaxed that Rama (*image.2*). The position of arm to carry the Bow by Rama up to the level of the shoulder and of Siva from the center suggests the above-mentioned aspect of subtle awareness in comparison to calmness in the physique of Rama and Siva-Tripurantaka respectively.

Image 1: Siva

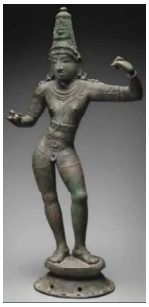

Image 2: Rama

Another error that has been found is the misidentification of bronze images Bhudevi *(image:3),* Lakshmi *(image:4)* & Parvati *(image:5)*. Sometimes Bhudevi is misinterpreted as Parvati (Uma) and Parvati (Uma) is misidentified as Lakshmi (Sridevi).

Image: 3 Bhudevi

Image: 4 Lakshmi

Image: 5 Parvati

Usually, icon of Bhudevi appeared as a group sculpture along with the icons of Vishnu and Sri-Devi or Lakshmi as shown in *image 6* where the positioning of Sridevi is at the right of Vishnu and Bhudevi stands on to the left.[10] Sridevi holds lotus in her left hand and Bhudevi holds lotus or lily bud in her left which is missing here in both the icons. Sridevi performs *Gajakarna mudra* in her right hand and opposite to her Bhudevi appears with *Gajakarna mudra* in her left hand (sometimes called *lolahasta*).[11] Moreover, the major difference in both the female goddesses is that Sridevi or Lakshmi wears a horizontal band which is called *Kuchabandha,* around her breasts whereas Bhudevi appears with a bare breast.[12]

Image: 6 Sridevi (on right of Vishnu), Vishnu (in center), & Bhudevi (to the left of Vishnu)

This misidentification of Bhudevi as Lakshmi or visa-versa has been observed in many national and international reputed auction houses, galleries, and museums. Such as appeared in the collection of Christie's auction house where Christie's has misidentified the icon of Lakshmi as Bhudevi (*image 7*) in their **Lot 75,** entitled "*A bronze figure of Bhudevi, South Indian, Chola period, 12/13th century*", appeared with breast-band.13 And as mentioned in their **Lot Essay** (*image 8*) suggests a wrong iconographical description about the identification of Bhudevi on their website. It is clearly visible in the *image 4* that the icon of Lakshmi is way more bejeweled than that the icons of Bhudevi (*image 3)* and Parvati *(image 5)*. Moreover, if observe the minute details of the facial expression of Lakshmi is suggesting the consent of lust and consciousness which is missing in both the sculptures of Bhudevi and Parvati.

Image 7: Lakshmi misidentified as Bhudevi. 7

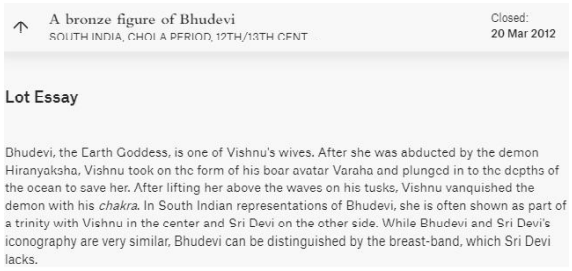

Image 8: A misinterpretation of Bhudevi mentioned in the last line.

In another observation sometimes Parvati is misidentified as Bhudevi. If given a close observation of both the images of Bhudevi (*image 3*) and Parvati (Uma) (*image 5*) mentioned above, it is not easy to give a major difference among both the deities. Both stands in *tribhanga* pose on lotus pedestal. Both wearing a *yajnopavita* thread to their left shoulders passing between the breasts. Both are embellished with necklaces, armlets, bangles and other ornaments such as *padasaras* (anklets). The only difference is, in most of the images of Bhudevi and Parvati is the headdress worn by Bhudevi is conical crown called *Karanda Mukuta* with tiers whereas the image of Parvati (Uma) usually appears with *Jatamukuta* which is a crown like formation matted hair is ornamentally coiled and twisted to form a shape of crown.[14] But at times when Parvati appears with *Karanda Mukuta* than it is not easy to give distinguish between both icons.

It could be difficult to distinguish between one Great Goddess from another when they stand alone since they all embody the ideal feminine form. They are considered to live in heaven if a breast ring, or *kuchabandha* (breast-band), covers their breasts; if not, like in the instance of Bhudevi, the second consort of Vishnu and Earth Goddess, they are thought to live on Earth. Here, the headgear poses a little more of a challenge and occasionally makes identification feasible. While Uma wears her hair in the austere style of dreadlocks that have been arranged to resemble a crown and fastened with jewels, Lakshmi and

Saraswati also wear actual crowns called *kiritamakuta* (conical crown).

Conclusions

This way with the minute observations on iconographical details these errors to mis-identifying icons may not be existed.[15] Further, auction houses, galleries and museums must be careful while writing descriptions about the identifications of these icons. Moreover, through consultancy communications with an expert in Indian iconography of these bronzes these mistakes may be prevented to be happen again. Tracing of auction houses, galleries and museums where the misidentification should be done and an email notification sent to correct the errors of such misidentification.

Endnote :

1. Sridhar, T S (2011) *An Exhibition on Chola Bronzes: 1000th Anniversary of Tanjavur Big Temple Celebration:*

   Sept 25th to oct 4th 2010, Department of Archeology & Government Museum, Chennai.
2. https://tamilnation.org/culture/cholabronze.htm
3. https://www.asiasocietymuseum.org/region_results.asp?RegionID=1&CountryID=1&ChapterID=7
4. Pande, Alka (2013) *Masterpieces of Indian Art*, Lustre Press, Roli Books, New Delhi.
5. Arnold, David (2004), *The New Cambridge History of India: Science, Technology and Medicine in Colonial India*, Cambridge University Press, ISBN 0-521-56319-4.
6. https://www.rarebooksocietyofindia.org/book_archive/196174216674_10150434296806675.pdf
7. The Natya Sastra of Bharata Muni, (1981) tr. Board of Editors, Delhi.
8. http://tamilartsacademy.com/journals/volume2/articles/tripurantaka.html, accessed on 16th May, 2022
9. https://harvardartmuseums.org/art/206499, accessed on 16th May, 2022
10. Sridhar, T S (2011) *An Exhibition on Chola Bronzes: 1000th Anniversary of Tanjavur Big Temple Celebration: Sept 25th to oct 4th 2010*, Department of Archeology & Government Museum, Chennai, p. 23. & in http://digital-images.net/Images/NS_Sculp/Sridevi_Vishnu_Bhudevi_3693.jpg
11. Margaret Stutley (2003) *The Illustrated Dictionary of Hindu Iconography*, Munshiram Manoharlal Publishers, Delhi, p. 82. ISBN 81-215-1087-2
12. https://collections.vam.ac.uk/item/O62121/sridevi-figure-unknown/
13. https://www.christies.com/en/lot/lot-5538728, accessed on 10th August, 2022
14. https://monidipa.net/2020/09/25/jewellery-in-indian-iconography/, accessed on 5th June 2022
15. https://www.mantra.art/home/the-gods-and-goddesses-of-hinduism/uma/, accessed on 14th January 2022

References:

Balasubramaniam, S.R., (1979), *Later Chola Temples*, Madras.

Balasubramaniam, S.R., (1971), *Early Chola temples*, Delhi.

Huntingtonm Susan, (2001), *The Art of Ancient India*, Weather Hill, London.

Nagaswamy. R., Nakacami Iramaccantiran, & Bakachami, Ira (1983), *Masterpiece of Early South Indian Bronzes*, National Museum, Delhi.

Natya shastra of Bharata Muni (2014), Translated into English by Board of Scholars, Delhi.

Pal, Pratapaditya (1977), *The Sensuous Immortals: A Selection of sculptures from the Pan-Asian Collection*, Los Angeles County Museum of Art.

Rao, Gopinatha T. A., (1985), *Elements of Hindu Iconography,* Vol II Pt. I & II, Reprint, Delhi.

Ratnasabhapati S., (2006), *The Divine Bronzes*: *Thanjavur Art Gallery Bronze Sculptures,* Thanjavur Art Gallery Administration.

Sivaramamurti. C, (1963), *South Indian Bronzes*, New Delhi,

Stella Kramrisch, (1981), *Manifestations of Siva*, Philadelphia Musem of Art.

Stella Kramrisch, (1981), *The Presence of Siva*,

Princeton University, U.S.A.

Vidya Dehejia, (1990) *Art of the Imperial Cholas*, New York.

List of Images & Sources:

Image 1: Siva Tripurantaka, Bronze, 9th Century CE, Early Chola. Displayed at National Museum, New Delhi, India.

Source: https://artsandculture.google.com/asset/siva-tripurantaka- unknown/2QENX9cVi-k9dw, accessed on 5th July 2022

Image2: Rama, 1000-1100, Tamil Nadu state, India, Chola period, copper alloy, Asia Society Museum, Mrs. John D. Rockefeller 3rd Collection of Asian Art, New York

Source: https://asianartnewspaper.com/the-rama-epic/#pretty Photo[group- 705]/6/, accessed on 5th June, 2022

Image: 3 Bhudevi, Chola Bronze, 13th century AD

Source: https://collections.lacma.org/node/236865, accessed on 2nd January 2022

Image: 4 Lakshmi, Chola Bronze, 14th century AD

Source: https://www.christies.com/en/lot/lot-5538728, accessed on 10th August 2022

Image: 5 Parvati, Chola Bronze,

Source: https://isdila.wordpress.com/2015/02/10/the-visual-the-sacred/, accessed on 24th July 2022

Image: 6 Sridevi, Vishnu & Bhudevi,

Source: http://digital-images.net/Images/NS_Sculp/Sridevi_

Vishnu_Bhudevi_3693.jpg, accessed on 21st May 2022

Image 7: Lakshmi misidentified as Bhudevi.

Source: https://www.christies.com/en/lot/lot-5538728accssed on 10th August 2022

Image 8: A misinterpretation of Bhudevi mentioned in the last line.

Source: https://www.christies.com/en/lot/lot-5538728, accessed on 10th August 2022

संगीत में अंक विलास

डॉ. अमित कुमार वर्मा*

सारांश

भारतीय अंक–प्रणाली दुनिया की सबसे प्राचीन अंक–प्रणाली मानी जाती है। किसी भी विषय की विस्तारशीलता को, उसकी सीमाओं को और उसकी विविधता को संख्यात्मक रूप से गणितीय विधि द्वारा प्रकट कर आसानी से जाना और समझा जा सकता है। प्रस्तुत लेख भारतीय संगीत विशेषकर उत्तर भारतीय संगीत में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की संख्यावाचक शब्दावलियों के समुच्चय को प्रकट करता है, साथ ही संगीत और गणित के गहरे संबंधों को भी रेखांकित करता है। संगीत शास्त्र की विस्तारशीलता को और उसके प्रयोग व प्रदर्शन की व्यवहारिकता को संख्यात्मक रूप में एक साथ देखने से उसकी समग्रता का सहज बोध होता है। प्रस्तुत लेख भारतीय संगीत की विभिन्न शब्दावलियों को संख्यात्मक रूप से संकलित कर उसे एक नई दृष्टि से देखने का अवसर प्रदान करता है।

मुख्य शब्द : *संगीत, राग, ताल, रस, नृत्य, अंक*

प्रविधि : *प्रस्तुत लेख संगीत में प्रयुक्त संख्यापरक शब्दावलियों के संकलन पर आधारित है। इस लेख में मूलतः द्वितीयक स्रोतों से तथ्य संग्रह कर उनका सरलीकरण या साधारणीकरण करते हुए उनका प्रस्तुतिकरण किया गया है।*

हमारा जीवन 'अक्षर' और 'अंक' के ही इर्द–गिर्द घूमता है। भाषायी अभिव्यक्ति के मूल में 'अक्षर' ही है और जहाँ भी गणना है वहाँ 'अंक' है। लौकिक जीवन की कल्पना इनके बगैर असंभव है। विज्ञान, साहित्य, दर्शन, धर्म, कला आदि सभी की तमाम उपलब्धियों, उनकी क्षमताओं, सीमाओं और उनकी विविधताओं की सरलतम अभिव्यक्ति अंक के माध्यम से होती है। किसी भी विषय के विस्तार की सुनिश्चित जानकारी अंक के माध्यम से प्राप्त होती है, जैसे– **एक** ब्रह्म, **दो** राम पुत्र, **तीन** लोक, **चार** पुरुषार्थ, **पाँच** महाभूत, भोजन के **छः** रस (स्वाद), संगीत के **सात** स्वर, योग की **आठ** सिद्धियाँ, **नौ** निधियाँ, तथा **दस** दिशाएँ जगत में स्वीकृत है। शास्त्रों में कहा गया है कि ''एक (बुद्धि) से दो (कर्त्तव्य और अकर्तव्य) का निश्चय करके चार (साम, दाम, दंड, भेद) से तीन (शत्रु, मित्र, उदासीन) को वश में कीजिए, पाँच (ज्ञानेन्द्रियों) को जीत कर छः गुणों (संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, और समाश्रय रूप) को जानकर सात अवगुणों (जुआ, मदिरापान, मृगया, कटुवचन, स्त्री प्रसंग, दंड, अन्याय पूर्ण धर्म) को छोड़ कर सुखी हो जाइए।

भारतीय संगीत का विकास विभिन्न काल–खंडों में क्रमिक रूप से होता आया है। संगीत ऋषियों ने संगीत में निरंतर शोध किये और नए शोध–परिणामों से इसकी ज्ञान–सम्पदा में वृद्धि की। वैदिक काल में 3 स्वर थे। विकास के क्रम में 5 और फिर 7 स्वरों से होते हुए 12 स्वरों को मान्यता प्रदान की गयी और 22 श्रुतियों की संख्या निर्धारित की गयी। इसके अतिरिक्त नाद के 2 भेद, लय के 3 प्रकार, ध्रुपद के 4 अंग, पंचम वेद के रूप में नाट्यशास्त्र की मान्यता, शिव के 6 नंदी गण, नटराज शिव के 7 तांडव, 8 मात्रा का कहरवा ताल, 9 रस और 10 थाट आदि संगीत के संख्यावाचक शब्द से हैं। प्रस्तुत लेख में 1 से लेकर 10 तक के अंक संगीत शास्त्र और उसके व्यवहारिक स्वरुप में किस प्रकार मुखरित होते हैं, उसका संक्षिप्त अध्ययन किया गया है–

एक साधे सब सधे...

संगीत में एक कहावत बहुत मशहूर है कि '**एक** साधे सब सधे, सब साधे सब जाय'। इसके अतिरिक्त तबला नवाज उस्ताद अहमदजान थिरकवा, एक कलाकार के बनने के सन्दर्भ में कहते थे कि 'सौ बात बने हैं तो **एक** बात बने है'। कवि गुरु रबीन्द्रनाथ ठाकुर का लिखा गीत 'एकला चलो रे...' हिम्मत न हारते हुए अकेले ही मंजिल की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है। कृष्ण की भक्ति में डूबकर जब मीरा का कंठ गा उठा तो उस कंठ का सहारा बना '**एक**तारा'। संत–परम्परा और बंगाल की बाउल–परम्परा में भी '**एक**तारा' वाद्य का खूब प्रचलन है। संगीत के प्राचीन ग्रंथों में '**एक**तंत्री' वीणा का उल्लेख प्राप्त होता है। **एक**

*असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत भवन, विश्व भारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन, प. बंगाल

हत्थी टुकड़ा– तबले पर बजाई जाने वाली बंदिश है जो दाहिने तबले पर बजाई जाती है। यह दाहिने तबले पर बजने वाले बोलों से निर्मित होती है। '**एक**ताल'– यह तबले पर बजने वाली बारह मात्राओं की ताल है, जिसका प्रयोग ख्याल गायन की संगति में किया जाता है।

युगलबंदी :

संगीत में नाद के **दो** भेद बताए गए हैं– आहत और अनाहत। संगीत के **दो** मूल आधार माने गए हैं– स्वर और लय। राग में आरोह और अवरोह से उसमें लगने वाले स्वरों की जानकारी प्राप्त होती है। इन दोनों के बगैर राग स्थापित नहीं हो सकता। **दो** साजों का सवाल–जवाब 'युगलबंदी' या 'जुगलबंदी' कहलाती है और **दो** आवाजों का गान 'युगलगान'। 'छंद शास्त्र' में **दो** प्रकार के छंद बताए गए हैं– वर्णिक छंद और मात्रिक छंद। साथ ही, **दो** मात्राओं के समूह को 'द्विकल' कहा गया है। 'नारदीय शिक्षा' में वीणा के **दो** प्रकार बताए गए हैं– दारवी वीणा (काष्ठ निर्मित) और गात्र वीणा (सिंह, 2016, पृ. 67)। 'संगीत रत्नाकर' के अनुसार– 'तंत्रीद्वयेन नकुलः स्यात्' अर्थात् **दो** तंत्री वीणा को 'नकुल' कहते हैं (सिंह, 2016, पृ. 262)। नाट्यशास्त्र में **दो** प्रकार की श्रुतियों का वर्णन है– अन्तर्गत श्रुति और स्वरगतश्रुति (सिंह, 2016, पृ. 329)। 'ताल शास्त्र' में मूलतः **दो** ताल पद्धतियाँ हैं– मार्गी और देशी। 'ताल शास्त्र' में काल–खंड को क्रिया द्वारा व्यक्त करते हैं, जो **दो** तरह की होती है– सशब्द क्रिया और निःशब्द क्रिया। 'ताल शास्त्र' में ग्रह के **दो** प्रकार बताए गए हैं– अतीत और अनागत। तबला–वादन में प्रयुक्त वह बंदिश जिसमें लय के **दो** पल्ले होते हैं, उसे 'दुपल्ली गत' कहते हैं, तथा वह बंदिश जो जिस बोल या बोल समूह से शुरू होती है उसी बोल या बोल समूह से समाप्त होती है, उसे '**दो**मुही गत' कहते हैं। इसके अतिरिक्त '**दु**धारी गत' व '**द्वि**पदीय गतों' का भी प्रयोग तबला सोलो वादन में खूब होता है। शंख को सुषिर वाद्य की श्रेणी में रखा गया है, जो **दो** प्रकार के होते हैं– वामावर्त और दक्षिणावर्त।

त्रयं संगीतमुच्यते :

'गीतंवाद्यंतथानृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते' अर्थात् गायन, वादन तथा नृत्य **तीनों** को सम्मिलित रूप से संगीत कहते हैं। वेदों में स्वरों के **तीन** प्रकार बताए गए हैं– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। साम के **तीन** गायक होते थे– प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता। मुख्य गायक उद्गाता होता था और अन्य दो उसके सहायक। संगीत में **तीन** सप्तकों का प्रयोग होता है– मन्द्र, मध्य और तार। **तीन** प्रकार के स्वर– शुद्ध, कोमल और तीव्र हैं। त्रिलय– संगीत में लय के **तीन** प्रकार ही माने गए हैं– विलंबित, मध्य और द्रुत। तिहाई–किसी एक बोल समूह को एक ही ढंग से बिना किसी परिवर्तन के **तीन** बार प्रयोग करते हुए उसके अंतिम बोल का सम पर या किसी निश्चित स्थान पर आना 'तिहाई' कहलाता है (श्रीवास्तव, 1996, पृ. 104)। संगीत में लय के प्रयोग के नियम को 'यति' कहते है। यति प्रयोग–भेद के अनुसार **तीन** प्रकार की बताई गई है– समायति, स्रोतोगता यति एवं गोपुच्छा यति। 'तीनताल' तबला–वादन का सबसे लोकप्रिय ताल है। 'त्रिपुष्कर' वाद्य का वर्णन नाट्यशास्त्र में मिलता है। भरत ने आंकिक, आलिंग्य और ऊर्ध्वक– इन **तीनों** मृदंगों को सम्मिलित रूप से 'त्रिपुष्कर' कहा है। 'त्रिवली' हुडुक्का के आकार का एक प्राचीन अवनद्ध वाद्य है, जिसका वर्णन 'संगीत रत्नाकर', 'संगीतसार' आदि ग्रंथों में मिलता है (श्रीवास्तव, 1996, पृ. 105)। पुष्कर वाद्यों को स्वरों के आधार पर मिलाने की विधि को 'मार्जना' कहते हैं, जिसकी संख्या **तीन** बताई गई है– मायूरी, अर्द्धमायूरी तथा कार्मारवी। भरत ने मृदंग या पुष्कर–वादन में वाद्यों पर बजने वाले पाटाक्षरों या बोलों के मेल को 'योग' या 'संयोग' कहा है, जो **तीन** प्रकार के बताए गए हैं– गुरू संचय, लघु संचय और गुरू लघु संचय। भरत ने गीत और वाद्य–वादन से सम्बद्ध या आश्रित रहने वाली पाणि (हाथ से वादन) के **तीन** प्रकार बताए हैं– समपाणि, अवपाणि और उपरिपाणि। भरत ने ताल के सन्दर्भ में **तीन** मार्गों का उल्लेख किया है– चित्र, वार्तिक और दक्षिण। त्रिमात्रा काल को 'प्लुत' कहते हैं। '**त्रि**पुट' दक्षिण भारतीय सप्तसूलादि तालों का एक प्रमुख ताल है। **तीन** ऋचाओं के समुच्चय को 'त्रच्' कहते हैं। नारद ने स्वरोच्चार के **तीन** मुख्य स्थान बताए हैं– उर, कंठ और शिर (सिंह, 2016, पृ. 107)। नारद ने **तीन** ग्राम माने हैं– "षड्ज–मध्यम–गांधारास्त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः" अर्थात् षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम और गांधार ग्राम । 'नाट्यशास्त्र' में गान्धर्व को '**त्रि**विध' बताया गया है क्योंकि यह स्वर, ताल और पद का योग है। भरत ने संयुक्त वादन–विधि को 'प्रचार' कहा है। इसके **तीन** प्रकार बताए हैं– सम प्रचार, विषम प्रचार तथा समविषम प्रचार। पाणिप्रहातों को उनकी उपयुक्तता एवं औचित्य के आधार पर निग्रहित, अर्धनिग्रहित एवं मुक्त **तीन** प्रहार बताए हैं (शर्मा, 2008, पृ. 83)।

चौमासा :

भारतीय शास्त्रों में वाणी के **चार** चक्र माने गए हैं– परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी। गायन के चार मत हैं– नारद मत, भरत मत, हनुमत मत और श्रीकृष्ण मत। ध्रुपद गायकी के **चार** अंग हैं– स्थाई, अंतरा, संचारी और आभोग। ध्रुपद–गायन की **चार** बानियाँ मानी जाती हैं– गोबरहारी बानी, खंडार बानी, डागुर बानी और नौहार बानी। ताल को लयानुसार प्रस्तुत करना 'मार्ग' कहलाता है। शारंगदेव ने **चतु**र्मार्ग बताए हैं– ध्रुव, चित्र, वार्तिक तथा दक्षिण। संगीत–ग्रंथों में मार्ग तालों के लिए सशब्द क्रिया के **चार** प्रकार बताए गए हैं– ध्रुव, शम्या, ताल व सन्निपात तथा निः शब्द क्रिया के लिए भी **चार** प्रकार बताए गए हैं– आवाप, निष्काम, विक्षेप व प्रवेशक। **चार**ताल पखावज पर बजने वाला एक प्रमुख ताल है। तबला–वादन में बजाई जाने वाली लय के भिन्न–भिन्न **चार** पल्लों (बोल समूहों) वाली बंदिश को 'चौपल्ली' कहते हैं। भरत ने संगीत वाद्यों के **चार** भेद बताए हैं– तत्, अवनद्ध, सुषिर एवं घन। अभिनय चतुर्विध– नाट्य आश्रित अभिनय के **चार** भेद कहे गए हैं– आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। पुरातन काल से लेकर आज तक राग–वर्गीकरण की कुल **चार** पद्धतियाँ रही हैं– ग्राम–मूर्छना, राग–रागिनी, थाट–राग और रागांग पद्धति (टाक, 2001, पृ. 27)। चौपाई 'मात्रिक' और 'सम' वर्ग का 'साधारण' छंद है, जिसमे प्रत्येक पाद में सोलह मात्राएँ होती हैं। इसके अतिरिक्त '**चौ**मासा' और '**चतु**रंग'– जैसी गायन–शैलियाँ भी प्रचार में है। पार्श्वदेव ने 'संगीत समय सार' में सुषिर वाद्य के अंतर्गत **चार** प्रकार की वंशियाँ बताई है– जय, विजय, नन्द और महानंद (व्योहार, 2009, पृ. 73–81 और नाथ, 2013, पृ. 74–80)।

पंचम वेद :

पाँच ललित कलाओं के अंतर्गत संगीत, काव्य, चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला मानी गयी है। नाट्यशास्त्र को '**पंचम**वेद' भी कहा जाता है। शारदातनय के अनुसार 'पञ्चभारतीयम्' नामक ग्रन्थ का अस्तित्व भी था, जो संभवतः **पांच** भरतों के सिद्धांतों का संग्रह रहा होगा। शारदातनय ने भरत के **पांच** पुत्र बताए हैं (वृहस्पति, 1991 : 37)। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्द के पांच प्रसिद्ध प्रकरण– वेणुगीत, गोपी गीत, युगल गीत, भ्रमर गीत और महिषी गीत– ये 'पांच गीत' कहे गए है। भरत के अनुसार, पंचम स्वर के उच्चारण में नाभि, उरु, हृदय, कंठ और मूर्धा– इन **पांचों** का संयोग होता है, इसलिए इसे 'पंचम' कहते है (सिंह, 2016, पृ. 111)। संगीत शास्त्र में **पांच** तरह के गायक कहे गए हैं– शिक्षाकार, अनुकार, रसिक, रंजक और भावुक। **पंच**चामर छंद 'वार्णिक' और 'सम' वर्ग का छंद है जो सोलह अक्षरावृत्ति का है। शंकराचार्य द्वारा रचित शिव–तांडव इसी छंद में है। बाणभट्ट के मतानुसार **पंच** वाद्य हैं– पटह (नगाड़ा), नांदी (झांझ), कुञ्ज, कहल एवं शंख (गुप्त, 2002 : 144)। सबद पंच– 'स्कन्द पुराण' में **पांच** प्रकार का संगीत– अंगज, कर्मज, तंत्रज, कान्स्यज और फूत्कृत कहा गया है (गुप्त, 2002 : 144)। सामवेद में **पाँच** श्रुतिजाति मानी गयी है– दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु और मध्य (गुप्त, 2002 : 144)। संगीत के प्रायः 5 भाग होते हैं, ये **पाँच** भक्तियाँ कहलाती हैं– हुंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार एवं निधन। **पंच** वीणाओं के अंतर्गत भगवन शिव की नालम्बी, सरस्वती की कच्छपी, नारद की महती, विश्वासु की वृहती और तुंबरू की कलावती वीणा बताई गयी है। संगीत शास्त्र में गीति–गायन की **पांच** रीतियाँ बताई गई हैं– शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा, और साधारणी गीति (संगीत रत्नाकर, 1959, पृ. 3–6)। **पंच**निमेष काल अर्थात् पाँच बार आँखों की पलकों को झपकाने में लगे समय को एक मात्रा काल माना गया है। भरत ने **पांच** मार्गी तालें बताई हैं– चंचत्पुट, चाचपुटा, संपकेष्टक, षट्पितापुत्रक एवं उद्घट्ट। ताल की **पांच** जातियाँ हैं– त्र्यस्त्र, चतुरस्र, खंड, मिश्र और संकीर्ण। संगीत में लय के प्रवाही गुण को 'यति' कहते हैं। शास्त्रों में यति के **पाँच** प्रकार बताए गए हैं– समा यति, स्रोतागता यति, गोपुच्छा यति, मृदंगा और पिपीलिका यति।

षड्ज :

षड्ज अर्थात **छः** स्वरों को जन्म देने वाला। नासा, कंठ, उर्, तालु, जिह्वा और दंत– इन छः स्थानों से मिलकर षड्ज स्वर उत्पन्न होता है (सिंह, 2016, पृ. 110)। भरत और हनुमत के अनुसार **छः** राग इस प्रकार हैं– भैरव, कौशिक (मालकौंस), हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ। किन्तु सोमेश्वर (शिव मत) और ब्रम्हा के मत से इन छः रागों के नाम क्रमशः श्री, बसंत, पंचम, भैरव, मेघ, नट, और नारायणी हैं। 'नारद संहिता' के अनुसार मालव, मल्लार, श्री, बसंत, हिंडोल और कर्नाट ये छः राग हैं। प्रबंध के **छः** अंग कहे गए हैं– तेन, पद, बिरुद, पाट, स्वर और ताल (टाक, 2001, पृ. 49)। गायन के छः गुण कहे गए हैं– सुस्वर, सुरस, सुराग, मधुराक्षर, सालंकार और सप्रमाण (गुप्त, 2002 : 157)। शिव

के **छः** नंदी गण कहे गए हैं– तुंडी, नंदिक, नंदिकेश्वर, भृंगी, रीटि, और श्रृंगी (गुप्त, 2002, पृ. 163)। सोमेश्वर देव के अनुसार **छः** प्रकार के नृत्यों की भांति नर्तक भी **छः** प्रकार के होते हैं– नर्तकी, नट, नर्तक, वैतालिक, चारण, तथा लटिका (गुप्त, 2002, पृ. 163)। नाट्यशास्त्र के 28 से 33 तक **छः** अध्याय संगीत से संबंधित हैं। भरत ने पुष्कर वाद्य पर हाथों से निकलने वाले बोलों से संबंधित कार्य–विधि अथवा नियमों को 'करण' कहा है, जिनकी संख्या **छः** बताई है– रूप, कृतप्रतिकृत, प्रतिभेद, रूपशेष, ओघ एवं प्रतिशुष्क। तबला वादन के **छः** घराने हैं– दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, फर्रुखाबाद, बनारस एवं पंजाब। मध्यकालीन प्रबंधों के **छः** अंग हुआ करते थे– स्वर, विरुद, पद, तेनक, पाट और ताल (शर्मा, 2012, पृ. 107)।

सप्त स्वर :

संगीत में **सात** स्वर हैं– षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद। दक्षिण भारतीय ताल पद्धति की प्रमुख **सप्त**सूलादि तालें है– ध्रुव, मठ, रूपक, झंप, त्रिपुट, अठ तथा एक। 'संगीत रत्नाकर' में **सात** अध्याय हैं– स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रकीर्ण अध्याय, प्रबंध अध्याय, तालध्याय, वाध्याय एवं नृत्य अध्याय। **सात** मात्राओं का रूपक ताल तबला–वादन का एक प्रमुख ताल है। 'संगीत रत्नाकर' में सात सालग–सूड प्रबंधों का वर्णन किया गया है– ध्रुव, मंठ, प्रतिमंठ, निःसारू, अड्ड ताल, रास, एकताली। **सप्त**तंत्री वीणा का वर्णन जातक काल में मिलता है। सामवेद के एक प्रातिशाख्य में ध्वनि के **सात** स्थान बताए गए हैं– उपांशु, ध्वान, निमद, उपलब्धिमत, मन्द्र, मध्यम एवं तार। नारद के स्वरमण्डल में 21 मूर्छनाएँ हैं। इन 21 मूर्छनाओं में से **सात** देव और गंधर्व की, **सात** पितरों व यक्षों की तथा **सात** ऋषियों की मानी गयी हैं (सिंह, 2016, पृ. 115)। नटराज शिव को **सात** प्रकार के तांडव प्रिय थे– आनंद तांडव, संध्या तांडव, कालिका तांडव, त्रिपुर तांडव, गौरी तांडव, संहार तांडव और उमा तांडव। देवदासियों के **सात** प्रकार बताए गए हैं– दत्ता, विक्रीता, भ्रात्या, भक्ता, हृता, अलंकारा और रूद्र गणिका या गोपिका। 'मानसोल्लास' में सोमेश्वर ने गायक के लिए **सात** गुणों का होना अनिवार्य बताया है।

अष्टछाप कवि :

'स्थानांग सूत्र' में सामान्यतः संगीत के **आठ** गुण वर्णित हैं। उसे स्वरकला से परिपूर्ण, रक्त (पवित्र), अलंकृत, व्यक्त (स्पष्ट), अविघुटन्न (सुरीला), मधुर, सैम और सुकुमार होना चाहिए (गुप्त, 2002, पृ. 237)। भरत ने पुष्कर मृदंगादि वाद्यों के गीतादि के साथ वादन में **आठ** साम्य बताए हैं, जिसका ज्ञान अवनद्ध वादक के लिए आवश्यक था। इस ज्ञान के आभाव में वादक उचित संगत नहीं कर पाता था और संगत में रंजकत्व का ह्रास होता था। **अष्ट** साम्य हैं– अक्षरसम, अंगसम, तालसम, लयसम, यतिसम, ग्रहसम, न्यासपन्यास सम तथा पाणिसम। भरत ने नाट्य के सन्दर्भ में **आठ** रस बताए हैं– श्रृंगार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, वीभत्स, रौद्र तथा भयानक। एक दिन को **आठ** प्रहरों में विभक्त किया गया है। समय–सिद्धांत के अनुसार संगीत में प्रत्येक प्रहर में गाए जाने वाले अलग–अलग राग हैं। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी एवं उनके पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी द्वारा संस्थापित **आठ** भक्तिकालीन कवियों का एक समूह था, जिन्हें 'अष्टछाप' कवि कहा जाता है। इन्होंने अपने विभिन्न पदों एवं कीर्तनों के माध्यम से भगवान श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का गुणगान किया। सोमेश्वर ने उत्सव, जय, हर्ष, काम, त्याग, विलास, विवाद तथा परीक्षा– इन **आठ** अवसरों पर नृत्य कराने का आदेश किया है (गुप्त, 2002, पृ. 221)। तबले का कहरवा ताल एक चंचल प्रकृति का ताल है जो **आठ** मात्राओं का ही होता है।

नवधा भक्ति :

'रस शास्त्र' में 'शांत' को '**नवां**' रस माना गया है। **नौ** नक्षत्र जिनमें नाट्य (गीत, वाद्य और नृत्य) आरम्भ किया जाता है, ये नक्षत्र हैं– अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, जेष्ठा, शतभीषा, और रेवती। नवधा भक्ति– श्रीमद्भागवत के अनुसार भक्ति के **नौ** रूप कहे गए हैं– श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, बंदन, दास्य, सख्य, और आत्म निवेदन। **नौ** तारों की वीणा को ही 'विपंची वीणा' कहा गया है। पखावज और तबला–वादन में प्रयुक्त बसंत ताल **नौ** मात्राओं की होती है। तबला एवं पखावज–वादन में तिहाई की तिहाई को 'नौहक्का' या 'नवधा' कहते हैं, जिसमें **नौ** 'धा' का प्रयोग होता है। संकीर्ण जाति के छंद में एक मात्रा में **नौ** मात्राएँ होती है। भरत द्वारा नाट्य के आठ रसों में शांत रास को जोड़कर अभिनवगुप्त ने रसों की कुल संख्या **नौ** बताई है।

दस प्राण :

शास्त्रों में **दस**विध नादों के अंतर्गत– चिनचिनी नाद, शृंगी नाद, तंत्री नाद, तालनाद, सुस्वर नाद, गर्जना

नाद, शंख नाद, घोष नाद, भेरी नाद एवं मेघ नाद बताए गए हैं (गुप्त, 2002, पृ. 269)। थाट–राग–वर्गीकरण के अंतर्गत **दस** थाट माने गए हैं– बिलावल, कल्याण, खमाज, आसावरी, काफी, भैरवी, भैरव, मारवा, पूर्वी, और तोड़ी। शारंगदेव ने समस्त रागों को **दस** वर्गों में विभक्त किया है– ग्राम राग, राग, उपराग, भाषा, विभाषा, अंतर्भाषा, रागांग, भाषांग, उपांग और क्रियांग (टाक, 2010, पृ. 126)। 'रस शास्त्र' के अंतर्गत आचार्य विश्वनाथ अपने 'साहित्य दर्पण' में 'वात्सल्य' को **दस**वां रस बताते हैं। भरत ने नाट्यशास्त्र में 'जाति' के **दस** लक्षण बताए हैं– अंश, ग्रह, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाड़व और औडुवित्त (सिंह, 2016, पृ. 382)। तबला की भाषा में मूलतः **दस** वर्णों का प्रयोग किया जाता है, जिनसे इसका सारा साहित्य निर्मित होता है। नारद ने ताल के **दस** प्राण माने हैं– काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार।

इस प्रकार, संगीत में संख्यावाचक शब्दावली प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। 1 से 10 तक की संख्यावाचक शब्दावलियों के अतिरिक्त अनेक ऐसी शब्दावलियाँ तथा संगीत के विभिन्न अंगों के प्रकार हैं जो संख्या से अपने स्वरुप व प्रकार में अभिव्यक्त होते हैं, जैसे अरबी और अजमी (ईरानी) संगीतकारों ने 12 बुरजों (राशि) के लिहाज से 12 मकाम या अस्ल (मूल) राग मुकर्रर किए– रिहावी, हुसैनी, रास्त, हिजाज, बुजुर्ग, कूचक, इराक, नवा, सफाहान, उश्शाक, जंगला, और बूसलेक (सिद्दीकी, 2008, पृ. 17)। 'रस शास्त्र' के अंतर्गत आचार्य रूप गोस्वामी का 'द्वादस रस सिद्धांत' सर्वविदित है। हमारे 'राष्ट्रगान' का कालमान 52 सेकेण्ड है। शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में 120 देशी तालों का उल्लेख किया है। नारद की वीणा का नाम महती वीणा है जिसमें 21 तार होते थे। भारतीय चिंतन में 64 कलाएँ मानी गई हैं। मनुष्य के मन में स्थाई रूप से न रहने वाले अर्थात् अस्थाई रूप से व्यक्त होने वाले भाव संचारी या व्यभिचारी कहलाते हैं। इनकी संख्या 33 बताई गई है। इसके अतिरिक्त 22 श्रुतियाँ, 6 राग 36 रागिनियाँ, कर्नाटक संगीत की 108 तालें, त्रिवट, चतुरंग, बारहमासा आदि संख्यावाचक शब्द संगीत की विराटता और विविधता को सहजता से प्रकट करते हैं। 'संगीत रत्नाकर' के तृतीय अध्याय के श्लोक सं. 87 से 96 में 15 गमक निर्दिष्ट हैं– तिरिप, स्फुरित, कम्पित, लीन, आंदोलित, वलि, त्रिभिन्न, कुरूल, आहत, उल्लासित, प्लावित, हुम्फित, मुद्रित, नामित और मिश्र।

कृतज्ञता ज्ञापन : इस लेख को तैयार करने के दौरान जिन संगीत विशेषज्ञों से सहायता प्राप्त हुई, उनका मैं हृदय से धन्यवाद करता हूँ, जिनमें प्रमुख हैं– डॉ. दीपक कुमार त्रिपाठी, संगीत समीक्षक, लखनऊ; डॉ. संतोष कुमार, सिक्किम विश्वविद्यालयय, सिक्किम; डॉ. विधि नागर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी; डॉ. भावना ग्रोवर, सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ।

सन्दर्भ :

गुप्त, शालिग्राम, संख्यापरक शब्द कोश, इलाहाबाद : साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड, 2002

टाक, तेजसिंह, नेट संगीत, लखनऊ : बेकराँ आलमी फाउंडेशन, 2010

टाक, तेजसिंह, संगीत : जिज्ञासा और समाधान, लखनऊ : बेकराँ आलमी फाउंडेशन, 2001

नाथ, प्रह्लाद, एवं कुमार, संतोष, 'बाँसुरी : एक विकसित वाद्य', संतोष कुमार (संपादक), शिल्पायन संगीत लेख माला, वाराणसीः पिलग्रिम्स पब्लिकेशन, 2013

बृहस्पति, कैलाश चन्द्र देव, भरत का संगीत सिद्धांत, लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, 1991 (द्वितीय संस्करण)

व्योहार, चेतना, 'पार्श्वदेवकृत संगीतसमयसार : एक परिचय', लिपिका दास गुप्ता (संपादक), भारतीय संगीतशास्त्र ग्रन्थ परम्परा : एक अध्ययन, वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 2009

शर्मा, महारानी, संगीत मणि (भाग –1), इलाहाबाद : भुवनेश्वरी प्रकाशन, 2012

शर्मा, महेंद्र प्रसाद, अवनद्ध वाद्य : सिद्धांत एवं वादन परम्परा, चंडीगढ़ : अभिषेक पब्लिकेशन, 2008

श्रीवास्तव, गिरीश चंद्र, ताल कोश, इलाहाबाद : रूबी प्रकाशन, 1996

संगीत रत्नाकर, अडियार सं., भाग 2, 1959

सिंह, ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2016 (तृतीय संस्करण)

सिद्दीकी, नफीस, रामपुर दरबार का संगीत एवं नवाबी रस्में, रामपुर : रामपुर रजा लाईब्रेरी, 2008

Significance and Value of Sustainable Fashion : Its Detrimental Effect on the People during Pandemic

Subarna Ghosh*

ABSTRACT

The fashion and textile industry is one of the most polluting industries after chemical industries globally, that needs to think again, the enormous hazards that have been caused and increased presently after the pandemic.

Based on the explanation of Sustainable Fashion, the objectives and focus of this research can be formulated as an effort to analyze Sustainable Fashion Post COVID-19. In this study, a descriptive method was used in which this study further describes how Sustainable Fashion is affected by post-pandemic. My research is on the effects of Post Covid and improving our performance which ensures the protection of the environment.

The two years during the pandemic the Fashion Industry came to a halt, with no business, no workers, no consignments, no consumers, and no revenues, nothing could bring the light in the path of running the Industry. 'Sustainability' helped to sustain the Industry which suffered from getting devastation to development. The Government imposed a lockdown and forced retailers to shut shops, causing enormous losses to the fashion brands. Fortunately, the e-commerce site developed, and a great advantage was brought to the sustainable fashion brands, as consumers started ordering clothing from fashion brands as ordering for groceries.

The interpretation of the term sustainability

The word 'Sustainability' in the context of fashion most prominently refers to the environmental impacts of making raw materials creation, manufacturing wearing, and caring for use and then disposal of clothing end of use. There has been a tempting array of newness in the world of fashion. It becomes very difficult to hold on to our old clothes and keep on wearing them when there are so many options available at the shopping mall. Plus, with the demand for online shopping at the various E-commerce sites people are purchasing fashion items like never before. But, while we are busy adding items to our cart, have we ever stopped and thought that a lot of resources go into making so many clothes? We are floored by the bright hues of the fabrics and prints that appeal to us. However, have we ever wondered how many toxins these colors and dyes produce? Toxic dyes are the second-largest water pollutants. After agriculture, if there is anything that is polluting fresh water, it is the dye. They release toxic fumes, which are hazardous to all living beings.

Fig 1 Source - Green earth cleaning

Sustainable fashion exists to protect the environment from the bad impacts generated by the fashion industry. Sustainable fashion, a fashion industry that is supported by ethics to protect the environment, is promoted to save the earth from the dangers of waste that do not decompose. According to the researcher Rajkishore Nayak [1] although many consumers today are conscious of sustainability from a young age, the continually increased demand for newer fast fashion results in a mass consumer that generates piles of waste cloth.

Keywords:- *Sustainable, Pollution, Environment, Pandemic, Fashion& COVID-19*

*Assistant Professor, Department of Amity School of Fashion Technology, Amity University Kolkata

INTRODUCTION

This article is based on a rigorous study with the reading materials. The data have been gathered from various sources, mainly academic notes, research articles, thesis, and my post-graduate dissertation, and a qualitative research method approach has been adopted for this work.

Presently sustainability of fashion worldwide is a major considerable issue. The much-talked concern is in favor of fashion's sustainability around the world. Many organizations and fashion-conscious personalities have come forward to uphold the further extension of the campaign for a good environment for tomorrow. On the other hand, fashion for morality or ethical issues is one of the key concepts from the humanity and sustainability point of view. "Fashion companies are not implementing sustainable solutions fast enough to counterbalance negative environmental and social impacts of the rapidly growing fashion industry," reports The Global Fashion Agenda in its Pulse of the Fashion Industry 2019 study.

Along with sustainability, the pandemic has given us a new existence, 40% of sale has become digital. As players, we have seen digital stores, and digital channels continue to grow. Casualization has become underway. People going more casual than formals. The definition of a fashion statement has changed within these two crucial years. Why is it so?

It was the source of income for many fashion lovers and restricted them to buy, which was more or less reduced. Therefore, more sustainable fashion was in. Consumers depended more on sustainable clothing, shoes, and accessories that are manufactured, marketed, and used in the most sustainable manner possible, taking into account both environmental and socioeconomic aspects.

In recent months, there has been a discussion of whether or not COVID-19 will support new sustainability transitions (Cohen 2020; Goffman2020). As Cohen (2020) writes COVID-19, "Is simultaneously a public health emergency and a real-time experiment in downsizing the economy"

According to researchers [Bhagyashri N. Annaldewar, Nilesh C. Jadhav, and Akshay C. Jadhav], huge ecological effects occur during the numerous processes from ûbre production, yarn preparation, cutting, sewing, weaving, knitting, dyeing, printing and finishing processes, and there is expanding burden on designers, brands and manufacturers to carry out feasible practices into activities at different processes as well as more extensively into essential administrations and marketing approaches.

Methodology & Material

The main objectives of this study are to justify the sustainability concern of fashion companies and their policies post-pandemic. The present study was conducted in Kolkata W.B regarding the changing lifestyles of consumers in Bengal. Secondary sources like magazines, television, newspaper, and the internet were explored to know how much the category of people had spent buying clothing from the lower class, middle class, and upper-class people. In this paper, brands are focused based on their present activities related to fashion from the manufacturing to the marketing process. Sustainable fashion is often concerned with the environmental impact. Before the COVID era, many campaigns were seeking to encourage consumers to adopt sustainable clothing. The promotional efforts were called to minimize and extend the life of their wardrobe and to think more about environmentally sustainable clothing in their closets.

The past analysis shows that only 45 percent of the companies generate an economic profit, which means they not only earn their cost of capital but also really create some margin in the end. That got accelerated through COVID-19.

Now the global coronavirus pandemic has brought sustainability to the fore. As an immediate threat to everyone's health, it demonstrates how fragile we are as human beings and how our future health and happiness depend on a healthy environment. During the pandemic, people were more aware of their daily necessities. Not much gear to buy clothing online. The question doesn't arise of buying physically but it was seen that as the social gathering was restricted the curfew being imposed after 9 pm, people had to stay indoors. But there was always an alternative approach to getting dressed. Covid -19 restricted fashion lovers but the data says 40% lower middle class didn't accept second-hand clothing. 40% of them wore their clothing but accepted the clothes donated to them and 20% wore whatever clothes were given to them. The COVID-19 pandemic has also had an impact on the global economic sector, including the fashion industry. The fashion industry has experienced a significant decline as a result of the fashion industry that has stopped operating, shopping malls are closed, and international fashion events such as Fashion Week were canceled. Moreover, currently, large-scale social restrictions were being implemented, which had resulted in a shift in people's lifestyles. People think twice to get a new collection to assemble them in their wardrobe.

Presently sustainability of fashion worldwide is a major considerable issue. Fashion is an industry that runs on change with new trends, styles, and whole new ranges offered up every season. To meet those demands, it kept the supply chain working at full steam to stitch up and ship out new fashions at speed.

Also, most especially in communication during the outbreak of a pandemic, COVID -19, "Messages are to be built around hope, resilience and the resolve of the human spirit to surmount any impediments"[Amadasun, 2020b].

A Mckinsey consumer survey found that 66% of consumers would stop or significantly reduce shopping at a brand that exploits their employees [Amed et al. 2020a, 46].

Literature review

This section attempts the current literature on the effects of COVID-19 on fashion industry, with a brief introduction to COVID-19 itself, and how the fashion industry reacts to general financial crises. Then, it will go into the consumer trends that have accelerated due to such an unlikely event, and finally ending on the current literature regarding sustainability in fashion and how during the pandemic people were more aware of recycling their clothing and reusing it making it more useful and sustainable.

2 : Sustainable Fashion Brands

"The COVID-19 pandemic has shown that there are many ways to work and collaborate that can reduce our negative environmental impacts," said Isabella Marras, Coordinator of UNEP's 'Sustainable UN program. "As the world continues to cope with the ongoing pandemic, we should look at how to implement this learning for the long-term. The UN system has a tremendous opportunity to learn from the experiences it gained by working differently and delivering its mandate with less travel and alternative working modalities."

The main responsibility of fashion companies is obviously to change their production, distribution, and marketing practices and strategies towards greater sustainability. But companies also can contribute to more sustainable consumption patterns. Some Swedish fashion companies provide fashion as second hand or have initiated rental systems for leasing clothes and accessories. Other companies focus mainly on creating fashion that is of high quality and timeless design, i.e. of long-lasting style and durability. Other companies (H&M) have set up collection and recycling systems that support increased textile recycling. Few companies choose to partner

with H&M, Adidas, Jack&Jones, Puma, and the North Face. To manufacture clothes with certified textiles. Every brand has a unique approach to sustainable fashion, for example, Re- circular clothing and accessories are put back to use always rather than going to landfills or for scraps, the re-circular process keeps the products at the highest value of sustainability. Some of the eco-friendly brands from the US & Canada are Asket (www.asket.com), and Boody (made from www. broody .com. Made from sustainable bamboo).

2:1 Cloth swapping

During the Pandemic as the fashion industry came to a halt, most of the clothing industries shut down, people were left without an option rather than to depend on themselves to wear clothing as the market was closed. The other means of the method also took me aback seat.With nowhere to go and hardly anyone to impress according to researcher Khalida Sarwari [2] people spent more time in their pajamas than they would care to admit. The swapping of clothes reduced to 40% as people were more aware of hygiene. Restrictions brought them to halt. A fear of contaminating the virus always hounded them. The clothing was much more washed with disinfected detergents to get much hygienic effect. Daniele Mathras, an associate teaching professor of marketing at Northeastern who studies the minimalism movement, says the "COVID-19 pandemic has forced people to re-evaluate who they are and how they present themselves".

Countries like the US, UK, and China were more restricted to cloth swapping than India, Iran, and Bangladesh. With restrictions, imposed swaps, especially those physical were halted. Hygiene and ex posers concerns drove this reduction. People were more concerned about their health as they fear to get infected by the virus.

2:2 Lending and Borrowing Clothes from Family and Friends

Lending and borrowing clothes from family and friends were strongly stopped and decreased during COVID-19 because social engagement became less. People were restricted from social gatherings. They had to become more conscious and careful as the virus was infectious. I lived with my sister therefore we exchanged clothes as we were an extended family. But on the other hand, the exchanging of clothing with friends was not much used. Before the pandemic to sustain the sustainability of the environment it was seen that people were lending and borrowing clothes from friends and even lending their wedding trousseau to their close relations but with the virus grabbing the environment, people stopped themselves from being social.The social media Instagram, Facebook, snap chats became more in demand. The social gathering became more popular through online platforms. Google meet, Microsoft meet, and Zoom was booked for official meetings and family reunions.

2:3 Tailored or Apparel Constructed

During the pandemic, it was found that only 20% of people across the countries said that they tailored their clothing prior pandemic. As the data says that people learned through online mode to sew clothing. As the physical stores were closed and through the Secondary data researched that homemakers 40%, working women 20%, and college going 15% sewed their clothing. Pandemic made people more isolated as events were canceled and their home was made the atmosphere of an office. People followed YouTube and learn the techniques of making clothing.

2:4 Lifestyle Changed, Improved, or Worsened

The lifestyle-related behavior during COVID-19 of the people however changed and did not remain the same as it was before COVID. Around 29% lifestyle of people had improved, for taking proper meals, enough intake of eggs, rice,

pulses & meat. The intake of unhealthy foods such as junk foods, fried foods, and fast foods was consumed by 18% of people. 14% had their financial loss. So their condition worsened. There was an adverse change in physical activity level due to lack of motivation, as the anxiety of monetary support, loneliness, and child's education brought 26% of people to depression. Although around 28% of people involved themselves in yoga, home workout sessions, and physical exercises. Approximately 46% became very conscious and consulted Doctors for regular checkups as they fear coronavirus infections. But on the other hand, 47% of people were happy and contented to spend their time with their family. Almost 25% of sleeping hours were increased. Almost 40% of men and women wore ravishing dresses for the occasions they celebrated with their family members. Besides social gatherings and other family events whether in India or Abroad people made their public appearance through online platforms disguised in beautiful clothing. The study also highlighted that Fashion always became a part of their daily life as the E-Commerce site 'was always flourished with orders.

2:5 Vulnerable Help During COVID -19

My research study of COVID-19 and sustainability is different from other researchers. Why I am saying so because the leftover fabric pieces from tailors were collected especially the cotton ones and were sewed into different variations of Masks. During the lockdown as others. I was also inclined towards an eco-friendly environment. I collected a few dozens of cotton fabrics and started making masks and distributed them among a section of people who could not afford to buy three-layer cotton masks. It was another beginning of working as a virus protector. Around 40% of the cotton mask was distributed to the downtrodden and 20% to family members. "The Masketers " was the name given to my Mask collection.

Fig 2. Self-made Cotton Masks

2:6 **Re-styling Clothing**

The fear of Coronavirus could knock on the door any moment the consumers started recycling and reusing their clothing. It was then that re-styling of Sarees germinated in my mind and therefore thought of doing creativity and styling. How our Sarees which could not be worn and attend the social gathering due to Governments restrictions was given twisting ideas. Which seemed like an innovation. A Saree could be draped with different styling variations.This gave a new enthusiast among the fashion lovers and fashion followers. These form of styling was appreciated and motivated many women as they could get something new ideas shuffling their wardrobe and came out with fresh inspirations and innovations.

Fig 3. Self-designed styling of Sarees during Pandemic

RESULTS

The much-talked concern is for the support of fashion's sustainability around the world. Many organizations and fashion-conscious personalities have come forward to uphold the further extension of the campaign for a good

environment for tomorrow. As the pandemic has left an extremely drastic effect on the fashion industry. There are many ways for fashion companies to offer a more sustainable fashion, and for consumers to consume more sustainably. Green Strategy has identified seven forms of more sustainable fashion from both a producer and consumer perspective. As one of the world's dirtiest industries, fashion has recognized its responsibility and formed the Sustainable Apparel Coalition (SAC) comprised of 250+ members to change the apparel, footwear, and textiles industry so that it produces no unnecessary environmental harm and has a positive impact on the people mind and their activities." So, it has been moving at a measured pace to meet the growing demand for sustainable fashion and a more environmentally and socially-responsible industry. With its focus on the front end to deliver a continuously changing collection of fashion, it has, by necessity, been slower to change the many moving parts of the industry's back end. The best thing to come out of this very painful time is that we as individuals understand that our actions have societal consequences. So while the virus is not directly related to sustainability, it is going to increase the focus on it.

Fig 4. Fast Fashion Illustrations.

Discussion

The results indicate that all forms of social gatherings, fashion events even family gatherings decreased during the pandemic. More sustainable forms of fashion consumption including buying garments, swapping clothing, lending and borrowing were stopped. As Covid - 19 made physical shops, casual parties ceased. People were forced into physical isolation. No interaction with friends and colleagues. Moving online was the only option left, therefore this digital electronic machine (Laptop and Desktop) became human friendly. People depended on this system for communications. The mode of online was complex as people were compelled to learn this operating system, which required skills and knowledge. Data showed that women and girls started learning sewing, hand stitching, repairing clothing, making masks, and seeking new information about alternative fashions made them confident and self - esteemed. The outbreak of COVID-19 and measures of its containment have an evident impact on the lifestyle-related behavior in the population [3]

One of the factors which brought these conditions and circumstances in a favorable position is the purity of our environment, which befitted nature being pollution-free territory.

Conclusions and Implications

COVID -19 was a wake-call for all of us which fully made us understand the huge challenges faced by the fashion industry. This is an opportunity we feel that we should emerge stronger in the future.

Fashion is an industry that runs on change with new trends, styles, and whole new ranges offered up every season. To meet those demands, it must keep the supply chain working at full steam to stitch up and ship out new fashions at breakneck speed. While working on this research I came to know about so many things related to the setbacks

of the Fashion Industry during COVID and also the attitude of people to cope with stressful situations. So, it has been moving at a measured pace to meet the growing demand for sustainable fashion and a more environmentally and socially-responsible industry.

The pandemic has offered us an important lesson that digital technology is the need of the hour. It is essential to switch to a digital information system from a traditional system now. Businesses that have digital capabilities, digital payment systems, digital supply chain management, digital marketing, and digital information banking are likely to sail through this phase without many difficulties. Thus, the pandemic has also taught us to be digital, every business should endeavor to bring about digital efficiencies to bounce back. The positivity of COVID -19 is that along with setbacks, it has taught us a new digital life

Acknowledgment

My Sincere efforts have made me accomplish the task of completing this project. I have taken an effort in this project. However, it would not have been possible without the kind support of my near and dears.

Heartfelt thanks to the Almighty and sincere thanks to our Department head for insisting me, to work on this research article.

My thanks and appreciation also goes to my colleagues who have willingly helped me with their abilities for completing this research work.

Finally, words are not sufficient to express my sincere thanks to my family members, and friends and special thanks to my mother Mrs. Ila Mandal without her motivations and encouragement, I wouldn't have stood where I am today.

References :

Accenture, 2020

1. Accenture

   How COVID-19 Will Permanently Change Consumer Behaviour. Fast-Changing Consumer Behaviors Influence the Future of the CPG Industry. April 2020

   (2020)

   Google Scholar

2. Aleksander, 2020

   Sweatpants forever, NY times

   (online):

   https://www.nytimes.com/interactive/2020/08/06/magazine/fashion-sweatpants.html (2020)

   Google Scholar

3. Arora et al., 2020

   N. Arora, T. Charm, A. Grimmelt, M. Ortega, K. Robinson, C. Sexauer, N. Yamakawa

4. **A global view of how consumer behavior is changing amid COVID-19**

   McKinsey (online):

   https://www.mckinsey.de/<"/media/McKinsey/Business%20Functions/Marketing%20and%20Sales/Our%20Insights/A%20global%20view%20of%20how%20consumer%20behavior%20is%20changing%20amid%20COVID%2019/2020/07/07/covid-19-global-consumer-sentiment-20200707.pdf (2020)

   Google Scholar

5. Amadasun,S.(2020a). Social work and COVI-19 pandemic An action call. sage submissions.

   https://journals.sagepub.com/doi/abs/10.1177/0020872820959357

   https://doi.org/10.1177%2F0020872820959357

6. https://www.researchgate.net/publication/346962318_IMPACT_OF_CORONA_VIRUS_COVID-19_ON_THE_GLOBAL_ECONOMY

7. https://www.emerald.com/insight/search?q=Sustainable+fashion

8. https://hstalks.com/article/6059/impact-of-covid-19-on-the-textile-apparel-and-fash/

9. https://www.researchgate.net/publication/

347529891_The_Implication_of_Textile_Materials_Applied_in_Preventing_the_Spread_of_COVID-19

10. https://www.researchgate.net/publication/354344651_Impact_of_COVID-19_on_Sustainability_in_Textile_Clothing_Sectors

INTERNET SOURCES

1. https://www.indianretailer.com/article/whats-hot/trends/the-impact-of-covid-19-on-sustainable-fashion-innovation.a6873/

   The impact of COVID-19on Sustainable Fashion Innovation.

2. https://www.forbes.com/sites/pamdanziger/2020/05/10/coronavirus-will-force-fashion-to-a-sustainable-future/?sh=70cdd9865292

   Coronavirus will force Fashion toward a Sustainable future

3. https://www.mckinsey.com/industries/retail/our-insights/the-future-of-sustainable-fashion

4. https://www.mckinsey.com/Videos/video?vid=6210122360001&plyrid=HkOJqCPWdb&aid=0E9E9B09-FB24-491E-8EAE-BA540887E8FE

5. https://journals.sagepub.com/doi/full/10.1177/0258042X21991018

OTHER SOURCE

My Masters Dissertation Thesis on Sustainable Fashion " LET ME BREADTH".

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

भक्ति नृत्य एवं मीरा बाई

डॉ. चारु हाण्डा*

सारांश

भारत देश में भक्ति की परम्परा अति प्राचीन है। कहा गया है–

आकाशं पतितं तोयम सागरम प्रति गच्छति।
सर्व देव नमस्कार केशवं प्रति गच्छति।।

अर्थात् जिस तरह आकाश पृथ्वी पर आया हुआ जल सागर की ओर गमन करता है, वैसे ही हम किसी भी देवता को प्रणाम करें, उनकी उपासना करें, वह भगवान श्री कृष्ण तक पहुंचती है।

भारतीय नृत्य सृष्टि के आरंभ से ही देवोपासना का माध्यम रहे हैं। मन के भावों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने के लिए मानव ने नृत्य का सहारा लिया। चूंकि भारतीय परंपराएँ व मान्यताएँ ईश्वर प्राप्ति व मोक्ष प्राप्ति का संदेश देती आई हैं, इसीलिए भारतीय नृत्यों में भी भक्ति–तत्त्व दिखाई देता है। विशेषकर शास्त्रीय नृत्यों में अनेक देव वंदनाएँ, काव्यात्मक रचनाएँ व भजन इत्यादि प्रस्तुत किए जाते हैं। ये भक्ति–नृत्य महाकवि तुलसीदास, सूरदास, कबीर, मीरा बाई, जयदेव इत्यादि कवियों की रचनाओं पर प्रस्तुत किए जाते हैं। मीरा के पद आज जन–जन में प्रचलित हैं। अपनढ़ व्यक्ति भी 'पग घुंघरु बांध मीरा नाची रे' तथा 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई' जैसी पंक्तियाँ गुनगुनाते सुनाई पड़ते हैं। यह तथ्य स्पष्ट है कि हम जब भी भारत के भक्त कवियों को याद करेंगे, मीरा का स्मरण करना ही होगा।

संकेत शब्द : *भक्ति, भक्ति नृत्य, मीराबाई, कृष्ण–प्रेम, नृत्य–प्रस्तुति*

शोध माध्यम : *प्रस्तुत शोध पत्र के लिए पुस्तकों के अध्ययन के बाद समुचित सामग्री उपयोग में लायी गई है।*

म्हारे घर आज्यो प्रीतम,
तुम बिन सब जग खारा।
तन मन धन सब भेंट करूँ,
ओ भजण करुँ मैं थारा।
तुम गुणवंत बड़े गुणसागर,
मैं हूं जी औगन हारा।।

–मीरा

मीराबाई आजीवन श्री कृष्ण की माधुर्य भक्ति में लीन रही। इनकी भक्ति प्रेम लक्षणा भक्ति से भी आगे के स्तर की रही है। वे तो यहाँ तक कह देती हैं–

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बन्धु, अपना नहीं कोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैली गई, आनन्द फल होई।।[1]

इतनी उत्कटता शायद ही किसी भक्त में रही होगी, इसलिए हम मीरा की तन्मयता, लगन, आराधना को नमन करते हैं। ऐसा माना जाता है कि आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व राजस्थान में मीरा का आविर्भाव हुआ। जन्म–स्थान के रूप में मेड़ता का उल्लेख मिलता है। प्रियादास ने 'भक्तमाल' में उल्लेख किया है–

''मेड़तियां घर जन्म लियो, मीरां नाम कहायो।''

पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार संवत् 1573 में महाराणा सांगा के दूसरे बेटे भोजराज के साथ मीरा का विवाह हुआ। मीरा अल्प समय में विधवा हो गई। वैसे तो पति की जीवितावस्था में भी वह कृष्ण भक्ति करती रहती थीं, पर पति के देहान्त के बाद तो उसमें आकण्ठ डूब गईं। मीरा को गृह त्याग से पूर्व अनेक विडम्बनाओं का सामना करना पड़ा। पति की असमय मृत्यु, देवर द्वारा दी गई यातना, उनके संतों के संग को परिवार द्वारा कलंक समझना इत्यादि एक भावुक मन पर कैसा दुष्प्रभाव छोड़ता होगा, यह बताने की आवश्यकता नहीं ।

भगवान् का भजन, कीर्तन एवं मंदिरों में नृत्य करना ही मीरा की दिनचर्या के अंग बन गए थे। मीरा के

*असिस्टेंट प्रोफेसर, नृत्य विभाग, पी.जी.जी.सी.जी.–11, चण्डीगढ़

जीवन में घटित अनेक चमत्कारिक प्रसंगों का जिक्र मिलता है जिन्हें भक्ति नृत्यों में प्रदर्शित किया जाता है।

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय।
सांप पिटारा राणा भेज्यो, मीरां दियो जाय।
नहाये धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्यो, अमृत दिन्ह बनाय।
नहाये धोय जब पीवण लागी, हो गई अमर अंचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दिज्यो मीरा सुलाय।
सांझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्ती डोलती, गिरिधर पै बलि जाय।[2]

इस पद में तीन घटनाओं का उल्लेख है–सांप की पिटारी भेजना, विष का प्याला भेजना, और शूल का बिछावन। प्रभु कृपा के कारण सांप शालिग्राम में बदल गया, विष अमृत हो गया और शूल (कांटे) फूल में बदल गये। इससे दो बातें प्रमाणित होती हैं–भक्ति का मार्ग कठिन होता है पर भक्तजनों की सहायता के लिए भगवान् तत्पर रहते हैं। इस पद का एक ध्वन्यार्थ यह भी निकलता है कि मीरा को राणा विक्रमादित्य की ओर से अनेक कष्ट दिए गए और मीरा ने उनका दृढ़ मनोबल से सामना किया। कष्टों के कारण मीरा की भक्ति की मात्रा जरा भी कम नहीं हुई, बल्कि उनका भगवान् के प्रति विश्वास बढ़ता ही चला गया। मीरा की भक्ति–भावना सच्ची थी। इसीलिए, ईश्वर–कृपा से सदैव उन पर छाए संकट के बादल छंटते ही चले गए।

भक्ति–नृत्यों में उपरोक्त प्रसंगों व मीरा के काव्यात्मक पदों में वर्णित इन चमत्कारों का सदैव ही प्रस्तुतिकरण किया जाता है जो मीराबाई जी के भक्ति–नृत्य के साथ अटूट संबंध को भी उजागर करता है। मीरा बाई स्वयं भी प्रभु भक्ति में लीन होकर नृत्य करती थी। कहते हैं–मीरा बाई जी ने भगवान श्रीकृष्ण को नृत्य करते–करते ही पा लिया था।

पग घुँघरु बाँध मीरा नाची री,
लोग कहे मीरा बावरी, सासू कहे कुलनासी री।
विष रो प्याला राणा भेज्यो, पीवां मीरा हासां री।
तन–मन वार्‌या हरिचरणामा, दर्शन अमृत प्यासां री।
मीरा रे प्रभु गिरिधर नागर, म्हारी सरना आस्या री।[3]

मीरा को धर्म और भक्ति के संस्कार तथा शिक्षा अपने घर से ही प्राप्त हुए। मीरा को काव्यत्व के साथ गायन, वादन तथा नृत्य कला में भी दक्षता थी। जब वे अपने पैरों में घुंघरु बांध कर पद गाते हुए साहजिक रूप से नृत्य करती होंगी तथा करताल इत्यादि बजाती होंगी तब आनन्द की किस चरम सीमा पर वे होती होंगी, भक्ति की इस पराकाष्ठा का हम शायद अनुमान भी नहीं लगा सकते। भीतर की इसी तन्मयता, लग्न व श्रद्धा ने मीरा को भक्ति काव्य के सृजन हेतु प्रेरित किया होगा।

हम मीरा के पदों की चर्चा कर रहे हों और मीरा के इस पद का आस्वादन न किया जाये, यह कैसे हो सकता है–

पायो जी, मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरच न खूटे वाको चोर न लूटे, दिन दिन बढ़त सवायो।
सत की नांव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, हरख हरख जस गायो।[4]

हिन्दी में कृष्ण–काव्य का आरंभ विद्यापति की पदावली से समझना चाहिए। कृष्ण–भक्ति की जो स्त्रोतवाहिनी उमड़ी उसमें अष्टछाप के कविगण सूरदास, नंददास, घनानंद, रसखान, मीराबाई एवं गुजराती कृष्ण भक्ति–साहित्य के सर्वोकृष्ट भक्त नरसिंह मेहता के नाम उल्लेखनीय हैं। अतः कृष्ण भक्ति–धारा को उपर्युक्त कवियों ने आगे बढ़ाया।

मीरा की भक्ति का संबंध इसी से रहा है। मीरा बाई के आराध्य देव श्री कृष्ण हैं। उन्हें वे गिरिधर नागर, गोपाल, हरि, राम, रमैया, जोगिया, श्याम, सांवरा, नंद कुमार, कन्हैया, पिया आदि कहकर पुकारती हैं। मीरा के कृष्ण भव्य और दिव्य होते हुए भी लौकिक और सगुण हैं। मीरा ने अपने आराध्य की सगुण कल्पना की है। उनके कृष्ण सौंदर्य और प्रेम से परिपूर्ण हैं।

'बसो म्हारे नैनण में नंद लाल,
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल,
मोहिनी मूरत सांवरी सूरत, नैन बने विशाला।
अधर सुधारस मुरली राजत, उर बैजन्ती माला।'[5]

मीरा बाई कहती हैं–गिरिधर श्री कृष्ण के अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है। साधुओं के साथ बैठकर मैंने लोक–लज्जा छोड़ दी है। भक्ति से मैं प्रमत्त हुई और संसार की दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ।

'साधो ठिग बैठ–बैठ, लोक लाज खूयाँ।
भगत देख्याँ राजी इप्यों, जगत देख्याँ रूयाँ।'[6]

इसी कारण वे लौकिक जगत के मिथ्या बंधनों को त्याग कर श्री कृष्ण के परम सौंदर्य, परमरस युक्त परमानंद की प्राप्ति के लिए आतुर दिखाई पड़ती हैं और अंततः वे गिरिधर की दासी बन जाती हैं। श्री कृष्ण के प्रति उनका समर्पण भाव सर्वाधिक उज्ज्वल रूप में अभिव्यक्त होता है–

'मैं तो गिरिधर के घर जाऊं।
गिरिधर म्हारो सांचो प्रीतम, देखन रूप लुभाऊं।
रैण पड़े तब उठि जाउं, भोर गये उठि आउं।
रैण दिना वाके संग खेलूं, ज्यूं त्यूं वाहि रिझाउं
जो पहिराये सोई पहिरु, जो दे सोई खाऊं।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उन बिन पल न रहाउं।
जना बैठावे तितहि बैठूं, बेचे तो बिक जाऊं।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, बार–बार बलि जाउं।'[7]

अतः तात्पर्य यह है कि मीराबाई और भक्ति–नृत्य एक–दूसरे के पूरक हैं।

संदर्भः

1. भाटी, देशराज सिंह, मीराबाई और उनकी पदावली, पृ. 206
2. शर्मा, डॉ. कृष्ण देव, मीराबाई पदावली, पृ. 213
3. वही
4. हिन्दी गद्य–पद्य संग्रहः हिन्दी पाठावली, पाँचवी किताब, गुजरात विद्यापीठ, पृ. 15
5. शर्मा, डॉ. कृष्ण देव, मीराबाई पदावली, पृ. 168
6. चतुर्वेदी, आ. परशुराम, मीराबाई की पदावली, पृ. 194
7. शर्मा, डॉ. कृष्ण देव, मीराबाई पदावली, पृ.187

स्तोम 2022 यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

राग सारंग और उसके प्रकार : वृन्दावनी सारंग तथा मध्यमाद सारंग

डॉ. कुमार अम्बरीष चंचल*

सारांश

उत्तर भारतीय संगीत के प्रस्तुतिकरण में राग रागांगों का विशेष महत्व है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख मतंग कृत 'बृहद्देशी' ग्रंथ में मिलता है। रागों में ऐसे स्वर–समूह होते हैं जिनमें उनकी स्वतंत्र छवि बनती है। ऐसी ही स्वतंत्र छवि बनाने वाले स्वर–समूह को रागांग कहते हैं। स्वतंत्र अंग वाले राग रागांग प्रमुख राग माने जाते हैं। ऐसे रागों में विस्तार की विस्तृत संभावनायें रहती हैं। उत्तर भारतीय संगीत में ऐसे अंग प्रमुख राग जिनके स्वतंत्र अंग सर्वमान्य हैं, इन्हीं राग–रागांगों में प्रमुख राग सारंग है। इस राग के मुख्य दो प्रकार माने जाते हैं– 1. दोनों निषाद युक्त ग, ध वर्जित वृंदावनी सारंग एवं 2. केवल कोमल निषाद वाले ग, ध वर्जित मधमाद सारंग। इनके स्वर–समुदाय जब दूसरे रागों के स्वर–समुदायों के साथ मिलते हैं तो नवीन रागों का आविर्भाव होता है। जैसे– कल्याण के मिश्रण से शुद्ध सारंग, मियां मल्हार के मिश्रण से मियां की सारंग, देश मिलाने से सामंत सारंग तथा बिलावल मिश्रित से बड़हंस सारंग इत्यादि रागों का निर्माण होता है। सरल, रंजक, लोकप्रिय होने के कारण सारंग अंग के बहुधा राग वर्तमान में प्रचार–प्रसार में हैं।

सूचक शब्द– *राग, रागांग, सारंग, जाति, थाट, स्वर समूह*

शोध–प्रविधि : *इस लेख के लिए द्वितीयक स्रोतों के साथ–साथ प्रयोग और प्रदर्शन में रागों के स्वरूप का अध्ययन किया गया है।*

भूमिका– भारतीय संगीत में राग रागांग पद्धति प्राचीन है। इसका उल्लेख सर्वप्रथम मतंग के काल से ही मिलता है। 'संगीत रत्नाकर' के टीकाकार सिंह भूपाल व कल्लिनाथ दोनों ने कुछ पाठ–भेद से इस सन्दर्भ में मतंग मत का उल्लेख किया है–

"उक्तानां ग्रामारागाणां छायामात्रं भजन्तिहि।
गीतज्ज्ञैः कथिताः सर्व रागांगास्तेन हेतुनः।।"

अर्थात्– गीतज्ञों के कथनानुसार जिन रागों में ग्रामरागों की छायामात्र हो, वे राग 'रागांग' राग कहे जाते हैं। रागों की छाया स्वर–समूह से दिखाई देती है जिसके श्रवण से राग–मर्मज्ञों को यह पता चल जाता है कि इस स्वर समूह में अमुक राग है, यही छाया है। मध्य–काल में इस सिद्धांत का और अधिक विस्तार हुआ। 'संगीत पारिजात' में एक राग के अनेक भेदों में इसी सिद्धांत का प्रभाव दिखाई पड़ता है। आगे चलकर भावभट्ट ने राग–भेद–वर्गीकरण के रूप में इसका उल्लेख किया है, जिसमें बिलावल, कल्याण आदि 18 भेदों में 148 रागों के नाम उपलब्ध होते हैं। रागांग–वर्गीकरण का सिद्धांत मेल–सिद्धांत के अन्तर्गत रागों को वर्गीकृत करने के पश्चात् भी दिखाई देता है। पं० भातखण्डे एक मेल के अन्तर्गत अनेक रागांगों का समावेश करते हैं। उदाहरणार्थ– काफी के अन्तर्गत उन्होंने– काफी अंग, धनाश्री अंग, कान्हड़ा अंग और मल्हार अंग रागों का स्पष्ट उल्लेख किया है।[1]

राग की समान्य पहचान स्वरों के माध्यम से हो ही जाती है परन्तु सूक्ष्म पहचान विशिष्ट स्वर– समूहों के माध्यम से ही होती है। यही स्वर–समूह प्रधान पहचान रागांग कहलाती है। इसी प्रकार के विशिष्ट स्वर–समूह को धारण किया हुआ राग सारंग एक रागांग राग है। राग सारंग का उल्लेख अनेक ग्रंथों में मिलता है। स्वतंत्र अंग से रागांग रागों में से एक माना जाता है। अन्य स्वरों एवं रागों के संयोग से कई प्रकार प्रचार में हैं। भारत के कई प्रांतों के लोक गीतों में भी सारंग का स्वरूप परिलक्षित होता है जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सारंग के शास्त्रीय स्वरूप की उत्पत्ति लोक संगीत से हुई होगी। 'सा, नि सारे, सारे! इतने स्वर रागवाचक है। फिर नि शुद्ध हो या कोमल। इतने स्वरों से सारंग बन जाता है, अन्य कोई राग बनने की संभावना नहीं है। यह स्वर–संगति किसी और राग में दिखाई दे, तो जानकार श्रोताओं को तुरन्त ही पता चल जाता है कि यह सारंग का एक प्रकार है। इसके अलावा सा, मरे, पमरे, निपमरे, रेमपमरे, मपरे, सारेनिसा, नि प, निसारे, इत्यादि स्वर–संगतियों से भी सारंग अंग स्पष्ट दिखाई देता है ।

सारंग के मुख्य दो प्रकार माने जाते हैं–

1. दोनों निषाद युक्त ग, ध, वर्जित वृंदावनी सारंग
2. सिर्फ कोमल नि वाले ग, ध, वर्जित मधमाद सारंग

*सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारंग के प्रचलित अन्य प्रकारों में से बहुत से प्रकारों में इन दोनों में से किसी एक का अंग दिखाई देता है और वह प्रकार वंदावनी अंग के अथवा मध्यमादि अंग के प्रकार के रूप में पहचाना जाता है। ग्रंथों में जिन आठ अथवा नौ सारंग प्रकारों का उल्लेख मिलता है, वे निम्नलिखित हैं–

1. वृंदावनी सारंग, 2. मध्यमादि सारंग, 3. सामंत सारंग 4. बडहंस सारंग, 5. शुद्ध सारंग, 6. लंक दहन सारंग, 7. मियां की सारंग 8. गौड़ सारंग, 9. नर सारंग ।[2]

क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग 6 में बड़हंस सारंग में एकताल की एक बन्दिश दी गई है–

"मेरो मन सखि हरन कीनो,/या सांवरे ने मधुर बड़हंस/धुन सुनाय, परम सुख अनौंद दीनो।।/मध्यमादि, बिंदरावन, सामंत शुध, लौंकदहन, तानेसन गौड़/चतुर अष्ट भेद विशद कीनो।"[3]

इसमें सारंग के आठ प्रकार बताये गये हैं।

सारंग के उपलब्ध प्रचलित प्रकार

1. वृंदावनी सारंग, 2. मध्यमादि सारंग, 3. सामंत सारंग 4. बड़हंस सारंग, 5. लंकदहन सारंग, 6. मियांकी सारंग, 7. शुद्ध सारंग 8. नर सारंग, 9. गौड़ सारंग 10. नट सारंग 11. धलिया सारंग 12. मलहा सारंग, 13. सालंग सारंग, 14. यशोवती सारंग, 15. जैमिनी सारंग 16. अंबिका सारंग 17. बहार सारंग 18. तिलक सारंग 49. अल्हैया सारंग 20. श्याम सारंग 21. जयंत सारंग 22. खमाजी सारंग 23. विनय सारंग।

सारंग के प्रकारों का अंग–विभाजन

प्रचार के अनुसार निषाद के हिसाब से सारंग के प्रकारों का विभाजन इस प्रकार होना चाहिए– 1. दोनों नि वाले और 2. सिर्फ कोमल नि वाले लेकिन शुद्ध नि वाले प्रकार भी प्रचार में आने से इसका विभाजन निषाद के हिसाब से इस तरह किया जाना चाहिए–

1. दो नि वाले 2. कोमल नि वाले 3. शुद्ध नि वाले ।

1.1 ग, ध वर्ज्य, शेष शुद्ध–

(क) वृंदावनी सारंग (ख) बड़हसं सारंग (एक मत से)

1.2. ग वर्ज्य, शेष शुद्ध–

(क) सामंत सारंग (ख) बडहंस सारंग (अन्य मत से)
(ग) मियां की सारंग (घ). मलुहा सारंग (एक मत से)

1.3. ग वर्ज्य, दो म, शेष शुद्ध –

(क) शुद्ध सारंग (एक मत से) (ख) अंबिका सारंग

1.4. ग वर्ज्य, म तीव्र, शेष शुद्ध–

(क) जेमिनी सारंग

1.5. ध वर्ज्य, शेष शुद्ध–

(क) नट सारंग (ख) तिलक सारंग (एक मत से)

1.6. ध वर्ज्य, ग कोमल, शेष शुद्ध

(क) लंक दहन सारंग (एक मत से)

1.7. ग कोमल, शेष शुद्ध–

(क) लंक दहन सारंग (अन्य मत से) (ख) बहार सारंग

1.8. दो म, शेष शुद्ध–

(क) गौड सारंग

1.9. दो ग, शेष शुद्ध–

(क) जयंत सारग

1.10. अन्य सभी शुद्ध–

(क) बड़हंस सारंग (अल्प मत से) (ख) धूलिया सारंग (ग) तिलक सारंग (अन्य मत से) (घ) अल्हैया सारंग, (ड) खमाजी सारंग (व) विनय सारंग।

2. कोमल नि वाले प्रकार

2.1. ग, ध वर्ज्य :

(क) मध्यमादि सारंग

2.2. ग, वर्ज्य

(क) धूलिया सारंग (अन्य मत से)

3. शुद्ध नि वाले प्रकार

3.1. ग वर्ज्य, दो म, शेष शुद्ध

(क) शुद्ध सारंग (अन्य मत से)

3.2. ग, वर्ज्य म तीव्र, शेष शुद्ध

(क) नूर सारंग

3.3. ग वर्ज्य, शेष शुद्ध :

(क) मलूहा सारंग (अन्य मत से) (ख) यशोवती सारंग

3.4. ग, ध वर्ज्य, शेष शुद्ध :

(क). सालंग सारग

3.5. दो म शेष शुद्ध

(क) श्याम सारग[4]

1. राग वृंदावनी सारंग–

राग सारंग अथवा वन्दावनी सारंग दोनों एक ही हैं। काफी थाट से उत्पन्न सारंग का एक प्राचीन मुख्य प्रकार

है, जो कई बार सिफ सारंग के नाम से भी गुणीजनों द्वारा सम्बोधित किया जाता है। वृंदावन में इस राग की उत्पत्ति हुई, इसलिए इसको वृंदावनी सारंग कहते हैं। ऐसा किंवदन्ती है, लेकिन इसका कोई प्रामाणिक आधार नहीं मिलता।[5] गान्धार धेवत वर्जित यह औडव–औडव जाति का राग है। इसमें रिषभ वादी तथा पंचम संवादी एवं दोनों निषाद का प्रयोग होता है। गायन–समय दिन का द्वितीय प्रहर सर्वमान्य है। यह रागांग रागों में एक प्रमुख रागांग राग है।

स्वरूप इस प्रकार है– नि सा रे म रे रे म पनि पम रे, म प नि सां, सां नि प, प म रे, रे म पनिम प, र म रे, म रे नि सा इत्यादी। उपरोक्त राग–स्वरूप को देखने से यह स्पष्ट है कि इसमें किसी अन्य राग का मिश्रण नहीं है बल्कि काफी राग में गांधार–धैवत वर्जित करने का परिणाम है। जिस भांति कल्याण और बिलावल में म–नि वर्जित करने से भूपाली और देसकार के मूल स्वरूप का आर्विभाव हो जाता है, इसी प्रकार यहाँ सारंग के लिए भी समझना चाहिए।

आरोह–सा रे, ग म प, प ध नि सां
अवरोह– सां नि ध प, मग रे, सा

उपरोक्त आरोह–अवरोह में गांधार, धेवत को वर्जित करने से ऐसा होगा, यथा– सा रे, म प नि सां। सां नि प, म रे, सा।

स्वर वर्जित के आधार पर राग बनाने की क्रिया कितनी विलक्षण है कि तत्काल एक–दूसरे अथवा महत्वपूर्ण रागांग राग की उत्पत्ति हो जाती है। इस क्रिया में वर्जित स्वर के साथ विश्रांति स्थल को यथा स्थान पूर्ववत रखने से काफी राग अंग से सारंग राग का रागांग राग की स्थिति में आर्विभाव हो जाता है अर्थात् सारंग में काफी अंग अन्तर्निहित है, यही कारण है कि सारंग राग को काफी थाट का राग माना जाता है अर्थात् थाट–निर्धारण के लिए न्यास–स्थान एवं रागांग को ध्यान में रखना परम आवश्यक है।[6]

अन्य रागांग रागों की भांति सारंग राग के भी रागांग वाचक स्वर–समूह अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, जैसे– नि सा रे म प म रे, या रे म प म रे। यह पूर्वांग के और उत्तरांग के म प नि सां नि प इन्हीं रागांग वाचक स्वर–समूहों के विविध प्रकार से रागों का निर्माण होता है, जैसे– कल्याण के मिश्रण से शुद्ध सारंग, मियां मल्हार का कुछ अंश मिलाने से मियां की सारंग, देस मिलाने से सामन्त सारंग, बिलावल के मिश्रण से बड़हंस सारंग इत्यादि। इसके अतिरिक्त स्वर–वर्जित के आधार पर सारंग में केवल कोमल निषाद के प्रयोग से राग मधमाद सारंग का आर्विभाव होता है। अन्य रागों में भी सारंग अंग का मिश्रण कर रागों के भिन्न स्वरूप की रचना की गई है। कान्हड़ा अंग के राग तो सारंग–अंग से बहुत ही प्रभावित हैं। सारंग–अंग का म प नि सां नि प यह स्वर समूह तो कान्हड़ा अंग के रागों के उत्तरांग पर छाया हुआ हैं खास कर नि प स्वर समूह तो बहुत ही मार्मिक है। एक दो कान्हड़े को छोडकर लगभग सभी कान्हड़ों के प्रकार में यह विद्यमान है परन्तु सारंग अंग के नि प और कान्हड़ा के अंग के नि प के उच्चारण एवं लगाव में भेद है। सारंग के अवरोही निषाद को बिना किसी कण के उच्चारण किया जाता है अर्थात् नि प इस प्रकार और कान्हड़ा अंग में यही स्वर पंचम के सहारे उच्चारण किया जाता है, यथा– सां 'नि प, कान्हड़ा अंग के बहुत–से रागों के आलाप अंग में इस तथ्य को ध्यान में रखना बहुत ही आवश्यक है अन्यथा इस ज्ञान के अभाव में कान्हड़ा के उत्तरांग में सारंग का प्रभाव अधिक दिखेगा। खास करके जिन कान्हड़ों के प्रकार में धैवत वर्ज्य है। जैसे– सुहा, नायकी, सुघरई, देवसाख इत्यादी रागों में कोमल निषाद को कान्हड़ा अंग से ही उच्चारण करना चाहिए। सारंग अंग के 'रे म प म रे सा' इस स्वर–समूह से भी खास कर सुघरई और देवसाख प्रभावित है, परन्तु अन्तर यह है कि सारंग अंग में यह स्वर–समूह सावकाश रीति से गाया जाता है और रिषभ का न्यास बहुत्व स्थान है। इसके विपरीत कान्हड़ा अंग से इस स्वर–समूह का स्वभाव चंचल हो जाता है और रिषभ अनाभ्यास के रूप में प्रयोग होता है। सारंग के उपरोक्त स्वर–समूह का मल्हार अंग के कछ रागों में भी प्रभाव दिखाई पड़ता है, जैसे– मेघ मल्हार, सूर मल्हार इत्यादि अर्थात् जिस मल्हार में गोंधार वर्ज्य होगा उसमें सारंग अंग की ताक–झांक अवश्य हो जायेगी। इन मल्हारों में सारंग अंग के प्रभाव को संतुलित रखने के लिए रिषभ और मध्यम के लगाव को ध्यान में रखना परम आवश्यक है। सारंग अंग में रिषभ का न्यास बहुत्व और मध्यम का अनाभ्यास एवं लंघन दोनों ही प्रकार का अल्पत्व है। इसके विपरीत मल्हार अंग में रिषभ अभ्यास बहुत्व के रूप में अर्थात् अधिक–से–अधिक इस स्वर का राग विस्तार में प्रयोग तो है मगर न्यास नहीं है। इसका करण यह है कि मल्हार अंग के रागों में जो सा रे रे रे प, यह संगति है इसमें रिषभ का प्रयोग मध्यम के सहारे किया जाता है अर्थात् म रे रे प इस हेतु रिषभ पर न्यास नहीं हो जाता। इसके अतिरिक्त म रे स्वर संगति का उच्चारण मींड़ युक्त एवं

मध्यम वादी के रूप में न्यासयुक्त होकर प्रयोग होता है, जैसे– 'म रे रेपम रे म' अभिप्राय यह है कि इन अनेक रागों में सारंग अंग का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रवेश है परन्तु सभी रागों का अपना एक भिन्न नियम होता है उसके आधार पर इन रागों के परस्पर स्वरूप को भिन्न रखने में कोई कठिनाई नहीं होती। ये बात दूसरी है कि प्रदर्शन करने वाले कलाकार ने यदि इन नियमों को आत्मसात नहीं रखा है तो वह रागों के सूक्ष्म भेद के ज्ञान से अनभिज्ञ है ही श्रोता और भविष्य के साधकों को भी अपने प्रदर्शन का कुछ चमत्कार दिखाकर सही राग ज्ञान के मार्ग को अवरूद्ध करेगा। राग सारंग का विशेष स्वर प्रयोग एवं स्थान– सर्वश्रेष्ठ स्वर षड्ज के अतिरिक्त रिषभ न्यास बहुत्व के रूप में प्रयोग होता है यथा– नि सा रे म रे, पम रे, रे म प ^{म}रे, नि प म म रे इत्यादि मध्यम का इस राग में रे म प, प म रे, व प रे म रे, इस भाँति अनाभ्यास एवं लंघन दोनों प्रकार का अल्पत्व है। पंचम स्वर रे म प, प ^{म}रे म रे म प, सां नि प, रे म प नि म प इत्यादि लगाव में पूर्ण न्यास बहुत्व के रूप में प्रयोग होता है। कोमल निषाद अनाभ्यास के रूप में और शुद्ध निषाद राग विस्तार में रे म प नि म प म प नि, नि सा रे म प नि, सां नि प म प म प नि, इस प्रकार अपन्यास के रूप में प्रयोग होता है। इस प्रकार, यह राग प्राचीन होने पर भी श्रुति मधुर होने के कारण संगीत जगत में पूर्ववत ही अधिक–से–अधिक गाया बजाया जाता है।

आरोह– सा रे म प नि सां

अवरोह– सां नि प म रे सा

पकड़– रे म प रे, नि सा[7]

2. मध्यमादि सारंग– यह काफी थाट से उत्पन्न मध्यमादि अथवा मध्यमाद सारंग राग एक प्राचीन सारंग प्रकार है। ग, ध वर्ज्य होने से इस की जाति औडव है। इस राग में नि कोमल और शेष स्वर शुद्ध हैं, जिससे दो नि वाले वंदावनी सारंग से यह भिन्न दिखाई देता है। वादी रे और संवादी प है। गायन–समय दोपहर है। प्रचार में यह दो प्रकार से गाया जाता है। एक प्रकार में इसका पूरा चलन वृंदावनी जैसा ही रखा जाता है, लेकिन नि कोमल होने से राग–भेद स्पष्ट दिखाई देता है।

दूसरे प्रकार में इसका चलन बार–बार 'रेपम' इस प्रकार 'रेप' संगति और म पर न्यास किया जाता है, जो आजकल प्रचार में मधमाद अंग नाम से पहचाना जाता है, जिससे राग का एक नया और स्वतंत्र अंग दिखाई देता है।

आरोह – सा रे, म प, नि सां

अवरोह – सां, नि प, मरे, सा

पकड़ – निसा, रे, सारे, पमरे, निसा। अथवा निसा, रेप, म, रेम, रे, निसा।

निष्कर्ष– सा, निसा, रे, सारे–यह स्वर समुदाय जो सारंग सूचक है, बहुधा प्रत्येक सारंग प्रकार में दिखाई देता हैं, फिर नि शुद्ध हो या कोमल। बहुधा सारंग के प्रकारों में रे, प वादी–संवादी होता है। किन्तु, कई प्रकारों में म वादी स्वर हैं। सारंग अंग के रागों में ऋषभ प्रबल स्वर है। सारंग का गायन समय दोपहर (मध्यान्ह) सर्वसम्मति से है।

संदर्भ सूची :

1. देवांगन, तुलसीराम, भारतीय संगीत शास्त्र, पृ.सं. 291
2. लाल, जय सुख, सारंग के प्रकार, पृ.सं. 2
3. भातखण्डे, पं. विष्णु नारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग–3, पृ.सं. 496
4. लाल, जय सुख, सारंग के प्रकार, पृ. सं. 3–4
5. 'रामरंग', पं. रामाश्रय झा, अभिनव गीतांजलि, भाग–2, पृ.सं.113
6. वही
7. वही, पृ.सं. 114
8. शाह, जय सुखलाल त्रिभुवनदास, सारंग के प्रकार, पृ.सं. 39

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. शाह, जयसुखलाल त्रिभुवनदास, सारंग के प्रकार, परफेक्ट प्रिंट्स, ठाणे
2. भातखंडे, पंडित विष्णु नारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग–3, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद
3. 'रामरंग', झा, पंडित रामाश्रय, अभिनव गीतांजलि' (भाग–5), संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद
4. काशीकर, स्वर्गीय श्री शंकर विष्णु, श्रुति विलास, प्रसाद कलकर्णी, संस्कार प्रकाशन , कालाचौकी, मुंबई
5. भावरंग' भट्ट, वादनाचार्य पंडित बलवंतराय गुलाबराय, 'भावरंग लहरी', आचार्य मुद्रणालय, गायघाट, वाराणसी
6. ठाकर , पंडित ओंकार नाथ, 'संगीतांजलि' (भाग–4) तृतीय संस्करण, वर्द्धमान मुद्रणालय वाराणसी
7. देवांगन, तुलसी, 'भारतीय संगीत शास्त्र', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, बाणगंगा, भोपाल
8. गुडि, राघवेंद्र, अग्निवेला राग दर्शिनी, किराणा संगीत प्रतिष्ठान, बेंगलुरु
9. हल्दनकर, पंडित श्रीकृष्ण (बाबनराव),' रसप्रिया' बंदिशें (द्वितीय संस्करण), रागश्री संगीत प्रतिष्ठान, मुम्बई
10. रायचौधुरी, विमलाकांत, राग व्याकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

आधुनिक संस्कृत रंगमंच : परम्परा और प्रयोग

डॉ. हिमांशु द्विवेदी*

शोध सार

भारतीय नाट्य–परंपरा का मूल श्रोत संस्कृत नाटक है, जो प्रारंभ से ही प्रयोगधर्मी रहे हैं। संस्कृत नाटक और रंगमंच की सहस्त्रों वर्ष लम्बी परंपरा रही है। 19वीं शताब्दी के रंगमंचीय आन्दोलन में संस्कृत रंगमंच सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान हेतु उभरकर सामने आया है। विद्वानों तथा रंग–निर्देशकों ने आधुनिक संस्कृत रंगमंच में विभिन्न प्रयोग किए। संस्कृत नाटकों के प्रस्तुतिकरण पर पाश्चात्य (शेक्सपीरियन) शैली का प्रभाव पड़ा, यथार्थवाद, भारतीय लोक शैलियों, नाट्धर्मी, रचनात्मक नृत्य–संयोजन, क्षेत्रीय प्रभाव इत्यादि संस्कृत रंगमंच में प्रयोग किये गये। चूंकि संस्कृत रंगमंच के प्रस्तुतिकरण का भारतीय मॉडल हमारे पास उपलब्ध नहीं है, अतः रंगकर्मियों ने उसे प्रयोग कर नई दिशा और दशा प्रदान की और आधुनिक संस्कृत रंगमंच विश्व पटल पर प्रकाश पुंज की तरह चमक रहा है तथा विश्व के समस्त नाट्य मनीषियों का आकर्षण 'नाट्यशास्त्र व संस्कृत नाट्य–परंपरा' है।

पारिभाषिक शब्द– *संस्कृत, नाट्य, रंगमंच, परंपरा, प्रयोग*

शोध–प्रविधि– *विभिन्न ग्रन्थों, पत्र–पत्रिकाओं के अध्ययन तथा मंच–प्रस्तुतियों के अवलोकन एवं व्याख्यान के आधार पर सामग्री एकत्र की गई है ।*

भारतीय नाट्य साहित्य में जब हम प्राचीन नाट्य–परम्परा को देखते हैं तो भारतीय भाषाओं में सर्वप्रथम संस्कृत भाषा या संस्कृत साहित्य में नृत्य–संगीत के अलावा नाट्य के भी दर्शन होते हैं। सर्वाधिक प्राचीन नाट्य–परम्परा संस्कृत की ही है, संस्कृत नाटक भारतीय रंगमंच, संस्कृति, सभ्यता के प्रतीक हैं। संस्कृत नाट्य की परम्परा सहस्त्रों वर्ष पुरानी है, जो प्राचीनकाल से ही समृद्ध एवं नृत्याभिनय से सम्पन्न रही है। वैदिक कालीन यज्ञों एवं अनुष्ठानों में ही इस परम्परा के बीज हमें दिखाई देते हैं। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में गीत, नृत्य, वाद्य के साथ–साथ गंधर्व, वीणावादक, सूत, शैलूष, करि, अप्सरा आदि का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में आये अनेक पुरूरवा–उर्वशी, यम–यमी, इंद्र–अदिति, विश्वामित्र–नदी, अगस्त्य–लोपामुद्रा आदि संवाद–सूक्त प्राचीन नाट्य का ही रूप है।

वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल में नाटकों का प्रयोग प्रचलित हो चुका था। बाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' में नाटक, नर्तक, गायन, कुशीलव का उल्लेख मिलता है जबकि महाभारत में सूत, मगध, नृत्य और नाटक भागवत एवं मार्कण्डेय पुराणों में नट, नर्तक, नाटक एवं संगीत का उल्लेख मिलता है।

भारतीय नाट्य परम्परा में प्रयोग का अत्यधिक महत्व है। भारतीय नाट्य–परम्परा की श्रेष्ठतम कृति 'नाट्य–शास्त्र' में प्रयोग शब्द से अभिप्राय अभिनय से है। नाटक–प्रस्तुति की दृष्टि से नाट्य, प्रयोग और अभिनय ये तीनों शब्द पर्याय कहे गये हैं।

'प्रयोगो यस्तु नाट्यादेह भवेदमिनयोहि सः'

रंगमंच पर शास्त्र का कार्य में रूपांतर ही प्रयोग है।

शास्त्रकर्म समायोगः प्रयोग इति संज्ञितः

(नाट्यशास्त्र 27,101)

अभिनव गुप्त ने 'अभिनव भारती' में प्रयोग को दर्शकों के समक्ष प्रकटीकरण कहा है–

'प्रयोगः पर्षदि प्रकटीकरणम्'

(अभिनव भारती, भाग 1, पृष्ठ 17)

किसी भी क्षेत्र में नई प्रवृत्तियों के समावेश को हम प्रयोग कह सकते हैं और प्रयोग की उस प्रवृत्ति को प्रयोगधर्मिता।

विगत कई दशकों में संस्कृत रंगमंच भारत के अर्वाचीन नाट्य आंदोलन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान हेतु उभरकर सामने आया है। संस्कृत नाटक एवं रंगमंच की

पीएच.डी. कोर्डिनेटर एवं सहायक प्राध्यापक, नाट्य एवं रंगमंच, राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

बहुत लम्बी परम्परा रही है परन्तु हमारे पास कोई आर्केलोजिल प्रमाण नहीं है कि उनका मंचन कैसे होता था। हमारा रंगमंच अनुमान का विषय है जबकि पाश्चात्य रंगमंच प्रामाणिक है। विद्वानों तथा रंगकर्मियों ने समकालीन संस्कृत नाट्य–परम्परा में विभिन्न प्रयोग किये। सन् 1786 ई. में विलियम जोन्स के द्वारा 'अभिज्ञानशांकुतलम्' का अंग्रेजी में अनुवाद एक क्रांतिकारी घटना थी। इसने विश्व स्तर पर संस्कृत नाट्य साहित्य की ख्याति को पुर्नस्थापित किया। शकुंतला के प्रकाशन के बाद सन् 1789 में कलकत्ता थियेटर में उसका मंचन किया गया।

19वीं शताब्दी के आधुनिक युग में रंगमंच पर संस्कृत नाटकों के प्रस्तुतिकरण के प्रयास शुरू हुए। प्रारंभ में कुछ पारसी कम्पनियों ने संस्कृत नाटकों के मंचन के प्रयास किये। नाट्य–लेख उर्दू या हिन्दुस्तानी में तैयार किया गया और उनके प्रदर्शन की शैली शेक्सपियर या पारसी–शैली थी। पृथ्वी थियेटर ने शकुंतला का हिन्दी रूपान्तरण किया और उसे 15 जनवरी 1944 को बम्बई ओपेरा हाउस में प्रदर्शित किया जिसमें पृथ्वीराज कपूर ने दुष्यंत का चरित्र निभाया और उसकी मंच–योजना पूर्ण रूप से यर्थाथवादी शैली पर आधारित थी।

कन्नड़ और मराठी भाषा में भी संस्कृत नाटकों के अनुवाद व रूपांतर हो रहे थे। 'संगीत शकुंतला' किरलोसकर थियेटर, पुणे में मंचित किया, जिसमें क्षेत्रीय वस्त्र, आभूषण, सज्जा का प्रयोग किया गया। दाजी भाटवाडेकर ने मराठी संगीतबद्ध 'मृच्छकटिक' का भी निर्देशन ब्रह्मसभा बॉम्बे के लिये किया। आगरा नाटक मण्डली की स्थापना मिर्जा नासिर बेग ने की थी, जिन्होंने 1899 में शंकुतला का मंचन किया।

पारसी रंगमंच पूर्णरूप से व्यावसायिक रंगमंच था। लोकरूची और मनोरंजन के कारण तुकबंदी, शेर–ओ–शायरी, गीत, गज़ल, नृत्य आदि के साथ अश्लीलता की भी भरमार हो रही थी। एक बार हिन्दी जगत के महान कवि, नाटककार, अभिनेता व नाट्य निर्देशक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'शकुंतला' नाटक का मंचन देख रहे थे, यह प्रदर्शन उन्हें सर्वधा अरूचिकर लगा, जब दुष्यंत का अभिनय करने वाला कलाकार एक निम्न स्तरीय गीत गाते हुए कमर मटकाता है तो भारतेन्दु कुपित होकर यह कहते हुए वहाँ से चले गये कि अब तो सहा नहीं जाता, ये लोग तो कालिदास की हत्या कर रहे हैं।

सन् 1958 से 1987 के बीच संस्कृत रंगमंच ने अनेक संस्कृत नाटकों को यथार्थवादी शैली, कर्नाटक संगीत, भरतनाट्यम नृत्य आदि का प्रयोग कर मंचन किए। 19 वीं शताब्दी में संस्कृत नाटकों की प्रदर्शन–शैली में पाश्चात्य नाट्य–शैली का प्रयोग कर मंचन किये जाते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं। संस्कृत शास्त्रीय नाटकों के संवाद यर्थाथवादी तरीके से बोले जाते हैं। इन नाटकों का मंचन प्रोसीनियम रंगमंच में होता है और चित्रित पर्दे के सीन पाश्चात्य पांरपरिक सीन के समान थे। लकड़ी के स्तंभ, दीवार, राज्य सिंहासन, लकड़ियों की आकृतियों के द्वारा आश्रम के वृक्षों के दृश्यों का सृजन कर अभिनय को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते। विभिन्न प्रकार के लाइट इफेक्ट के द्वारा प्रेम, युद्ध, मृत्यु आदि दृश्य को दिखलाया जाता।

आधुनिक रंगमंच पर संस्कृत नाटक के उप–पाठ को अनावृत्त करने का यह प्रथम प्रयास था। हिन्दुस्तानी थियेटर, दिल्ली की स्थापना बेगम कुदसिया जैदी ने की जो पहली व्यवसायिक मंडली थी और यह संस्कृत नाटकों को आधुनिक रूप में प्रस्तुत करती थी। उन्होंने शाकुंतला का निर्देशन किया जिसमें माइम, गीत, नृत्य को यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया। इसमें अन्य किसी मंच–व्यवस्था का प्रावधान नहीं रखा गया।

कालिदास अकादमी की स्थापना के बाद अनेक संस्कृत नाटकों के प्रदर्शन और प्रयोग हुए जो संस्कृत, हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में भी थे। प्रस्तुतियों में नाट्यशास्त्र के सिद्धातों शैली, तकनीक, संगीत, नृत्य–मुद्रायें, गीत, वस्त्रादि का प्रयोग किया जाय। भरत के 'नाट्य शास्त्र' में वर्णित विकृष्ट मध्यम रंगमंच का भी प्रयोग किया गया।

शांता गांधी ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के स्टूडियो थियेटर में मध्यम–व्यायोग का मंचन किया जिसमें गोवर्धन पंचाल ने भरतमुनि के रंगमण्डप की पुनः संरचना की, जैसेः– रंगशीर्ष, रंगपीठ, मत्तवारिणी, कुतुप, द्वार, वेदिका इत्यादि। शांता गांधी ने अपने नाट्य–मंचन में शास्त्रीय संगीत और वाद्य–यंत्र का प्रयोग किया, जैसे– वीणा, बांसुरी, पखावाज इत्यादि। इसी तरह विजया मेहता, फ्रिट्ज वेनीविट्ज ने भी अपनी प्रस्तुतियों में नाट्य–मंडप का प्रयोग किया। विजय मेहता द्वारा निर्देशित 'मुद्रारक्षस' भारती वृत्ती पर आधारित था। मृणालनी साराभाई ने 'शकुंतला' को रचनात्मक नृत्य–संयोजना में प्रस्तुत किया । उन्होंने कथकली, भरतनाट्यम नृत्य–शैली का प्रयोग किया।

आधुनिक प्रयोगों में कुछ निर्देशकों ने अपने नाटकों को प्रोसेनियम थियेटर में दिखाया जिनमें लाइटिंग, सैटिंग आदि का प्रयोग किया । जबकि कुछ निर्देशकों ने खुले मंच पर नाटक दिखाये जिसके लिए उनके मंचन के प्रकार अनुकूल थे।

संस्कृत नाटक में एक महत्वपूर्ण प्रयोग कन्नड़ के विख्यात नाटककार तथा संस्कृत नाटक एवं नाट्यशास्त्र के विद्वान आद्य रंगाचार्य ने किया। उन्होंने 'शकुंतला' का मंचन संस्कृत में लिखित मूल नाटक वाचिक तथा शुद्ध उच्चारण पर बल देते हुए विश्वसनीय अभिनय कराने के उदेद्श्य से किया, यह एक प्रयास था। ब.व. कारंत ने इसको संगीतबद्ध किया।

कावलम नारायण पणिक्कर ने केरल की लोक–शैली और कुडियाट्टम में भास के नाटकों का मंचन किया। महान कुडियाट्टम कलाकार स्व. पद्मश्री मणिमाधव चाक्यार ने कालिदास के नाटकों के मंचन की शुरूआत की। संस्कृत नाटकों को लोकप्रिय और विश्व पटल पर रखने में के. एन. पणिक्कर का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने संस्कृत नाटकों में एक नई चेतना भर दी। उन्होंने अपने द्वारा निर्देशित नाटकों में कथकली, कुडीयाट्टम और तैयम जैसी केरल की लोक–शैलियों के तत्व लिये और नाट्य प्रयोग किये। मंच के रूप में सिर्फ प्लेटफॉर्म वस्त्र, आभूषण क्षेत्रीय परिवेश को अभिव्यक्त कर रहे थे। 'मध्यम व्यायोग' (1980) 'कर्णभारम्' (1987) 'उरूभंगम' (1988), 'दूतवाक्यम्', 'उत्तररामचरित', 'स्वप्नवास्वदत्ता', 'छायाशकुंतला', 'मालविकाग्निमित्र' आदि उनके द्वारा निर्देशित प्रमुख नाटक हैं।

रतन थियाम ने मणिपुरी लोक–शैलियों का प्रयोग कर संस्कृत नाटकों में नई सर्जना की। 'विक्रर्मोवशीयम्' और 'उरूभंगम्' को उन्होंने मणिपुरी भाषा में अनुवाद कर मणिपुरी नृत्य के वास्तविक रूप में दिखाया। उन्होंने अपने नाटकों में तकनीकी प्रयोग किये और बहुत उत्कृष्ट (दृश्य) प्रभाव निर्मित किये, जैसे मंच पर हंस का तैरना, पक्षी का आना, हाथी का चलना, नाव का तैरना आदि आकर्षक रूप से प्रदर्शित किये गये। ये दृश्य–विन्यास मंच–सज्जा एवं प्रकाश–व्यवस्था से सुसज्जित किये जाते। मणिपुरी नृत्य, संगीत व वस्त्र–सज्जा के द्वारा संस्कृत नाटकों को बिल्कुल मणिपुरी रूप दे दिया गया और नाटक वास्तव में ऐसा लगता जैसे भास, कालिदास मणिपुर के ही हों।

मोहन राकेश द्वारा कालिदास कृत 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' का हिन्दी में रूपांतर किया गया जिसे प्रख्यात नाट्य निर्देशकों यथा– इब्राहिम अलकाजी, प्रसन्ना, रीता गांगुली, श्यामानंद जालान आदि ने कई बार नवीन प्रयोग कर मंचन किया। लोक–नाट्य की परम्परा ने संस्कृत नाटक के सुगठित ढांचे को और भी लचीला बनाते हुए उसे लोक–मानस के निकट ला खड़ा किया। संस्कृत नाटकों में प्राकृत और अपभ्रंश के स्थान पर क्षेत्रीय भाषाओं, बोलियों का समावेश प्रारंभ हुआ। कृष्ण मोहन सक्सेना ने नौटंकी–शैली में शकुंतला का प्रदर्शन किया, के.वी. सुब्बन्ना ने 'लोक शकुंतला' नाम से यक्षगान–शैली में प्रदर्शन किया। ओमप्रकाश शर्मा ने माच–शैली में 'हास्य चूड़ामणी' का प्रदर्शन किया। हबीव तनवीर ने अपने ठेठ छत्तीसगढ़ी कलाकारों के साथ 'मिट्टी की गाड़ी' का मंचन किया । यह प्रयोग समकालीन भारतीय रंगमंच को नई दिशा देता है।

विदेशों में भी संस्कृत नाटकों को उनकी शैली में अपनाकर अनेक प्रयोग किए गए। ऐथेंस से आई वोलॉस नाटक मण्डली ने कालिदास द्वारा रचित 'शकुंतला' का ग्रीक भाषा एवं ग्रीक–शैली में मंचन किया।

आज भी अनेक प्रयोग रंग–निर्देशकों के द्वारा निरंतर किये जा रहे हैं जो न यथार्थवादी शैली पर आधारित हैं और न ही शैक्सपीरियन शैली पर, वे समकालीन प्रयोग कर रहे हैं और अपनी नवीन शैली में संस्कृत नाटकों का प्रस्तुतिकरण कर रहे हैं। अभी कुछ ही दिनों पूर्व मोहन महर्षि द्वारा 'विद्योत्तमा' नाटक का लेखन व निर्देशन किया जिसमें विद्योत्मा और कालीदास को आधुनिक संदर्भ में जोड़ा गया, यह बहुत ही अद्भुत प्रयोग था। संस्कृत रंगमंच में प्रयोग तीन स्तरों पर हुआ–

(1) वस्तु के स्तर पर

(2) शिल्प के स्तर पर

(3) रंगशिल्प के स्तर पर

प्रयोग और परम्परा परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं किन्तु प्रयोग तो परम्परा की प्रतिक्रिया है, फिर भी वह परम्परा पर आाश्रित है, क्योंकि परम्परा विरासत की समझ देती है तो प्रयोग नवीनता, मौलिकता व रचनात्मक संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त करती है। जो कल प्रयोग था वह आज परम्परा है। और जो आज प्रयोग है, वह कल परम्परा बन जायेगी।

निष्कर्ष : अंततः मैं यह कह सकता हूँ कि संस्कृत नाटक को प्रबुद्धवर्ग का नाटक कहकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उसको बोधगम्य बनाने के लिए निरंतर नवीन प्रयोग हो और न केवल उसे अन्य भाषाओं में अनुदित किया जाय बल्कि संस्कृत भाषा को सरलतर बनाकर नाट्यमंचन किया जाय। आज हम विशुद्ध भारतीय रंगमंच की परम्परा की बात करें तो सिर्फ दो ही परम्परा भारतीय रंगमंच की हैं– एक लोक रंगमंच और दूसरी संस्कृत रंगमंच की ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. अग्रवाल, प्रतिमा (संपादन 2005), भारतीय रंगकोश (खण्ड 1), राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली
2. त्रिपाठी, राधावल्लभ, नाट्यम (अक्टूबर 2011–दिसम्बर 2012), नाट्य परिषद संस्कृत विभाग सागर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
3. पांचाल, गोवर्धन, रंग स्थापत्य ( ) राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली
4. वशिष्ट, डॉ. कमल, आधुनिक अभिनय में नाट्य शास्त्रीय आहवन म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
5. मिश्र, डॉ. ब्रजभल्लभ, भरत और उनका नाट्यशास्त्र, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली।
6. त्रिपाठी, आचार्य राधाबल्लभ, संक्षिप्त नाट्यशास्त्रम्
7. त्रिपाठी, आचार्य राधाबल्लभ, नाट्यशास्त्र विश्वकोष भाग–3, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली

आभार– प्रो. महेश चम्पकलाल, भरतगुप्त, के.एस. राजेन्द्रन, गौतम चटर्जी द्वारा संस्कृत नाट्य व नाट्यशास्त्र पर आई. .आई.ए.एस., शिमला में दिये गये व्याख्यान की टिप्पणियों का उल्लेख।

श्रुति-स्वर-विभाजन : एक विश्लेषण

डॉ. अवधेश प्रताप सिंह तोमर*

सारांश

नाद, श्रुति, स्वर एवं राग भारतीय शास्त्रीय संगीत के मूल तत्व हैं। श्रुति इसका मूल है और गायन वादन में इनकी महत्ता सर्वोपरि है। श्रुतियों का ज्ञान एवं अनुभूति गूढ़ एवं आधारभूत संगीत हेतु आवश्यक भी है और स्वर–ज्ञान इसके बिना अधूरा है।

भारतीय संगीत जगत प्राचीन परंपराओं एवं मान्यताओं की आधारशिला पर टिका है और यह आधार ही इसे श्रेष्ठता की ओर ले कर जाता है। अन्य संगीत प्रकारों एवं शौलियों से गूढ़ एवं अधिक स्थायी स्वरूप प्रदान करने में हमारे सिद्धांत एवं नियम ही उत्तरदायी है। ऐसा भी कहना उचित है कि ये सभी मत, विचार एवं अवधारणाएँ हमारे शास्त्रीय संगीत की नींव को और स्थिरता, सबलता एवं स्थायित्व को बढाते हैं परन्तु ये अपरिवर्तनीय, अकाट्य एवं चिरस्थाई हैं। इस पर संगीत–संसार की अन्य परम्पराएँ कुछ भेद, मतान्तर एवं प्रतिपक्ष प्रस्तुत करती हैं और इसके वैश्विक सर्वमान्य प्रामाणिक अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह भी लगाती हैं।

भारतीय संगीत की सूक्ष्मता अन्य किसी संगीत से अधिक है। इस कारण इसकी सटीकता वैज्ञानिक परिधि के आधीन आती है। विज्ञान एवं आधुनिक प्रयोग–विधि श्रुति एवं स्वर की विवेचना कर रहे हैं, पुनरपि हम ''चतुश्चतुश्चतुश्चैव'' को ही आधार बना श्रुति–स्वर–संबंध को परिभाषित कर रहे हैं।

बीज शब्द– *नाद, श्रुति, स्वर, संवाद (स्वर), कोमल, तीव्र*

शोध–प्रविधि– *संगीत के शास्त्रों का अध्ययन एवं विवेचन तथा वर्त्तमान में उसके उपयोगपरक चिन्तन–मनन के उपरान्त सामग्री तैयार की गई है ।*

नादानुसंधान का परिणाम श्रुति–विभाजन है। श्रुतियों की अवधारणा वृहद् से सूक्ष्म की ओर जाने की मानवीय प्रवृत्ति का परिणाम है। मूल की ओर जाना या केंद्र की ओर जाना उसे जानना, समझना और समझाना विषय को विस्तार और शोध को आधार प्रदान करता है। बारह स्वर और बाइस श्रुतियाँ निर्विवाद तथ्य हैं। श्रुति–स्वर–विभाजन पर भिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मत दिए हैं। प्रमुख मत इस प्रसिद्ध श्लोक पर आधारित है :–

''चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।
द्वै द्वैनिषाद गान्धारौ त्रिस्त्री ऋषभ धैवतौ।।''[1]

प्राचीन मत :– श्रुति–स्वर संबंध स्पष्ट समझने का प्रयास प्राचीनकाल में कम ही विद्वानों ने किया है। मतंग ने कुछ स्पष्ट करते हुए उनके काल में प्रचलित पांच मतों का उल्लेख किया है :–

''तादात्मयं च विवर्तत्वं कार्यतवं परिणामिता
अभिव्यंजकता चापि श्रुतिनां परिकथ्यते।।31।।[2]

अर्थात् तादात्म्य, विवर्तत्व, कार्यत्व, परिणामित्व एवं अभिव्यंजकता– ये पांच विकल्प श्रुति एवं स्वर के परस्पर संबंध के विषय में कहे गए हैं। इनके संबंध में आगे के श्लोकों में विस्तृत व्याख्या की गई है।[3]

प्रथम विकल्प के अनुसार, श्रुति और स्वर में व्यक्ति और जाति की भांति तादात्म्य संबंध है परंतु स्वर श्रुति पर आश्रित है, अतः मतंग मुनि ने इसे न्याय संगत नहीं माना है।

द्वितीय विकल्प में माना गया है कि स्वर श्रुतियों में विवर्तित होकर प्रतिबिम्बित होते हैं, जैसे कि मुख दर्पण में विवर्तित होता है परंतु यह संबंध भी उचित प्रतीत नहीं होता है। तृतीय विकल्प है, कार्यकरण संबंध, श्रुति कारण है और स्वर कार्य परंतु श्रुतियाँ स्वर का कारण नहीं हैं, क्योंकि स्वर की उत्पत्ति के बाद भी श्रुतियाँ पृथक स्पष्ट दिखती हैं परंतु मिट्टी से घट बनने के बाद मिट्टी अलग नहीं दिखती है, अतः उपरोक्त विकल्प भी सही नहीं। चतुर्थ विकल्प है, श्रुतियाँ ही स्वर के रूप में परिणत होती हैं, इसे मतंग ने सही ठहराया है। पंचम विकल्प के अनुसार श्रुतियों द्वारा ही समस्त स्वर अभिव्यक्त होते हैं। अंतिम दोनों विकल्प परिणामित्व और

*सहायक प्राध्यापक, संगीत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), सागर, म.प्र

अभिव्यंजकता न्यायोचित प्रतीत होते हैं। इससे यह तथ्य धूमिल होता है कि दो, तीन या चार श्रुतियाँ मिलकर संयुक्त रूप में विभिन्न स्वर बनाती हैं, न हि श्रुतियाँ अति अस्थिर, सूक्ष्म, सामान्य रूप में गेय या प्रदर्शित की जा सकती हैं।

जैसा कि कहा जाता है कि श्रुति या अस्थिर स्वर स्थायी ऐसा तब लगता है जब एक के बाद एक लगातार बढ़ते या घटते क्रम में श्रुतियों को गाने या बजाने का प्रयास किया जाता है। निश्चित दूरी के बाद की श्रुतियाँ गायी–बजाईं जाएँ तो स्वर जैसा ही स्थायित्व प्रदान होगा, जैसे :–

श्रुतियां–	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
स्वर –	सा				रे			ग		म
श्रुतियां–	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21
स्वर –				प				ध		नि

प्रयोगात्मक स्वर– रे (अति कोमल) ग (अति कोमल)

मं (अति तीव्र)

उपरोक्त प्रयोगात्मक स्वर आसानी से गाए जा सकते हैं, इसका उदाहरण है, गांधार एवं मध्यम ग्राम जो किसी समय प्रचार में थे। स्वर और श्रुति भेद सर्प और कुण्डली के समान है अर्थात् रूप–भेद है। मूल में दोनों समान हैं।[4] यदि चौथी श्रुति छण्दोवती पर षड्ज है तो षड्ज छण्दोवती है, छण्दोवती का ही रूप षड्ज है अर्थात् एक स्वर का रूप स्पष्ट करने के लिए एक श्रुति पर्याप्त है।

स्वारान्तरों को मापने की प्राचीनतम पद्धति श्रुति–व्यवस्था ही है। श्रुतियों का आकार प्रायः तीन प्रकार का माना गया है– वृहत्तर श्रुति, प्रमाण श्रुति तथा मध्यम श्रुति।[5] कुछ विद्वान श्रुतियों को समानाकार मानते हैं। विभिन्न मतों को स्पष्ट समझने के लिए बाइस श्रुतियों का विश्लेषण आवश्यक है। सुविधा के लिए सा (षड्ज) पहली श्रुति पर माना गया है।

भारतीय स्वरों की प्राप्ति स्वर–संवाद के माध्यम से हो जाती है। स्वर और श्रुतियों का अंतर भारतीय या नेचुरल स्केल/सप्तक में समान नहीं हैं परंतु समसाधृत ग्राम (टेम्पर्ड स्केल) में स्वर समान दूरी पर हैं। प्रत्येक स्वर 100&100 lsaV vkSj 25&25 lsaVZ dh nwjh ij gSA[8]

स्वरों का स्थान निश्चित है और श्रुतियां 22

	श्रुति नाम	आन्दोलन संख्या	षडज से गुणांतर मूल्य[6]	श्रुतिमान[7]	सेवर्ट[6]	सेंट	स्वरान्तर	आधुनिक मत
1	तीव्रा	**240**	**1/1**	**81/80 x**	**0**	**0**		सा
2	कुमुद्वती	**250 38/49**	**256/243**	**25/24 y**	**23**			
3	मन्दा	**256**	**16/15,18/17**	**256/243 z**	**28**		स –रे 9/8	
4	छंदोवती	**266 2/3**	**10/9,9/8**	**81/80 x**	**46**			
5	दयावती	**280 4/5**	**9/8**	**25/24 y**	**51**	**204**		रे
6	रंजनी	**284 4/9**	**32/27,5/4**	**256/243 z**	**74**		रे –ग 10६9	
7	रक्तिका	**288**	**6/5**	**81/80 x**	**79**			
8	रौद्री	**300**	**5/4**	**256/243 z**	**97**	**386**	ग–म 16/15	ग
9	क्रोधा	**316 4/81**	**81/64**	**81/80 x**	**102**			
10	वज्रिका	**320**	**4/3**	**81/80 x**	**125**	**498**		म
11	प्रसारिणी	**324**	**27/20**	**25/24 y**	**130**		म–प 9/8	
12	प्रीति	**337 1/2**	**45/32**	**256/243 z**	**148**			
13	मार्जनी	**355 5/9**	**64/45**	**81/80 x**	**153**			
14	क्षिति	**360**	**3/2**	**81/80 x**	**176**	**702**		प
15	रक्ता	**375**	**128/81**	**81/80 x**	**199**		प–घ 9/8	
16	सन्दीपनी	**384,381 3/17**	**8/5**	**81/80 x**	**204**			
17	आलापिनी	**400,405**	**5/3**	**25/24 y**	**222**		घ–नि 10/9	
18	मदन्ती	**421**	**27/16**	**256/243 z**	**227**	**906/884**		ध
19	रोहिणी	**426 2/3**	**16/9**	**81/80 x**	**250**			
20	रम्या	**432**	**9/5**	**25/24 y**	**255**			
21	उग्रा	**450**	**15/8**	**256/243 z**	**273**	**1088**	नि–सां 16/15	नि
22	क्षोभिणी	**474 2/3**	**243/128**	**81/80 x**	**278**			
		480	**2**		**301**	**1200**		सां

अवश्य हैं परंतु उनकी आपस में दूरी और स्थान विज्ञान से कम सधे हुए कानों से ज्यादा स्पष्ट होती हैं, जिस प्रकार श्रुति में अत्यंत कम अंतर हमारे कान नहीं बता पाते हैं, उसी प्रकार उनकी उपयोगिता और राग आदि में सार्थकता भी मशीन अथवा विज्ञान नहीं बता सकता। हारमोनियम के स्वर किसी विशेष राग की प्रस्तुति के समय बेसुरे से प्रतीत होते हैं। स और प को छोड दें तो सभी स्वरों के विभिन्न प्रकार विभिन्न रागों में प्रयुक्त होते हैं। किसी में गांधार एक श्रुति अधिक उतरा होता है, तो कहीं एक श्रुति अधिक चढ़ा, कहीं अति कोमल है तो कहीं सामान्य कोमल।

प्रायोगिक रूप में देखा जाय तो स, प की चार–चार श्रुतियों में से तीन–तीन किसी अन्य स्वर के नाम से गायी जाती हैं। प्राचीन मत के अनुसार अंतिम श्रुति पर स्वर–स्थापना में कम–से–कम कोमल स्वर तो उसी स्वर की श्रुति के अंतर्गत आते थे जिसका कोमल स्वर है। प्रथम स्वर पर श्रुति–स्थापना में रे का कोमल स्वर स की चार में से एक श्रुति पर स्थित होगा।

स्वर–श्रुति–विभाजन को ही देखें तो वह भी अस्पष्ट–सा लगता है। सा, प की चार श्रुतियों का औचित्य क्या है? जब स, प अचल है। एक ही श्रुति पर स्थित हैं जबकि यह सिद्ध हो चुका है कि एक स्वर एक ही श्रुति पर गाया जाता है। इस प्रकार, श्रुति के विभाजन को पुनः पारिभाषित किया जाना चाहिए। इससे बाकी कुछ नहीं बदलेगा, न हि श्रुति का स्थान, न स्वर का स्थान और न हि उनका अनुपात। स–म–प की चार, रे–ध की तीन, ग–नि की दो श्रुतियाँ, यह इसलिए भी नहीं जमता कि गांधार– जैसा स्वर कोमल के अलावा अति कोमल के स्वरूप में प्रयुक्त होता है, तो अति कोमल श्रुतिविहीन हो जाएगा। यदि सा और प की एक–एक श्रुति मान लें तो बाकी स्वरों को चार–चार श्रुतियाँ मिलेंगी अर्थात् सा और प की दो श्रुतियाँ रे–ग–म–ध–नि की चार–चार अर्थात् बीस, और कुल बाइस श्रुतियाँ हो सकती हैं।

श्रुतियां	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
स्वर –	सा				रे			ग		म	
	सा	रे	रे	रे	रे	ग	ग	ग	ग	म	म
	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
			प				ध			नि	
	म	म	प	ध	ध	ध	ध	नि	नि	नि	नि

जब सा और प की श्रुतियों का उपयोग दूसरे स्वर करते हैं तो उन्हें उन्हीं स्वरों को दे देने में क्या संकोच? सिर्फ पूर्व वर्णित श्लोक 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव' को सार्थक बनाये रखने के लिए ऐसे प्रश्नों को जन्म क्यों दिया जाय कि सा, प का अचलत्व प्रभावित हो। स यदि एक श्रुति खिसकता है तो सभी स्वर बदल जाऐंगे। सारा ग्राम भंग हो जाएगा।

निष्कर्ष :

सा–प की श्रुतियों को क्रमशः रे–ध की कहने से न तो स्वरों का अनुपात बदलेगा, न स्थान, न हि प्रभाव। सा–म–प आधार स्वर एवं संवादत्व का आधार हैं। सिर्फ इनके महत्व को दर्शाने और पुष्ट करने के लिए इन्हें चार–चार श्रुतियों का धनी बनाया गया है। सा–प से तीन–तीन श्रुतियाँ लेकर न तो इनके संवाद का प्रभाव घटेगा और न हि उपयोगिता।

उक्त सिद्धांत को मानने से सिर्फ यह होगा कि सा–प की अचलता सुदृढ़ होगी और अन्य स्वरों को प्रर्याप्त एवं समान स्थान एवं विस्तार हेतु आधार प्राप्त होगा। स और प के स्थान के आस–पास की श्रुति सिर्फ नाम मात्र के लिए इनसे जुड़ी हैं, अतः उन्हें दूसरे स्वरों को देकर स–प एक श्रुतिक एवं रे–ग–म–ध–नि चतुःश्रुतिक बनाना ही उचित और सार्थक है। आगे विद्वानों के मत सर्वोपरि हैं ही।

संदर्भ सूची :–

1. नारद, संगीत मकरंद, संगीताध्याय, श्लोक 85
2. मतंग, वृहद्देशी, श्लोक संख्या 31
3. ''विशेष स्पर्शशून्यत्वाच्छवर्णोन्द्रियग्राह्यता।
स्वर श्रुत्योस्तुतादात्मयं जाति व्यक्तयोरिवान्योः।।32।।
नराणां च मुख यद्वददर्पणे तु विवर्तितम्।
प्रतिभाति स्वरस्तद्वच्छुतिष्वेव विवर्तितः।।33।।
श्रुतीनां श्रुति कार्य त्वमिति केचिद् वदन्ति हि।
मृत्पिण्डदण्डकार्यत्वं घटस्येह यथा भवेत्।।34।।
श्रुतयःस्वररूपेण परिणमन्ति न संशयः।
परिणमेत यथा क्षीरं दधि रूपेण सर्वथा।।35।।
षड्जादयः स्वरो सप्त व्यंज्यन्ते श्रुतिभिसदा।
अंधकार स्थिता यद्वता प्रदीपेन घटादयः।।36।।
मतंग, वृहद्देशी, श्लोक संख्या 32–36
4. श्रुतयः स्यु स्वराभिन्नाश्रावणत्वेन हेतुना, अहिकुण्डलक्तत्र भेदोक्ति शास्त्रसम्मता।।22।।
अहोबल, संगीत पारिजात, श्लोक संख्या 3
5. शर्मा, डॉ. यशपाल, भारतीय संगीत में श्रुति, पृष्ठ 183
6. सिंह, प्रो. ललित किशोर, ध्वनि और संगीत, पृष्ठ 142
7. शर्मा, डॉ. यशपाल, भारतीय संगीत में श्रुति, पृष्ठ 184
8. देवांगन, तुलसीराम, भारतीय संगीत शास्त्र, पृष्ठ 143

संगीत एवं चिकित्सा–विज्ञान में सम्बन्ध : एक अवलोकन

श्रीमती दीपा नंदा*

डा. निर्मला जोशी**

सारांश

समय के परिवर्तन व मानव की रुचि के कारण अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान समय में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव एवं भौतिकता की अधिकता के कारण भी संस्कृति व संगीत में अनेक परिवर्तन हुए हैं। जीवन की भागदौड़ एवं व्यस्त दिनचर्या के कारण मनुष्य अनेक प्रकार की व्याधियों से घिर गया है। वर्तमान समय का खान–पान, रहन–सहन, तनाव, व्यस्त दिनचर्या, पारस्परिक संबंधों में विकार आदि के कारण मनुष्य समय के बंधनों में बंध गया है। यही कारण है कि अपने स्वास्थ्य व शरीर के प्रति उसका ध्यान कम होता जा रहा है। भौतिकता की चमक–दमक में मनुष्य मानसिक शांति व आनंद की प्राप्ति हेतु अनेक संसाधनों का प्रयोग करता है। योग, संगीत, चित्रकला आदि विषयों के द्वारा मानसिक शांति व अनेक रोगों का निदान भी संभव माना गया है। इन्हीं में से एक निदानात्मक प्रणाली है– संगीत चिकित्सा।

मुख्य शब्द : *संगीत, चिकित्सा, रोगोपचार, संगीत विज्ञान, राग, ताल*

शोध–प्रविधि– *संगीत–चिकित्सा–सम्बन्धी पुस्तकों तथा अनेकानेक शोध–आलेखों को आधार बनाया गया है ।*

संगीत कला को समस्त ललित कलाओं में श्रेष्ठ माना गया है। संगीत कला समस्त प्रकार के विषयों से संबंध रखती है। यदि देखा जाए तो समस्त विषय एक–दूसरे के पूरक होते हैं। ये विषय किसी–न–किसी रूप में एक–दूसरे से सामंजस्य स्थापित करते हैं। कला, विज्ञान आदि समस्त विषय अपनी–अपनी विशेषताएँ रखते हैं। इन्हीं से बने उप–विषय, जैसे– सामाजिक विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, मनोविज्ञान, चित्रकला, योग, भाषा आदि किसी–न–किसी प्रकार से जुड़े रहते हैं क्योंकि प्रत्येक विषय का विस्तार–क्षेत्र समाज से संबंधित रहता है। इसी कारण साधारण मनुष्य की आवश्यकताओं तथा रुचि–क्षेत्र के अनुसार प्रत्येक विषय का क्षेत्र निर्धारित रहता है। समाज में रहकर समाज के नियमों, चलन, व्यवहार आदि के लिए समाजशास्त्र एक–दूसरे के मनोभावों को समझने हेतु मनोविज्ञान, सामाजिक क्षमता, संबंधों के जीवन को समझने हेतु एवम् अध्ययन हेतु सामाजिक विज्ञान, देश व राज्य के नियमों व अधिकारों हेतु राजनीतिक विज्ञान आदि जैसे विषयों का निर्माण किया गया। मनुष्य के जन्म से लेकर सृष्टि के निर्माण व विकास के क्रम की जानकारी हेतु इतिहास आदि विषयों की परिकल्पना की गई। इन सभी विषयों के साथ ही मनुष्य ने मनोरंजन की आवश्यकता भी समझी। अपने जन्म से लेकर मरण तक मनुष्य किसी–न–किसी प्रकार के संगीत से घिरा रहता है। बालक के जन्म के समय लोरी, गीत–संगीत तथा विभिन्न उत्सवों में संगीत की उपस्थिति अवश्य रहती है। जीवन के अंतिम क्षणों में भी राम–नाम का संगीतमय उद्घोष उसे संसार से विदा करता है। यही कारण है कि संगीत को मानव–जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है।

संगीत–चिकित्सा का प्रावधान प्राचीन काल से ही प्रचार में है। भारत सहित सम्पूर्ण विश्व में इसके उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। भारत के इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो वैदिक काल में ही हमें संगीत चिकित्सा के चिन्ह प्राप्त होते हैं। 'आयुर्वेद चिकित्सा' पद्धति के समर्थक विद्वानों के मतानुसार भी संगीत चिकित्सा–पद्धति पर विचार किया गया प्रतीत होता है। 'शब्द कौतूहल' नामक ग्रंथ में 4000 श्लोक हैं। इसके पहले प्रकरण में रोगी के शब्द से रोग निदान, शाब्दिक औषधि, वीणा, तंत्री, पणव, शंख, भेरी, मंजीरा, वंशी आदि वाद्य भेषज से ही बनाना और उनको सुनकर रोगोपहरण, हर एक रोग के लिए पृथक वाद्यों के शब्दों में कौन, किसके लिए प्रधान है, इसका विवेचन है।' प्रस्तुत उदाहरण से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में विभिन्न वाद्य–यंत्रों की ध्वनियों को रोग–निवारण हेतु प्रयुक्त किया जाता था।

द्रविड़ के समय में सांगीतिक–चिकित्सा की विद्यमानता को 'उमेश जोशी' अनावर्णित करते हुए कहते हैं 'द्रविड़ों को संगीत के वैज्ञानिक रुप का भी पता था, तभी तो

*असिस्टेंट प्रोफेसर (संगीत), राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी (नैनीताल), उत्तराखंड

**असिस्टेंट प्रोफेसर (संगीत), राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत (अल्मोड़ा), उत्तराखंड

उन्होंने संगीत–चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयोग किया था। इससे मालूम पड़ता है कि द्रविड़ लोग संगीत की महत्ता धार्मिक सीमा तक ही नहीं समझते थे। उससे आगे भी उन्होंने संगीत की कल्पना कर ली थी तभी उन्होंने संगीत चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयोग किया और उसमें बड़ी सफलता प्राप्त कर ली थी।'[2]

प्राचीन समय से संगीत को चिकित्सकीय–प्रणाली के रूप में प्रयोग किया गया है। योग के समान ही संगीत भी एक चिकित्सकीय–प्रणाली के समान है। संगीत मनुष्य को आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रेरित करता ही है, साथ ही अन्य कार्यों को जागृत तथा विकसित भी करता है। जिस प्रकार भारतीय संगीत व संस्कृति दर्शन और धर्म से अत्यधिक प्रभावित रहा है, इसी प्रकार मधुर ध्वनि भारतीय संगीतकार प्रधान कारक माना गया है। विभिन्न 'राग' केंद्रीय तंत्रिका–प्रणाली से संबंधित अनेक रोगों के निदान में प्रभावी पाए गए हैं। संगीत–चिकित्सकों द्वारा संगीत–चिकित्सा के सिद्धांतों के अनुसार ही प्रयोग किया जाना चाहिए। व्यक्ति–विशेष पर संगीत–चिकित्सा के भिन्न भिन्न प्रभाव परिलक्षित होते हैं। अतः सही स्वर–शैली तथा संगीत के मूल तत्वों के सही प्रयोग से ही उत्तम निष्कर्ष प्राप्त हो सकते हैं। स्वरों का सही अनुपात व मात्रा में प्रयोग जैसे– लय, तीव्रता, ताल, रागों के अंश आदि का प्रयोग होना चाहिए ।

संगीत के द्वारा तनाव तो दूर होता ही है, साथ ही अन्य रोगों के उपचार में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान है। संगीत–चिकित्सा कोई नवीन अवधारणा नहीं है। हमारे पूर्वजों द्वारा इसके प्रयोग के प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं। पूर्वोत्तर काल में संगीत–चिकित्सा के प्रयोग का भी प्रमाण मिलता है। प्राचीन समय में आयुर्वेद व प्राकृतिक चिकित्सा–जैसी अवधारणाओं का उल्लेख मिलता है। धर्म के साथ संगीत को आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ जिससे इसे मानसिक शांति से जोड़कर देखा जाने लगा। समाज के प्रत्येक वर्ग में इसके प्रयोग की आवश्यकता समझी जाने लगी। संगीत के धार्मिक व आध्यात्मिक प्रभाव के कारण भी इसे पवित्र व श्रेष्ठ माना जाने लगा। दैवीय गुणों, शक्ति से प्रेरित होने के कारण ही संगीत को मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित माना गया है।

वेदों में संगीत को मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन माना गया है। वैदिक युग में ऋग्वेद और अथर्ववेद में निहित मंत्रों का प्रयोग मनुष्य की शारीरिक व्याधियों के उपचार हेतु प्रयोग किया गया है। ऋषियों तथा महर्षियों द्वारा संगीत के स्वर– तरंगों, स्वरयुक्त मंत्रोच्चारण एवं वाद्य से उत्पन्न ध्वनि के द्वारा मानव के मानसिक एवं विभिन्न प्रकार के शारीरिक रोगों का उपचार होता रहा है।

ऋग्वेद में ''गाथपति'' नामक चिकित्सक का उल्लेख मिलता है, जिसका तात्पर्य संगीत चिकित्सक से है। सामवेद में, जो भारतीय संगीत का वेद माना जाता है, रोग–निवारण के लिए राग–गायन का विधान मिलता है। अथर्ववेद में ऋक्, यजुष् और साम के ऐसे मंत्र थे, जो जीवन के व्यवहार से और स्वास्थ्य से संबंधित थे। ब्रह्मा को 'ऋत्विज' कहा जाता था जिसे चतुर्वेदों का ज्ञान था तथा इसीलिए 'चतुर्वेदी' भी कहा जाता था। ब्रह्मा रत्न विशेषज्ञ, संगीतज्ञ एवं वैद्य सभी के गुणों को धारण करता था। यज्ञों के माध्यम से शारीरिक, मानसिक व व्यावहारिक रूप से संतुलित रखने का अवधान था। मंत्र, मणि एवं औषधि, तीनों द्वारा अथर्ववेद में उपचार बताया गया है। मंत्र–संगीत (साम) रत्न–मणि तथा औषधि ने आगे चलकर आयुर्वेद का रूप धारण किया। आयुर्वेद में देह धारण की तीन धातुएँ बताई गई हैं– वात, पित्त और कफ। इनमें से किसी एक धातु में भी विकार आने से तत्संबंधी रोग शरीर में होने लगते हैं। अतः इन तीनों धातुओं का संतुलन बनाए रखने के लिए शब्द–शक्ति, मंत्र–शक्ति और गीत–शक्ति का भी प्रयोग होता रहा है। ऋषि–मुनियों द्वारा संगीत व मंत्र साधना 'ओम' द्वारा अनेक प्रकार की सिद्धियों व चमत्कारों पर अधिकार प्राप्त करना संगीत के प्रभाव का बोध कराता है।

रागों की संख्या असंख्य मानी गई है। प्रत्येक राग स्वयं में अनगिनत गुण समाए हुए है जिस कारण विशेष रोग हेतु विशेष राग को स्थापित नहीं कर सकते। संगीत–चिकित्सा शब्द सुनते ही विश्वव्यापी चिकित्सा–प्रणाली के बारे में सोचा जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में शास्त्रीय तथा उपशास्त्रीय संगीत के गायन–पक्ष का साहित्य पर्याप्त नहीं है। अपने अद्वितीय स्वरों तथा ताल की संरचना के साथ शास्त्रीय संगीत शांत और आरामदायक मनोभावना सुनिश्चित करता है। यह उत्तेजना पैदा करने वाली स्थितियों से जुड़ी संवेदना को शांत करता है। संगीत के द्वारा तथाकथित भावनात्मक असंतुलन को जीतने में एक प्रभावी भूमिका निभाता है। भारत में प्रत्येक वर्ष 13 जुलाई को संगीत 'चिकित्सा दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

भारतीय संस्कृति में अंकों का बड़ा महत्व है। जिस प्रकार इंद्रधनुष के सात रंग होते हैं। भगवान सूर्यनारायण जी के सात अश्व भी औषधि गुणों को दर्शाते हैं। सप्त तारामंडल के रूप में भी अंक विज्ञान देखने को मिलता है,उसी प्रकार संगीत के सप्त स्वरों का चिकित्सीय महत्व भी दृष्टिगोचर होता है। संगीत के साथ स्वरूप को वात, पित्त और कफ इन तीनों पर कृतियों के अनुसार विभाजित

किया गया है। जैसे– "षड्ज स्वर का स्वभाव ठंडा होने से यह गर्म स्वभाव अर्थात पित्त को शांत करता है।[3] "ऋषभ के स्वभाव के बारे में व्याख्या करते हुए डॉक्टर जैकसन पॉल ने लिखा है ऋषभ का रंग हरा और पीला मिला हुआ है। इसका स्वभाव ठंडा और खुश्क है, यह प्रसन्न करने वाला है। ऋषभ पित्त और कफ–प्रधान रोगों को दूर करता है।[4] गांधार की प्रकृति करुणाजनक मानी गई है जो प्रधान रोगों से मुक्ति करती है। मध्यम को वात और कफनाशक बताया गया है। पंचम को उत्तेजना का सूचक माना गया है, जो कफ– प्रधान रोगों का शमन करता है। धैवत का स्वभाव गर्म तथा ठंडा दोनों प्रकार का माना गया है, जो वात तथा कफ–सम्बन्धी प्रधान रोगों को दूर करता है। निषाद भी कफ–प्रधान रोगों के शमन में सहायक माना गया है। संगीत–चिकित्सा में ताल का भी महत्वपूर्ण स्थान है । रस–निष्पत्ति के आधार पर ही ताल के चयन किए जाने के उल्लेख मिलते हैं, जैसे–वात प्रकृति हेतु करुण रस–प्रधान या फिर शांत रस–प्रधान ताल का प्रयोग किया जाना चाहिए; जैसे– रूपक तथा झूमरा। पित्त को साम्यवस्था में लाने हेतु श्रृंगार रस–प्रधान ताल का प्रयोग किया जाना चाहिए; जैसे–तीन ताल, धुमाली आदि। कफ प्रकृति–प्रधान रोगों को दूर करने हेतु वीर रस–प्रधान तालों का चयन किया जाना चाहिए, जैसे रूद्र, चौताल, मततात आदि।

उपरोक्त विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि अलग–अलग रोगों की चिकित्सा के संपादन हेतु दोष की प्रकृति का ज्ञान होना अति आवश्यक है, जिससे उपयुक्त ताल एवं वाक्य प्रयोग से मनोवांछित परिणाम प्राप्त किए जा सके।

संगीत–ऋषि तुंबरू को प्रथम संगीत चिकित्सक माना जाता है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'संगीत– स्वरामृत' में लिखा है कि ऊंची और असमान ध्वनि का वात पर, गंभीर व स्थिर ध्वनि का पित्त पर तथा कोमल व मृदु ध्वनियों का कफ के गुणों पर प्रभाव पड़ता है। यदि सांगीतिक ध्वनियों द्वारा इन तीनों को संतुलित कर लिया जाय तो बीमारियों की संभावनाएँ ही खत्म हो जाएंगी। चरक ऋषि ने संगीत के औषधीय प्रभाव का वर्णन अपने ग्रंथ में किया है। 'शब्द कौतूहल' ग्रंथ में महेंद्र ऋषि ने भी वाद्यों की ध्वनि द्वारा रोग–निदान तथा श्रवण–मनन–कीर्तन से रोग निवारण की बात कही है। 'संगीत मकरंद' ग्रंथ में नारद द्वारा रागों की जातियों (औडव–षाडव–संपूर्ण) के आधार पर रोगी के मन और शरीर पर प्रभाव पड़ने का उल्लेख किया गया है। नारद ने 'संगीताध्याय' प्रकरण में विभिन्न दिशाओं में रागों के गायन–वादन का निर्धारण किया है–

''आयुधर्मयशोवृद्धिः धनधान्य फलम लभेत।
रागाभिवृद्धि सन्तानं पूर्णभगः प्रगियते।।

अर्थात् आयु, धर्म, यश–वृद्धि, संतान की अभिवृद्धि, धनधान्य, फल–लाभ इत्यादि के लिए पूर्ण रागों का गायन करना चाहिए। भारतीय सभ्यता और संस्कृति में योग और संगीत का समावेश भी प्राचीन काल से है। स्वर–साधना स्वयं एक यौगिक क्रिया है, जिसमें मन, शरीर व प्राण तीनों में शुद्धता एवं चेतना आती है। भारतीय संस्कृति में योग के साथ संगीत का गहरा रिश्ता रहा है। योग के सिद्धांत के अनुसार श्वासों से जुड़ना अंतर्मन से जुड़ना है और व्यक्ति जब अंतर्मन से जुड़ जाता है तो ऋणात्मक संवेग कम हो जाता है तथा धनात्मक संवेग स्थायी होने लगते हैं। ये धनात्मक संवेग मनोविकारों से व्यक्ति को दूर रखते हैं।

किंवदंती है कि समुद्रगुप्त जब वीणा–वादन करता था तो उसके उपवन में बसंत ऋतु का आभास होता था। संगीत द्वारा पेड़–पौधों को रोगग्रस्त होने से बचाया जा सकता है। पंडित ओम्कारनाथ ठाकुर ने भैरवी के प्रभाव को पौधों पर महसूस किया। विद्वानों के मत से चारुकेशी राग से धान का उत्पादन बढ़ता है।

भरतनाट्यम नृत्य फूलों के बढ़ने में सहायक है। अन्नामलाई विश्वविद्यालय के वनस्पति शास्त्र के विशेषज्ञ डॉक्टर टी.सी.एन सिंह ने ध्वनि तरंगों के प्रयोग द्वारा पौधों के उत्पादन क्षमता में वृद्धि की बात स्वीकार की है। संगीत के मधुर स्वर से पौधों में प्रोटोप्लाज्म कोष में उपस्थित क्लोरोप्लास्ट विचलित व गतिमान हो जाता है।

बहेलियों के बीन तथा सपेरे की बीन बजाने पर मृग व सर्प मोहित हो जाते हैं । कनाडा में संगीत सुनाकर अधिक दूध गायों से प्राप्त किया जाता है। पंडित ओम्कारनाथ ठाकुर ने नाद की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा है कि– ''मैंने नाद की मधुरता से हिंसक जानवर शेर, चीतों आदि की आँखों में कुत्ते–सी मोहब्बत पलते देखी है।''

भारतीय संगीत की प्रमुख विशिष्टता 'रागदारी संगीत' है। यहाँ राग भारतीय संगीत की आधारशिला है। इसके अंतर्निहित स्वर–लय, रस–भाव अपने विशिष्ट प्रभाव से व्यक्ति के मन– मस्तिष्क को प्रभावित करता है। स्वर तथा लय की भिन्न–भिन्न प्रक्रिया उसकी शारीरिक क्रिया, रक्तसंचार, मांसपेशियों, कंठ–ध्वनियों आदि में स्फूर्त ऊर्जा उत्पन्न करते हैं तथा व्याधियों को दूर करते हैं।

विभिन्न रोगों के लिए संगीतज्ञों एवं संगीत चिकित्सकों तथा मनोवैज्ञानिको ने कुछ राग निश्चित किए हैं जो रोगों को दूर करने में सहायक सिद्ध हुए हैं, सहायक

सिद्ध हो भी रहे हैं।

रमेश सक्सेना ने एक लेख में विभिन्न रागों द्वारा अनेक रोगों के उपचार को स्वीकारा है। इनके अनुसार 'भैरव' राग कफ–संबंधी रोगों के उपचार हेतु; मल्हार, सोरठ व जयजयंती शरीर को ऊर्जा बढ़ाने व क्रोध को दूर कर मस्तिष्क को शांति प्रदान करने हेतु; आसावरी रक्त, कफ तथा वीर्य संबंधी व्याधियों के निवारण हेतुय भैरवी सर्दी, दमा, इनफ्लुएंजा, ब्रोंकाइटिस के निवारण हेतु; गुर्जरी, बागेश्वरी तथा मालकोश राग दमा व कफ रोगों में, सारंग सरदर्द व पेट के रोगों में; भीमपलासी, मुल्तानी, पटदीप नेत्र रोगों में; दरबारी हृदय रोग व गठिया रोगों में; हिंडोल तिल्ली रोग व पंचम राग पेट के रोगों के निवारण हेतु उत्तम बताया गया है। रमेश सक्सेना द्वारा वर्णित इन औषधियों से प्रतीत होता है कि हमारे शास्त्रीय संगीत में रचित असंख्य राग ना केवल भिन्न–भिन्न बना स्थितियों का चित्रण करते हैं अपितु अपने– अपने स्वरूप से भिन्न भिन्न रोगों को समाप्त कर देते हैं। उस्ताद चांद खान साहब अपने पिता मम्मन खान साहब के विषय में कहते हैं, ''जब मेरे शरीर में कोई व्याधि उत्पन्न हो जाती थी तो किसी–किसी अवसर पर मुझे मेरी अवस्था के अनुकूल कोई राग सुनाते थे, किसी प्रकार की विकृति होती तो नाद की तान लेने का ढंग बताते जो पेट से ली जाती थी और उसके अभ्यास बताते जिसका उद्‌भव स्थान छाती है। मस्तिष्क की व्याधि नजला, जुकाम हो तो बंद तान जो मुंह बंद करके मस्तिष्क से ली जाती है।[6]

जिस प्रकार प्रत्येक रोग का संबंध किसी–न–किसी ग्रह विशेष से होता है उसी प्रकार संगीत के प्रत्येक स्वर का संबंध किसी–न–किसी ग्रह से अवश्य होता है। यदि किसी जातक को किसी ग्रह–विशेष से संबंधित रोग हो और उसे उस ग्रह से संबंधित राग, सुर तथा गीत सुनाए जायें तो जातक–विशेष जल्दी स्वस्थ हो जाता है। यहाँ इस विषय को आधार बनाकर ऐसे ही बहुत रोगों व उनसे राहत देने वाले रागों के विषय में जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

हृदय–रोग में राग दरबारी व राग सारंग से संबंधित संगीत सुनना लाभदायक है। अनिद्रा रोग हमारे जीवन में होने वाले सबसे असाधारण रोगों में से एक है। इस रोग में राग भैरवी व सोहनी सुनना लाभकारी है। एसीडीटी रोग के होने पर राग खमाज सुनने से लाभ मिलता है। शारीरिक शक्ति चिंता से संबंधित है इस रोग से पीड़ित व्यक्ति कुछ भी काम कर पाने में खुद को असमर्थ महसूस करता है। जिन लोगों की याददाश्त कम हो या कम हो रही हो उन्हें शिवरंजनी सुनने से बहुत लाभ मिलता है। खून की कमी से पीड़ित होने पर व्यक्ति का चेहरा निस्तेज व सूखा–सा रहता है, स्वभाव में भी चिड़चिड़ापन होता है। ऐसे रोग में भी पीलू से संबंधित गीत सुनने लाभदायक है। डिप्रेशन व मनोरोग में राग बिहाग व राग मधुवंती सुनना लाभदायक होता है। उच्च रक्तचाप में धीमी गति तथा निम्न रक्तचाप में तीव्र गति का गीत–संगीत लाभ देता है। शास्त्रीय रागों में राग भूपाली को विलंबित व तीव्र गति से सुना जा सकता है। अस्थमा रोग में आस्था भक्ति पर आधारित गीत–संगीत सुनने से लाभ होता है। राग मालकौंस व राग ललित से संबंधित गीत इस रोग में सुने जा सकते हैं। सिरदर्द होने पर राग भैरव सुनना लाभदायक माना गया है।

संगीत–चिकित्सा का महत्त्व सर्वव्यापी है। संगीत में समस्त सांसारिक दुखों को समाप्त करने व मानव हृदय को स्वस्थ बनाने की क्षमता निश्चय ही है । संगीत एक प्रकार का जादू है जो अनायास ही मनुष्य का ध्यान आकर्षित करता है। शब्द, छंद, रस तथा वर्णादि के द्वारा ही यह मनुष्य को प्रभावित करता है। संगीत ईश्वर द्वारा मनुष्य को प्राप्त एक ऐसी औषधि है जिससे अनेक रोगों का उपचार बड़ी सरलता से किया जा सकता है।

संगीत, मात्र मनोरंजन नहीं है। यदि उसे भावनाओं और प्रेरणाओं से सुसज्जित रखा जा सके, तो इसका परिणाम न केवल गाने–सुनने वाले के लिए वरन् सुविस्तृत वातावरण को श्रेयस्कर परिस्तिथियों से भरा पूरा बनाने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

निष्कर्ष– स्पष्ट है कि संगीत कला ऐसी कला है जो मन की गहराइयों को छूकर परमानंद की प्राप्ति कराती है। यह रोगी को निरोगी और संवेदनाशून्य को संवेदनशील बनाती है। भारतीय संगीत प्रेरणा व प्राण शक्ति को पहचानकर पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताएँ भी भारतीय दर्शन की पुष्टि करने लगी है। संगीत के माध्यम से विभिन्न रोगों के मरीजों पर जो प्रयोग किए जा रहे हैं वे अत्यंत चमत्कारिक एवं संभावनाओं से परिपूर्ण हैं।

सन्दर्भ सूची–

1. संगीत, मासिक पत्रिका, फरवरी 1962, पृष्ठ संख्या 32
2. जोशी, उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ संख्या 50
3. पॉल, डा. जैक्सन, संगीत चिकित्सा, पृष्ठ संख्या 21
4. वही
5. संगीत, मासिक पत्रिका, जुलाई 1993, पृष्ठ 4
6. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, निबंध संगीत, पृष्ठ संख्या 24

अप्रतिम कला साधक रबीन्द्रनाथ टैगोर का सांगीतिक योगदान

डॉ. आकाक्षा गुप्ता*

सारांश

जिन संगीत साधकों ने अपनी विशिष्ट संगीत–परम्परा में बंगीय गीत विधा को समृद्ध किया, उनमें काल क्रमानुसार सबसे पहले रबीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम मुख्य है। इन्होंने संगीत के क्षेत्र में असंख्य गीतों की रचना की जो अपनी विशिष्ट गायन पद्धति के कारण रबीन्द्र संगीत के नाम से निर्दिष्ट किया गया है। रबीन्द्र नाथ टैगोर अत्यन्त प्रतिभाशाली एवं बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। वे एक कवि होने के साथ–साथ ही दार्शनिक उपन्यासकार, कथा लेखक, नाटककार, अभिनेता, गीतकार तथा संगीतकार भी थे।

भारतवर्ष में न जाने कितने महान व्यक्तियों का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने समाज, राष्ट्र व विश्व को नई ऊँचाई प्रदान करने में कला साहित्य व विज्ञान के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसे ही सन् 1861 ई0 में बंगाल प्रान्त के जौड़सा में जन्मे भारत के राष्ट्रगान के रचयिता व साहित्य के क्षेत्र में प्रथम भारतीय नोबेल पुरस्कार से सम्मानित रबीन्द्रनाथ ठाकुर विश्वविख्यात हैं।

गुरु रबीन्द्रनाथ टैगोर ने सिर्फ हिन्दुस्तानी राग–रागिनियों को ही नहीं अपनाया बल्कि उनके शास्त्र पक्ष को भी ध्यान में रखा है, जिस प्रकार हिन्दुस्तानी संगीत के राग–रागिनियों के गायन–समय व विभिन्न ऋतुओं के गाने का विधान है, उसी प्रकार रबीन्द्र संगीत में भी इसका विशेष ध्यान दिया गया है। रवीन्द्र संगीत का मूलाधार ध्रुपद पद्धति है। इसमें टप्पा का भी समावेश किया गया है लेकिन तानें सरल ग्रहण की गयी है। तालों में सरलता का ध्यान रखा गया है, जिससे गीत को कोई आघात न पहुँचे। अधिकांश रचनाओं को अवसरों के अनुकूल तैयार किया गया, जैसे–प्रार्थना, विरह, हर्ष, सृष्टि, आत्मबोध, वैराग्य इत्यादि विभिन्न ऋतुओं का चित्रण। रबीन्द्रनाथ जी ने विभिन्न भाषाओं के गीतों का बंगला में अनुवाद भी किया।

कुंजी शब्द :– *कला साधक, नवीन स्वरलिपि, गीत रचना, काव्य*

शोध–प्रविधि– *विभिन्न ग्रन्थों, पुस्तकों, आलेखों का अध्ययन।*

संगीत, कला और साहित्य की ओर जब दृष्टि डाली जाती है तो निःसन्देह रबीन्द्रनाथ टैगोर जी का नाम बड़े ही आदर से लिया जाता है। रबीन्द्रनाथ जी ने संगीत, कला और साहित्य के क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान कायम की। यूँ तो इन क्षेत्रों में कई गुणीजनों ने ख्याति प्राप्त की लेकिन इन तीनों ही विधाओं में अपना महत्वपूर्ण योगदान देने वाले कम ही विद्वान हुए हैं, जिनमें से रबीन्द्रनाथ टैगोर एक है। रबीन्द्रनाथ द्वारा निर्मित रबीन्द्र संगीत अपना एक अलग व महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके प्रवर्तक स्वयं रबीन्द्रनाथ ही थे, इसलिए इस विधा का नाम रबीन्द्र संगीत पड़ा। संगीत का मूल आधार उत्तर भारतीय शास्त्रीय ही है जिसमें थोड़ा परिवर्तन करके आपने रबीन्द्र संगीत को जन्म दिया। इस संगीत का मुख्य आधार काव्य तथा स्वर का ऐसा संगम है, जो एक–दूसरे के पूरक हैं। उत्तर भारतीय संगीत, स्वर, ताल, राग, लय इत्यादि नियमों से बँधा हुआ है, और इनका पालन हमारे शास्त्रीय संगीत में आवश्यक होता है। उत्तरीय संगीत में शब्द की अपेक्षा स्वर पर विशेष जोर दिया जाता है, ठीक इसके विपरीत रबीन्द्र संगीत में स्वर के अपेक्षा काव्य पर अधिक बल दिया जाता है।

गुरु रबीन्द्रनाथ ने किसी बड़े उस्ताद का शिष्य बनकर विधिवत शास्त्रीय संगीत की शिक्षा नहीं प्राप्त की, परन्तु इस समृद्ध परिवार में संगीत का बड़ा ही मोहक वातावरण था। ये आगे चलकर विश्वविख्यात कवि साहित्यकार, दार्शनिक और भारतीय साहित्य के एक मात्र नोबेल पुरस्कार (1913) विजेता बने। बंगला संगीत के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना में नयी जान फूँकने वाले युगद्रष्टा थे। वे एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनकी दो रचनाएँ दो देशों का राष्ट्रगान बनीं। भारत का राष्ट्रगान "जन गण मन" और बांग्लादेश का राष्ट्रीय गान "आमार

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत (गायन), जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

सोनार बांग्ला" गुरुदेव की ही रचनाए हैं। उनके प्रत्येक रचनाओं की मौलिकता उत्कृष्ट कोटि की थी। साहित्य से शुरू होकर धीरे–धीरे उनकी रचनाओं की सीमा परिधि बढ़ती ही चली गई। आगे चलकर, लोक–जीवन का एक भी ऐसा प्रमुख अंग नहीं छूटा जिसे उन्होंने अपने योगदान से अलंकृत न किया हो। परिवार द्वारा प्राप्त इस सांगीतिक वातावरण को ग्रहण करते हुए रबीन्द्रनाथ जी ने संगीत जगत् को संगीत की एक नई विधा प्रदान की। उसी विधा का नाम है 'रबीन्द्र संगीत" । सन् 1825 ई0 को "रबीन्द्र संगीत" शब्द सर्वप्रथम प्रयुक्त किया गया। रबीन्द्र जी का एक महत्पूर्ण योगदान यह भी है कि उन्होंने न कवल काव्य स्वर–रचना की ओर ही विशेष ध्यान दिया बल्कि स्वर–रचना के अनुसार ताल–रचना भी की। उन्होंने अपने बनाये गीतों के खण्डों के आधार पर विशेष ताल की रचना की जैसे–झम्पक, नवताल, एकादशी, पवपंचताल इत्यादि। उन्होंने रबीन्द्र संगीत में 4 मात्रा से 32 मात्रा तक के तालों की रचना का उपयोग किया।

रबीन्द्र संगीत में यदि राग के प्रयोग की ओर दृष्टिपात किया जाए तो रबीन्द्रनाथ ने उत्तर भारतीय संगीत में लगभग 80–90 राग–रागिनियों की चर्चा की है, जिसमें भैरवी का प्रयोग सर्वाधिक हो। रबीन्द्रनाथ ने सिर्फ हिन्दुस्तानी राग–रागिनियों के गायन समय व विभिन्न ऋतुओं के गाने की परम्परा है, ठीक उसी प्रकार रबीन्द्र संगीत में भी इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रातः कालीन विषयक गानों में तोड़ी, आसावरी, भैरव, भेरवी, रामकली, कालिंगड़ा इत्यादि रागों का व्यवहार किया जाता है। संध्याकालीन विषयक गानों में राग यमन, पूर्वी आदि व रात्रि विषयक गानों में बिहाग, खमाज एवं कान्हड़ा आदि रागों का प्रयोग मिलता है।

रबीन्द्र संगीत की प्रमुख गायन–शैलियाँ :–

ध्रुपदांग :–

गुरु रबीन्द्रनाथ के संगीत में ध्रुपद अंग की गायकी का विशेष प्रभाव पड़ा। रबीन्द्र संगीत में ध्रुपद को ध्रुपदांग के रूप में जाना जाता है। इस ध्रुपदांग में स्थाई, अन्तरा, संचारी आभोग ध्रुपद की ही भाँति होते हैं। कई बंदिशों में दो भाग होते हैं। रबीन्द्रनाथ ने ध्रुपद के अधिकतर नियमों को अपनाया, परन्तु कुछ कठोर नियमों को परिवर्तित भी किया, उदाहरणतः ध्रुपद के कठिन लयकारियों का प्रयोग उन्होंने नहीं किया क्योंकि उनका यह मानना था कि यह रबीन्द्र संगीत के ध्रुपदांग में गमक व आलाप का प्रयोग कम किया। ये अधिकतर आध्यात्मिक–शान्त रस वाले भाव में ही रचे गये।

ख्यालांग :–

उत्तर भारतीय गायन–शैली ख्याल का रबीन्द्र संगीत में प्रभाव देखने को मिलता है। आपने ख्याल को भी अपनाया। ख्यालांग गीतों का चलन तथा उनकी धुन शास्त्रीय ख्याल की तरह है पर गाने की पद्धति रबीन्द्र संगीत की है शब्दों के द्वारा भाव प्रदर्शन की ख्यालांग में प्रधानता है। तानों का अल्प प्रयोग होता है। ये तानें बोल तान के रूप में गाई जाती हैं। रबीन्द्र संगीत के ख्यालांग में गीत के चार चरण होते हैं।

टप्पांगिक शैली :–

टप्पांगिक शैली उत्तरी टप्पा–शैली का ही एक रूप है। रबीन्द्रनाथ जी ने पंजाबी टप्पा के आधार पर 'पूजा' तथा 'प्रकृति' सम्बन्धी टप्पांगिक रचनाएँ की। टप्पा में भी कछ गीत तो मूल पंजाबी गीतों के बांग्ला अनुवाद है तो कुछ आपकी अपनी रचनाएँ हैं। रबीन्द्र पद्धति में टप्पा गीत अधिकतर "पूजा" पर्याय के रूप में मिलते हैं।

रबीन्द्र संगीत में अन्य देशीय शैलियों का भी बहुत प्रभाव पड़ा। जैसे–रबीन्द्रनाथ टैगोर को वैष्णव काव्य की प्रेम–भावना ने बहुत प्रभावित किया था। इनके कई गीतों में इसका प्रभाव दिखाई पड़ता है। टैगोर ने सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, सभी प्रकार के मांगलिक पदों के लिए गीत रचनाएँ की। इन्होंने रबीन्द्र संगीत के लिए न केवल काव्य रचना की, उनका स्वर–संयोजन भी किया। उनके लिए विशेष ताल–रचना बनाई और इस संगीत को जीवित रखने के लिए इसके अनुरूप नवीन स्वरलिपि–पद्धति का प्रचार किया जिसमें आपने भातखण्डे स्वरलिपि–पद्धति का भी सहारा लिया।

रबीन्द्र संगीत के गीत प्रधानतः 6 भागों में विभाजित हैं–

1. पूजा 2. स्वदेश 3. प्रेम 4. प्रकृति 5. नृत्य नाटक 6. विविध गीत

1. **पूजा के गीत :–** इन गीतों में भक्त तथा भगवान के सम्बन्धों का वर्णन मिलता है।
2. **स्वदेशी गीत :–** यह गीत देशभक्ति की भावना से ओत–प्रोत है।

3. **रबीन्द्र गीतों में प्रेम** :– इसमें मानव के आपसी प्रेम का वर्णन है। प्रेम के सभी भागों को गीतों में ढाला गया है। जैसे–विरह, निवेदन, मिलन इत्यादि।
4. **प्रकृति गीत** :– इसमें दृश्य तथा अदृश्य दोनों के रूप में सौन्दर्य का वर्णन मिलता है।
5. **नृत्य नाटक** :– कथाओं को प्रदर्शित करने के लिए रबीन्द्रनाथ ने नृत्य नाटक एवं गीत नाट्य की रचना ।
6. **विविध गीत** :– इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के संस्कारों के गीत आते हैं।[1]

जैसे 1922 ई0 में शान्ति निकेतन में कुआँ खोदते समय रबीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक गीत लिखा था– "एशो एशो हे त्रिशार जल"।

रबीन्द्रनाथ ने विभिन्न भाषाओं के गीतों का बंग्ला में अनुवाद भी किया तथा वेद, उपनिषदों के मंत्रों को भी अपना सुर दिया। आपने बंकिम चन्द्र चटर्जी द्वारा रचित 'वन्दे मातरम' गीत को स्वरों में बांधकर जनता के सामने प्रस्तुत किया। टैगोर पर बंगला लोक–संगीत, कीर्तन और बाउल संगीत का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा।

टैगोर की धुनों से अन्य संगीतकारों ने भी प्रेरणा ली जिनमें एस.डी. बर्मन, सलिल चौधरी एवं आर.डी. बर्मन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अभिमान, अमरप्रेम, आनन्द, याराना आदि अनेक फिल्मों के अनेक गीत कवि गुरु की धुनों पर आधारित हैं। रबीन्द्रनाथ ने अनेक गीत–नाट्य लिखे, जिनके नाम हैं–बाल्मीकि प्रतिभा, कालमृगया, चित्रांगदा, चंडालिका, श्यामा आदि। यही नहीं, इन्होंने विविध विषयों पर ग्रन्थ लिखा एवं अपना योगदान दिया।[2]

गुरु रबीन्द्र द्वारा लगभग 2000 गीत उनके "गीत–विज्ञान' नामक संगीत ग्रन्थ में संकलित हैं, जिसके तीन खण्ड हैं। इन गीतों की स्वरलिपि 'स्वरविज्ञान' नामक ग्रन्थ में उपलब्ध है। टैगोर घराने से अनेक शिल्प कलाकारों का भी जन्म हुआ–गदाधर चक्रवर्ती, अनन्तलाल बन्धोपाध्याय, क्षेत्रमोहन गोस्वामी, दीनबन्धु गोस्वामी, केशवलाल चक्रवर्ती इत्यादि।

रबीन्द्रनाथ ने विदेश से लौटकर जो रचनाएँ की उनकी स्वाभाविक गति से पाश्चात्य स्वर–लहरियाँ उभर उठी हैं। टैगोर कई विदेशी गीत गाया करते थे। पाश्चात्य व प्राच्य संगीत को Hormonise करने के उद्देश्य से कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। पहली पुस्तक का नाम था–'First thought of Indian Music or Twenty Indian Melodies composed for poinoforte' इसमें भूपाली, खमाज, सोरठ, यमन, गौड़ सारंग, विभास, पीलू, भैरवी, छायानट, गौरी आदि रागों की रचनायें थीं। दूसरी पुस्तक का नाम 'Lady Dufferin valse on Indian Melodies.' जिसमें झिंझोटी, यमन, पीलू, विभास इन चार रागों की रचनायें हैं। तीसरी पुस्तक 'Sonvenic De Calcutta Vase' व चौथी पुस्तक 'Grand March Indian Empire' है।

रबीन्द्रनाथ की गीत–रचना के छन्द का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने छन्द को स्पन्दन, वेग, गति या प्राण कम्पन्न कहा है–"संगीत ओ छन्द" निबन्ध में उन्होंने कहा–"काव्ये छन्देर ये काज, गाने ताले र सेई काज।" अतएव छन्द ये नियमें कविताएँ चले ताल रसेई नियमें गाने चलिव ..... कविताय चेष्टा छन्द, संगीते सेइटेइ लय" अर्थात् काव्य में जो छन्द का काम है, गाना में ताल का भी वही काम है। अतः छन्द जिस नियमानुसार कविता में चलेगा उसी नियमानुसार गाना में ताल भी चलेगी। कविता में छन्द करते हैं, वही संगीत में लय होती है।[3]

रबीन्द्र संगीत और स्वरलिपि पद्धति :–

इस स्वरलिपि पद्धति में आ की मात्रा लगाकर स्वरों की मात्रा ज्ञात करना उद्देश्य रहा। इसलिए इसे आकार मात्रिक कहा गया। स्वरलिपि–पद्धति को सर्वप्रथम द्विजेन्द्र नाथ ठाकुर ने 'तत्वबोधिनी' पत्रिका में प्रकाशित किया है। द्विजेन्द्र नाथ कृत इसी स्वरलिपि पद्धति को और परिमार्जित तथा परिवर्तित करते हुए उनके भाई ज्योतिरेन्द्र नाथ ने आकारमात्रिक स्वरलिपि प्रस्तुत किया। आकार मात्रिक स्वरलिपि पद्धति में स्वरलिपि के चिन्ह इस प्रकार थे–

मन्द्र सप्तकक –	सा् रा् गा् मा्।
	स्वरों के नीचे हलन्त का चिन्ह
मध्य सप्तकक –	सारागामा
	कोई चिन्ह नहीं
तार सप्तक –	सोरोगोमो
	स्वरों के ऊपर हलन्त का चिन्ह

इसके अतिरिक्त विकृत स्वर, मात्रा का चिन्ह, ताली, खाली, मींड, ताल–चिन्ह आदि के लिए अलग–अलग विशेष प्रकार के चिन्हों का प्रयोग किया है। वर्तमान बंगाल

में आकार मात्रिक स्वरलिपि पद्धति ही सर्वाधिक लोकप्रिय संगीत लिपि है।

रबीन्द्र संगीत में ताल :–

रबीन्द्र नाथ टैगोर ने अपनी सांगीतिक रचनाओं के लिए कुछ नवीन तालों का निर्माण किया–

1. झम्पक ताल 2. अर्थक्षाप ताल 3. षष्ठी ताल 4. नव ताल 5. रूपकड़ा ताल 6. एकादंशी ताल 7. नवपंच ताल

रबीन्द्र नाटकों में संगीत का प्रयोग :–

रबीन्द्रनाथ टैगोर ने अनेक नाटकों की रचना की। अनेक नाटकों को कई विषयों के अन्तर्गत रखा। आपके द्वारा रचित कुछ नाटक जिनमें उनसे सम्बन्धित गीतों का प्रयोग हुआ है उनके नाम निम्नलिखित हैं– रूद्रचन्द्र, प्रकृतिरपरिशोध, नलिनी, विसर्जन, शारदोतनव, डॉकघर, मुक्तधारा, फाल्गुनी, शापमोचन, चण्डालिका, श्रावण गाथा इत्यादि। रवीन्द्रनाथ के काव्यगत, नाट्यगत रचनाओं में संगीत की भूमिका सर्वोपरि थी।

रबीन्द्र संगीत के प्रमुख वाद्य–यंत्र :–

रबीन्द्र संगीत के गीतों में सर्वाधिक तत् वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। इसराज की संगत के साथ रबीन्द्र संगीत–गायन की परिपाटी सर्वप्रमुख है। ध्रुपदांग के रबीन्द्र संगीत के साथ पखावज संगत–वाद्य के रूप में प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त बंगाल के लोकसंगीत पर आधारित भटियाली, बाउल, कीर्तन आदि अंग के रबीन्द्र संगीत में खोल वाद्य को संगत के रूप में बजाया जाता है। घन वाद्यों में मदिरा और नूपुर भी प्रयुक्त होते हैं।

एक शिक्षाविद होने के कारण रबीन्द्रनाथ ने इस बात पर सदा बल दिया कि हमारी सर्वप्रमुख आवश्यकता शिक्षा है। इसकी उपयोगिता मानव के व्यक्तिगत जीवन के प्रति ही नहीं, राष्ट्र के उत्थान के लिए भी बहुत जरूरी है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि सरस्वती पुत्र गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर एक ऐसे महासागर थे, जिनमें श्रेष्ठ गुरु, दार्शनिक, लेखक, नाट्यकार, उपन्यासकार, चित्रकार, रचनाकार एवं संगीत–जैसी बहुरंगी विशेषताएँ समाहित थीं, ऐसा व्यक्तित्व था महामानव टैगोर का। रबीन्द्रनाथ टैगोर ने संगीत में अनेक ऐसे अमूल्य योगदान दिए हैं जिन्हें शब्दों में सम्पूर्ण रूप से बाँधना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैंने अपनी एक छोटी–सी कोशिश मात्र की है। गुरु रबीन्द्रनाथ के इस अमूल्य योगदान से हम सभी सदैव लाभान्वित होते रहेंगे।

सन्दर्भ सूची :–

1. शर्मा, प्रो. स्वतत्र, भारतीय संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण, पृ.सं. 295–297
2. मिश्र, पं. विजय शंकर (संकलन एवं सम्पादन), भारतीय संगीत के नये आयाम, पृ.सं. 234
3. दास, दीपाली, रबीन्द्र संगीत की रूपरेखा, पृ.सं. 228–229

उपन्यास 'चित्रलेखा' की शास्त्रीय संगीत ऑपेरा प्रस्तुति : द्वारा 'पद्मभूषण' विदुषी डॉ. शन्नो खुराना

डॉ. प्रियंका*

सार

संगीत के क्षेत्र में साहित्य के जिस रूप को स्वीकारा गया, वह पद्य रूप ही रहा। स्वभाविक है कि पद्य ही स्वीकार स्वरूप है क्योंकि वह छंदबद्ध रचना है जो संगीत की लयात्मकता से पूर्ण हाती है। अपवादस्वरूप कुछ साहित्यिक गद्य–रचनाएँ भी संगीत–मनीषियों द्वारा सुर, ताल एवं रागों में बद्ध मिलती हैं जिनमें से एक अति महत्वपूर्ण रचना भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास 'चित्रलेखा' है जिसे 'पद्मभूषण' विदुषी डॉ. शन्नो खुराना जी ने शास्त्रीय रागों में बद्ध कर ऑपेरा प्रस्तुति की। इस गद्य–कृति में कई स्थलों पर संगीत का परिचय मिलता है। वर्मा जी ने उपन्यास की केन्द्रित नायिका चित्रलेखा को संगीत एवं नृत्य में कुल रूप में चित्रित किया है। हिन्दी सिनेमा में कृति को केन्द्र में रखते हुए दो फिल्मों का निर्माण किया गया किन्तु एक शास्त्रीय कलाकार द्वारा कृति को गद्य से पद्य रूप में ढलवाकर अन्य कलाकारों के साथ कठिन अभ्यास कर मंच पर ऑपेरा रूप में प्रस्तुत करना एक प्रशंसनीय कार्य तो है ही, साथ ही लेखक, पाठक, दर्शक एवं संगीत–मनीषियों द्वारा विदुषी के साहित्य के प्रति भी अप्रतिम लगाव का अनुभव किया जा सकता है।

मुख्य शब्द : *बागीश्वरी, अभिव्यंजना, ओडिसी नृत्य, पखावज, कहरवा ताल, पंचम तान।*

'चित्रलेखा' (1934) भगवतीचरण वर्मा द्वारा रचित लोकप्रिय उपन्यास है। इसके कथानक के केन्द्र में पाप और पुण्य के नैतिक प्रश्न को चित्रित किया गया है। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद होने के पश्चात् केवल हिन्दी में नवें दशक तक 'चित्रलेखा' की ढाई लाख से अधिक प्रतियाँ बिक चुकी थीं। वर्ष 1964 में केदारनाथ शर्मा के निर्देशन में 'चित्रलेखा' पर केन्द्रित फिल्म का निर्माण हुआ, जिसका नाम 'चित्रलेखा' ही था। इसमें अशोक कुमार, मीना कुमारी एवं प्रदीप कुमार जैसे कलाकारों ने मुख्य भूमिका निभाई थी। इससे पूर्व केदारनाथ शर्मा के निर्देशन में 'चित्रलेखा' पर 1941 में एक फिल्म बनी थी। हिन्दी सिनेमा में चित्रलेखा पर बनी इन दोनों ही फिल्मों में संगीत की अहम् भूमिका थी, जिसके बारे में पंकज राग अपनी पुस्तक 'धुनों की यात्रा' में लिखते हैं– ''झंडे खाँ की सबसे प्रसिद्ध फिल्म रही केदार शर्मा निर्देशित भगवतीचरण वर्मा के मशहूर उपन्यास पर बनी 'चित्रलेखा' (1941) । 'चित्रलेखा' न सिर्फ मेहताब के स्नान दृश्य के कारण चर्चित हुई बल्कि गायिका–नायिका रामदुलारी के गाए सुंदर गीतों ने भी इसकी लोकप्रियता में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस फिल्म के संगीत की विशेषता यह थी कि झंडे खाँ ने विरोध के बावजूद फिल्म के सभी गीत राग भैरवी पर आधारित किए थे तथा भैरवी के द्वारा ही विविध रसों को उभारा था। रामदुलारी के स्वर में जलतरंग के अद्भुत प्रयोग के साथ 'तुम जाओ बड़े भगवान बने' सरगम आधारित लम्बी तानों के साथ कम्पोज किया। 'नीलकमल मुस्काए', 'भँवरा झूठ कसमें खाए' और 'सैंया साँवरे भये बावरे' जैसे गीतों की कम्पोज़ीशन बेहद आकर्षक थी और कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ये गीत उन दिनों खूब चले थे। यह भी गौर करने लायक है कि 'तुम जाओ बड़े भगवान बने' के मूल भाव को लेकर ही दुबारा बनी 'चित्रलेखा' (1964) में साहिर ने 'संसार से भागे फिरते हो' की रचना की थी।''[1]

'चित्रलेखा' उपन्यास पर केन्द्रित दोनों ही फिल्मों में संगीत अग्रिम रहा। इस गद्य कृति में स्वयं भगवतीचरण वर्मा जी ने कई स्थलों पर संगीत का परिचय दिया है। उपन्यास की नायिका चित्रलेखा स्वयं संगीत एवं नृत्य में कुशल थी। कई ऐसे भी प्रसंग उपन्यास में मिलते हैं जहाँ राग एवं ताल का उल्लेख किया गया है, जैसे–''वीणा लेकर बीजगुप्त ने बागीश्वरी की आलाप भरी–चारों ओर निस्तब्धता छा गई।''[2] एक अन्य स्थान पर ''मृत्युंजय ने वीणा में कल्याण के स्वर भरे और यशोधरा ने गाना आरम्भ किया।''[3] इसी प्रकार, ताल का भी परिचय स्वयं लेखक

*सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, माउंट कार्मल कॉलेज (स्वायत्त), बैंगलोर

द्वारा मूल कृति में दिया गया है। ''मृदंग का ताल मानों मेघों का गम्भीर गर्जन था।''[4] वहीं एक अन्य स्थान पर ''उसी समय सारंगी में ईमन की गत बजी और चित्रलेखा बिजली की भाँति सम पर चमक उठी।''[5] वहीं लेखक एक स्थान पर संगीत की एक नई परिभाषा–सी देते नज़र आते हैं जहाँ कोयल की पंचम तान से वे मानव–कंठ को अधिक सार्थक बताते हैं– ''यह कलरव–गायन, इसमें संयत भाषा न होने के कारण, उस भावहीन संगीत की भाँति है, जिसमें स्वरों का उतार–चढ़ाव नहीं है। इस संगीत में सप्त स्वर एक साथ गूँज उठते हैं। इस कलरव–गायन से कहीं अच्छा मानव कंठ का संगीत होता है। और कोयल में केवल पंचम है, जिसको अधिक देर तक सुनने से चित्त ऊब उठता है।''[6] स्वयं वर्मा जी ने उपन्यास में कई स्थानों पर संगीत के प्रसंग छेड़कर यह सिद्ध कर दिया है कि 'चित्रलेखा' का मूल भाव संगीतमय ही है। पाप–पुण्य के सार को समझाने के लिए संगीत से बेहतर शायद ही कोई माध्यम हो क्योंकि एक भरी सभा में संगीत की पेशगी नुमाइश और ईश्वर के दरबार में भक्ति कही जाती है अर्थात् एक ही तत्त्व को देखने के नज़रिए स्थान और परिस्थिति के वश होकर भिन्न हो जाते हैं, जिसे फिर पाप या नुमाइश कहा जाए या पुण्य और भक्ति।

संगीत सृष्टि का आधार एवं संचालक है। संगीत के अभाव में सृष्टि की कल्पना करना ही व्यर्थ है। संपूर्ण सृष्टि की दृश्य–अदृश्य वस्तुओं में संगीत किसी–न–किसी रूप (आहत–अनाहद) में विद्यमान है। शब्दों का भी अपना संगीत होता है। शब्द–संगीत के बारे में यह तो विद्वत् जनों द्वारा कहा ही जाता रहा कि अष्टछापी कवियों के काव्य में संगीत की ध्वनि गुंजायमान है, लेकिन पद्य के अतिरिक्त गद्य में भी संगीत की मौजूदगी हो सकती है, इस विषय पर मत प्राप्त नहीं होते हैं। कुछ विरले ही कलाकार होते हैं जो अपने अनुभव, ज्ञान एवं कल्पना के आधार पर गद्य में संगीत–ध्वनि को महसूस कर लेते हैं। 'पद्मभूषण' विदुषी डॉ. शन्नो खुराना ने 'चित्रलेखा' में संगीत को महसूस कर उसे ऑपेरा के रंग में रंग दिया। विदुषी हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की श्रेष्ठ गायिका हैं। आपका ख्याल, तराना, ठुमरी, दादरा, टप्पा, चैती, कजरी, भजन आदि शास्त्रीय संगीत की शैलियों पर विशेष अधिकार है। इन्होंने संगीत की प्रारंभिक शिक्षा ग्वालियर घराने के गुरु रघुनाथ राव मुसलगाँवकर जी से प्राप्त की, तत्पश्चात् रामपुर–सहसवान घराने के उस्ताद मुश्ताक हुसैन खान की गंडा–बंध शिष्या बनीं। उस्ताद इश्तियाक हुसैन खान से भी शिक्षा प्राप्त की। आगरा घराने के डॉ. रतनजनकर जी से भी इन्हें अप्रचलित राग सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। संगीत के इस मुकाम तक पहुँचने का श्रेय विदुषी महान संगीतज्ञ ठाकुर जयदेव सिंह जी को देती हैं– उन्होंने ही राह दिखाई। इन्होंने 1969 में 'गीतिका' संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य महिलाओं को संगीत का एक मंच प्रदान करना था, जहाँ वे अपनी प्रतिभा को प्रकट कर सकें। इनके सराहनीय कार्यों के लिए उन्हें वर्ष 1991 में 'पद्मश्री' एवं वर्ष 2006 में 'पद्मभूषण', 2002 में 'संगीत नाटक अकादमी' के 'रत्न सदस्य' एवं पंजाब संगीत नाटक अकादमी सम्मान से भी सम्मानित किया जा चुका है।

'चित्रलेखा' हिन्दी साहित्य की एक बहुमूल्य कृति है, उसमें जीवन का सार निहित है। दर्शन को जिस सहज और प्रवाहयुक्त भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है, उसकी गति से पाठक स्वयं को जुदा नहीं कर पाता लेकिन गद्य को संगीतमय रूप प्रदान कर देना भी अचरज की बात है। विदुषी शन्नो खुराना जी हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की श्रेष्ठ गायिका हैं, लेकिन वे यह बात भली–भांति जानती हैं कि शास्त्रीय संगीत की राग–रागनियाँ संगीत से अनभिज्ञ व्यक्ति की समझ से परे है। साधारण व्यक्ति में ऑपेरा के माध्यम से शास्त्रीय संगीत की समझ विकसित करना उनका सराहनीय कार्य है। वे स्वयं चित्रलेखा के बारे में कहती हैं कि–'मुझे लगा कि कहानी जबर्दस्त है। उसमें नृत्य, गायन है। आम जन हमारा शास्त्रीय संगीत नहीं जानते और न हि पसंद करते हैं । इसलिए मैंने सोचा कि शास्त्रीय संगीत को लोगों के सामने लाया जाय। ऑपेरा में करने का मतलब यही था कि लोग शास्त्रीय संगीत को समझें। वे शास्त्रीय संगीत से डरे नहीं। अंततः उन्हें शास्त्रीय संगीत बहुत पसंद आया।'

'चित्रलेखा' गद्यमय कृति है। इसे पद्य रूप में ढालने की विदुषी ने जब कोशिश जारी की तब नेशनल बुक ट्रस्ट की एक महिला ने बालस्वरूप राही जी का नाम दिया था। बालस्वरूप राही जी ने चित्रलेखा उपन्यास को गीतों के रूप में लिखा। उनके द्वारा लिखी पुस्तक का नाम 'राग–विराग' है। 'राग–विराग' में रचित गीतों को विदुषी शन्नो खुराना जी ने अस्सी रागों में कंपोज किया। नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के डायरेक्टर बी.वी. कारंथ ने इसका निर्देशन किया। ऑरकेस्ट्रा के लिए व्योमकेश बैनर्जी थे, जिन्होंने पन्नालाल घोष से सीखा था। वेश–भूषा का कार्यभार पायल खुराना एवं प्रेमा कारंथ ने संभाला। रंगमंच का नेतृत्व बी.एम. शाह ने किया। इसमें जिन कलाकारों ने

किरदार निभाए–शन्नो खुराना (चित्रलेखा), लालचंद (कुमारगिरी), अरुण बाली (बीजगुप्त), पायल खुराना (यशोदरा), वी.के. कपूर (चाणक्य), रामावतार (महाप्रभु रत्नाम्बर), रेखा, रूपा संतराम एवं किरण गुप्ता (चित्रलेखा की सखियाँ)। सभी कलाकारों के कड़े परिश्रम के लगभग एक वर्ष के पश्चात् चित्रलेखा ऑपेरा के रूप में दिल्ली के रफी मार्ग स्थित फाइन आर्ट्स ऑडिटोरियम, (9 अप्रैल 1972) में 10 दिनों तक मंचित हुआ। भगवतीचरण वर्मा स्वयं ओपेरा देखने आए थे। विदुषी शन्नो खुराना उस पल की यादों को महसूस करते हुए कहती हैं कि–'उनकी आँखों में आँसू थे। उन्होंने कहा जब 'मैंने उपन्यास लिखा तो मैं केवल 28 वर्ष का था। मुझे नहीं मालूम लोगों को कैसा लगा, पढ़नेवालों को लगा इसमें दर्शन है। 'चित्रलेखा' को केन्द्र में रखकर दो फिल्मों का निर्माण किया गया, जो शन्नो जी ने किरदार निभाया है वो सबसे अच्छा है।' यह मेरे लिए बहुत बड़ी बात थी। भगवान ने मुझे हिम्मत दी जो मैं यह कार्य कर पाई।' किसी भी साहित्कार के लिए यह अचरज और प्रशंसा की बात होगी कि उसकी गद्यमय कृति को संगीत–रंग में रंगकर पेश कर दिया जाय। भगवतीचरण वर्मा हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ हस्ताक्षर हैं। उनकी कृतियाँ साहित्य की धरोहर हैं लेकिन साहित्य जगत में बहुत कम ही व्यक्ति इस बात से परिचित होंगे कि चित्रलेखा पर ऑपेरा भी किया जा चुका है, उसका एक पद्य रूप भी है जो संगीत–जगत में अपनी विशेष पहचान रखता है। 23–24 सितम्बर, 1972 में देहरादून के शिल्पी नारी कॉलेज, 21 अक्टूबर, 1972 में नागपुर के धनवटे रंगमांजा एवं 3–4 मार्च, 1973 में कलकत्ता के संगीत कला मन्दिर में 'चित्रलेखा' की ऑपेरा प्रस्तुति विदुषी द्वारा प्रस्तुत की गईं।

ऑपेरा में वार्तालाप के स्थान पर गायन द्वारा भावों का प्रकटीकरण होता है। ऑपेरा चित्रलेखा में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया कि राग संवादों के भाव के अनुसार ही प्रयुक्त हों। संगीत में काकु–भेद की शक्ति से ही भावों की अभिव्यंजना में स्निग्धता, माधुर्य तथा रस की सृष्टि होती है। ऑपेरा में एक–दूसरे संवाद के बीच राग, ताल, वाद्य का ताल–मेल अनूठा था, सब एक–दूसरे में समाहित था, कुछ भी भिन्न न था। ऑपेरा में माइक का प्रयोग नहीं होता था, खुली आवाज़ में गायन करना पड़ता था। इसमें झिंझोटी, दरबारी, हिंडोल जैसे रागों का प्रयोग किया गया एवं ऑपेरा में जितने भी राग हैं उनमें नौ रसों का संचार है। यदि ताल की बात करें तो छंद के अनुरूप अलग–अलग तालों का प्रयोग है, जैसे– कहरवा, रूपक, दादरा, मत्तताल आदि। वाद्यों का भी ध्यान रखा गया कि कहाँ पखावज़, तबला, सरोद, सितार, बाँसुरी, शहनाई का प्रयोग होगा और कहाँ 7–8 वाद्य एक साथ बजेंगे। इसमें हारमोनियम का प्रयोग नहीं किया गया, ऑर्गन का प्रयोग किया गया। वार्तालाप के पीछे से किस प्रकार के संगीत की ध्वनि उचित होगी इसके लिए व्योमकेश जी ने पीछे तरह–तरह की वस्तुएँ ध्वनि देने के लिए रखी थीं। वहीं विदुषी ने दरबार के दृश्य में वीणा बजाते हुए नृत्य में ओडिसी नृत्य के हाव–भाव बिखेरे थे अर्थात् रंगमंच की सज्जा, पात्रों के अभिनय, गीत–संगीत के माध्यम से मौर्य–काल को सजीव रूप में चित्रित किया गया। विदुषी शन्नो खुराना के शब्दों में–'एक–एक वार्त्तालाप मैंने रागों में पिरोया है जिसमें आवाजों के काकु–भेद का पूरा रंग है। और यह अभिव्यक्त करते हैं हर एक चरित्र को..... दुःख–सुख, चीख–पुकार, क्रोध–संवेदना इत्यादि। तकरीबन अस्सी रागों को सामने लाने की कोशिश की है। मकसद मेरा यही रहा है और आगे भी यही रहेगा कि किस प्रकार भारतीय शास्त्रीय संगीत को आम आदमी तक पहुँचा सकूँ। कुछ तालों की बात करूं, जैसे– मत्तताल, रूपक, झपताल, एकताल, दीपचंदी, तीव्रा इत्यादि। यह बहुत गहरा विषय है, इस संगीत के समुद्र में जितनी गहरी डुबकी लगाओ उतने ही मोती मुट्ठी में आ जाते हैं।'

ऑपेरा चित्रलेखा के कुछ दृश्यों के माध्यम से गीत–संगीत एवं राग–ताल के बारे में जानने का प्रयास करेंगे।

चित्र–1

चित्र –1 में चित्रलेखा अपनी सखियों से घिरी बैठी हुई हैं। इसमें सखियों के अलग–अलग भाव हैं जिन्हें राग जौनपुरी एवं कहरवा ताल के माध्यम से दर्शाया गया है, इस गीत के बोल इस प्रकार हैं–

'एक पहेली बता सहेली
अन्य सखियाँ कहती हैं : बूझ सहेली
एक अन्य सहेली कहती है : दीपशिखा–सी जो रहती है
चंचल और अधीर
आस टिकाए गाल हाथ पर बैठी क्यों गंभीर।'

चित्र–2

चित्र–2 बीजगुप्त के साथ है जिसमें चित्रलेखा और बीजगुप्त के मध्य वार्तालाप का चित्रण है। यह राग यमन पर आधारित है किन्तु यह वार्तालाप है इसलिए इसमें किसी ताल का प्रयोग नहीं किया गया। इसके बोल इस प्रकार हैं–

'चित्रलेखा : पत्र जब मेरा पढ़ा था
कैसा लगा था?
बीजगुप्त : प्यार तो बस प्यार है, चित्रलेखे।'

चित्र – 3

चित्र – 3 कुमारगिरी के साथ है। वह चित्रलेखा की चुनरी खींच लेता है, अपने उद्‌गारों को छुपाने में असमर्थ है, बेताव हो जाता है। इस दृश्य में चित्रित गीत के बोल हैं–

'कुमारगिरी : हृदय चाहता है साकार.....
इतनी प्यास की सागर
अंजरी में भरकर पी लूँ.....
देवी चित्रलेखा, आओ आज
तुम्हें बाँहों में भर लूँ।
चित्रलेखा : दीक्षा दो, दीक्षा दो, दीक्षा दो
मैंने त्याग दिया जग सारा
आई हूँ शरण आपकी।।'

गीत का यह भाग राग हिंडोल एवं ताल आड़ा चौताल (14 मात्रा) पर आधारित है। गीत में आगे की पंक्तियाँ–

'कुमारगिरी उत्तर देते हैं : ये असंभव है असंभव चित्रलेखा
साधना पथ है विषम तम
चाहता है घोर संयम।'

गीत की इन पंक्तियों को राग सहाना एवं ताल दादरा में गाया गया है।

चित्रों के भाव को जिन गीतों के माध्यम से प्रकट किया गया है उन गीतों की जानकारी विदुषी द्वारा प्राप्त हुई है।

निष्कर्षतः विदुषी के लिए यह आसान कार्य नहीं था लेकिन जिस कड़े परिश्रम के पश्चात् 'चित्रलेखा' का ऑपेरा रूप में प्रस्तुतिकरण हुआ, वह बहुत ही सुखद अनुभूति थी। ज़ाहिर–सी बात है कि यह कार्य विदुषी के लिए चुनौतीपूर्ण थी। वे इस संबंध में कहती हैं कि– 'जब कलाकार में क्रिएटिविटी आती है तभी उसके अंदर की प्रतिभा बाहर आती है। जिस इंसान में क्रिएटिविटी आती है उसे कोई रोक नहीं सकता।' और जब कठिन डगर को पार कर कलाकार अपनी कला को प्रदर्शित करता है तो उसकी कला उस खुदा की इबादत के रंग में रंगी मिलती है।

संदर्भ सूची :

1. राग, पंकज, धुनों की यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण–2017, पृ.–22
2. वर्मा, भगवतीचरण, चित्रलेखा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, छब्बीसवाँ संस्करण, पृ.–83
3. वही, पृ.–84
4. वही, पृ.–45
5. वही, पृ.–84
6. वही, पृ.–135

परिशिष्ट :

शोध–पत्र में उल्लिखित तथ्य, गीत, राग एवं ताल की जानकरी 'पद्मभूषण' विदुषी डॉ. शन्नो खुराना' जी से प्राप्त हुई है।

सांगीतिक प्रचार–प्रसार का स्वर्णिम युग

डा. मोनिका दीक्षित*

सारांश

भारतीय संगीत की दृष्टि से अकबर का काल 'स्वर्ण युग' कहा जाता है क्यूँकि इस युग में भारतीय संगीत की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ सुचारू ढंग से विकसित हुईं और संगीत का प्रसार देश के कोने–कोने में हुआ। हिंदु संगीतज्ञ संगीत की साधना तपस्वी की भाँति करते थे। वे संगीत को मोक्ष का साधन समझते थे।

अकबर स्वयं एक कलाप्रिय व्यक्ति था और वह नक्कारा भी अच्छा बजाता था। उसने अपने सहधर्मियों को ही दरबार में संगीतज्ञों के पदों पर नियुक्त किया। 'आइने–अकबरी' के अनुसार अकबर के दरबार में छत्तीस संगीतज्ञ थे, जिनमें प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन, बैजू बावरा, रामदास और तानतरंग के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। अकबर के दरबार के महान रत्न तानसेन ने भारतीय संगीत की अभिवृद्धि के लिये प्रबल प्रयास किये। अकबर के समय में ही स्वामी हरिदास वृंदावन के एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ महात्मा हुए। तानसेन इनके ही शिष्य थे। अकबर के काल में सूरदास के पद जन–साधारण में बहुत प्रचलित हुए। इन पदों में सूर ने भारतीय संगीत की उच्चस्तरीयता एवं पवित्रता को अक्षुण्ण रखा। मुगलकाल में भारतीय संगीत के पावन सौंदर्य की रक्षा इन पदों से हुई। अकबर के काल में भारतीय नारियों में नारीत्व की उच्च गरिमा जागृत करने का श्रेय मीरा को ही है। इसी काल में हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रतीक संत कबीरदास हुए, जिन्होंने अपनी साखियों द्वारा भारतीय संगीत की अतुलनीय सेवा की।

मुख्य–शब्द– *स्वर्णयुग, अकबर, कवि, संगीत, संगीतज्ञ*

अनुसंधान पद्धति– *प्रस्तुत शोध–पत्र लेखन के लिये ऐतिहासिक, विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक शोध–पद्धति का प्रयोग किया गया है।*

अध्ययन क्षेत्र– प्रस्तुत शोध–पत्र में मुगल–काल में संगीत की स्थिति का आंकलन करते हुए संगीत के प्रचार–प्रसार का सबसे उत्तम समय अकबर के काल की जानकारी एकत्र करने का प्रयास किया गया है। मुस्लिम–काल में संगीत को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था परंतु अकबर के काल से इसका अच्छा प्रचार–प्रसार देखा गया। इस तथ्य की संपूर्ण जानकारी एकत्र करने के लिये विभिन्न पुस्तकालयों एवं वाचनालयों में सर्वेक्षण कर तथ्यों को एकत्रित कर वहां उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर उक्त जानकारी को शोध–लेख के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य विमर्श– भारतीय संगीत की दृष्टि से अकबर का काल स्वर्ण–युग कहा जाता है। इस युग में भारतीय संगीत खूब विकसित हुआ और संगीत का प्रचार–प्रसार भी हुआ। वह संगीत के माध्यम से धर्म प्रचार करना श्रेयस्कर समझता था।

अकबर के काल में हिन्दुस्तानी संगीत में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। भारत में मुसलमान विजेताओं के आने के साथ ही हिंदुओं की सभी कलाओं का पतन आरम्भ हुआ, किंतु अकबर के समान उदार सम्राट कोई दूसरा नहीं हुआ। अकबर स्वयं एक कलाप्रिय व्यक्ति था और नक्कारा अच्छा बजाता था। उसने अपने सहधर्मियों को ही दरबार में संगीतज्ञों के पदों पर नियुक्त किया। 'आइने–अकबरी' के अनुसार अकबर के दरबार में छत्तीस संगीतज्ञ थे, जिनमें प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन, बैजू बावरा, रामदास और तानतरंग के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

अकबर का संरक्षक बैरम खाँ रामदास की गजलों की शैली पर ही मुग्ध था। इसके अतिरिक्त कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, स्वामी हरिदास और वल्लभ संप्रदाय के अनेक संगीतज्ञ शिरोमणि भक्त भी इस काल में हुए जिन्होंने अपनी गौरवशाली कृतियों से इस काल को समृद्धशाली बनाया।

अकबरी दरबार के कलाकारों में गायक, बीनकार, सरोदवादक, नै (एक सुषिर वाद्य) वादक, करना वादक, गिचक वादक, तम्बूरा वादक, कानून वादक जैसे अनेक कलाकार थे। एक अरबी विद्वान् के शब्दों में "अकबर के काल में भारतीय संगीत अपने पूर्ण यौवन पर था। संगीतज्ञों

*असिस्टेंट प्रोफेसर (संगीत विभाग), किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा।

की समाज में अत्यधिक प्रतिष्ठा थी। हिंदू संगीतज्ञ संगीत की साधना तपस्वी की भाँति करते थे। वे संगीत को मोक्ष का साधन समझते थे।

तानसेन – अकबर के दरबार के महान रत्न तानसेन ने भारतीय संगीत की अभिवृद्धि के लिये प्रबल प्रयास किए। गायन–कला के नैपुण्य के कारण ही उन्हें इस काल में 'संगीत सम्राट' के रूप में मान्यता उपलब्ध हुई। अबुलफ़जल ने 'आइने–अकबरी' में वर्णित किया है कि "तानसेन के प्रथम गायन पर ही सम्राट अकबर ने उन्हें दो लाख का पुरस्कार दिया था।

'सहस रस' के अनुसार "तानसेन का कंठ स्वर अत्यंत पुष्ट और पाटदार था।" अतः अकबर द्वारा 'कण्ठाभरण वाणी विलास' की उपाधि से उन्हें विभूषित किया गया था।

तानसेन की प्रमुख रचना ध्रुपद है जो लिखित रूप में "राग कल्पद्रुम" एवं अन्य संगीत–ग्रंथों में हमें मिलती है। उनके लगभग 300 ध्रुपद ग्रंथों में उपलब्ध हैं तथा अलिखित ध्रुपद पुराने घरानों से सम्बद्ध कलावंतों को कंठस्थ हैं। तानसेन द्वारा रचित तीन ग्रंथ हैं–

(1) संगीत सार (2) रागमाला

(3) गणेश स्तोत्र

कहते हैं, "तानसेन के समान कलाविद् इस धरती पर न तो पहले हुआ और न इस समय है और न हि भविष्य में होने की संभावना है। तानसेन ने कुछ रागों का आविष्कार भी किया जिनमें दरबारी कान्हड़ा, मियाँ की सारंग, मियाँ की मल्हार, मियाँ की तोड़ी, मेघ आदि राग. विशेषतः प्रसिद्ध हैं।

संत संगीतज्ञ स्वामी हरिदास – अकबर के समय में ही स्वामी हरिदास वृंदावन के एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ महात्मा हुए। तानसेन इनके ही शिष्य थे। स्वामी जी के शिष्यों द्वारा संगीत का प्रचार अनेक नगरों में भली प्रकार हुआ। कहा जाता है कि स्वामी हरिदास जी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। इनकी प्रसिद्धि ध्रुपद–गायक के रूप में है।

सूरदास– इसी काल में 'सूर सागर' के रचयिता एवं 'गीति–काव्य' के प्रसिद्ध प्रकांड विद्वान् महात्मा सूरदास हुए। अकबर के काल में सूरदास के पद जन–साधारण में बहुत प्रचलित हुए। इन पदों में सूर ने भारतीय संगीत की उच्चस्तरीयता एवं पवित्रता को अक्षुण्ण रखा। मुगलकाल में भारतीय संगीत के पावन सौंदर्य की रक्षा इन पदों से हुई। सर्वप्रथम उन्होंने संगीत का सम्बंध मानव–जीवन से जोड़ा, अतः मानव–जीवन संगीत से ओत–प्रोत हो गया। शान्त, श्रृंगार, वात्सल्य, करूण, भक्ति, वीर आदि रसों में उन्होंने अपने पदों की रचना की और विशेषतः त्रिताल, दादरा, कहरवा, चौताल, रूपक तालों का उपयोग किया है।

मीराबाई– मध्यकालीन उच्चकोटि की नारी संगीतज्ञों में मीराबाई गायन एवं नृत्य में निपुण थीं। बाल्यावस्था से ही वह कृष्ण भक्त थीं। झाँझ, करताल व एकतारा सहित नृत्य के साथ गायन करते हुए, संगीत के तीनों अंगों से संयुक्त सफल साधना करने का पूर्णरूपेण श्रेय मीराबाई को उपलब्ध है। उनकी गायन–शैली में शास्त्रीय संगीत की राग–रागिनियों तथा लोक–गीतों की धुनों का अद्‌भुत सम्मिश्रण हुआ है। अकबर के काल में भारतीय नारियों में नारीत्व की उच्च गरिमा जागृत करने का श्रेय मीरा को ही है। इस प्रकार, सुप्रसिद्ध कवयित्रि और भजन–गायिका मीराबाई द्वारा भक्तिपूर्ण काव्य के प्रचार से संगीत कला भगवत्–प्राप्ति का साधन बनकर इस काल में उच्चतम शिखर पर पहुँची।

कबीर– इसी काल में हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रतीक संत कबीरदास हुए, जिन्होंने अपनी साखियों द्वारा भारतीय संगीत की अतुलनीय सेवा की। उनके पदों में हमें चौबीस रागों का वर्णन मिलता है। उन्होंने संगीत के माध्यम से सामाजिक सुधार किया। मुस्लिम काल में मानव–जीवन पर जो असंयम एवं उच्छृंखलता का मोटा आवरण पड़ा था, वह कबीर के गीतों से विनष्ट हो गया।

तुलसीदास– 'रामचरितमानस' के यशस्वी लेखक गोस्वामी तुलसीदास जितने सफल भक्त कवि थे उतने ही सफल संगीतज्ञ भी। अकबर के काल में उन्होंने जन–साधारण को एक नवीन दृष्टि दी। "रामचरितमानस" में उन्होंने संगीत का पुट देकर राम के निर्मल एवं पावन चरित्र की विभिन्न धाराओं को घर–घर पहुँचाया। इनकी दृष्टि में संगीत और काव्य का रूप एक ही था। तुलसीदास जी के रामायण को हम मानव–जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों का सुंदरतम चित्राधार कह सकते हैं। आज रामायण अनेक देशों की भाषाओं में अनुवादित हो चुका है।

मानसिंह तोमर– अकबर के ही समय में राजा मानसिंह तोमर हुए, जिन्होंने भारतीय संगीत की आत्मा को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिये ध्रुपद–शैली को जन्म दिया। इन

दिनों सूफी अपने विचारों को संगीत और लोकभाषा के माध्यम से जन–साधारण में पहुँचा रहे थे। शिक्षित व्यक्तियों के लिये वे गज़लों का सहारा लेते थे। मानसिंह ने इनका जवाब देने के लिए 'विष्णुपद' जो कव्वाली का जवाब था और श्रृंगार– प्रधान गज़लों का प्रत्युत्तर ध्रुपद था, इनकी रचना लोकभाषा और ब्रजभाषा में कराई। विष्णुपद धार्मिक क्षेत्रों तथा मंदिरों में प्रचलित हुए और ध्रुपद ने जन–साधारण व बादशाहों के मन को भी मोहा। ध्रुपद–शैली की शिक्षा के लिये मानसिंह तोमर ने ग्वालियर में एक संगीत विद्यालय भी स्थापित किया।

सर डब्ल्यू ऑसले ने अपने "Anecdotes of Indian Music" में कहा है – "संगीत पर ग्वालियर के राजा मानसिंह की आज्ञा से संकलित किए ग्रंथ "मानकुतूहल" का अनुवाद फकीरउल्ला द्वारा 'राग–दर्पण' नाम से हुआ।"

बैजू–बावरा– बैजू–बावरा मानसिंह तोमर के काल में हुए थे। उन्होंने रानी मृगनयनी को गायन का प्रशिक्षण दिया था। वह वीणा–वादन के कुशल ज्ञाता और कई लोकप्रिय धुनों के गीतों के रचयिता भी थे। प्रचलित 'धमार' ताल का निर्माण इसी काल में बैजू जी के द्वारा हुआ। इनके द्वारा संकलित ग्रंथ 'मान कुतूहल' को आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

जहाँगीर– अकबर के उपरांत अक्टूबर 1605 ई. में जहाँगीर गद्दी पर बैठे। अपने पिता के समान ये भी कला और साहित्य के अनुरागी थे परंतु इस काल में श्रृंगारिक साहित्य का अधिक निर्माण हुआ। जहाँगीर के दरबार में एक–से–एक सुंदर नर्तकियाँ और गायक रहते थे। अकबर के काल में उत्तर भारतीय संगीत में ईरानी और अरबी संगीत के मिश्रण से जो एक अद्‌भुत निखार और लावण्य प्रतिभाषित होने लगा था वह अब पूर्ण रूप से विकसित हो गया था। बादशाह और उनकी बेगम नूरजहाँ दोनों मिलकर दरबारी संगीत को सुनते थे। इस काल में भारतीय संगीत के मौलिक सिद्धांतों की पूरी तरह से रक्षा की गई।

जहाँगीर के दरबार में जहाँगीरदाद, बिलास खाँ, छत्तर खाँ, खुर्रमदाद, परवेज दाद, माखू, हमजा आदि अनेक संगीतज्ञ थे। जहाँगीर ने सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञों को सात दलों में बाँट दिया था। इनमें से प्रत्येक दल सप्ताह में एक दिन उसका मनोरंजन करता था और अपनी योग्यतानुसार पुरस्कार प्राप्त करता था।

जहाँगीर ने गज़ल गायक शौकी को 'आनंद खाँ' की उपाधि दी थी। इस काल में सोमनाथ कृत संगीत ग्रंथ "राग विबोध" और भारतीय संगीत पद्धति पर १६२५ ई. में पं. दामोदर कृत "संगीत–दर्पण" नामक ग्रंथ उपलब्ध होता है।

शाहजहाँ– जहाँगीर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शाहजहाँ गद्दी पर बैठा। वह भी संगीत–प्रेमी था। वह संगीत–सम्मेलन और संगीत–प्रतियोगिताएँ कराया करता था, जिसमें उत्तम कलाकारों को पुरस्कार दिया जाता था। दरबारी संगीत में हिंदू कलाकारों की उपेक्षा न हो, इसका ध्यान रखा जाता था।

विद्वानों का मत है कि शाहजहाँ स्वयं भी एक कुशल गायक था और सितार–वादन में प्रवीण था। उसने अपनी पत्नी मुमताज के सौदर्य की प्रशंसा में अनेक गीतों की रचना की थी।

दिरंग खाँ, लाल खाँ, रामदास, महाट्टेर, जगन्नाथ आदि उत्तम संगीतज्ञ इनके दरबार में थे। बादशाह ने एक बार दिरंग खाँ और जगन्नाथ को उनके भार के बराबर चाँदी तोलकर पुरस्कार के रूप में दी थी। जगन्नाथ को 'कविराज' और दिरंग खाँ व लाल खाँ को 'गुण–समुद्र' की उपाधि से विभूषित किया गया था।

इस काल में ध्रुपद–शैली का अत्यधिक प्रचार–प्रसार था। गुजरात और महाराष्ट्र के नृत्य इस समय विकसित होते रहे जो मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से पूर्णतः अछूते थे। शाहजहाँ को धार्मिक संगीत से प्रेम था। उसने 'सहसरस' नामक ग्रंथ में बख्शू के एक हजार ध्रुपदों का संग्रह कराया था।

निष्कर्ष– इस काल में संगीत की बागडोर ब्राह्मणों के हाथ में थी। संगीतज्ञों का इतना अधिक आदर सत्कार होने के उपरांत भी इस काल में संगीत उच्च वर्ग से निकलकर निम्न, अशिक्षित जातियों में हस्तांतरित हो चुका था। एक ऐसा वर्ग संगीतज्ञों का बन गया था जो मात्र संगीत से ही अपना जीवन–यापन करता था और संगीत को पूर्णतया व्यवसाय के रूप में देखता था। गायन और नृत्य पूर्ण रूप से गणिकाओं के हाथों में चला गया था। इसका कारण यह था कि मुस्लिम काल में संगीत–प्रशिक्षण के लिये किसी जाति–विशेष पर प्रतिबंध नहीं रह गया था। अकबर के काल में जो संगीतज्ञों का नैतिक स्तर निर्मित हुआ, इस काल में उसका ह्रास हुआ क्यूँकि कलाकार कला की साधना से हटकर विलासी हो गये थे।

इसके विपरीत हिंदू संगीतज्ञ भारतीय संगीत के प्राचीन रूप को सुरक्षित रखने का प्रयत्न कर रहे थे, पर यह संभव नहीं था क्योंकि मंदिरों में भी संगीत पवित्र न रह सका। वहाँ नृत्य और गायन निरंतर चलता रहता था। भजनों का स्थान गज़लों ने ले लिया था। शाहजहाँ ने कभी भी भारतीय संगीत की पवित्रता एवं निर्मलता पर ध्यान नहीं दिया। मुस्लिम संगीत का एकमात्र उद्देश्य मानव को मनोरंजन प्रदान करना था और इसी उद्देश्य के अनुकूल भारतीय संगीत भी ढ़लता गया।

"कत्थक नृत्य" मुगलकाल से बहुत पूर्व से ही भारत में "कृष्ण नृत्य" के नाम से प्रचलित था किंतु मुस्लिम युग में यह नृत्य भी परिवर्तित हो गया। जिस प्रकार शास्त्रीय गायन की ध्रुपद–शैली 'ख्याल' में तथा मृदंग वाद्य 'तबला' में परिवर्तित हो गये, उसी प्रकार "कत्थक नृत्य" का विकास श्रृंगारिक, उत्तेजक और आकर्षक रूप में हुआ। "कत्थक नृत्य" इस काल में सबसे अधिक प्रचलित रहा।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, डॉ. स्वतंत्र, पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत, पृष्ठ सं. 240–250
2. शर्मा, प्रो. भगवत शरण, हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र (तृतीय भाग), पृष्ठ सं. 139–145
3. वसंत, संगीत विशारद, पृष्ठ सं. 22–25
4. जोशी, उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ सं. 248–281
5. श्रीवास्तव, गिरीश चंद्र, ताल परिचय (द्वितीय भाग), पृष्ठ सं.110
6. बृहस्पति, आचार्य एवं श्रीमती सुमित्रा कुमारी, संगीत चिंतामणि, पृष्ठ सं. 50
7. ठाकुर, राजा सर एस. एम., Hindu Music from Various authors, PP. 167
8. दास, बृजरत्न, जहाँगीरनामा, (हिंदु अनुवाद), पृ.सं. 396

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

हरियाणा की लोक गायन–शैलियाँ

योगेश कुमार*

शोध–पत्र सार

परम्परागत रूप से हरियाणा में विविध लोक संगीत विधाओं का गायन होता रहा है, जैसे– नसीरा, सोहनी, बहरे–तबील आदि। हरियाणा के लोकगायकों एवं लोक संगीत का अनुशीलन करने पर पता चलता है कि कुछ ऐसी लोक संगीत विधाएँ उस काल में प्रचलित थीं जो आज विलुप्ति की कगार पर हैं, जैसे– ख्याल, जकड़ी, अरिल, चित्रमुकुट, जंगम, सांगीत, तबील, लावणी, रंगत मोहनी, सांगीत जकड़ी, सोहनी, आल्हा, कमाली, चौपाई, दोहा, चौताल। उन लोक गायन–शैलियों का ही इस शोध–पत्र में परिशीलन किया गया है।

सूचक शब्द : *संगीत, लोक गीत, लोक संगीत, गायन, शैली, परम्परा*

शोध–माध्यम : *अब हरियाणा के विभिन्न लोक कवियों द्वारा लोक संगीत में प्रयुक्त संगीत–शैलियों का क्रमवार विश्लेषण किया जा रहा है । चूंकि इन संगीत शैलियों का उल्लेख कहीं और मिलना कठिन है, इसलिए हरियाणा के लोक–संगीतज्ञों की काव्य–रचना व प्राप्त संगीत–धुनों के आधार पर विश्लेषण का प्रयास किया जा रहा है।*

शोध–प्रपत्र

लोक संगीत विधा के दृष्टिकोण से हरियाणा का लोक संगीत समृद्ध कहा जाएगा। परम्परागत रूप से हरियाणा में विविध लोक संगीत–विधाओं का गायन होता रहा है, जैसे– नसीरा, सोहनी, बहर–ए–तबील आदि। हरियाणा के विभिन्न लोक कवियों के लोक संगीत का परिशीलन करने पर पता चलता है कि कुछ ऐसी लोक–संगीत विधाएँ उस काल में प्रचलित थीं जो आज विलुप्ति की कगार पर हैं। ये सभी विधाएँ (गायन शैलियाँ) इस प्रकार हैं– ख्याल, जकड़ी, अरिल, चित्रमुकट, जंगम, सांगीत, तबील, लावणी, रंगत मोहनी, सांगीत जकड़ी, सोहनी, आल्हा, कमाली, चौपाई, दोहा, चौताल आदि। विभिन्न सन्दर्भ स्थलों पर कवियों ने संगीत की उपर्युक्त शैलियों का प्रयोग अपनी गायन–कला में किया है । पं. महोर सिंह, पं. निहालचन्द, पं. लखमीचन्द, पं. हरदेवा स्वामी, बाजे भगत आदि कवियों ने गायन–शैलियों का प्रयोग अपनी गायन–विधा में किया है।

हरियाणा की संगीत–शैली का विश्लेषण करने से पहले यदि संगीत व लोक संगीत पर दृष्टिपात कर लिया जाय तो अधिक बेहतर होगा। इस पूर्व संस्कार से उनके लोक संगीत का अवबोधन करने में सुगमता होगी।

संगीत शब्द 'सम्+गीत' के योग से बना है। उपसर्ग 'सम्' का अर्थ है– सम्यक् प्रकार से। अतः सम्यक् रूप से गाया हुआ– 'सम्यक प्रकारेण गीयते' इति संगीतं उच्यते।

ध्यातव्य है कि भारतीय संगीत आदि काल से दो धाराओं में चला आ रहा है। एक धारा को 'मार्गी संगीत' तथा दूसरी को 'देसी संगीत' कहा गया है। मार्गी संगीत–नियमबद्ध, सुनियोजित ढंग से जिस संगीत का प्रयोग होता है उसे 'मार्गी संगीत' कहा गया है। 'देसी संगीत–लोक रंजन के लिए जिस संगीत का प्रयोग होता है उसे 'देसी संगीत' की संज्ञा दी जाती है। लोक संगीत में मानव अपने भावों को प्रकट करने में स्वच्छन्द होता है। वह समाज या शास्त्र द्वारा बनाए गए कृत्रिम बन्धनों को स्वीकार नहीं करता। लोक संगीत का परम उद्देश्य लोक रंजन होता है। श्रोता को आनन्द में निमज्जित करना ही एकमात्र लक्ष्य होता है।[1]

(1) ख़्याल

'ख़्याल' शब्द लोक में प्रचलित खयाल का ही विकृत रूप है। 'ख़्याल' का शाब्दिक अर्थ है– विचार करना या मन में विचारों का जन्म लेना। हरियाणा में यह लोक संगीत की एक मधुर गायकी है। इसका प्रयोग किसी कहानी के प्रसंग, पृष्ठभूमि के अवतरण या संदर्भ की स्थापना के लिए किया जाता था। संगीत में ख़्याल–गायन के समय स्वर–साधना ही हमारे लिए ईश्वर की साधना होती है। मूलतः ख़्याल शास्त्रीय संगीत का अंग है परन्तु उसे लोक संगीत में पं. महोर सिंह ने अपने ही अंदाज़ में प्रयोग किया

*सहायक प्रवक्ता, संगीत एवं नृत्य विभाग, चौधरी रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जींद (हरियाणा)

है। इस नवीन प्रयोग को हम हरियाणवी ख़्याल गायन कह सकते हैं। उदाहरण– ख़्याल

धर्म का राम तपै था नल का, थी सर्वसुखी प्रजा सारी।
रोगी सोगी दुखी दरिद्री, नजर ना आवैं नर–नारी।
काल बबाल अकाल मृत्यु ना, हरि भक्ति सबको प्यारी।
वैर भाव ना किसी जीव का जीव जीव का हितकारी।।
उदार और दातार नार नर पर हितैषी पर उपकारी।
राजा राज प्रजा चैन महोर सिंह ऐसे राज पै उपकारी।।

(2) चित्रमुकुट

हरियाणा लोक संगीत में 'चित्रमुकुट' की गायकी एक विशेष प्रकार की मनमोहक शैली रही है। पं. महाबीर प्रसाद से प्राप्त जानकारी के अनुसार शम्भुदास ने अपने 'रुक्मणी मंगल' काव्य में इसको राग चित्रमुकुट लिखा है। सम्भवतया यह उस काल में प्रचलित राग था जो समय के साथ लुप्त हो गया। कवि शम्भुदास जी ने 'चित्रमुकुट' गायकी का जो स्वरूप दर्शाया है, उसका उदाहरण इस प्रकार है–

टेक – सो चंदा तूँ ले जा संदेश हमारो रे
चन्द्रमुखी पूणिहारो रे।
कली – दुख बरणत बीती निशा, परगट भए दिनेश
शम्भुदास रुक्मण कहै, अब तो यही संदेश
हाल तो से काल कहूँगी सारो रे।

यह पद्यांश 'चित्रमुकुट' गायकी के साथ–साथ उसके मूल साहित्यिक स्वरूप को भी दर्शाता है। अतः संगीत–पक्ष के आधार पर चित्रमुकुट गायन–शैली को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है – (1) इसकी टेक में दो पंक्ति होती है। (2) दूसरी छोटी पंक्ति से टेक उठाई जाती है। (3) यह 'खड़े बोल' की गायन शैली है। (4) कली में तीन पंक्ति या काफिया होते हैं। (5) यह कहरवा ताल में गाई जाती है तथा मध्य लय का प्रयोग होता है। ये सब चित्रमुकुट शैली की विशेषताएँ होती हैं।[2]

(3) अरिल

'अरिल' एक लोक गायकी रही है। 'अरिल' की मर्मस्पर्शी धुन तथा शब्द–चयन पर मनन करने से प्रतीत होता है कि इस गायकी का प्रयोग विवाह–प्रसंग या करूण रस–प्रधान काव्य की अभिव्यक्ति के लिए होता है। अतः उपलब्ध काव्य–रचना एवं संगीतबद्ध धुन के आधार पर इसे लोक संगीत–शैली ही कहना उचित होगा। अतः यथास्थिति 'अरिल' को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है– (1) 'अरिल' एक मधुर लोक गायकी है। (2) इस गायकी का प्रयोग अधिकांशतः करूण रस–प्रधान काव्यों में होता है। (3) इसमें 20 से 25 मात्राओं के दो चरण होते हैं अर्थात् दो पंक्तियाँ तुकान्त होती हैं। (4) बहर के अन्त में लघु (।) और गुरु (S) मात्राओं का क्रमशः प्रयोग होता है। पं. महोर सिंह द्वारा प्रयुक्त शब्द 'अरिल' ही है जिसमें दो चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में 21 से 25 मात्राएँ हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है–

सुण कै वचन माता का कलेजा कट रह्या।
ज़िगर मैं उठत हिलूर हिरदा फट रह्या।।
छाती कै लिये लाय शीश पुचकारती।
आँसू पोंछ लिया डाट कै वचन उचारती।
मत रोवो मेरे लाल यही लिखी भाग मैं।
और तरहं नहीं सबर सबर बैराग मैं।।
जीवोगे तो फिर मिल लेंगे आय कै।।
महोर सिंह महादुख टरै नहीं गाय कै।।[3]

(4) जकड़ी

हरियाणा गायन में 'जकड़ी' एक विशेष प्रकार की गायन–शैली है। जकड़ी गायन–शैली कथा–किस्सा रचना के लम्बे–लम्बे प्रसंगों की शीघ्र अभिव्यक्ति करने के लिए प्रयोग की जाती थी। फिर चाहे संदर्भ करूण/शृंगार रस का हो या वीर रस–प्रधान हो। पं. महोर सिंह द्वारा गाई गई जकड़ी देखिए–

टेक – हुआ युद्ध आरम्भ, सूरमा लड़ने लगे।
कली – मोहरे मिले वीरता जागी।1।
बाब धार जब बरसण लागी।2।
खैंचत धनुष प्रत्यंचा भड़कैं।3।
छुटैं बाण बिजली सी कड़कैं।4।
जिमी शलभा के दल चढ़ आए।5।
ऐसे ही बाण गगन मैं छाए।6।
भिड़ैं बाण झड़ैं अगन पतंगे।7।
दोनों दल हो गए बिरंगे।8।
टूटैं रथ घोड़े मर जाते।9।
कटज्याँ धनुष नहीं घबराते।10।
फिर भी मारो मार करैं हैं।12।
कोई मूर्च्छित कोई घायल हो गया।13।
कोई वीर प्राणों को खो गया।14।
हो रह्या जंग ढंग कत्लामी।15।
खपे सूरमा नामी ग्रामी।16।
कटकट कर भुज शीश धरण मैं पड़ने लगे।17।

अतः महोर सिंह के काव्यगत संगीत का अवबोधन करने के पश्चात् जकड़ी के निम्नांकित लक्षण दिए जा

सकते हैं– (1) कथा के लम्बे–लम्बे प्रसंगों की शीघ्र अभिव्यक्ति करने के लिए जकड़ी का प्रयोग होता है। (2) इसकी अभिव्यक्ति शीघ्र होने के कारण ही यह कहरवा ताल में द्रुत लय में गाई जाती है। (3) इसकी कली में क्रमशः दो–दो काफियों की टक्कर होती है। (4) एक कली का अन्त विषम संख्या के काफिए से होता है। (5) जकड़ी के कली के एक चरण में लगभग 16–17 मात्राएँ होती हैं।[4]

(5) कमाली

सभी गायन–शैलियों में 'कमाली' एक विशिष्ट गायन–शैली होती है। 'कमाली' लोक संगीत की बहुत ही आकर्षक गायन–शैली है। कमाली रूपक तथा कहरवा ताल में गाई जाती है। कहरवा ताल में गाते समय कविता को खड़े बोल की मानकर गाया जाता है। कविता में जहाँ वियोग की अवस्था, करूण, वात्सल्य आदि रसों की प्रधानता हो तथा कली दो ही पंक्तियों की हो, वहाँ रूपक ताल में गाया जाता है। कविता में जहाँ युद्ध, विवाह प्रसंग, वीर रस, शृंगार रस, संयोग अवस्था का प्रकरण हो तथा कली चार पंक्तियों वाली काफ़िया तुकांत हो वहाँ कमाली को कहरवा ताल में खड़े बोल की मानकर गाना चाहिए। ऐसा करने से गायकी में रंजकता आती है। कमाली का एक उदाहरण–

टेक – नरनार कहैं स्वामी म्हारी हद मैं शिव की बारात आ रही।

कली – खड़े नगर बाहर नर नारी,
कबसी बावैंगे त्रिपुरारि,
हिमपुरी महोर सिंह सारी,
बन्ना देखण कूँ लुभा रही,

प्रस्तुत उदारहण पं. महोर सिंह जी द्वारा कमाली गायकी की एक रचना से लिया गया है।[5]

(6) सांगीत जकड़ी

हरियाणवी लोक गायन–शैली में सांगीत जकड़ी एक आकर्षक गायन–शैली है। सांगीत जकड़ी के साहित्यिक तथा संगीत प्रारूप को देखने पर प्रतीत होता है कि इस शैली का प्रयोग किसी विशेष प्रसंग की सशक्त अभिव्यक्ति करने के लिए किया जाता है। इसका गायन लम्बे–लम्बे प्रसंगों की प्रखर अभिव्यक्ति करने के लिए किया जाता है। साथ ही, शब्दों के उच्चारण में बलाघात भी सामान्य कुछ अधिक लगता है। सांगीत जकड़ी का गायन कहरवा ताल की मध्य–द्रुत लय में किया जाता है। पं. महोर सिंह द्वारा गाई गई एक रचना से संगीत जकड़ी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

टेक – एजी पवनसुत रथ से कूद पड़े
गदा घुमा किलकार मार कुरूदल मैं जाय बड़े।

कली – कालरूप धार बली घोर जंग खेलण लगे
हाथियों पर हाथी ठा उठाय कै बगेलण लगे
सुण्ड पग मरोड़ तोड़ पीछे को धकेलण लगे
महाबाहु भीम नै गज सेना करी तेरातीन
मर्‌या अधमर्‌या कोई सुण्ड पुच्छ पगहीन
दस हजार गज हणे रक्त से राची जमीन
रण इस कदर लड़े।[6]

(7) झूलणा

हरियाणवी गायन–शैली में 'झूलणा' एक लोकरंजक तथा आकर्षक गायकी है। परम्परागत रूप से कुछ किंवदंतियाँ 'झूलणा' पर समाज में प्रचलित हैं। लोक संगीत समाज में प्रचलित किंवदंति है कि 'झूलणा' की निष्पत्ति 'झूल' शब्द से हुई है। किवदंतियों में से एक पक्ष का कथन है कि देहाती महिलाएँ झूला झूलती हुई देवी माँ के गीत गाती थीं जिनकी धुन एक जैसी ही रहती थी। धीरे–धीरे वे गीत मनोरम होने के कारण समाज में प्रतिष्ठित होते गए और अपभ्रंश होकर उस धुन का नाम झूलणा पड़ गया। प्रचलित किवंदतियों में दूसरे पक्ष का कथन है कि इस गायन–शैली का नाम 'झूलणा' इसलिए पड़ा क्योंकि इसको गाते समय सुरों का उतार–चढ़ाव झूला झूलते समय झूले की भाँति होता है। जिस प्रकार झूला झूलने वाले को झूले के उतार–चढ़ाव में आनंद का आभास होता है, उसी प्रकार की रसानुभूति गायक को सुरों के आरोह–अवरोह के क्रम में होती है। अतः सामान्यतः यही ज्ञात होता है कि 'झूलणा' का प्रयोग देवी–स्तुति में किया जाता है। प्रस्तुत पंक्तियाँ झूलणा–शैली की हैं–

जन पै ऐसी करो मेहेर,
हो ज्या दिल का दूर अंधेर,
सुण कै महोर सिंह की टेर,
माता आवो सिंह पलान के।।

(8) सोहनी

हरियाणा प्रदेश तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में सोहनी परम्परागत रूप से प्रचलित रही है। लोक संगीत के क्षेत्र में वर्तमान में सोहनी एक गायन–शैली के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। संगीत–शास्त्र के सिद्धांतों के आलोक में यदि सोहनी के वर्तमान प्रचलित स्वरूप का विश्लेषण किया

जाए तो सोहनी, जिसे लोक संगीत परम्परा में एक स्वतंत्र शैली माना जाता है, के मूल रूप तथा उत्पत्ति की संभावना प्रतीत होती है। सम्भवतया यही प्राचीन गायन–परम्परा में मारवा थाट का सोहनी नामक राग था। संगीत में एक पारिभाषिक शब्द है– मूर्च्छना। जब हम किसी राग को उसके मूल चलन में गाते–गाते मूर्च्छना का प्रयोग करने लगते हैं तो राग का स्वरूप बदल जाता है। मूर्च्छना के अन्तर्गत हम स्वर–परिवर्तन करते हुए भिन्न–भिन्न स्वर प्रतिरूपों में गाते हैं तो मूल राग में ही किसी अन्य राग की छाया प्रतीत होती है। यही सिद्धान्त यदि सोहनी को परिभाषित करते हुए लागू किया जाए तो हम सोहनी की उत्पत्ति के मूल कारण के समीप पहुँच पाते हैं। अतः सोहनी के वर्तमान स्वरूप को ध्यान में रखते हुए अधोलिखित लक्षण इस प्रकार हैं– (1) सोहनी का प्रयोग अधिकतर करूण रस के गायन में किया जाता है। (2) सोहनी का मूल मारवा थाट पर आश्रित सोहनी राग ही है किंतु वर्तमान में सोहनी शिवरंजनी राग में गाई जाती है। पं. महोर सिंह की सोहनी का उदरहण द्रष्टव्य है–[7]

धर्म पुत्र उठकर चल पड़या कहै देसोटे मैं जाऊँगा
अनशन व्रत कर प्राण तजूँ आकर ना मुँह दिखलाऊँगा।
मैं जा हिमालय मैं गलूं या अग्नि मैं जल जाऊँगा।
भाइयों को मैंने दुख दिया किये कर्म का फल पाऊँगा।
पारथ आ मिल ले बन्धु से फिर उल्टा मैं नहीं आऊँगा।
कहै महोर सिंह वनोवास मैं गोबिन्द के गुन गाऊँगा।

(9) बहर–ए–तबील

बहर–ए–तबील हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश के लोक संगीत में परम्परागत रूप से प्रचलित एक हृदयावर्जक मधुर गायन–शैली है । यदि हम इसके साहित्यिक पक्ष पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि यह उर्दू साहित्य का एक छन्द है जिसमें उर्दू कविता, ग़ज़ल, शेर आदि लिखे जाते हैं। हिन्दी भाषा के छन्द को उर्दू में बहर कहते हैं। अतः यह फारसी का एक छन्द है जिसके एक मिसरा अर्थात् पंक्ति में 24 मात्राएँ होती हैं। बहर–ए–तबील के स्वर प्रतिरूप (पैटर्न) को गाते या बजाते हैं तो हम पाते हैं कि यह पूर्णतः भैरवी राग में है। जब भैरवी राग की यह धुन श्रोताओं को मनोरंजक लगने लगी तो उन्होंने गायक से इसे तबील अर्थात् लम्बा करके गाने को कहा ताकि वे इसका दीर्घकाल तक रसास्वादन कर सके। अतः बार–बार बोलने के क्रम में यह 'भैरवी तबील' से लोक कलाकारों में अपभ्रंश होकर 'बहरे–तबील' बन गया तथा किसी कविता की पंक्तियाँ यानि बहर को तबील करके अर्थात् दीर्घ करके भैरवी राग में बार–बार गाने से एक निश्चित धुन समाज में रूढ़ होती गई और उसे 'बहर–ए–तबील' कहा जाने लगा।

बहर–ए–तबील का उदाहरण द्रष्टव्य है–

बजे प्रेम के सितार
होने लगी जय–जयकार
सारे साज कै सिंगार, उठी जनक लली।
गाय रही मंगलाचार
खड़ी सखियाँ निहार
छवि राम की उरधार, सिया घर से निकली।।

(10) दादरा

हरियाणवी संगीत शैली में 'दादरा' गायन का प्रारम्भ सम्भवतः पं. महोर सिंह ने किया था। वैसे तो दादरा लोक संगीत के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में गाया जाता रहा है, किन्तु हरियाणा के भू–भाग में लोक गायकों ने इसका प्रयोग नहीं किया। दूसरी तरफ यह उपशास्त्रीय संगीत के नियमों से बद्ध होने के कारण हरियाणवी संगीत–शैली से प्रकृतिगत विषमता रखे हुए था। दादरा गायन–शैली की गणना ठुमरी की तरह उपशास्त्रीय संगीत में होती है। दादरा की उत्पत्ति के विषय में अन्तिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इतनी कल्पना अवश्य की जा सकती है कि यह गायन प्रकार लोकगीतों से ही विकसित हुआ होगा। दादरा प्रायः भैरवी, काफ़ी, ख़माज, तिलक कामोद, देश, झिंझोटी, मांड आदि रागों में गाया जाता है।

दादरा का उदाहरण द्रष्टव्य है –

टेक – कामनगारी कमनिया,
कामन खूब गाया री।
कली – थारा जादू ऐसा चला जैसा चक्र इन्द्र का
थारे जादू नै काला मुख बनाया चन्द्र का
थारे जादू के फन्दे मैं,
मैं भी आया री।

(11) जंगम

'जंगम' हरियाणा की एक प्राचीन गायन–शैली है। मुख्यतः यह शैली शैव–सम्प्रदाय के जंगम साधुओं से सम्बन्ध रखती है। जंगम जोगी इस शैली में भगवान शिव की कथा को गाते हैं। ये जोगी हाथ में खझड़ी, मंजीरा तथा घंटियाँ बजाते हुए द्रुत लय में शिव–कथा को गाते हैं। जंगम जोगी अन्य किसी संगीत के पक्के साज, वाद्य–यंत्र का प्रयोग नहीं करते। इनकी गायन की विशेषता यही है

कि ये पूरी कथा को बिना रुके एक ही धुन में द्रुत लय में गाते हैं। यह गायकी द्रुत लय में गाई जाती है, जंगम–कहरवा ताल में निबद्ध गायकी है।[8]

जंगम गायन–शैली का उदाहरण द्रष्टव्य है –

टेक – चाल्या सतवादी बणखण्ड की सुरत धरी।

कली – तीन दिवस और तीन रात बणों के बीच डेरा लाया।
था पुष्कल का बड़ा सख्त हुकम नरनार पास कोई ना आया
वे चोथे दिवस निरणाबासी उठकर दोनूँ बन को ध्याया
दस पाँच कदम चल बैठ ज्यांहि किसी तरूवर की लेकर छाया
भूखे प्यासों को त्याँवर आवैं डाँवाडोल हो रही काया
संकट मैं आ रहे सतवादी धन्य प्रभु तेरी माया
जैसी नल में करी है ऐसी, किसी मैं नाहीं करी।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त सभी तथ्यों से स्पष्ट होता है कि हरियाणा का लोक संगीत विभिन्न विधा के दृष्टिकोण से समृद्ध है। हरियाणा में विभिन्न लोक संगीत–शैलियों का गायन भिन्न–भिन्न लोक संगीतज्ञों ने अलग–अलग रूप से आम–जन तक पहुँचाने का प्रयास किया है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक ये सभी लोक संगीत–शैलियाँ लोक गायन, वादन एवं धुनों के माध्यम से लोक–मानस तक प्रवाहित की जाती रही हैं और ये पूरे समाज को जीवन्त बनाती हैं ।

सन्दर्भ सूची :

1. परांजपे, डॉ. शरतचन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रथम 1968
2. पं. महोर सिंह के पौत्र पं. महाबीर प्रसाद से साक्षात्कार के दौरान प्राप्त जानकारी के आधार पर संकलित गुरुग्राम, तिथि 20.02.2021
3. शर्मा, सत्यवान, काव्यसंगीतमणि, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकुला, प्रथम संस्करण 2022
4. पं. महोर सिंह के पड़पौत्र सत्यवान शर्मा से साक्षात्कार के दौरान प्राप्त जानकारी के आधार पर संकलित गुरुग्राम, तिथि 26.11.2021
5. शर्मा, सत्यवान, काव्यसंगीतमणि, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकुला, प्रथम संस्करण 2022
6. पं. महोर सिंह के पौत्र पं. महाबीर प्रसाद से साक्षात्कार के दौरान प्राप्त जानकारी के आधार पर संकलित गुरुग्राम, तिथि 20.02.2021
7. शर्मा, सत्यवान, काव्यसंगीतमणि, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकुला, प्रथम संस्करण 2022
8. चहल, रामफल, राजकिशन व्यास के सांग, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकुला।

आभार– हरियाणा की लोक गायन–शैलियों के जिन विद्वानों से इस शोध–पत्र के लिए सामग्री प्राप्त हुई, उन सभी के प्रति आभार ।

Musical Luminary in the Mughal Court : Tansen

Dr. Suniti Datta** **Dr. Parul Lau Gaur***

Abstract

The Mughals were patrons of music and their court life was adorned by many musicians. Many works in Sanskrit, Persian and vernacular languages deal with this art form. During the reign of Akbar, music made considerable progress and received encouragement. It was in his court that the pupil of Swami Haridas, the famous musician Tansen received patronage. This work besides discussing the efflorescence of music in Akbar's court discusses the various influences on Tansen's life, befitting him in the Mughal court, thereby highlighting the significant traits of music in his compositions, the experiments he made in this art field, description of various ragas and its categories , explicating the various musical instruments and the legacy left behind by Tansen.

Key Words : *Hindustani music, Mughal Court, Luminary, Raagmala, Tashrih-e-Moosiqui.*

Methodology *: The paper tries to explore the various primary sources pertaining to music attributed to Tansen and how those treatise on music which proves to be mine of information gave a new dimension to this art form. His composition was an impression of Mughal rule in the lives of masses and his legacy also overshadows the contemporary times.*

Classical music or Hindustani music is a very significant part of Indian culture. Music was patronized at many of the imperial courts and many of the provincial dynasties during the Mughal court. One of the most eminent music personality of Hindustani music was Tansen. Tansen was a court musician in the darbar of Bhagela Raja Ramchandra of Rewa where he was highly honored. This is testified by the Virabhanudaya Kavya in Sanskrit composed by Mahadeva, court poet of Baghela king and to whom this encomium is dedicated.(Delvoye,195). Tansen's fame impressed Emperor Akbar so much that he persuaded the Raja to send him to his court.

Akbar 's period was known for patronage to musicians and men of letters. Akbar patronized a bevy of musicians, both male and female; a few came from Transoxania but many singers and musicians were from Persia and Kashmir (Wade, 29). The Ain-i-Akbari composed during the reign of Akbar refers to various instrumentalists such as Usta Dost, a nai player, and Mir Sayyid Ali, a jyhichak player, both from Mashad; Usta Yusuf, a tambur player from Heart; and the singer /chanter Pirzada, from Khurasan (Abul Fazal, 680-82). Apart from these musicians from distant lands of Persia and elsewhere there were many singers from India like Tansen who became one of the most famous singer of the age. He became one of the nine jewels in Akbar's court. The emperor bestowed upon the title "Mian" meaning the learned one. Akbar's court historian. The principal musicians of the court has been described by Abul Fazal and he pays a tribute to Tansen and points out that a singer like him has not been in India. The court historian of Akbar, Abul Fazal in his work Ain-i-Akbari , remarks that :

His majesty pays much attention to music, and is the patron of all who practice this enchanting art. There are numerous musicians at court, Hindus, Iranis, Turanis, Kashmiris, both men and women. The court musicians are arranged in seven

*Assistant Professor, Ram Anand College, University of Delhi
**Associate Professor, Aditi Mahavidyalaya College, University of Delhi

divisions, one for each day in the week. When his Majesty gives the order, they let the wine of harmony flow, and thus increase intoxication in some and sobriety in others (Fazal, 183).

A significant reason why Tansen appealed to Akbar due to the presence of multiple cultural strands associated with his background. In Bonnie's viewpoint the age in which Tansen flourished "was when vibrant personal religious devotion sprang to life: in the Hindu tradition in the bhakti movement and in the Islamic sphere through Sufism" (Wade, 113).Tansen's assistance with many saints are proven like Sur Das, Mira Bai, Tulsi Das, Baiju Bawra, Ramdas and Swami Haridas. Sufis also practised music during their sama gatherings and Tansen was connected with Mohammad Gaus, a Sufi saint who was greatly influenced by Indian philosophy.

Art historians have identified Tansen among many of the musicians in many of the portraiture Mughal scenes. The realistic portraits of individual were an innovation during the time of Akbar. As pointed out "These pictures were always of a single person standing with hands folded in an attitude of respect ,against a green background; they are true portraits. Two such paintings have been identified as Tansen. In one of the portrait Tansen is shown to be a tall man of dark complexion with a sharp aquiline nose, pointed chin, drooping moustache, and side whiskers. He wears a thoughtful and somewhat dreamy expression. His hands are small , with long sensitive fingers. Whereas in most Akbari portraits the person stands with hands folded ,this man faces right, clapping his hands, apparently in the attitude of singing, there by suggesting his profession." (Wade,110)

Scholars and musicologist have different opinions regarding the compositions of Tansen. The significant works which can be attributed to Tansen are Sangeetsaar, Raagmala, Ganeshstotra and Budh Prakash. The paper now discusses the important traits of music which can be gleaned from the various works of Tansen.

Tansen's work Sangeetsaar refers to the three branches of music- Geet, Vadya and Nritya .There is also description of Moorchhana and classification of Raaga. The work also describes the various musical instruments prevalent during that period. Raagmala is also attributed to Tansen but there is lack of evidence to establish the fact that it was authored by Tansen.

There is a Persian manuscript entitled Tashrih-i-Moosiqui which is a translation of Tansen work Budh Prakash. It is to be cautioned that the translated manuscript does not cover the original version of Budh Prakash .It is divided into eight baabs or chapters which not only describes the origin of music He gives description of the origin of music , the types of Samaahs and even svaras and he considers it essential for the musician to have a thorough understanding and full command of it. It also gives the ten essential fundamental principles for the musician and to avoid the ten undesirable attributes (Ahmad 26-27). A significant feature of this work is that deals with the practical aspects of music rather than emphasizing only theory.

Music has been described as Moosiqui and description is given of the various legends associated with the origin of music. In Tansen's opinion the main centre of music was Gwalior, which attracted a great number of musicians (vocalists and instrumentalists) of that period. Most of the fundamental knowledge and guiding principle of music (Hindustani music) emanated from Gwalior (Ahmad, 21). Such statement bears testimony to the fact that Tansen was deeply attached to the city.

Tansen work also describes the seven svaras like Kharaj, Rishab, Gandhar, Madhyam, Pancham, Dhaiwat and Nikhad. The origin of first six swaras has been attributed to various birds and only the seventh svara has been attributed to animal.

Tansen created many new ragas which, up till now, are regarded as the foremost ragas of Northern India. Some of these are noteworthy, are for example Darbari Kanada, Darbari Todi, Miya ki Malhar, Miya ki Sarang etc. Tansen composed about one thousand Dhruvapadas which are even now remembered not only for the wonderful exposition of the Ragas contained in them but also for their very high poetic value. There are many songs of devotion to the Supreme Divine and also to the Gods. These compositions also influenced the Bhakti cult. We find also many outstanding songs composed by him in praise of the Kings and the Emperors.

Tansen work also describes in detail the various Ragas and their various sub-categories like Raag Bhairav, Raag Malkaus , Raag Hindol, Raag Deepak, Raag Sarpraag (Shri) and Raag Megh. There are also five Raaginees associated with each Raag. As regards the origins of the Raags they are attributed to prophets, angels, divine names and other mythological beliefs (Ahmad, 29). There is also a reference to various Putras (sons) of basic ragas and each Raga has been ascribed eight Putras taking the total count to be forty- eight.

Regarding the combination of the Ragas the author of Tashrih-i-Moosiqui uses the word Miloni and this comprises the seventh chapter. It not only describes the milonis of six main Ragas but also of thirty Raaginees , sons of six Ragas, sons and their wives of six Ragas and also of some other Milonis (Ahmad, 50).

In the Persian manuscript Tasrih-i-Moosiqui, the various Ragas are related to different times of the day and changing seasons. It is advised to various masters of music and their disciples to follow the time framework of Ragas of different hours .However it is admitted that in the manuscript the ragas are not analysed in totality. Only those Ragas which are popularly known to the musicians have been hand -picked. Even words of caution have been given to the practioners of music that the performance of various Ragas at wrong times may cause ill effects on one's health and would lead to serious consequences. The Ragas have also been associated with the six seasons of the year and this is also similar to the Arabian and Persian system of Maqamat which are also associated with the position of sun and Zodiac signs. (Ahmad, 48).

The main genre of vocal music in the, 16th century was Dhrupad, lyrics which were meant to be sung in that genre were composed in Braj by poet composers who used to be court singers or were attached to the Vaishnava temples or both. Abul Fazal describes dhrupad as "a form (of singing) liked by the common man and favoured by the elites. Dhrupad was made of four rhyming lines and the equality of their words and syllables is not indispensable. It deals with the magic of love and the wondrous affairs of the heart. (Quoted in Delvoye, 212)

Tansen experimented with sound and composed a vast repertoire of dhrupads and many of his songs were in the praise of Hindu deities. He was primarily a veena player but his vocal abilities were outstanding and it helped strengthen the links between veena and dhrupad.

In the naming of dhrupad there is allusion to various Gods mentioned in the Puranas. The mythological Gods and Goddesses which are referred to are like Ganesh, Gauri, Saraswati, Radha -Krishna and there is recital of various sacred places like Vrindavan and Prayag. Further the amalgamation of ideology of Vaishanav Bhakti and Sufi ideas placed dhrupad to new heights.

Tansen was a great musicologists and he founded the dhrupad gharana following the teachings of Haridasji. Dhrupad marked the beginning of a new era in Hindustani classical music. Dhrupad was developed further into the prominent vocal genre at the Mughal court by Tansen. His descendants formed three seni gharanas at Delhi between the 16th to 18th

centuries. Akbar asked Tansen to sing Raga Deepak, the raga of light, with the result that all the lamps in the Palace Courtyard lit up spontaneously and Tansen's body became dangerously hot. But, as Tansen had known in advance what would happen, he had taken the precaution of teaching his daughter to play one of his own compositions, Raga Miyan Mahar, which, by repute, caused rain to pour down. When she played, the heavens opened and Tansen was saved. Of course, this story should not be taken literally; it represents a metaphor for the power of ragas to induce not so much physical environmental change but, more, an enhanced state in the minds of its listeners. No lesser authority than Pandit Ravi Shankar has explained that the Sanskrit saying – 'Ranjayathi iti Ragah'- means "that which colours the mind is a raga." For this to happen, "its effect must be created not only through the notes and embellishments, but also by the presentation of the specific emotion or mood characteristic of each raga." Unlike earlier Indain classical vocal music, the text of which were in Sanskrit, the texts of dhrupads were in the vernacular Hindi language .

There is also description of various musical instruments and they are twelve in number like Tamboor, Been, Rebab, Mridang, Ud, Jal Tarang , Daira, Dholak,Pakhawaj, Burdi or Pardi,Qanun and Kheru.

Conclusion

With the establishment of Mughal rule in India the Persian court culture came in contact with the Indian cultural traditions resulting in the synthesis of two and creating a syncretic culture. This was also manifested in the tradition of musical art forms. The Mughal rule under Akbar witnessed developments in the field of music and other art forms as well. Indian classical music remained an integral part of Akbar's court. He patronized singers from various regions and countries. The eminent musician attached to his court was Tansen. Tansen compositions on music still remain among significant works on Indian classical music. The description of various svaras, raagas, the modalities of its recital, vast repertoire of dhrupads and the establishment of seni gharanas by his descendants all leads to acknowledge his caliber musical genius.

Bibliography :

Fazal, Abul, Ain-i-Akbari, ed. M.N.Kishore, Lucknow: Newal Kishore Press, 1876; rpt.1893; English Translation, Vol.1 by H.Blochmann, rpt. Delhi: Aadiesh Book Depot, 1965.

'Nalini', Francoise, Delvoye, "The Image of Akbar as a Patron of Music in India in Indo-Persian and Vernacular Sources in I. Habib (ed.) Akbar and His India, Delhi : OUP, 1993.

Malviya, Hari Mohan, (ed.) Tansen Krit Raagmala, Vrindavan Research Trust, Mathura, 2015.

Ahmad, Najma Perveen, Tashrih-ul-Moosiqui, Manohar, New Delhi, 2012.

Siddiqui, Jameela , Legendary figures: Swami Haridas and Tansen, mythic innovators of North India , www.darbar.org.

Trivedi, Madhu, "Music Patronage in the Indo-Persian Context: A Historical Overview" in Nalini Delvoye (eds.) Hindustani Music-Thirteenth to Twentieth Centuries, Delhi : Manohar, 2010.

Wade, Bonnie C, Imaging Sound: an ethno-musicological study of music, art and culture in Mughal India, Chicago: University of Chicago Press, 1998.

किन्नौर के विभिन्न लोकवाद्य : एक अध्ययन

डॉ. सरिता नेगी*

सारांश

'किन्नौर' हिमाचल प्रदेश का एक जनजातीय प्रदेश है। यह मनीषियों की तपोभूमि है। यहाँ की स्थानीय बोली में इसकी संज्ञा 'कनौरिङ्' है । इस स्थान के निवासी 'किनौर' वा 'कनौरे' कहलाते हैं। इस क्षेत्र को अंग्रेजों ने 'कुनावुर' कहा। हिमाचल की प्राचीन सभ्यता किनौरी है। यहाँ की लोक कलाएँ अत्यन्त मोहक हैं। यहाँ के लोक–गीत अति प्रिय हैं। इन गीतों के साथ युवक–युवतियों द्वारा नृत्य किया जाता है। इन गीतों के साथ संगति वाले लोक–वाद्य असंख्य हैं । इन लोक वाद्यों का वर्णन इस शोध–लेख में प्रस्तुत है।

मुख्य शब्द– *किन्नौर, लोकवाद्य, सुषिर, अवनद्ध, घन, तत*

शोध माध्यम– *इस लेख के लिए द्वितीयक स्रोतों एवं लोक कलाकारों से सम्पर्क द्वारा सामग्री संकलित की गई है।*

संपूर्ण सृष्टि लय से परिपूर्ण एवं प्रभावित है। मानव–जाति का ध्यान लय पर केन्द्रित होना स्वाभाविक है। एक प्राकृतिक नियम है। संगीत–वाद्यों का क्रमिक विकास विश्व की मानव जाति का एक सम्मिलित रूप है । वाद्यों की उत्पत्ति आदि मानव के उन्हीं सफल प्रयोगों तथा परिवर्तनों का परिणाम है। लोक–वाद्यों की परम्परा लोक गीतों की ही भांति परिपूर्ण एवं महत्वपूर्ण है । लोकवाद्य दो शब्दों के योग से बना है 'लोक' और 'वाद्य'। 'लोक' का अर्थ है– एक जनसमूह, जनता तथा 'वाद्य' शब्द का शाब्दिक अर्थ वादनीय या बजाने योग्य । विशेष वाद्यों का वर्गीकरण, उनके उपयोग, उनके स्वरूप, उनकी निर्माण–सामग्री, उनकी वादन–शैली तथा उनकी स्वर–सीमाओं आदि के आधार किया जाता है ।[1] किन्नौर के संदर्भ में वाद्यों का वर्गीकरण इन श्रेणियों के अंतर्गत किया गया है– तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर । तत वाद्यों की श्रेणी में दुतारु (दुतारु) तथा कोहबो है। कोहबो वाद्य का आधुनिक समय में प्रयोग नहीं मिलता। दुतारु का प्रयोग लोक संगीत में किया जाता है। अवनद्ध वाद्य की श्रेणी में ढोल, डमरु, नगाड़ा, बाम, डामन्टु आते हैं । इनका प्रयोग, देवयात्रा, देवपूजा, त्यौहार, उत्सव एवं लोकसंगीत में होता है । घन वाद्यों की श्रेणी में गानठङ् गुग्जाल, बान–बानी आते हैं। इन वाद्यों का प्रयोग पूजा, देवयात्रा, धार्मिक उत्सवों एवं विभिन्न त्यौहारों में किया जाता है। बुग्जाल एवं बान–बानी लोकसंगीत में प्रयुक्त होता है। सुषिर वाद्यों की श्रेणी में करनाल (कौन्नाल), रणसिंहा, शहनाई, शौन्नाल, बुंकरी, शंख आते हैं। इन वाद्यों का प्रयोग देवयात्रा, त्यौहार एवं विभिन्न उत्सवों में होता है। किन्नौर के संदर्भ में वाद्यों का वर्गीकरण इन श्रेणियों के अंतर्गत किया गया है– तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर।[2]

किसी भी क्षेत्र का लोक संगीत लोकवाद्यों के बिना अधूरा है। किन्नौरी लोकसंगीत में वहाँ के लोकवाद्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। किन्नौर में प्रचलित लोकवाद्यों का वादन मुख्यतः देव–पर्वो, देव–यात्राओं, लोक–नृत्यों में लोक संगीत के साथ होता है। लोकवाद्यों में पुरानी परम्पराओं के प्रचलन से किन्नौर के इन लोकवाद्यों को सुषिर अवनद्ध, घन तथा तत वाद्यों की श्रेणी में विभक्त किया गया है ।[3] इन लोक वाद्यों का किन्नौर के लोक संगीत में प्रचुर प्रयोग है । वाद्यों के चारों वर्गीकरणों में विभक्त अध्ययन इस प्रकार है :–

सुषिर वाद्य

जिन वाद्यों में वायु के दबाब को अल्पाधिक कर विभिन्न स्वरों को अभिव्यक्त किया जाता है, उन्हें 'सुषिर' वाद्य कहते हैं। सुषिर वाद्यों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें नाद की निरन्तरता रहती है अर्थात् जब तक वायु का प्रवेश छिद्र में या स्वर–यंत्रों पर बना रहता है तब तक ध्वनि निकलती रहती है। सुषिर वाद्य की श्रेणी में किन्नौर में करनाल, शहनाई, रणसिंहा, बुंकरी, शंख आते हैं।[4]

कौन्नाल (करनाल)

करनाल वाद्य एक ऐसा वाद्य है जिसे देखकर सहसा ही किन्नौर का नाम होठों पर आ जाता है। स्थानीय भाषा में इस 'कौन्नाले' या 'कौन्नाल' कहते हैं। इस वाद्य के वादन के लिए हाथों की पकड़ का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर (संगीत), कन्या गुरुकुल कैम्पस, देहरादून

दोनों हाथों के उठाकर इस वाद्य का वादन किया जाता है। इसकी लं. पांच से छः फुट तक होती है। यह होंठ से सटाए जाने पर सिरे से लगातार आगे की ओर फैलता जाता है। अग्रभाग लगभग एक मीटर परिधि का होता है। करनाल के दो भाग होते हैं जिसमें तीन गांठें होती हैं तथा इसे बजाने के लिए अंदर–बाहर फूंक देनी पड़ती है। बाहर भारी तथा अंदर पतली ध्वनि निकलती है। ध्वनि का नाद बड़ा होता है तथा बाहर की ओर 'भौं–भौं' तथा अंदर की ओर 'कुडडड' की मधुर ध्वनि निःसृत होती है। इसका वादन शुभ संकेत का सूचक होता है तथा इसका प्रयोग देवयात्रा, लोकनृत्य, विवाह तथा त्यौहारों में किया जाता है ।

शौन्नाल (शहनाई)

शहनाई एक प्राचीन लोकवाद्य है तथा स्थानीय लोकभाषा में इसे ''शौन्नाल'' कहते हैं। यहाँ की शहनाई का आकार अन्य स्थानों की अपेक्षा छोटा है। इस वाद्य का आकार कीप के समान होता है तथा लं. 18 इंच तथा आगे की ओर गोलाई 3 इंच तक होती है। ध्वनि बाहर निकालने के लिए पम्पिका जिसे 'डाबुङ्' कहते हैं, 'पत्तर' घास की बनी होती है शहनाई के सिरे पर जोड़ा जाता है। यह एक मांगलिक सुषिर वाद्य है जिसका वादन विवाह, देव–यात्राओं एवं गायन के अनुकरण के लिए किया जाता है।

रौनशिङ् (रणसिंहा)

यह वाद्य एक ऐतिहासिक वाद्य है जिसका प्रयोग किन्नौर के अतिरिक्त भारतवर्ष में ही नहीं, बल्कि विश्व की अन्य सभ्यताओं में भी प्राप्त होता है। किन्नौर में इस वाद्य को 'रौनशिङ' कहते हैं। यह वाद्य पीतल, तांबा, चांदी तथा अन्य मिश्रित धातु से बना होता है। आकार में यह अंग्रेजी S से थोड़ा मिलता–जुलता है। इसका अग्रभाग धीरे–धीरे क्रमशः खुला होता है जबकि मुख्य रन्ध्र अपेक्षाकृत बारीक होता है। अग्रभाग गोलाकार 6 इंच तथा लं. पांच फुट होती है। यह वाद्य दो भागों में विभक्त होता है। इस वाद्य का प्रयोग विवाह, उत्सव, त्यौहार, देव–यात्रा तथा जन–सामान्य को मंदिर में एकत्रित करने के लिए होता है।

बुंकरी

पीतल धातु द्वारा निर्मित यह एक सुषिर वाद्य है। यह वाद्य लम्बा और आगे का भाग गोलाकार होता है। इस वाद्य की लम्बाई ढाई फुट तथा गोलाई 4 इंच होती है। इसका प्रयोग मुख्य पर्वों तथा मुत्यु–संस्कार के समय किया जाता है।

दूङ (शंख)

शंख एक सहायक वाद्य है। ये भिन्न–भिन्न आकार के होते हैं। इनके आकारानुसार इनकी आवाज़ें भी भिन्न होती हैं। किन्नौर में इस वाद्य का प्रयोग पूजा तथा शव–यात्रा के समय होता है।

अवनद्ध वाद्य

जो वाद्य भीतर से पोले तथा मचड़े से मढ़े होते हैं और हाथ या लकड़ी के ताडन से ध्वनि उत्पन्न करते हैं, ऐसे वाद्यों को 'अवनद्ध' वाद्य कहते हैं। इन्हें ताल वाद्य भी कहते हैं। लय को निश्चित सीमा में बांधना इनका मुख्य प्रयोजन है। अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी में किन्नौरी लोकवाद्यों में ढ़ोल, ढमरु, नगाडा, बाम, डामन्टु आते हैं।

ढोल

'ढोल' शब्द की उत्पत्ति फारसी शब्द 'दुहल' से मानी गई है। यह वाद्य काष्ठ के लगभग ढाई फुट लम्बे खोल से बनाया जाता है। इसकी गोलाई 3 फुट तथा चौड़ाई 18 इंच होती है। इसके दोनों खाली सिरों पर चमड़े को आपस में दृढ़ डोरी से बांधा जाता है। इसे कसने के लिए लोहे या धातु के छल्ले वाला स्थान चांदी या पीतल का बना होता है, का प्रयोग किया जाता है। ढोल दायीं तरफ लकड़ी की छड़ी तथा बायीं ओर हाथ से बजाया जाता है।

नगारा, नगारो (नगाड़ा)

लोकसंगीत में नगाड़ा की जोड़ी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह वाद्य प्रायः लोहा, ताम्बा, पीतल तथा चांदी आदि धातुओं द्वारा निर्मित होता है। धातु के एक बड़े आकार का कटोरा–सा बनाया जाता है जो पृष्ठ भाग पर हल्का–सा उभार लिए होता है। इसके मध्य में एक छोटा–सा छिद्र वायु–निकास और नगाड़े में घी आदि डालने के उद्देश्य से किया जाता है। नगाड़ो का जोड़ा तैयार कर इसमें एक और कड़ा लगाया जाता है तथा पक्की रस्सी के सहयोग से इस जोड़े को एक–दूसरे के साथ बाँधा जाता है। आकार की दृष्टि से यह वाद्य लगभग 40 से.मी. होता है। इसका प्रयोग मंदिर में सुबह–शाम की पूजा, देव–यात्रा, विवाह तथा विभिन्न त्यौहारों में होता है।

डाकरू (ढमरू)

इस वाद्य को स्थानीय लोकभाषा में 'डाकरू' कहा जाता है। यह वाद्य काष्ठ निर्मित लगभग 8 से 12 इंच

लम्बा होता है। यह बीच में खोखला तंग तथा दोनों ओर खुला होता है। इसके दोनों तरफ के मुंह को चर्म द्वारा मढ़ा जाता है तथा रस्सी से बांधा जाता है। काष्ठ के मध्य में एक पट्टी लिपटी होती है जो बजाने वाले के हाथ में रहती है। आवश्यकतानुसार वादक इसे ढीला और कसता है जिससे गूंज उत्पन्न होती है। इस वाद्य का वादन धार्मिक कार्यों तथा सामाजिक उत्सवों में होता है।

बाम

यह वाद्य आकार में काफी बड़ा होता है। त्रिशुंकाकार का यह वाद्य बड़ा–सा खोल होता है जो अपनी घोर गर्जना से देव–पर्व में जोश पैदा करता है जिसके मुख का व्यास डेढ़ हाथ होता है तथा इस वाद्य का भार लगभग 15 किलो होता है। बाम बजाने वाले को बामची कहते हैं। इसे मोटी छड़ी द्वारा बजाया जाता है तथा इस वाद्य का प्रयोग देवी–देवता के मंदिर–परिसर आगमन तथा देव–यात्रा के साथ होता है।

डामन्टु

इस वाद्य को दमामा तथा किन्नौर में 'डामन्टु' नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह छोटा–सा नगाड़ा होता है तथा इसका नाद नगाड़े से ऊंचा होता है। इसके खोल को बैल के चमढ़े से मढ़ा जाता है तथा दो बारीक बांस की छड़ों से बजाया जाता है। इस वाद्य का प्रयोग विभिन्न त्यौहार तथा देवी–देवता के कार्यक्रमों में होता है।

घन वाद्य

कांस्य आदि धातु से बजाया जाने वाला वाद्य 'घन' वाद्य कहलाता है। धातु को आग में भली–भांति पकाकर, फिर चक्राकार कर वाद्यों की निश्चित आकृति तैयार की जाती है। इस वाद्य को पीटकर या आघात द्वारा बजाया जाता है। गानठङ्, बुग्जाल, बान–बानी किन्नौरी घनवाद्य की श्रेणी में आते हैं।

गानठङ् (धातु की घण्टी)

इस वाद्य को स्थानीय लोकभाषा में गानठङ् कहते हैं। घंटी कांस्य या पीतल धातु की बनती है। इसका आकार गिलास की भांति गोल किनारे फूल की भांति गोलाई में विकसित होती है। तली के मध्यम भाग में धातु की बनी हुई गोली लटकी होती है तथा उस पर पकड़ने के लिए एक डण्डी लगी होती है जिसे हाथ से हिलाने से ध्वनि उत्पन्न होती है। मंदिरों के अतिरिक्त मूर्ति की आरती, देवी–देवता के पूजा के समय इसका प्रयोग होता है।

बुग्जाल (गायने)

यह वाद्य झाँझ व मंजीरा का बड़ा रूप है। यह मिश्रित धातु कांस्य, पीतल से बना होता है। इसका प्रयोग किन्नौर के मंदिरों, गुफाओं में, प्रभु भक्ति–गान तथा अन्य पारम्परिक संगीत के साथ होता है। इस क्षेत्र के लोकप्रिय वाद्य का प्रयोग अन्य वाद्य के साथ विशेष रूप से होता है या देवी–देवता–सम्बन्धी कार्यक्रम, त्यौहार, विवाह एवं लोकसंगीत में प्रयुक्त होने वाला यह महत्त्वपूर्ण वाद्य है। इस वाद्य के छोटे रूप को 'गायने' कहते हैं जिसका देव–पूजा एवं विशेष रूप से बौद्ध मंदिरों एवं गोम्फाओं में पूजा के समय प्रयोग किया जाता है।

बान–बानी

यह किन्नौर क्षेत्र का एक प्राचीनतम वाद्य है। इसका निर्माण भी कांस्य एवं पीतल धातु द्वारा होता है। यह वाद्य भी अन्य वाद्यों के साथ गायन, वादन एवं नृत्य को आकर्षक बना देता है। इस वाद्य का प्रयोग प्राचीन समय से देव–त्यौहारों तथा अन्य धार्मिक उत्सवों में होता है। इस वाद्य की गोलाई 2 फुट होती है तथा मंदिरों में आरती के समय में जो घड़ियाल घन वाद्य बजाया जाता है, उसी प्रकार यह वाद्य भी है परन्तु आकार में घड़ियाल से भिन्न है। इस वाद्य का वादन अन्य वाद्यों के साथ लय दर्शाने के लिए होता है।

तत वाद्य

तत वाद्यों में ध्वनि की उत्पत्ति वाद्यों में प्रयुक्त तारों को छेड़ने से होती है। इन वाद्यों में तांबा, पीतल आदि तारों का प्रयोग होता है।

दुतारा (किन्नरी वाद्य)

किन्नौर क्षेत्र का यह वाद्य दुतारा के नाम से जाना जाता है । यह तार वाला स्वर वाद्य है, इसका प्राचीन नाम 'किन्नरी वीणा' माना गया है। इस क्षेत्र में किन्नरी वीणा का उल्लेख तो नहीं मिलता परन्तु किन्नरी अथवा दुतारु के नाम से इस वाद्य को पुकारते हैं, यह वाद्य दो तारों वाला होता है। इस वाद्य के केवल एक वादक ही किन्नौर में है जिनका नाम हीरा दास नेगी है और वे 85 वर्ष के है।

कोहबो

कोहबो जनजातीय क्षेत्र, किन्नौर का एक तार वाद्य है जो किन्नौर के ऊपरी क्षेत्र में प्रचलित है। इस वाद्य का आकार इसराज की तरह होता है। यह इस क्षेत्र का प्राचीनतम वाद्य है। इस क्षेत्र में जानकारी से ज्ञात होता है कि इस वाद्य के साथ किन्नौरी भाषा के भिन्न–भिन्न लोकगीत गाए जाते हैं परन्तु आधुनिक समय में इसका प्रयोग नहीं मिलता।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि किन्नौरी लोकवाद्य, देवयात्रा तक सीमित न रहकर लोकसंगीत में भी विशिष्ट भूमिका निभाता है। गायन में शहनाई द्वारा अनुकरण जितना सुंदर बनाता है वही ढ़ोल दमान्टु की थाप लोकसंगीत में व्यक्ति को तुरन्त ही नाचने पर विवश करती है। तत वाद्यों में केवल दुतारू ही है जो मात्र किन्नौरी लोकसंगीत में प्रयुक्त होता है। घन, अवनद्ध एवं सुषिर वाद्यों के प्रयोग से किन्नौरी लोकसंगीत का सौंदर्य और निखर जाता है । किन्नौरी लोकसंगीत अपनी विशिष्टता को लिए हुए संपूर्ण क्षेत्र में एक अलग भूमिका निभाता है । यह संस्कृति आज भी जीवित है। इस जीवन्तता का कारण किन्नौर की जनता का अपने लोकसंगीत के प्रति निष्ठा एवं समर्पण है।

संदर्भ सूची :

1. ठाकुर, डॉ. सूरत (1996), हिमाचल के लोकवाद्य, अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ॰ 38–38
2. गर्ग, प्रो. नन्दलाल (2009), हिमाचल के प्राचीनतम वाद्य, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 31–33
3. मिश्र, लालमणि (2005), भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ॰ 47
4. गर्ग, नन्दलाल (2009), हिमाचल के प्राचीनतम वाद्य, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली
5. नेगी, डा. सरिता (2020), किन्नौर के विभिन्न लोकभाषाओं में गाए जाने वाले लोकगीतों का सांगीतिक विवेचन, नैतिक प्रकाशन, गौतम बुद्ध नगर, उ.प्र., पृ. 149–163

विदुषी सुमति मुटाटकर – व्यक्तित्व और कृतित्व

डॉ मल्लिका बैनर्जी*

सार

ध्रुपद और ख्याल दोनों विधाओं के बीच, ध्रुपद को हमेशा अपनी गायन–शैली के कारण पुरुषत्व से जोड़ा गया है। विदुषी सुमति मुटाटकर ने गायन की इसी ध्रुपद शैली को अपनी मुख्य विधा के रूप में चुना। हालॉकि, ध्रुपद ही नहीं, उन्होंने वास्तव में ऐसी कई चुनौतियों का सामना किया, जो उनके समय में बहुत कम महिलाओं ने किया होगा। मेरे इस लेख में विदुषी सुमति मुटाटकर के उन कार्यों को सर्वसमक्ष लाने का प्रयास होगा, जो न केवल भारतीय शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में बल्कि पूरे भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के रूप में साबित हुए हैं।

मुख्य शब्द : *सुमति मुटाटकर, ध्रुपद, आकाशवाणी संगीत सम्मेलन, गायन शैली*

शोध–माध्यम : *इस लेख में विभिन्न पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं से अध्ययन–सामग्री संकलित कर विचारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है ।*

अनादि काल से गायन, नृत्य और भाव मानव समाज में अनुष्ठान और सामाजिक उत्सवों का हिस्सा रहा है जहाँ महिला और पुरुष समान रूप से शामिल रहे हैं। प्राचीन समाज में कई प्रकार की सीमाओं के कारण कुछ गतिविधियों को विशिष्ट रूप से नारी और पुरुष के लिए अलग–अलग तय कर दिया गया। इसलिए लिंग के आधार पर विभिन्न अवसरों पर प्रदर्शन के विभिन्न कृत्यों को जिम्मेदार ठहराने की परंपरा की भी उत्पत्ति हुई। नतीजतन इस प्रथा ने प्रदर्शन–कला के क्षेत्र में विभिन्न परंपराओं को जन्म दिया।

भारतीय संगीत प्राचीन काल से लेकर आज तक गायन तथा वादन के क्षेत्र में कई परंपराओं को जन्म देते हुए विकसित तथा पल्लवित हुआ है, पर इस क्षेत्र में भी लैंगिक दृष्टि से कई रूढ़ियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। यद्यपि प्राचीन मंदिर की मूर्तियाँ बहुतायत से ढोल और बांसुरी सहित सभी प्रकार के वाद्ययंत्र बजाने वाली महिला आकृतियों को दर्शाती हैं, लेकिन आज की दुनिया में यह अपवाद स्वरूप ही हैं। अभी हाल तक तबले का क्षेत्र जो अभी भी पूरी तरह से पुरुष–प्रधान है, उस में केवल एक महिला वादिका अबान मिस्त्री ही थीं। सरोद के क्षेत्र में केवल दो ही महिला सरोद वादिका शरण रानीजी और जरीन दारूवाला शर्मा थीं। यहां तक कि फिल्म जगत में भी जद्दन बाई, सरस्वती देवी और उषा खन्ना, केवल तीन महिला संगीत निर्देशक थीं; इसी प्रकार ध्रुपद–गायन के क्षेत्र में भी केवल एक ही महिला ध्रुपद गायिका प्रो. सुमति मुटाटकर थीं जिनका नाम ध्रुपद गायन के क्षेत्र की महिला गायिका के रूप में एकलौते तारे के समान चमकता था। ये सभी महिलाएं अपने–अपने समय में सबसे आगे रहीं और इन्होंने अपने–अपने क्षेत्र में नाम कमाया परंतु प्रसिद्ध ठुमरी कलाकार नैना देवी के शब्दों को उधार लेते हुए कहा जाए तो ''हमारे देश में, उनका (महिलाओं का) योगदान काफी असाधारण रहा है। उन्हें स्वीकृति तो मिली पर– बाद में काफी विचार करने के पश्चात्।'' अर्थात् यह स्वीकार तो किया गया है कि वे अपने क्षेत्र में बहुत आगे थीं, परंतु बहुत ही अनिच्छा से।

हम सब जानते हैं कि उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध का दौर भारतीय संस्कृति के जागरण का दौर था और साथ ही सदियों से उपेक्षित, घर के कोने में पडी हुई भारतीय महिलाओं के भी पुनरुत्थान का दौर था। ऐसे ही जागृति के मन्त्र से दीक्षित एक संभ्रांत परिवार में सुमित जी का जन्म हुआ। उनके पिता मध्य प्रदेश में जिला न्यायाधीश थे और उन्होंने सुमति जी को विद्यालयीन शिक्षा देने की ठान ली थी। उस समय मध्य प्रदेश के अमरावती में मात्र एक ही सरकारी विद्यालय था जहां लड़कियों के पढ़ने की व्यवस्था थी। सुमति जी का दाखिला वहीं हो गया और वो पढ़ने लगीं। जब सुमति जी के 10 साल की उम्र में उनके पिता का कहीं और तबादला हो गया तब उन्होंने सुमति जी को उसी विद्यालय के हॉस्टल में दाखिल करवा दिया। साथ ही, सुमति जी को संगीत की शिक्षा के लिए अमरावती में रहनेवाले पंडित

*प्रवक्ता (संगीत), मंच तथा दृश्यकला विद्यालय, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

वामन बुवा जी के पास भेजा जाने लगा। सुमति जी की प्रतिभा बचपन से ही नज़र आने लगी। वो हर कक्षा में अव्वल नंबर से पास होती थीं, साथ ही खेल–कूद में, खास कर बैडमिंटन के खेल में उनका खास रुझान था। गणित में उनका दिमाग खूब चलता था। उनके स्कूल के साथी श्री कमल गोखले बताते हैं कि मैट्रिकुलेशन की परीक्षा में गणित के जिस प्रश्न–पत्र को सुलझाने में अधिकतर छात्रों को कठिनाई का सामना करना पड़ा उसे सुमति जी ने आसानी से सुलझाया था। विद्यालयीन शिक्षा के बाद सुमति जी विश्वविद्यालय में भी गणित विषय लेकर ही पढ़ने लगीं। उनकी बहुत चाह थी कि वो गणित में ही आगे बढ़ें परंतु विद्यालयीन शिक्षा के उपरांत घर के बड़ों ने उनके विवाह के लिए ज़ोर देना शुरू कर दिया। उनके पिता की बहुत अधिक इच्छा न होने के बावजूद वे घर के सदस्यों के दबाव में आ गए और उनका विवाह एक उपयुक्त पात्र से करवा दिया। सौभाग्य से सुमति जी के पति श्री विश्वनाथ लक्ष्मण मुटाटकर गणित के ही प्राध्यापक थे। परिवार के कुछ रूढ़िवादी होने के बावजूद वे अपने पति की सहायता से आगे भी पढ़ती रहीं और गायन की शिक्षा भी पंडित सांवलाराम जी के यहाँ जारी रही पर घरेलु ज़िम्मेदारियों के कारण अथक प्रयासों के बावजूद उनकी एम.ए. की पढ़ाई पूरी नहीं हो पाई। ऐसे में आम लोग हतोद्यम हो जाते हैं और घर के काम–काज में ही सांत्वना ढूंढने लगते हैं पर सुमति जी ने अपना प्रयास नहीं छोड़ा। अब वे पूरी तरह से संगीत में अपना मक़ाम ढूंढने लग गयीं ।

उनके जीवन का अगला पड़ाव लखनऊ के मॉरिस कॉलेज में था। अपने पिता और पति दोनों के आग्रह से सुमति जी लखनऊ के मॉरिस कॉलेज में संगीत के गहन अध्ययन के लिए चली गयीं। उससे पहिले वे संगीत विशारद तक की परीक्षा उर्त्तीण हो चुकीं थीं। यहाँ उन्होंने पंडित रातनजनकर से संगीत की प्रायोगिक और शास्त्रीय दोनों ही पक्षों का गहन अध्ययन किया। संस्कृत भाषा की अच्छी जानकार होने के नाते प्राचीन सभी ग्रंथों को बहुत अच्छे से उन्होंने छाना और अंततः संगीत निपुण की उपाधि प्राप्त करने के बाद ही अपने गार्हस्थ्य जीवन में लौटीं। जाहिर है कि उस समय उनके लिए ये सब कर पाना बहुत ही कठिन था। घर के अन्य सदस्यों ने और घरेलु ज़िम्मेदारियों ने कदम–कदम पर उनके सामने कई कड़ी चुनौतियाँ रखी पर अपनी दृढ़ता और, पिता तथा पति के पूर्ण समर्थन के कारण उन्होंने सभी चुनौतियों को पार कर लिया और संगीत विषय में वे पहली महिला थीं जिन्होंने डॉक्टरेट की डिग्री हासिल की। सुमति जी ने 1943 से आकाशवाणी में गाना शुरू कर दिया था परन्तु इसके लिए उन्हें मुंबई जाना पडता था। सन् 1947 में नागपुर में ही आकाशवाणी का केंद्र खुल गया और सुमति जी भी नागपुर केंद्र से अपने गायन का कायक्रम देती रहीं। लखनऊ में पंडित रातनजनकर जी से उन्होंने ध्रुपद–धमार और ख़याल दोनों ही विधाओं की शिक्षा ली थी और उनका अधिक रुझान ध्रुपद–गायन में होने लगा। उनके हर कार्यक्रम में वो पहले ध्रुपद या धमार गातीं थीं फिर ख़याल गाती थीं। धीरे–धीरे ध्रुपद–गायन में एकमात्र महिला गायक के रूप में उनकी ख्याति बढ़ती गयी। यहाँ मैं ज़िक्र करना चाहती हूँ कि सुमति जी के अलावा उनकी समसामयिक एक और महिला ध्रुपद गायिका रहीं हैं जिनका नाम असगरी बाई है। ये टीकमगढ़ के राजा के यहाँ एक संगीतोपजीवी थीं और बाद में विवाह कर के आगरा में बस गयीं। ये एक बहुत ही प्रतिभाशाली सुकंठी गायिका तो थीं परन्तु इन्होंने कभी निजी महफ़िलों के अतिरिक्त भव्य संगीत के आयोजनों में और सम्मेलनों में प्रस्तुति नहीं दी। ये जनता के समक्ष 80 के दशक में आयीं और इनकी असाधारण प्रतिभा को काफी सराहा गया। इन्हें संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार और 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया तथा मध्य प्रदेश की सरकार ने इन्हें तानसेन सम्मान से भी नवाजा। सुमति जी जिस वक्त ध्रुपद की प्रस्तुतियां दे रहीं थीं उस समय राष्ट्रीय स्तर पर कभी असगरी जी का नाम सुनने में नहीं आया और न हि उनका सांगीतिक जीवन विविध कर्मकांडों से परिपूरित रहा।

सुकोमल व्यक्तित्व की धनी सुमति जी के गायन में एक आश्चर्यजनक बात थी। जितनी वो सुकुमारी थीं उनका कंठस्वर और गायन शैली भारी और ओजपूर्ण थी. उनके गायन में गंभीरता, वर्षों का परिशीलन और परिपक्वता साफ़ झलकता था। सीखने के मामले में उनका दृष्टिकोण माधुकरी वृत्ति का रहा। पं. रातनजनकर से आगरा गायकी को भली–भांति सीखने के बाद भी उन्होंने पं. राजा भैया पूंछवाले से ग्वालियर घराने की गायकी में ख्याल, ठुमरी, टप्पा और अष्टपदी सीखा, रसूलन बाई से उपशास्त्रीय संगीत की बारीकियों को सीखा, इसके आलावा उ. विलायत खां साहब, उ. मुश्ताक हुसैन खां, पं. अनंत मनोहर जोशी और पं. बुरहानपुरकर से भी समय–समय पर कई चीजें सीखीं।

उनके पास लक्ष्मी टोडी, शहाना, गौरी, खमाज

थाट की दुर्गा, शुक्ल बिलावल, लच्छासाख जैसे कई अप्रचलित या दुर्लभ रागों की तालीम सहित रागों का एक विशाल भंडार था। उनके गायन में रागों का चित्रण अत्यधिक विद्वित्तापूर्ण हुआ करता था। मींड और गमक का उनका प्रयोग और लयकारी उनके गायन के मुख्य आकर्षण थे। उनके गायन का दूसरा महत्वपूर्ण बिंदु उन रचनाओं का चयन था जो शास्त्रीय परंपरा का पालन करती थीं, जिसमें चार स्पष्ट भाग थे– स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग।

अब तक हम सुमति जी को एक गायिका की हैसियत से देख रहे थे पर संगीत जगत को शायद सुमति जी की और सेवा की भी जरुरत थी। उन दिनों सन् 1952 में श्री बी वी केसकर केंद्रीय मंत्रालय में सूचना और प्रसारण मंत्री बने, उन्हें शास्त्रीय संगीत में बहुत अधिक रूचि थी। उन्होंने आम जनता में शास्त्रीय संगीत के प्रति रूचि जागृत करने के लिए और संगीत के कलाकारों को प्रोत्साहित करने के लिये कई प्रयास किये, उनमें से खास थे आकाशवाणी से नियमित रूप से नियत समय पर शास्त्रीय संगीत का प्रसारण और राष्ट्रीय स्तर पर अखिल भारतीय संगीत के कार्यक्रम का प्रसारण। इस काम को सुचारू रूप से चलाने के लिए उन्होंने सुमति जी से आकाशवाणी में डायरेक्टर ऑफ़ प्रोग्राम्स (म्यूजिक) का पद सम्हालने के लिए आग्रह किया। 1953 में सुमति जी पद–भार ग्रहण करने के लिए आकाशवाणी के मुख्य कार्यालय दिल्ली में आ गयीं और 1956 तक उन्होंने इस पद पर काम किया। उनको एक प्रयोगात्मक तौर पर इस पद पर लाया गया था, ये देखने के लिए कि आकाशवाणी में इस किस्म के अफसरों से संगीत के कार्यक्रमों में कोई अच्छा प्रभाव पड़ता है अथवा नहीं। सुमति जी ने इस पद को बखूबी सम्हालते हुए एक संपूर्ण नए संगीत विभाग "केन्द्रीय संगीत एकांश /cmu" की संरचना की जिसको देश भर के संगीत के कलाकारों के स्वर–परीक्षण, अखिल भारतीय संगीत के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने का काम तथा संगीत के कार्यक्रम–सम्बन्धी नीति–निर्धारण का काम सौंपा गया. इसके साथ ही सन् 1954 में वार्षिक रेडियो संगीत सम्मेलन के कार्यक्रम की शुरुआत भी की गयी जिसकी परिकल्पना में सुमति जी का सक्रिय योगदान रहा।

इसके बाद 1956 से 58 तक सुमति जी ने डेपुटी चीफ प्रोडिउसर का पद सम्हाला पर फिर से उन्हें घरेलु जिम्मेदारियों के कारण आकाशवाणी छोड़ना पड़ा। इसके बाद उन्हें 1965 से 1968 तक फिर एक मौका मिला, इसी पद का कार्यभार सम्हालने का जिस समय उन्होंने आकाशवाणी संग्रहालय को स्थापित करने में अपनी सक्रिय भागीदारी निभाई। इन कार्यों को करने के लिए उन्हें किस–किस तरह की कठिनाइयों और दिक्कतों का सामना कितने ठन्ढ़े दिमाग और दृढ़ता के साथ करना पड़ा होगा, यह कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता। उन्होंने आकाशवाणी में उन सभी कामों को किया जिनकी कोई नजीर पहले से नहीं थी। राष्ट्रीय स्तर पर कलाकारों की पहचान बनाने में अखिल भारतीय संगीत के कार्यक्रम तथा आकाशवाणी संगीत–सम्मेलनों की भूमिका अतुल्य रही। इन कार्यक्रमों के कारण केवल भाग लेने वाले कलाकारों को ही नहीं बल्कि अनेवाले कलाकारों की पीढ़ियों को भी नई दिशा और उत्साह मिला और आम–जन में शास्त्रीय संगीत की चर्चा बढ़ी। साथ ही, आकाशवाणी संग्रहालय आगे आनेवाली पीढ़ियों में केवल संगीत ही नहीं, बल्कि कई अन्य विषयों में शोध के लिए एक विशाल संसाधन साबित होगा।

1968 में उन्हें मौका मिला दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत तथा कला संकाय में प्राध्यापिका के पद पर कार्य करने का। दिल्ली विश्वविद्यालय में शामिल होने के दो साल के भीतर, शिक्षा और संस्कृत विभाग ने ''कॉलेज और स्कूली छात्रों के बीच संस्कृत का प्रचार'' नामक एक योजना के प्रभारी पद के लिए डॉ. मुटाटकर से संपर्क किया। इस योजना के तहत स्कूल और कॉलेज के शिक्षकों को हमारे देश की समृद्ध विरासत के बारे में प्रशिक्षित करने की कल्पना की गई थी ताकि वे अपने ज्ञान को दिलचस्प और रचनात्मक गतिविधियों के माध्यम से अपने छात्रों तक पहुंचा सकें। उन्होंने इस विचार का स्वागत किया और विश्वविद्यालय में अपने भारी कर्तव्यों के बावजूद परियोजना में सक्रिय रूप से शामिल होने के लिए तैयार हो गईं। उनके निरंतर प्रयासों और रचनात्मक भागीदारी के कारण इस परियोजना को पूरे देश में बहुत सराहा गया। यह परियोजना भारतीय संगीत के प्रचार–प्रसार तक ही सीमित नहीं थी बलिक इसमें कला और शिल्प के सभी रूपों को शामिल किया गया है जो भारत की अमूल्य विरासत हैं। 1979 में परियोजना की समीक्षा करने के बाद भारत सरकार ने ''सांस्कृतिक संसाधन और प्रशिक्षण केंद्र'' की स्थापना की, जिसे हम आमतौर पर सीसीआरटी के रूप में जानते

हैं। आज तक सीसीआरटी विभिन्न कलाओं और शिल्पों के क्षेत्र में युवा शिक्षार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान कर भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रचार और विभिन्न कला रूपों को पोषित करने का कार्य सक्रिय रूप से कर रहा है।

कोमल, सुमधुर और शांत व्यक्तित्व की धनी विदुषी सुमति मुटाटकर एक ऐसे युग की महिला थीं जिस समय महिलाओं का घर के चहारदिवारी से बाहर आना ही मुश्किल था। अपने पिता और ससुराल के कई सदस्यों के मतों के विपरीत जा कर अपने पिता और पति के प्रोत्साहन से उन्होंने न केवल अपने आप को एक ध्रुपद गायिका के रूप में प्रतिष्ठित किया बल्कि आगे आने वाले संगीत के कलाकारों के लिए संगीत–प्रशिक्षण और मंचन की एक ऐसी पुख्ता व्यवस्था बनाई जिससे शिक्षार्थी और नवीन कलाकारों को संभावनाएँ मिलीं और भारतीय संगीत भी समृद्ध हुआ।

संदर्भ सूची :

Kulshrestha, S., Sahai, J. & Kulshrestha, A. (ed.). 1994. *Gems of Indian Music and Musicology (Prof. Sumati Mutatkar Felicitation Volume)*, Pratibha Prakashan, Delhi.

Saxena, S.K. 2007. Obituary In Memorium Professor Dr. Sumati Mutatkar. *Sruti,* PP- 29-30, Chennai, India.

बहुगुणा, वंदना, 2015, विदुषी सुमति मुटाटकर – व्यक्तित्व, संगीत चिंतन एवं योगदान, कनिष्क पब्लिकेशन, दिल्ली

योग और संगीत–चिकित्सा का अंतर्सम्बन्ध

डॉ. शालिनी ठाकुर*

सारांश

योग और संगीत का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। योग और संगीत, ये दोनों ही न केवल मानसिक शांति और संबल प्रदान करते हैं अपितु रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में हमारी सहायता करते हैं तथा सम्पूर्ण स्वास्थ्य को बेहतर बनाते हैं। संगीत जगत से जुड़े हुए कलाकार ऐसा मानते हैं कि संगीत और योग ये दोनों ही साधना है, साथ ही, एक–दूसरे के पूरक भी हैं। विभिन्न शोध–अध्ययनों में ये कहा गया है कि संगीत सुनने या गुनगुनाने से हमारी मानसिक स्थिति बेहतर होती है। जबकि योग मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य दोनों के लिए लाभकारी है। योग के कुछ आसन हमारी सांसों को मजबूत बनाते हैं। संगीत और योग संतुलित और मस्तिष्क–स्वस्थ जीवन के लिए अति आवश्यक है। संगीत के रागों को सुनकर जहाँ मन को शांति मिलती है वहीं योग के द्वारा भी मन की शांति प्राप्त होती है तथा यह ब्लड प्रेशर तथा अन्य कई तरह की बीमारियों को दूर करने में भी सहायक है। जिस प्रकार योग में शारीरिक क्रियाओं के द्वारा तन और मन को स्वस्थ बनाने का प्रयास किया जाता है, उसी प्रकार सुरों की साधना करते हुए विशेषतः श्वास पर भी नियंत्रण रखना होता है। सांस बढ़ाना और कम करना 'ब्रीदिंग एक्सर्साईज' का ही एक हिस्सा होता है। इससे फेफड़े स्वस्थ होते हैं। रियाज इन्फैक्शन को रोकता है। बाँसुरी वादक अभय फगरे बाँसुरी वादन को एक योग क्रिया मानते हैं। वे कहते हैं कि जब बाँसुरी बजायी जाती है तो इन्हेल और एक्जेल जैसी क्रिया होती है जिसे योग की भाषा में प्राणायाम कहते हैं। बाँसुरी बजाते समय श्वास पर नियंत्रण रखना पड़ता है और इसे नियंत्रित करने के लिए ध्यान लगाना पड़ता है। योग में भी ध्यान की क्रिया ही होती है।

मुख्य शब्द– *योग, संगीत, राग, चिकित्सा, अध्यात्म*

प्रविधि– *प्रस्तुत लेख के लिए पुस्तकों एवं इण्टरनेट से अध्ययन–सामग्री एकत्र की गई है ।*

मानव–जीवन का परम लक्ष्य परमात्मा का साक्षात्कार करना होता है। उस लक्ष्य की प्राप्ति का सर्वोच्च माध्यम संगीत होने के कारण आध्यात्म के रंग में पूरी तरह से रंगने का प्रयत्न संगीतज्ञों द्वारा सदैव किया गया है। संगीत की सच्ची साधना वही है जिसके फलस्वरूप मानव का मन उस उच्चतर सूक्ष्म नाद का अनुभव करने योग्य बन सके। संगीत के यौगिक महत्व को स्वीकार करते हुए श्री उपेन्द्र नाथ सिंह ने अपनी कृति 'what is music' में लिखा है– 'To summerise what is music, one can safely say it is kind of yog system through the medium of sonorus sound whch act upon the human organism and awaken and develop their proper functions to the extent of 'self realization'.The ultimate goal of hindu philosophy or religion.' इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि संगीत एक यौगिक विद्या है जिसकी तीव्र एवं तीव्रतर ध्वनियाँ मनुष्य के सूक्ष्म स्नायुओं को झंकृत कर सुप्त कुण्डलियों को जागृत कर देती हैं तथा मानव आत्मोन्नति को चरम सीमा 'मोक्ष' के द्वार तक पहुँचा देती हैं– जो भारतीय दर्शन का अंतिम लक्ष्य है।[1]

'ओम्' ध्वनि का सभी सम्प्रदायों में महत्व है क्योंकि ध्वनि व ऊर्जा को सभी ने मुख्य तत्त्व माना है। मुख्य तत्त्व का अर्थ है, जीवन की आंतरिक व बाह्य अनुभूतियों को एक साथ जीवंत करने वाला कारक। किसी भी संगीत साधक का साधना से पूर्व, स्वयं को एकाग्रित करना स्वयं को चित्त तथा मास्तिष्क से जोड़ना है। यही मस्तिष्क निरंतर अभ्यास के लक्ष्य को संगीत में ओम् अथवा नाद से जोड़ चुका होता है। अंततःपूर्व में मस्तिष्क द्वारा खोजा गया यह ओम् भविष्य में साधक को सही एवं पूर्ण प्रस्तुति के साथ जोड़ता है। वाद्य–यंत्रों में भी भीतर व बाहर के ब्रह्माण्ड का उचित प्रभाव पड़ता है।

मशहूर तबला वादक और गज़ल गायक सलीम अल्लाह वाले का कहना है कि जब तबले पर अंगुलियाँ थिरकती हैं तो अंगुलियों की जोड़ और कोहनी तथा हाथों

*असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

के अन्य मसल्स की भी एक्सरसाईज हो जाती है। संगीत बिना किसी यौगिक एक्सर्साईज के योग के भी सबसे करीब है। इसीलिए वर्तमान समय में संगीत–चिकित्सा को सारी दुनिया मान चुकी है। एक बार शास्त्रीय गायक बड़े गुलाम अली खाँ जी से पूछा गया कि वे इतना सुरीला कैसे गाते हैं? तो उन्होंने उत्तर दिया कि हम गाते नहीं बल्कि हवा को काबू में करने का प्रयास करते।[3] हवा को काबू में करने की यही कोशिश योग में भी की जाती है। इसीलिए संगीत को योग के करीब माना गया है। संगीत के बिना योग अधूरा है और संगीत भी योग की तरह तन और मन दोनों के लिए लाभदायक है। योग करते समय संगीत के साथ से आत्मा और शरीर का जुड़ाव तेजी से होता है। संगीत–चिकित्सा द्वारा ऐसी कई समस्याओं का समाधान सम्भव है जिनका उपचार योग के माध्यम से किया जाता है। योग में ध्यान, प्राणायाम, अनुलोम–विलोम ओम् उच्चार तथा उंगुलियों और कंठ के कई ऐक्सर्साईज हैं जो संगीत के माध्यम से भी होते हैं। ओंकार साधना का मतलब है कपालभाति। रियाज में श्वास का सर्वाधिक महत्व है। सुर की निरंतरता श्वास पर निर्भर करती है। योग की भाषा में इसे ब्रीदिंग एक्सर्साईज कहा जाता है। यह कहना है शास्त्रीय गायक और तबला वादक प्रोफेसर किरण देशपाण्डे का। वे कहते हैं कि शास्त्रीय गायन में ब्रह्मनाद एक स्थिति होती है जो नादयोग से प्राप्त होती है। नाद योग का सीधा संबंध श्वाँस की निरंतरता से होता है। नाद योग संगीत की दुनिया की योग–क्रिया है। इसके अतिरिक्त सगीत के कई सुर नाभि से भी लगाये जाते हैं। इन सुरों को लगाने में नाभि पर जोर पड़ता है। उससे सच्चा स्वर अवश्य निकलता है। इसमें कपालभाति के समान ही नाभि की एक्सर्साईज भी हो जाती है। ओंकार साधना के लिए नाभि से स्वर निकालना कपालभाति की तरह योग करना ही है। योग का उद्देश्य एकाग्रता सिद्ध करना है और संगीत के माध्यम से भी यही एकाग्रता प्राप्त होती है। संगीत को ईश्वर का दर्जा प्राप्त है। इसीलिए इस विधा में शुद्धता और शास्त्रीयता का विशेष महत्व है। सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों के माध्यम से मन को साधने का उपाय है। संगीत एक तरफ जहाँ योग से मनुष्य के शरीर, मन और मस्तिष्क को साधता है वहीं संगीत हमारी आत्मा को शुद्ध भी करता है। संगीत का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है। आधुनिक युग में मीडिया में बने रहने के इच्छुक संगीतज्ञों को छोड़ दिया जाय तो हर तरह का संगीत पवित्रता और शुद्धता पर विशेष जोर देता है।

संगीत शास्त्र और आध्यात्म ये दोनों ही एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं क्योंकि इन दोनों ही का मुख्य उद्देश्य है – आत्म साक्षात्कार। जिस प्रकार सगीत एक उपासना का माध्यम है। उसी प्रकार योग शास्त्र जीवन का मित्र है। यदि शरीर स्वस्थ रहे तो हम जीवन का आनंद ले सकते हैं क्योंकि मानव–जीवन की आवश्यकताओं में पहला सुख निरोगी काया माना गया है। जिस प्रकार संगीत में स्वरों की शुद्धता पर जोर दिया जाता है उसी प्रकार योग शास्त्र में आसन व मुद्राओं पर जोर दिया जाता है। दोनों में ही स्वर और मुद्राओं की श्रेष्ठता से स्वास्थ्य और आनंद पाया जा सकता है। इस दृष्टि से देखा जाय तो दोनों शास्त्र एक–दूसरे के पूरक हैं। संगीत–साधना में चाहे गायन हो, वादन हो, कलाकार को एक ही मुद्रा में घण्टों बैठे रहना पड़ता है। उसी तरह योग में भी एक ही मुद्रा में बैठना आवश्यक है। संगीत में एक ही स्थान पर साधना करने के लिए मन व मस्तिष्क पूर्ण रूप से स्वस्थ होना चाहिए और इसके लिए योग सर्वश्रेष्ठ है। योग से शरीर मन व मस्तिष्क स्वस्थ रहता है। मनुष्य एकाग्र रहता है एवं प्रसन्नचित्त हो कार्य करता है। विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि संगीत–साधना और योग–साधना दोनों से ही मनुष्य के जीवन में शक्ति का विकास होता है। अतः कहा जा सकता है कि शरीर और मन मस्तिष्क को पूर्ण रूप से स्वस्थ रखने के लिए योग–शास्त्र और संगीत–शास्त्र दोनों ही समान रूप से आवश्यक हैं। दोनों से शरीर और मन मस्तिष्क स्वस्थ रहते हैं, एकाग्रता रहती है। योग की तरह ही संगीत से तनाव दूर होता है। संगीत का असली आनंद बगीचे में, बरामदे में, छत पर, सुबह शाम में ही उठाना चाहिए। रात को सोने से दो घण्टे पहले सुपाच्य भोजन करना चाहिए और दिन में कम–से–कम एक बार अवश्य खुलकर हँसना चाहिए।[4]

मानव–जीवन का लक्ष्य आत्म लाभ है। मानव–जीवन का स्वास्थ्य इसी आत्मोपलब्धि में माना गया है। मानव–जीवन का चरम लक्ष्य परमात्मा का साक्षात्कार माना गया है। संगीत एक यौगिक विद्या है जिसकी तीव्र एवं तीव्रतर ध्वनियाँ मनुष्य की सूक्ष्म स्नायुओं को झंकृत कर सुषुप्त कुंडलिनियों को जागृत कर देती हैं। संगीत का नाद सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह वाङमय हो अथवा विज्ञान, नाद की स्थिति

किसी–न–किसी रूप में अनिवार्य है। विज्ञान शास्त्र में नाद को वैज्ञानिक विवेचना का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। स्वरों के आंदोलन स्वरांतर वस्तुतः विज्ञान के ही विषय हैं। वाङमय मूलक जितने व्यवहार हैं वे सभी नादाश्रित हैं। संगीत एक त्रिपुटी है; गायन, वादन, नृत्य–इन त्रयों का समावेश नाद के ही विस्तार हैं किन्तु इसी के साथ साहित्य भी नाद का विस्तार है। इस बात पर परंपरावादियों का जोर रहता है। साहित्य और संगीत दोनों का मूल नाद है। इसका विवरण प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है। प्राचीन संगीतज्ञों ने नाद का विवरण देते हुए 'ततः सर्वज्ञ' वाङमय कहकर इस बात को स्पष्ट कर दिया है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार कला वही है जो युक्ति के लिए उपकारक हो। कला का अंतिम लक्ष्य भौतिकता से ऊपर उठकर एक ऐसी मधुमती की अवस्था को प्राप्त करना है जिसमें भौतिक द्वंद्वों के लिए कोई स्थान न हो। मानव–जीवन का स्वास्थ्य इसी आत्मोप्लब्धि में निहित माना गया है। मानव की इन्द्रिय शक्ति मर्यादित है। मर्यादा से अधिक संवेदनाएँ मानवीय इन्द्रियाँ कदापि ग्रहण नहीं कर सकतीं। मन भी एक इन्द्रिय है और इन्द्रियों के समान साधारण मानव मानवीय–मन भावनाओं के सीमित आवेग सहन कर सकता है। यह वेग अधिक होने पर मन थक जाता है और उसको एक प्रकार की ग्लानि का अनुभव होता है। इस ग्लानि का अर्थ अहंकार का परास्त होना है। अहंकार जब परास्त हो जाता है तब चित्त और बुद्धि निर्विकार होकर आत्म–साक्षात्कार करने योग्य हो जाती है। आत्म साक्षात्कार का माध्यम है समाधि। इस प्रकार भारतीय संगीत का संचालन समाधि की ओर होता है। पाश्चात्य संगीत सुनने से मन उत्तेजित होता है। भारतीय संगीत हमारा ईश्वर से एकाकार कराता है। भारतीय संगीत शास्त्र भी है और कला भी। भारतीय संगीत में सात स्वर हैं और मानव नाड़ी तंत्र में भी सात चक्र हैं। प्रथम स्वर 'सा' व प्रथम चक्र 'मूलाधार', दोनों ही मूलाधार हैं। हमारी कुंडलिनी शक्ति जो सुषुप्तावस्था में हमारे मेरूदण्ड में नीचे की ओर त्रिकोणाकार अस्थि में साढ़े तीन वृत्तों में रहती है, किसी साधक की शुद्ध इच्छा होने पर छः चक्रों से उत्थित होती हुई सहस्त्रार को भेदकर परमानंद की अवस्था को प्राप्त होती है। सप्त स्वर व सप्त चक्रों की तरह ही उसे वहाँ से सप्त वर्णों का सहस्त्र कमल बंद मिलता है, हाँ, पर उसे परम चैतन्य की शीतल लहरियाँ प्राप्त होती हैं. यह सप्त रंग की कल्पना भारतीय संगीत के अतिरिक्त किसी भी अन्य देश में नहीं है क्योंकि उन्होंने जगत–व्यवहार के अन्यान्य सत्यों का अनुभव नहीं किया। ये सत्यानुभव योग शास्त्र के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। नाद का अर्थ है कम्प और कम्प जब लहरों में परिवर्तित होता है तब उससे प्रकाश होता है। यह प्रख्यात वैज्ञानिक आईंस्टाइन का कथन है। इसके अनुसार जहाँ नाद है, वहाँ प्रकाश होना चाहिए। प्रकाश किरणों का विग्रह अर्थात् रंग है। इसलिए प्रत्येक नाद का एक विशिष्ट रंग होना चाहिए। भारतीय स्वरों की संख्या सात है और वर्ण अथवा रंग भी सात हैं। नाद और वर्ण का अन्योन्याश्रित संबंध है। जिस प्रकार प्रथम स्वर षड्ज है जो अन्य छः स्वरों का जन्मदाता है, उसी प्रकार षड्ज का रंग श्वेत होने के कारण वह भी अन्य वर्णों व रंगों का जन्मदाता है। अन्य संगीत–ग्रंथों में षड्ज का रंग गुलाबी या पत्राभाव बताया गया है। उसी प्रकार अन्य स्वरों के रंग भी भिन्न माने गये हैं। सप्तक के न्यास–विन्यास का संचालन आघात पुनरावृत्ति के कारण वर्णों का एक साकार स्वरूप निर्मित हो जाता है। इसीलिए भारतीय संगीत में राग–रागिनियों के स्वरूप भिन्न–भिन्न बताए गये हैं। विदेशी इसे कल्पना या विलास मानते हैं परन्तु यह कल्पना विलास नहीं है। हाँ, इसका दर्शन करना सामान्य इन्द्रिय धारणा के वश की बात नहीं है। इसके लिए इन्द्रिय की शक्ति को कार्यक्षम बनाने की आवश्यकता है, इसीलिए शास्त्र को 'गानयोग' और प्राचीन काल में संगीत कला के साधक को 'गानयोगी' कहा गया है। इस कला के साधक को सर्वप्रथम नाड़ी शुद्धि करना आवश्यक था। स्वर–साधना से स्वरों के वर्ण दिखाई देने लगते थे। नाड़ी शुद्धि के लिए सर्वप्रथम मूलाधार स्थित कुंडलिनी को जागृत करना आवश्यक था । उससे स्वरों के स्थान प्राप्त हो जाते थे और गायक संगीत की साधना के सुयोग्य बन जाता है। पुराणों में भारतीय संगीत की अनेक सरस कथाएँ हैं। मार्गी संगीत के गायक गंधर्व माने गये हैं। गंधर्वों के शरीर से सुगंध आती थी, ऐसा वर्णन है। गंध, गंधर्व और गांधर्व–गान ये शब्द–योजना सार्थक नहीं, गंध का लौकिक अर्थ हम सभी जानते हैं, गंध पृथ्वी तत्त्व का गुण है। हमारे प्रथम चक्र मूलाधार का तत्व भी पृथ्वी तत्व है। उन धारणाओं को संभालकर रखने वाला गांधार ग्राम गंधर्वों के संगीत का ग्राम था। नारद भी इस मार्गी संगीत के महान उपासक थे। उनकी ब्रह्म–वीणा अनाहत नाद पर झंकारती थी। भगवान के नाम का स्मरण ही उनका गान था। रावण भी एक गानयोगी थे। केवल गायन से ही उन्होंने भगवान शिव को प्रसन्न कर वरदान प्राप्त किया। यहाँ एक शास्त्र–विवेचन

करना भी उचित प्रतीत होता है कि सभी स्वरों का जनक षड्ज है जिसका वर्ण श्वेत है। पंचतत्वों का दूसरा तत्व है आक् अर्थात् जल, उसका वर्ण भी श्वेत है।

निष्कर्ष :

संगीत को ईश्वर का दर्जा प्राप्त है, इसलिए इस विधा में शुद्धता और शास्त्रीयता दोनों का ही महत्व है। सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों के माध्यम से मन को साधने का उपाय है संगीत। संगीत का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है। स्वर की उपासना, रियाज, शास्त्र शुद्ध–पद्धति द्वारा नाद–ब्रह्म की आराधना कर अतंर्मन में गहराई तक उतरना संगीत का मुख्य लक्ष्य है । संगीत व योग एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं क्योंकि दोनों के लक्ष्य समान हैं। विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि संगीत–साधना व योग–साधना दोनों से मनुष्य के जीवन में शक्ति का विकास होता है। अतः कहा जा सकता है कि शरीर तथा मन को स्वस्थ, प्रफुल्लित रखने के लिए योग और संगीत दोनों समान रूप से आवश्यक हैं।

संदर्भ सूची :

1. Patrika.com/Bhopal & news/connection between yoga and music -1329389
2. तिवारी, डॉ. किरन, संगीत एवं मनोविज्ञान, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली– 110002, पृ.सं.–137
3. त्रिपाठी, डॉ. दिव्या, संगीत, आध्यात्म एवं मानव नाड़ी तंत्र, राज पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.सं.–229
4. https%//www.naidunia.com/Madhya-pradesh/bhopal-yog-diwas-and-sangeet-3008562
5. https%//hindi.webdunia.com/article/health-care

Role of Ustad Zakir Hussain in Internationalization of Indian Classical Music

Yadav Sharma** **Dr. Samidha Vedabala***

Abstract

Long-distance human interactions have spawned the term "internationalization," which describes the process of internationalization that results through the exchange of worldviews and other cultural elements. In any situation, even India is not immune to this internationalization. The present article deals mainly with the Impact Ustad Zakir Hussain has made in internationalizing Indian classical music, it also looks at the journey of other Indian artists who made a serious impact when it comes to taking Indian music and culture across the Globe. The Present paper is based on the secondary data sources. The available audio/ video recordings of Ustad Zakir Hussain was analyse to come to the conclusion regarding different aspect of the Internationalization of Indian Classical Music.

Key words: *Internationalization, Tabla, Indian Classical Music, Artist, Musician*

Methodology : *The paper is based on the analysis of the secondary data obtained in the form of audio video interviews on youTube and other social media sites and interviews of ustadji on newspapers and blogs. The narrative was formed using thematic coding.*

Introduction

Globalization has resulted in increasing mobility of people, commodities, capital, information, and ideas as well as enhanced international integration, global trade liberalisation, development of cutting-edge communication technologies, and internationalisation of the financial sector (Vedabala, 2016). The phenomenon leads to internationalisation. The process of becoming or making something become an international entity is known as internationalisation. It outlines the process of creating products that can either be easily adapted to fit the needs of users in many countries or that may be created to do so. In the realm of economics, the term "internationalisation" can refer to a business that expands into foreign countries in an effort to extend its presence or gain a larger market share. Throughout the nineteenth century, Indian musicians travelled to the west, either as street performers, or as occasional students or music hall performers. However, Inayat Khan's, Tagore's, and Shankar's trips were the ambassador of Indian music in the west. The goal of all these individuals was to interpret and explain this culture, which the west had a tendency to misunderstand. To teach the west about Indian philosophy and art, they sought to build bridges between the two cultures. Each of their excursions west had a distinct end since they each came from musical, social, and intellectually disparate backgrounds (Farrell, 1999).

Indian music has had a significant impact on western music at various points in history. Indian musicians/performers have been adapted well and with deep respect in the west also. Among them, Pt. Ravi Shankar and Zakir Hussain are the names which readily come to one's mind (Stephen Blum, 1993). The sitar's popularity in the West has been done through performances and association of Pt. Ravi Shankar with renowned musicians of the West (Lavezzoli, 2007) and it gained the zenith of popularity with popular rock

*Assisatnt Professor, Department of Music, Sikkim University, Gangtok, Sikkim

**MPA.4th Sem, Department of Music, Sikkim University, Gangtok, Sikkim

band, "The Beatles" (Bhattacharya, 2020). At the same time, the impact of internationalization is such that even the West is now increasingly becoming a consumer of Bollywood music. In this regard, Indian musician A.R. Rahman has made distinguished contributions by giving music in Hollywood movies.

Figure-1 Ustad Zakir Hussain Image Source : Google

Ustad Zakir Hussain

Tabla Maestro Ustad Zakir Hussain was born in Mumbai, Maharashtra, on March 9, 1951, He was a kid prodigy, was born to tabla maestro Ustad Allah Rakha. Two days after his birth, when he was brought home from the nursing home and given to his father, Ustad Ji's introduction to the tabla and rhythm began. Ustad Allah Rakha recited the bol of the tabla because he considered that as a musician and a worshipper of Goddess Saraswati, it was his mantra/prayer rather than singing a prayer line to his ears as is customary among Indian Muslims when a new baby is brought home. From the age of three, his father began teaching him the instrument, and at the age of 11, he started travelling with him. He has worked with numerous artists from all around the world, not simply those from India. At the age of 12, Ustad Zakir Hussain performed in his first professional concert in Mumbai, India. Ustadji has made appearances in a number of documentaries, films, and commercials. Zakir Hussain received the Padma Shri and Padma Bhushan, among other honours, from the Government of India for his contributions to the tabla. He also won a Grammy in 2009 for his participation in the "Global Drum Project" in the contemporary music category.

Journey To The West and Collaborations

Ustadji in his journey to the west and rest of the world made have many collaborations. In the process of internationalization ustaji have had solo concerts called *lehra*, jazz/fusion collaborations with the artist worldwide (Johnson, 2020), music albums, cinemas and teaching Indian music (table) in foreign universities. His first performance outside the country took place at the Fillmore East in New York, where he performed alongside Pandit Ravi Shankar. Since his father wasn't feeling well, he had the opportunity to play with him. He began his career as a teacher at the University of Washington in Seattle as an assistant professor when he was 19 years old. As soon as Ustad Ali Akbar Khan (Sarod Maestro) approached him about teaching tabla at Ali Akbar Khan's Music Institute in Marin, he quit his position as a university employee.

He used to listen intently to the jazz and western band CDs that his father would bring back from travels. Ustad Ji tells amazing tales about the time his father left him off at Mickey Hart's ranch in the 1970s in his podcast with SFJAZZ. Ustad ji first experienced jazz when he was in his early teens and went to see Duke Ellington perform in India with his father. His very first performance on the West Coast was a jazz performance. The young tabla master's "first real experiences with actually playing alongside a jazz artist" were with Sarod Maestro Ali Akbar Khan and saxophonist John Handy. In the middle of the 1970s, the cooperation produced Karuna Supreme, which ranks right up there with Shakti as one of the key

elements in the development of Indo jazz fusion. Then he persisted; one after the other, he created many renowned compositions and collaborations that made him and Indian classical music famous throughout the entire world. The band Shakti, which included John McLaughlin on guitar, L. Shankar on violin, Zakir Hussain on tabla, Ramnad Raghavan on mridangam, and Vikku Vinayakram on ghatam, performed their first revolutionary concert. CBS Records captured the performance live and released it as an album.

Karuna Supreme, a 1975 recording, is among the simplest manifestations of the fusion of jazz and Indian classical music. A master of the Sarod, that exquisite string instrument with thousand year heritage, was Ali Akbar Khan. Khan was a member of a musical family lineage in India that dates back to the sixteenth century. Give the message of the music "as far as the sun and moon shine," his father, Allaudin Khan, said in bestowing upon him the title "Emperor of Music." That's exactly what Ali Akbar accomplished when he immigrated to America and opened a college in California in 1967. Alto saxophonist John Handy, best recognised for his outstanding work on some of Charles Mingus' ground-breaking albums, had already started performing with Khan when they both appeared at the Monterey and Berlin jazz festivals. Sound is God in Indian music. The Lord Ganesha is referred to in Ganesha's Jubilee Dance, which is based on a raaga that means to vibrate your body. The jazziest song is one of divine longing and love. Three movements comprise the interaction between East and West in "The Soul and The Atma." One of the few East meets West recordings that really succeeds on every level is this one.

Figure-2 Ustadji with Ust. Ali Akbar Khan and John Handy Image Source: Google

The ground-breaking planet drum CD by Grateful Dead percussionist Mickey Hart brought together some of the world's best drum talent for a collaboration that won the very first GRAMMY for World Music. This included Nigerian talking drum Ace Sikiru Adepoju, Indian tabla virtuoso Zakir Hussain, Nigerian drum legend Babatunde Olatunji, and Puerto Rican master Conguero, among others. The 1991 album held the top spot on the Billboard World Music Chart for an incredible 26 weeks. After 15 years, Hart and Hussain's musical collaboration which had its beginnings with the global fusion venture Diga Rhythm Band— resumes with a new arrangement of tranced-out beats, beautiful electronic programming, and dreamy vocals from Adepoju and Hidalgo. This time, they are joined by the late, great Olatunji, who contributed vocal samples from the original sessions, as well as Taufiq Qureshi on drums and vocals, Niladri Kumar on sitar, Dilshad Khan on sarangi.

Many more collaborations and concerts happened, to name a few 'The Melody of Rhythm' in 2009 by Benjoist Bela Fleke, 'Song for Everyone', 'Supralingua' etc. The partnerships, composition, and creation are still going on. This is clear from the extensive list of concerts for the year 2022 on the udstadji website. He is one of the most well-liked and active performers, performing at more than a hundred performances annually.

In addition to the performances, Ustadji trained a large number of pupils both in India and overseas. He was a professor there. The instrument and Indian Classical music are being spread over the world by the Ali Akbar Khan School of Music and other organisations in numerous nations.

Experiences

Ustadji talks about his experiences working on these fantastic projects and cooperating with musicians all across the world in his YouTube interview. He speaks more movingly about how working with artists from all across the world has helped him grow when speaking with Vijay Iyer.

> "The basic thing about learning Indian music- learn the incredible repertoire, ragas, rhythm cycles, fantastic compositions that are rhythmically challenging, learn to discover what the instruments wants to do; allow the instrument to speak. That is what I saw among Afro Cuban Latin Percussionists. The tonalities were being discovered ; the singing was part of the musicality of the instrument. You heard not only the rhythms being played but melodies coming out of the instrument. Each area of the instrument was being discovered and caressed to express itself. And suddenly, it was like a revelation that came to me (Hussain, 2016)."

From the analyzed interviews of ustadji his opinion on working with artists from various genres, traditions, and technological backgrounds was, when playing music involving musicians from various traditions or genres, one should be ready to improvise on the spot. To interact and communicate musically with the artists you are playing with and to foster a sense of spontaneity, you must know them really well on all levels. Technology has extended his perspective on music and affected how he approaches musical instruments (Kapur, 1997). He presents an example of how technological advancements in sound systems impacted the dynamics of live music performances and recording around the world. Additionally, he provides an illustration of how loudly and percussively instruments like the sitar and sarod were played before the development of sound systems. He respects all musicians who electrify their sounds but does not enjoy going beyond the natural nature of the musical instrument, which is attained by excessive use of technology. Ustad ji also believes that musicians of today must get knowledgeable about the technology used in music production. According to Ustad Zakir Hussain, YouTube offers musicians a fantastic platform for self-promotion and reaching a wide audience. For him personally, listening to the music of great maestros that are uploaded to Youtube has been a terrific instrument for learning and expanding his repertory.

Conclusion :

Along with creative giants like Hazrat Inayat Khan, Rabindranath Tagore, Uday Shankar, and Pandit Ravishankar, ustad Zakir Hussain made significant contributions to the globalisation of Indian culture's mysticism. The Ustadjis' collaborations, like Pandit Ravishankar's with the Beatles and other initiatives, had a significant impact on the western public, and ever since, westerners have been captivated by Indian Classical Music, which was originally restricted to the mansions of Great Emperors. The collaboration of Ustad Zakir Hussain with notable jazz musicians from the United States and other musicians from various cultures and backgrounds demonstrated the versatility of Indian Classical Music when it comes to Fusion. We also saw how western musicians adopted Indian aspects into their music and were influenced by Indian music. Among the many albums that Zakir Hussain performed on,

Karuna Supreme, Global Drum Project, Sangam, Masters of Percussion, The Melody of Rhythm, Diga, and Supralingua—which also included great artists like Ustad Allah Rakha, Ustad Ali Akbar Khan, John Handy, Mickey Hart, L Shankar, and Charles Lloyd—are regarded as the best discographies that had a significant global impact and altered how audiences around the world viewed Indian classical Music.

It's challenging to delve into the ocean that is Ustad Zakir Hussain. The goal of the current paper was to briefly discuss a few elements of his musical journey, which is an ongoing process. There are numerous things that go unspoken. Untouched. In the near future, the researcher hopes to conduct more in-depth research on the famous maestro's life.

References :

1. Farrell, G. (1999). *Indian Music and the west.* London: Oxford University Press.
2. Hussain, Z. (2022, August 26). *Zakir Hussain.* Retrieved from Zakir Hussain Selected Discographies: http://www.zakirhussain.com/music/
3. Hussain, Z. (2016, June 13). Jazz Talks: Vijay Iyer speaks with Zakir Hussain. (V. Iyer, Interviewer)
4. Bhattacharya, D. (2020, December 30). *Parallel Strides: Indian Classsical Music on a Global Platform* . Retrieved from Dhaara: https://dhaaramagazine.in/2020/12/30/parallel-strides-indian-classical-music-on-aglobal-platform/
5. Johnson, B. (2020). *Jazz Diaspora.* Routledge.
6. Kapur, G. (1997). Globalization and Culture. *Third Text ,Vol-11 (39)*, 21-38.
7. Lavezzoli, P. (2007). *The Dawn Of Indian music in the west.* New York, London: Continuum international publishing group ltd.
8. Stephen Blum, P. v. (1993). *Ethnomusicology and modern music history*. USA: university of illinois press. .
9. Vedabala, S. (2016). Indian classical music in a globalized world. *Sangeet galaxy*, Indian Music Journal, 3-9.

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

रामपुर की सदारंग–परम्परा व थाट–पद्धति

डॉ. रवि पाल*

सार–संक्षेप

'परंपरा' भारतीय शास्त्रीय संगीत का अभिन्न अंग है। परंपरा ही पुरातन संगीत को वर्तमान संगीत में संयुक्त करती है तथा विभाजक रेखा की भूमिका भी निभाती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की इस कड़ी में 'रामपुर की सदारंग–परंपरा' का बहुत विशेष स्थान रहा है। रामपुर उत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध मुस्लिम रियासत अठारहवीं सदी के प्रारंभ से ही विभिन्न विधाओं और कलाओं का केन्द्र रही। यहाँ के नवाबों को संगीत कला से बहुत प्यार था, अतः उनके द्वारा इस कला का अद्वितीय विकास हुआ। सदारंग का काल संगीत के इतिहास के लिए स्वर्ण–युग है और रामपुर के गुणियों ने दिल्ली की सदारंग–परंपरा का पूर्णतया अनुकरण किया है। पं. विष्णु नारायण भातखंडे जिन्होंने थाट–पद्धति को हिन्दुस्तानी संगीत में स्थापित किया, उनका भी संबंध रामपुर से रहा है। इस शोध–पत्र की परिकल्पना में रामपुर की सदारंग–परंपरा के अंतर्गत अपने दसों थाटों को किस तरह प्राप्त कर उसकी साधना की जाती है, उस तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द– *थाट–पद्धति, रामपुर दरबार, सदारंग–परंपरा, भारतीय संगीत, स्वर–भेद, थाट–भेद।*

शोध–प्रविधि– *प्रस्तुत शोध–पत्र को लिखने के लिए मूलरूप से माध्यमिक स्रोतों को ही लेखन का माध्यम बनाया गया है।*

'राग' शब्द भारतीय शास्त्रीय संगीत का आधार है। विभिन्न ग्रंथों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 'प्राचीन काल' से ही रागों का प्रचार रहा है तथा इन्हें भली प्रकार से समझने के लिए इनके वर्गीकरण का आवश्यकता अनुभव की गई होगी। अतः बहुत से शास्त्रकारों ने अपने–अपने समय में प्रचलित रागों के अनेक वर्गीकरण किया। आज उपलब्ध राग–वर्गीकरण पद्धतियाँ उनके इसी परिश्रम का परिणाम हैं। राग–वर्गीकरण की प्रत्येक पद्धति राग के किसी विशेष पक्ष को उसके अन्य पक्षों की अपेक्षा अधिक उभारकर प्रस्तुत करती है। रागों को भली–भांति समझने के लिए इन समस्त राग–वर्गीकरण पद्धतियों का ज्ञान होना आवश्यक है। पंडित भातखंडे द्वारा संस्थापित थाट–राग–वर्गीकरण पद्धति आधुनिक काल की एक अमूल्य देन है। पंडित भातखंडे ने संगीत–शास्त्र के नए युग का निर्माण किया है और प्रत्येक संगीत–प्रेमी उनके इस कार्य के लिए ऋणी रहेगा।

रामपुर की सदारंग–परंपरा– रामपुर राजवंश के पूर्ण पुरूष अली मुहम्मद खाँ जब मुहम्मदशाह के साथ दिल्ली आए तब उनको मुगल दरबार में सदारंग जैसे ध्रुवपदकार और वीणा वादक, रसूल खाँ जैसे कव्वाल, भवानीदीन जैसे ढोलकिए, नूरबाई, पन्नाबाई, कमलाबाई, रहमानबाई जैसी गायिकाएँ और कलाकारों को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय के मूर्धन्य सूफी ख्वाजा मीर 'दर्द' भी वहाँ थे। नवाब अली मुहम्मद का इस स्थिति से प्रभावित होना स्वाभाविक था। अतः रामपुर के नवाबों में साहित्य और संगीत के प्रति रूचि जागृत करने का काम दिल्ली दरबार के सम्पर्क ने किया।[1] नवाब मुहम्मद सादुल्ला खाँ के आश्रय में फिरोज खाँ 'अदारंग' मेहन्दी सेन और करीम सेन जैसे कलाकार रामपुर में स्थायी रूप से रहने लगे थे।[2] इस प्रकार सदारंग परंपरा का समावेश रामपुर में हुआ। आधुनिक युग के महापुरूष पंडित भातखंडे का भी संबंध रामपुर से बहुत घनिष्ठ रहा है। रामपुर नवाब साहबजादा सआदत अली खाँ (छम्मन साहब) से भातखंडे जी की घनिष्ठ मित्रता थी। वे रामपुर बहुधा उनके कारण ओर उनके लिए ही आते रहते थे। उन्होंने स्वयं लिखा है कि मैंने उनसे अनेक बातें सीखी। उत्तर के रागों के भेद मैंने उनकी संगति से भलीभांति समझा। वे अनेक वाद्य बजाते थे। सुरसिंगार तो आपके साथ ही गया, ऐसा लोग मानते हैं।[3] पं. विष्णु नारायण भातखंडे वजीर खाँ के शिष्य रहे थे।[4]

रामपुर की सदारंग–परंपरा व थाट–भेद

रामपुर की परंपरा जो सदारंग–परंपरा से संबंधित है, अतः इनके वीणा–रहस्य को समझने की अति आवश्यकता

*साईं परिवार, मकान नं. 70, ब्लॉक बी, डी.सी.एम. कॉलोनी, नत्थूपुरा बुराड़ी, दिल्ली–110084

है। इस परंपरा में कल्याण थाट को सबसे पहला थाट मानते हैं। इसी थाट से अन्य नौ थाटों की भी उत्पत्ति है। इसी कारण यमन या कल्याण को मूल थाट माना गया है।

कल्याण थाट– सा रे ग मं प ध नी सां। इस थाट में मध्यम तीव्र होता है अर्थात् सभी स्वरों की अवस्था चढ़ी हुई होती है।

बिलावल थाट– सा रे ग म प ध नी सां। इस थाट में सभी स्वर शुद्ध प्रयोग किए जाते हैं अर्थात् कल्याण थाट में मध्यम को कोमल कर देने या उसे उतार देने से हमें बिलावल थाट की प्राप्ति होती है।

खमाज थाट– सा रे ग म प ध नी सां। इस थाट में निषाद स्वर कोमल, बाकी शुद्ध स्वर प्रयोग किए जाते अर्थात् बिलावल थाट में यदि निषाद स्वर को कोमल कर दें या उसे उतार दें तो उससे खमाज थाट की उत्पत्ति हो जायेगी।

काफी थाट– सा रे ग म प ध नी सां। इस थाट में गांधार व निषाद कोमल तथा अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं अर्थात् यदि खमाज थाट के गांधार को उतार दें या कोमल कर दें तो ऐसा करने से काफी थाट के स्वरों की उत्पत्ति होगी।

आसावरी थाट– सा रे ग म प ध नी सां। इस थाट में गांधार, धैवत और निषाद स्वर कोमल व शेष स्वर शुद्ध प्रयोग किए जाते हैं अर्थात् यदि काफी थाट के धैवत को कोमल कर दें या उतार दें तो उससे हमें आसावरी थाट की प्राप्ति होगी।

भैरवी थाट– सा रे ग म प ध नी सां। इस थाट में चारों स्वर कोमल या यूँ कहें कि सभी स्वर कोमल प्रयोग होते हैं। यदि आसावरी थाट के ऋषभ को उतार दें या कोमल कर दें तो इससे भैरवी थाट की उत्पत्ति मानी जाएगी।

मारवा थाट– सा रे ग मं प ध नी सां। मारवा थाट में ऋषभ स्वर कोमल व मध्यम स्वर तीव्र तथा अन्य स्वर शुद्ध प्रयोग किए जाते हैं। यदि कल्याण थाट के रिषभ को उतार दें तो मारवा थाट की प्राप्ति होगी अथवा आसावरी थाट के स्वरों की स्थिति बदलने से यानि कोमल को तीव्र और तीव्र को कोमल कर देने से मारवा थाट के स्वर प्राप्त होंगे।

पूर्वी थाट– सा रे ग मं प ध नी सां। पूर्वी थाट में ऋषभ व धैवत कोमल और तीव्र मध्यम तथा शेष स्वर शुद्ध प्रयोग होते हैं। यदि मारवा थाट के धैवत को उतार दें तो पूर्वी थाट की उत्पत्ति होगी अथवा काफी थाट के स्वरों की स्थिति बदलने से यानि कोमल को तीव्र और तीव्र को कोमल कर देने से पूर्वी थाट के स्वर प्राप्त होंगे।

तोड़ी थाट– सा रे ग मं प ध नी सां। इस थाट में ऋषभ, गांधर व धैवत स्वर कोमल तथा तीव्र मध्यम व अन्य स्वर शुद्ध प्रयोग किए जाते हैं। पूर्वी थाट के स्वरों में गांधार को कोमल कर देने से तोड़ी थाट की उत्पत्ति होती है अथवा खमाज थाट के स्वरों की स्थिति बदलने से यानि कोमल को तीव्र व तीव्र को कोमल कर देने से तोड़ी थाट के स्वर प्राप्त होंगे।

भैरव थाट– सा रे ग म प ध नी सां। इस थाट में ऋषभ व धैवत स्वर कोमल तथा अन्य स्वर शुद्ध प्रयोग किए जाते हैं। तोड़ी थाट के गांधार को तीव्र व मध्यम को कोमल कर देने से भैरव थाट की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार, रामपुर–परंपरा का यह रहस्य प्रशंसनीय है कि एक ही थाट के स्वरों को उलटने–पलटने से नए–नए थाटों की उत्पत्ति होती है । अतः इस प्रक्रिया को 'थाट–लौटना' कहते हैं।[5] यह एक वैज्ञानिक पद्धति है। इस प्रकार, कल्याण थाट से उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति के दसों थाटों की प्राप्ति सरलतम ढंग से हो जाती है। आचार्य बृहस्पति के अनुसार इस पद्धति से थाट बनाने की क्रिया को बहादुर हुसैन खाँ की परंपरा में 'ठाठ–भेद' कहते हैं।[6]

स्वर–भेद प्रक्रिया

रामपुर परंपरा में एक दूसरी विधि से भी थाटों की प्राप्ति होती है जिसे 'स्वर–भेद' नाम से जाना जाता है और जो मूर्च्छना–पद्धति से बहुत मिलती है। तात्पर्य यह है कि इस विधि के अनुसार एक थाट के प्रत्येक स्वर को षड्ज की स्थिति में रखकर देखते हैं तो आधार स्वर के बदलने से स्वरों की स्थिति अपने आप बदल जाती है, इसी कारण यह मूर्च्छना–पद्धति से मिलती–जुलती प्रक्रिया होने पर भी भिन्न है क्योंकि इसमें स्वरों के नाम बदल जाते हैं जबकि मूर्च्छना–पद्धति में स्वरों के नाम नहीं बदले जाते हैं। दक्षिण के विद्वानों ने इस क्रिया को 'षड्ज–चालन' भी कहा है। षड्ज–चालन की यह प्रक्रिया किसी भी राग के विस्तार को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती है। इस रहस्य को ध्यान में रखते हुए गायक–वादक कभी–कभी किसी भी राग को गाते–गाते उस राग के किसी भी स्वर को आधार मानकर अन्य रागों की छाया दिखाते हैं। इस काम के लिए बड़ी

कुशलता की जरूरत पड़ती है ताकि मूल राग की स्थिति भी न बिगड़े। रामपुर के गुणियों ने इस प्रकार की प्रक्रियाओं का प्रयोग किया था जिसमें छम्मन साहब का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मारवा थाट के स्वरों का अभ्यास करते समय यदि 'ऋषभ' को आधार मानकर गाया जाय तो मालकोश राग की छाया आएगी, गायक आसानी से इस राग की फिरत कर सकते हैं। उसी प्रकार, मारवा के गांधार स्वर को आधार मानकर राग दुर्गा, तीव्र मध्यम को आधार मानकर धानी, पंचम को आधार मानकर धैवत और शड्ज छोड़ते हुए गाएंगे तो राग हिंडोल, धैवत को आधार स्वर मानेंगे तो राग भूपाली तथा निशाद को आधार स्वर मानकर राग मेघ गा सकते हैं। ये सभी राग औडव–जाति के हैं जिनमें मारवा थाट के षड्ज व पंचम स्वरों की आवश्यकता नहीं होती। इसी कारण मारवा राग को षड्जहीन करके भी गुणी लोग गाते थे, इसलिए इस प्रकार के षड्जहीन मारवा को 'निखरजा' (निषड्जा) मारवा कहते थे। इस रहस्य को रामपुर के गुणियों ने सेनियों की परंपरा से प्राप्त किया था। स्वर–भेद की यह रीति गुरू–शिष्य–परंपरा से चली आती रही है। आचार्य बृहस्पति ने जो स्वयं रामपुर दरबार के गुणियों के सम्पर्क में रहे थे, इन रहस्यों को अपने मुख से सप्रयोग बतलाया। स्वर–भेद का महत्व इस प्रकार है– "स्वर–भेद से रागों के ढाँचे प्राप्त होते थे। वीणा जैसे वाद्यों में बाएं हाथ की क्रिया में मींड प्रधान रहती थी। 'स्वर–भेद' को आधार मानकर विभिन्न रागों के वास्तविक स्वर–स्थानों की प्राप्ति मींड द्वारा की जाती थी। इस वास्तविकता को कभी नहीं भूला जाना चाहिए। थाट शब्द का अर्थ ही 'ठठरी' या 'ढाँचा' है।"[7]

'स्वर–भेद' प्रक्रिया का प्रयोग रामपुर के गुणियों ने हारमोनियम जैसे टेम्पर्ड स्केल वाद्य पर किया। इस वाद्य की खूबी यही है कि इसमें स्वर अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं, बेसुरेपन की नाम–मात्र भी आशंका नहीं होती है। हारमोनियम के पर्दों को बारी–बारी से षड्ज मानकर आसानी से यह प्रक्रिया की जा सकती है। इसी कारण रामपुर के संगीत–प्रेमी छम्मन साहब, जानी साहब, भैया गणपतराव और मौजुद्दीन खाँ सभी अच्छा हारमोनियम बजाते थे। यही कारण है कि रामपुर–परंपरा में ठुमरी–गायन का विकास अद्वितीय ढंग से हुआ। भैया गणपतराव और मौजुद्दीन खाँ ठुमरी–गायन के सम्राट थे। दोनों का संबंध रामपुर से निरंतर बना रहा था। थाट–भेद और स्वर–भेद का काम द्रुत लय में हारमोनियम पर आसानी से किया जा सकता है।

निष्कर्ष– सदारंग–परंपरा के इस रहस्य को रामपुर के गुणियों ने ग्रहण किया और इसका प्रयोग आलाप में किया जिससे राग की गहराई में उतरने का लाभ प्राप्त हुआ। सेनिया के इस भेद को ग्रहण कर ठुमरी, दादरा गाने वालों ने हारमोनियम जैसे बेसुरे वाद्य को भी रंगीन और सुरीला बना दिया अर्थात् रामपुर के इस रहस्य को समझकर, उसकी साधना कर, अपने रागों को बहुत सरलतापूर्वक साधा जा सकता है।

संदर्भ सूची :

1. पांडे, निर्मल, नगमा–ए–मौसकी, रामपुर, पृ.–44
2. बृहस्पति, सुलोचना, बृहस्पति, आचार्य; खुसरो, तानसेन एवं अन्य कलाकार, पृ.–186
3. भातखंडे, पं. वि.ना., भातखंडे संगीत शास्त्र, भाग–4, पृ.–387
4. चौबे, डॉ. सुशील कुमार, संगीत के घरानों की चर्चा, पृ.–52
5. बृहस्पति, आचार्य, बृहस्पति, सुलोचना, राग–रहस्य, प्रथम खण्ड, पृ.–20
6. वही, पृ.–21
7. बृहस्पति, आचार्य, संगीत चिंतामणि, प्रथम संस्करण, पृ.–394

कठपुतली कला में सूत्रधार की भूमिका

डा. इंदिरा बाली** **मोनिका***

सारांश

इस शोध–पत्र में भारत की कठपुतली कला में सूत्रधार की भूमिका का वर्णन किया है। कठपुतली को चलाने वाले को सूत्रधार कहते हैं। सूत्रधार भारतीय रंगमंच में कई रूपों में कार्यशीलता का स्वामी रहता है। अन्य नाट्यों में सूत्रधार का अस्तित्व और व्यक्तित्व दर्शकों के सामने रहता है जबकि कठपुतली–नृत्य–नाट्य में वह पर्दे के पीछे रह कर कार्य करता है। सूत्रधार न केवल पुतलियों की डोर को संभालता है बल्कि गायन, वादन, पात्रों का स्थान, क्रियाएँ, नृत्य, युद्ध, हास और विदूषक आदि की भूमिका का संतुलन करने का कार्य भी साथ–साथ निभाता है।

मुख्य शब्द– *कठपुतली, नृत्य, नाट्य, कला, रंगमंच*

शोध पत्र का उद्देश्य– इस शोध–पत्र में शोधार्थी द्वारा कठपुतली–कला में सूत्रधार की भूमिका का वर्णन करने की कोशिश की गई है।

साहित्य की समीक्षा– कठपुतली–कला पर आधारित प्रमुख साहित्यों का अध्ययन किया गया है।

परिकल्पना– कठपुतली कला सूत्रधार के बिना असंभव है। सूत्रधार कठपुतली–कला में केंद्रित बिन्दु है।

शोध विधि– प्राथमिक स्रोत में कठपुतली कला के इस विषय के विशेषज्ञों से मुलाकात की गई है और द्वितीयक स्रोत में कठपुतली कला से संबधित पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं का अध्ययन किया गया है।

सूत्रधार : शोधार्थी ने जब इस विषय वस्तु पर अध्ययन करना शुरू किया तो उसे यह दृष्टिगोचर हुआ कि कठपुतली कला में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका सूत्रधार की है।

कठपुतली कला राजस्थान का प्रसिद्ध लोक–नृत्य–नाट्य है। इस कला में पुतलियों द्वारा कथा को प्रस्तुत किया जाता है। कठपुतली का अर्थ है काठ की पुतली जिस को उस के रूप और क्रिया के अनुसार सजाया जाता है। इस पुतली की विशेषता यह है कि इस को सूत्र (धागा) के साथ चलाया जाता है। पुतलियों को चलाने वाले को सूत्रधार कहा जाता है। सूत्र के साथ पुतलियों को चलाने के कारण भी उस को सूत्रधार कहा जाने लगा। वह दर्शकों के सामने नहीं आता है, पर्दे के पीछे रहकर कार्य करता है। अपनी लचीली अंगुलियों द्वारा कठपुतलियों की डोर को बांध कर नचाता है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से यह भी माना जाता है कि मनुष्य भगवान की हाथ की कठपुतली है । इस संदर्भ में, महाभारत ग्रंथ में संस्कृत का एक श्लोक है जो इस प्रकार है–

''परापरेकता पुरषो विचेश्टा
सूत्रप्रोता दा रुमईवा योशा।''[1]

महाभारत के उपरोक्त श्लोक का अर्थ है कि जिस तरह सूत्रधार के हाथ में कठपुतली की डोर होती है उसी तरह ही मनुष्य की डोर भगवान के हाथ में है और वह उसको अपनी मर्जी से चलाता है। ''भागवत पुराण में भगवान को सूत्रधार कहा गया है और मनुष्य को कठपुतली माना गया है। उस कठपुतली को तीन तारों के साथ बांधने की कोशिश की है जो सत (सच, मन और सदाचार), रज (कार्य), तम (बुराई) गुण हैं, जिन सूत्रों के साथ वह मनुष्य को चलाता है।''[2] प्रकृति जो सृष्टि को चलाती है और सतो, रजो, तमो गुण के विशेष गुणों से संपन्न है। ये गुण सारी प्रकृति को नियंत्रण में रखने का काम करते हैं। कठपुतली नृत्य को संतुलित करने वाला सूत्रधार इन तीनों गुणों का स्वामी तो नहीं होता लेकिन उस का काम ईश्वर–रूपी कहा जा सकता है, क्योंकि यह सतो, रजो, तमो के गुण को ही व्यक्त करता है। ऐसी उपाधि के स्वामी सूत्रधार को संसार के धर्मों का ज्ञाता, कोमल कलाओं का ज्ञानवान, सारे रीति–रिवाजों से अवगत और अच्छे संस्कार का होना जरूरी है। नाट्य–कला में निर्देशक को सूत्रधार कहते हैं। नाट्य–शास्त्र में सूत्रधार का विशेष वर्णन है, ''जो नाट्य

*नृत्य विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला
**एसोसिएट प्रोफेसर, नृत्य विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला

की निर्विघ्नता के लिए देवी–देवताओं की पूजा और कला की देवी सरस्वती की कृपा–दृष्टि और पूर्व रंगमंच विधान (मंगलचरण की वन्दना) के नियमों की पालना करता है जिस में प्रत्याहार (प्रारंभ की सूचना) वाद्य स्वर करना आदि आता है।''[3] भरत मुनि ने नाट्शास्त्र के 35वें अध्याय में सूत्रधार का वर्णन किया है। गीत, वाद्य और पात्र सब को समान रूप से जानने वाले और शास्त्रों के अनुसार उसका प्रयोग करने वाले व्यक्ति को सूत्रधार कहते हैं। डा. पिशेल ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कठपुतली–कला के सूत्र–संचालक के समान नाटक के रंग–प्रबंधक को सूत्रधार कहा जाता है। ''बलवंत गार्गी ने भी संस्कृत नाट्य के सूत्रधार को, सूत्र की डोरी पकडने़ वाले सूत्रधार के समान कहा है। यह नाम उस समय सूत्र की डोरी से नाचने वाली पुतलियों के तमाशे से लिया गया है।''[4] डा. श्याम परमार भी सूत्रधार को कठपुतली के सूत्र–संचालन से संबंधित बताते हैं और इसे नाट्यशास्त्र में कठपुतली के खेल से अपनाया हुआ मानते हैं जिसका अर्थ है वह व्यक्ति जो गीत, वाद्य और पाठ को एक सूत्र में बाँधना जानता हो।

''डा. पिशेल ने भारतीय नाटय के प्रसिद्ध पात्र सूत्रधार को इस क्रम में जोड़ते हुए यह माना है कि नाटय का सारा संचालन इसके हाथ में रहता है। सूत्रधार का कठपुतली कला में विशेष स्थान है।''[5] वह अपने अभिनय को पुतलियों द्वारा ही व्यक्त करता है। कठपुतली कला नृत्य–नाट्य और लोक–कला दोनों रूपों में मूल्यवान सांस्कृतिक सामग्री प्रदान करती है।

सूत्रधार पूरी कथा प्रस्तुति के दौरान रंगमंच पर ही रहता है और कथा–प्रस्तुति के अनुसार रंगमंच का संचालन करता है। दर्शकों को कथा–कहानी की प्रस्तुति और उसके कलाकारों के बारे में जानकारी देता है। दर्शकों को पात्रों से परिचय करवाता है। कठपुतली कला में जब तक दृश्य बदलता है या पात्र बदलते हैं, सूत्रधार दर्शकों को अगले दृश्य और कहानी के बारे में बताता है। कठपुतली कला में जिन घटनाओं की मंच पर प्रस्तुति नहीं कर सकते, उन दृश्यों को सूत्रधार अपनी वाचिक अभिनय कला के द्वारा वर्णन करता है। अलग–अलग दृश्य को एक कथा में संचित करता है और आने वाले दृश्यों के महत्व पर प्रकाश डालता है। वह दर्शक, कथा, प्रस्तुति, संगीत, कठपुतली को एक साथ नियंत्रित रखता है। वह हर कथा–कहानी का धार्मिक, सामाजिक और नैतिक उपदेश कहानी के अंत में दर्शकों को बताता है। कठपुतली कला में नायक के गुण और कवि की रचना को सूत्र में बांधने वाले सूत्रधार को कठपुतली कला का केन्द्र बिन्दु कह सकते हैं। कठपुतली कला में सूत्रधार की मुख्य भूमिका है और वह कथा और कथा के पात्र (कठपुतलियों) को नियंत्रण में रखता है।

निष्कर्ष– कठपुतली कला में सूत्रधार का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। कठपुतली कला में सूत्रधार ही मुख्य पात्र है। सूत्रधार अपनी भावनाओं और कला से पुतलियों को चलाता है। सूत्रधार को सूत्रधार, निर्देशक, प्रबंधक आदि नामों से भी जाना जाता है।

सन्दर्भ सूची :

1. वरदपांडे, एम.एल., हिस्ट्री आफ इंडियन थिएटर, अभिनव पब्लिशर, नई दिल्ली, 1987, पृ. 64
2. लाल, आनंदा, द ऑक्सफोर्ड कंपेनियन टु इंडियन थिएटर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2004 पृ. 65
3. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 1984, पृ. 49
4. गार्गी, बलवंत, रंगमंच, नवयुग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1999, पृ. 32
5. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1984, पृ. 49

तकनीक के माध्यम से संगीत शिक्षा का विकास

डॉ. शिल्पी श्रीवास्तव*

सारांश

आधुनिक शिक्षा–प्रणाली में जो परिवर्तन आया है वह मनुष्य की सतत् विचारशीलता के परिणाम हैं। संगीत की शिक्षा–प्रणाली बहुत प्राचीन है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है, नित्य नूतन आविष्कारों के माध्यम से अनेक क्षेत्रों के साथ–साथ संगीत के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आये हैं। समयानुसार कला के मूल तत्वों, समाज में उनके प्रयोग और प्रस्तुतिकरण की शैलियों में परिवर्तन होता रहता है। विगत कई वर्षों से हमारे यहाँ सृजनात्मकता के नवीन प्रयोगों से नये–नये आयाम खुले हैं, नयी–नयी चुनौतियाँ सामने आयीं हैं । नवीन अनुसंधान ने भारतीय संगीत की खोई मान्यता को प्राप्त कर पुनः नये सिरे से भारतीय संगीत को आम जनता तक पहुँचाने में मदद की। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने भी संगीत के पुनरूत्थान की ओर ध्यान दिया है। भारतीय संगीत वस्तुतः आज भारत तक ही सीमित नहीं है। प्राचीन काल में जहाँ भारत की कला एवं संस्कृति सुदूर एशियाई एवं यूरोपीय देशों से जुड़ी रही, वहीं आज विश्व के अनेक कला–प्रेमी देशों जर्मनी, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस, कनाडा, नेपाल, श्रीलंका, मिस्त्र तथा यूनान में भारतीय कला एवं संस्कृति श्रोताओं के गले की हार है। इन सभी देशों में भारतीय संगीत प्रसारण एवं तकनीक के माध्यम से हमें सुनायी पड़ता है । विदेशों में भी संगीत की शिक्षा तकनीकी विकास के द्वारा ही संभव हो पायी है।

मुख्य शब्द : *संगीत, शिक्षा, तकनीक, प्रौद्योगिकी, अनुसंधान, पुनरूत्थान।*

शोध माध्यम : *पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं का अध्ययन कर सामग्री संकलित की गई है ।*

हिन्दुस्तानी संगीत समय के अथाह सागर से गुजरता हुआ आज वैज्ञानिकता के आभूषणों से सजा–सँवरा है। वर्तमान युग सूचना एवं प्रौद्योगिकी का युग है। आज भारत प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अन्य देशों से पीछे नहीं है। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत अधिक–से–अधिक सुविधा–संपन्न होता जा रहा है। इलेक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी ने सबसे अधिक संगीत के उपकरणों के निर्माण एवं विकास पर प्रभाव डाला है। वैज्ञानिक साधनों के आविष्कार के कारण संगीत कला का तीव्रता से प्रचार–प्रसार हो रहा है। रेल, डाक, तार, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि साधनों द्वारा विभिन्न देशों से सम्पर्क स्थापित करना सुगम हो चुका है। संगीत के वैज्ञानिक विकास के संबंध में निम्न कथन उल्लेखनीय है– **''आज संगीतकार प्रेस, साक्षात्कार आदि द्वारा सामाजिक संरक्षण चाहता है। आयोजक आयोजन कर श्रोता का निर्माण करता है। श्रोता ही संरक्षक होता है, अब वह श्रोता जनसंचार माध्यमों की संस्कृति के प्रभाव से निर्मित है। अतः संगीतकार के लिये संचार–माध्यमों का उपयोग आवश्यक हो जाता है। संगीत का यही आधुनिकतावाद संगीत के क्षेत्र में नयी संभावनाओं को पैदा करता है।''**[1] वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप विभिन्न नयी तकनीकों का प्रयोग हो रहा है। अतः यह सिद्ध होता है कि वर्तमान युग में जो कुछ भी हो रहा है वह संगीत की समृद्धि का अंश है। **''19वीं शताब्दी तक आते–आते संगीत का पुनरुत्थान हुआ व संगीत शिक्षा को सर्वमान्य रुप से प्रतिष्ठित किया गया। संस्थागत शिक्षण, स्वर–लिपि पद्धति, संगीत सम्मेलन, सांगीतिक सिद्धांतों से संबंधित अनेक ग्रन्थों की रचना आदि उपलब्धियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।''** आज विद्युत चालित यन्त्र संगीत के प्रचार–प्रसार की दृष्टि से वरदान सिद्ध हुए हैं। अतएव इनइलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत होता है।

इलेक्ट्रॉनिक उपकरण–

वर्तमान युग में विज्ञान का प्रभाव सर्वत्र दिखायी देता है। इसी वैज्ञानिक तकनीक के माध्यम से हम अपने संगीत की परंपरा को सुरक्षित रख सकते हैं। बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में संगीत के अनेक अविष्कार हुए जिनका कार्य–क्षेत्र तकनीकि ज्ञान के अभाव में सीमित था किन्तु इस शती के उत्तरार्द्ध में

*प्रयागराज

उनमें तीव्र गति से परिवर्तन हुए। स्वतंत्र भारत में वैज्ञानिक उपलब्धि समाज के विभिन्न पक्षों को प्रभावित कर रही है। संगीत के क्षेत्र में विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का प्रभाव पड़ा है।

''इनमें प्रमुखतः ग्रामोफोन, आकाशवाणी, दृश्य–श्रव्य संयंत्र टेलीवीजन, जो उत्तरार्द्ध की देन है। इसके अतिरिक्त टेपरिकार्डर कैसेट्स, विद्युतीय वाद्य वीडियो, कॉम्पैक्ट डिस्क व अत्याधुनिक डी.वी.डी। इसके साथ ही ध्वनि विस्तारक यंत्र, रिकॉडिग के लिए अत्याधुनिक स्टूडियो इत्यादि का प्रयोग उत्तरार्द्ध की देन है जिसने भारतीय संगीत को वैज्ञानिक दिशा दी, जिसके माध्यम से संगीत कला का प्रचार दूर–दूर तक विदेशों में हुआ।''[2] वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में तीव्रता आयी। ये उपकरण हमारे शास्त्रीय संगीत की धरोहर को सुरक्षित रखने में भी अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए हैं। इन विभिन्न वैज्ञानिक उपकरणों का विस्तृत विवेचन किया जाना अपेक्षित है।

ग्रामोफोन–

इसका अविष्कार 20वीं शती. के प्रारम्भ में हुआ। ग्रामोफोन का प्रयोग शास्त्रीय संगीतज्ञों की रिकॉर्डिंग के लिए मुख्य रूप से होता था। इस अविष्कार को लाखों घरों में स्थान मिला– ''It imposed a standard duration musical education listening popularization, criticism, concert, giving and musicology. These could be replayed continuously. So had at much more iensidions impact on the minds at the impressionable than other forms by communication."[3]

ग्रामोफोन पर शास्त्रीय संगीत के कलाकारों का ध्वनिमुद्रण आज भी उपलब्ध है जो मुख्यतः 20वीं शता. के पूर्वार्द्ध के थे। ग्रामोफोन के आविष्कार द्वारा शास्त्रीय संगीत को मूर्त रूप प्रदान किया गया क्योंकि तब ऐसा कोई साधन उपलब्ध नहीं था जिसके माध्यम से संगीत के क्रियात्मक रूप को सुरक्षित रखा जा सके । इसके माध्यम से कलाकारों की विद्या को जीवित रखा जा सकता है। अतः यह आविष्कार संगीत के लिये वरदान सिद्ध हुआ।

टेपरिकॉर्डर–

टेपरिकॉर्डर जैसी वैज्ञानिक उपलब्धि का शुभारंभ 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। टेपरिकॉर्डर द्वारा रिकॉर्ड करना ग्रामोफोन की अपेक्षा अधिक सुलभ एवं स्पष्ट था। रिकॉर्डिंग पद्धति कैसेट्स के द्वारा होने से ध्वनि का अंकन आसान हो गया। कोई भी व्यक्ति उसका उपयोग स्वयं कर सकता है। यह अविष्कार मंच–प्रदर्शन के कलाकारों के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है।

इसके लाभ निम्न बिन्दुओं में स्पष्टतः देखे जा सकते हैं–

1. टेपरिकॉर्डर में अन्य कलाकारों का गायन रिकॉर्ड किया जा सकता है।
2. इसमें अपना ही कार्यक्रम रिकॉर्ड करके, उसे दुबारा सुना जा सकता है एवं उसमें हम मूल्यांकन भी कर सकते हैं।
3. जो चीज हमें सुनने में अच्छी लगे, उसे कुछ अंशों में रिकॉर्ड करके हम याद कर सकते हैं।
4. टेपरिकॉर्डर के माध्यम से हम विभिन्न अच्छी चीजों का संकलन कर सकते हैं।

माइक्रोफोन–

ध्वनि विस्तार–यंत्रों में माइक्रोफोन का स्थान महत्वपूर्ण है जिसका अविष्कार 20वीं शता0 के पूर्वार्द्ध में हो चुका था। इस युग में माइक्रोफोन ने एक नये युग का सूत्रपात किया। सन् 1950 से पहले माइक्रोफोन कभी–कभी ही मंच पर दिखायी देता था, पहले लोग खुली आवाज में बिना माइक्रोफोन के गा लेते थे, किन्तु उत्तरार्द्ध में माइक्रोफोन प्रत्येक संगीत सम्मेलन में प्रयुक्त होता है। माइक्रोफोन के कारण गायकों ने हल्की आवाज में गाना आरंभ कर दिया। इसका कारण है कि खुली और बुलन्द आवाज माइक्रोफोन के सामने फटी–सी प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त हल्की एवं बनावटी आवाज माइक्रोफोन से सुरीली प्रतीत होती है।'माइक्रोफोन और ध्वनिवर्धक की खोज के कारण प्रस्तुति में फिर एक बार बदलाव हो गया। इस खोज के कारण तो मानो क्रांति ही हो गयी। तनाव के बिना गायक–वादक अपनी महफिल में अधिक समय तक रंग भरने लगे।''[4]

वर्तमान समय की संगीत सभाओं का आवश्यक अंग माइक्रोफोन बन गया है। इसी कारण श्रोताओं की संख्या में अपार वृद्धि हुई है। माइक्रोफोन आज के संगीतज्ञों की सफलता के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है।

वीडियो–

वीडियो कैसेट भी एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धि है जिसमें सजीव चित्रण किया जा सकता है।

कॉम्पैक्ट डिस्क (C.D.)–

जापान की प्रसिद्ध कम्पनी सोनी एवं फिलिप्स ने एक ऐसी प्रणाली की खोज की जिसमें किसी भी तरह की विकृति आने की संभावना नहीं थी। ''**आधुनिक समय में कॉम्पैक्ट डिस्क का विशेष स्थान है। रिकॉर्ड प्लेयर की तुलना में यह तकनीक कहीं अधिक विकसित है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। वाद्यों तथा कलाकारों की आवाज भी इसमेंअति सूक्ष्म एवं स्पष्टता से सुना जा सकता है।**''[5]

शास्त्रीय संगीत के इलेक्ट्रॉनिक वाद्य– आधुनिक में विज्ञान के आविष्कारों से शास्त्रीय संगीत जगत भी प्रभावित हुआ है। शिक्षार्थियों को अभ्यास हेतु विभिन्न प्रकार के वाद्य सुलभ हो गये हैं, जैसे इलेक्ट्रॉनिक तबला, तानपूरा आदि। अतः उन्हें अभ्यास हेतु संगतकारों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। वायलिन, बांसुरी, शहनाई आदि के साथ स्वर–पेटी की संगति प्रचार में है। इसका आकार छोटा होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में सुविधा रहती है परंतु यह विद्युतीय उपकरण है, इसका उपयोग एक सीमा तक ही किया जाना आपेक्षित है।

विद्युतीय (इलेक्ट्रिक) तानपूरा– स्वरपेटी की भॉति इसका भी महत्व भारतीय शास्त्रीय संगीत में बहुत अधिक है। इसका आविष्कार श्री जी. राजनारायण ने किया। इसका आकार छोटा होने के कारण आवागमन में सुविध होती है।

विद्युतीय (इलेक्ट्रिक) तालमाला– इस उपकरण के आविष्कारक भी श्री जी. नारायण हैं। इसमें उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों पद्धतियों के ताल विद्यमान हैं। इसमें विभिन्न लयों, जैसे– विलंबित, अति विलंबित, मध्य और द्रुत में तालों को व्यवस्थित किया जा सकता है। इसका उपयोग किसी संगतकार की अनुपस्थिति में किया जा सकता है।

मेट्रोनोम– मेट्रोनोम के आविष्कारक एमस्ट्रेडय के वैज्ञानिक विंकिल थे। इसकी गति निश्चित रूप से टिक्–टिक् की ध्वनि करती हुयी चलती है एवं इस गति को इच्छानुसार बढ़ाया या घटाया जा सकता है। इसके प्रयोग से विद्यार्थियों की लय प्रबल होती है।

कम्प्यूटर–

कम्प्यूटर का विकास 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। वर्तमान युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रभाव देखा जा सकता है। संगीत के लिए तो यह बहुत उपयोगी है। इसके द्वारा संगीत के तत्त्वो का विश्लेषण किया जा सकता है।

संगीत सॉफ्टवेयर–

यह सॉफ्टवेयर ऐसे लोगों के लिये तैयार किया गया है जो संगीत जिज्ञासु हैं। इस प्रोग्राम के माध्यम से संगीत सिद्धांतों को सीखा एवं सृजन किया जा सकता है। यद्यपि इसके लिये उच्च स्तर के संगीत ज्ञान की आवश्यकता नहीं परंतु संगीत–सृजन हेतु स्वरांतर एवं वाद्य–वृन्दकरण में सिद्धहस्तता की आवश्यकता रहती है। इसे समझने हेतु ऐसे संगीतज्ञों की आवश्यकता होती है जो इस प्रकार के संगीत की स्वरलिपि से परिचित हों तथा स्वरों के लिये प्रयोग हेतु चिन्हों की समझते हों एवं उसे पढ़कर गा या बजा सकते हों।

भारतीय संगीत के क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग–

वर्तमान समय में कम्प्यूटर के द्वारा संगीत जन–साधारण की पहुँच में सरलता से सुलभ हो गया है। मिडी प्रौद्योगिकी ने व्यक्ति को संगीत की गतिविधियों से जोड़ने में सरलता ला दी है। आंकड़ों का विश्लेषण, तालिकाओं का संकलन आदि कम्प्यूटर के द्वारा आसानी से संभव है।

कम्प्यूटर का प्रयोग विशेषतः निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है–

रागों का विस्तृत अध्ययन– कम्प्यूटर के प्रयोग द्वारा हिन्दुस्तानी रागों के संपूर्ण ब्यौरे के साथ तैयार किये गये अनुरूपण मॉडल से किसी राग का विभिन्न दशाओं में विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है।

नये रागों की खोज– कम्प्यूटर की सहायता से नये रागों की खोज करना सरलता से संभव हो गया है। कम्प्यूटर की विशेष सहायता द्वारा ऐसा अनुसंधान किया जा सकता है । यद्यपि यह एक कठिन कार्य है। कम्प्यूटरों की सहायता से नये रागों की प्रस्तुति को सुनकर स्थापित नियमों के साथ उनके औचित्य एवं सामंजस्य पर निर्णय लिया जा सकता है।

शिक्षण–सामग्री के रूप में– शिक्षण की सहायक सामग्री के रूप में कम्प्यूटर का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। कम्प्यूटर की सहायता से किसी राग का अभ्यास कराया जा सकता है। माइक्रो कम्प्यूटर की सहायता से संगीत के आलाप 'अथवा' 'तान' की पंक्तियों को बार–बार दोहराना नहीं पड़ता।

वर्ल्डवाइड वेब– इस सुविधा में सर्वर की एक श्रृंखला हाइपर टेक्स्ट के माध्यम से एक–दूसरे से जुड़ी रहती है। हाइपर टेक्स्ट सूचनाओं को प्रस्तुत करने का एक ऐसा माध्यम है जिसमें विषयों को प्रधानता दी जाती है। मोजाइक, नेटस्केप नेवीगेटर तथा इंटरनेट एक्सप्लोरर इसके सर्वाधिक प्रचलित साफ्टवेयर हैं। किसी भी वेबसाइट को खोलने का सूचना कोड है।

सर्चइंजन– इसकी सहायता से किसी भी विषय की वेबसाइट आसानी से खोली जा सकती है। याहू विश्व का सबसे बड़ा सर्च इंजन है। शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में इसके माध्यम से अनेक वेबसाइट की सूची प्राप्त की जा सकती है।

वेबसाइट– वेबसाइट के माध्यम से किसी भी विषय के संबंध में जानकारी आसानी से प्राप्त की जा सकती है। वेबसाइट के पते के अंतिम तीन अक्षर महत्वपूर्ण होते हैं जो बताते हैं कि आपने जो साइट खोला है वह किस प्रकार का है। उदाहरणस्वरूप edu शब्द किसी शैक्षणिक संस्थान की साइट को संकेत करता है। इस सुविधा से संगीत से संबंधित विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।

यूजनेट–इस सुविधा द्वारा नेटवर्क में निहित सूचनाओं के भण्डार को किसी विषय आधारित समूह में बॉटा जा सकता है। यूजनेट की सहायता से एक व्यक्ति अनेक व्यक्तियों से संपर्क कर सकता है। यह संगीत में बहुत उपयोगी हो सकता है। संगीत के जिज्ञासु अपना प्रश्न किसी अन्य स्थान पर बैठे संगीतज्ञ से पूछ सकते हैं।

चैटरूम– चैट सामान्यतः लिखित रूप में होता है किन्तु वर्तमान मे वॉयस चैट भी प्रचलित है। संगीत के क्षेत्र में यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसकी सहायता से कोई गायक किसी विद्यार्थी को दूर बैठकर स्वर लगाकर बता सकते हैं।

इसके अतिरिक्त कम्प्यूटर के अन्तर्गत 'इण्टरनेट' का प्रयोग वर्तमान समय में प्रायः सभी क्षेत्रों में हो रहा है।

संगीत के क्षेत्र में इण्टरनेट का महत्व–

वर्तमान समय में सूचनाओं का आदान–प्रदान करने में इण्टरनेट की भूमिका महत्वपूर्ण है। इण्टरनेट के माध्यम से विश्वविद्यालय, सरकारी व गैर सरकारी संस्थानों, पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं, लेखों, शोध–लेखों इत्यादि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान युग में इण्टरनेट द्वारा संगीत के सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक पदों को विश्व के किसी भी स्थान पर सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। ''संगीत की संस्थाएँ, पाठ्यक्रम, कलाकारों से सम्बन्धित जानकारी, वीडियो, ऑडियो, सी0डी0, पुस्तकों की सूची, संगीत–सम्बन्धी सामाजिक संस्थाएँ प्रमुख संगीत सम्मेलन, वाद्य–विक्रेता सूची, रिकॉर्डिंग सूची इत्यादि इण्टरनेट पर उपलब्ध है। संगीत–शिक्षण को विश्वव्यापी बनाने हेतु इण्टरनेट की प्रमुख सेवाओं ई–मेल, ऑनलाइन, चैटिंग, वीडियो, क्रॉन्फ्रेसिंग, ऐजुसैट एवं व्यवसाय हेतु ई–कॉमर्स का प्रयोग किया जा सकता है।''[6] इण्टरनेट की सहायता से शोध–कार्यों में अत्यधिक मदद मिलती है ।

संगीत के संदर्भ में नेट की उपयोगिता एवं प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता–" Browsing Music in a store may soon be passe. As more and more Indians get Net sarvy down loadable online music is proving to be next best otpion to be CD or cassette."[7] इंटरनेट का सीधा–साधा अर्थ है कम्प्यूटरों का एक ऐसा जाल जिसमें विश्वस्तर पर सभी कम्प्यूटर एक–दूसरे से जुड़े हों। सर्च इंजन की सहायता से संगीत से संबंधित वेबसाइट को ढूँढकर विषय–सामग्री प्राप्त की जा सकती है।

इंटरनेट से मिलने वाली सुविधाएँ–

ई–मेल– यह एक ऐसी सुविधा है जिसके माध्यम से विश्वभर में किसी के पास संदेश मिनटों में भेजा जा सकता है। ई–मेल आधुनिक संदेश–प्रेषण का सस्ता एवं सरल माध्यम है। संगीत के क्षेत्र में विभिन्न कार्यालयों, प्रकाशन–संस्थानों, शिक्षण–संस्थानों के साथ पत्र व्यवहार के लिये इसे प्रयोग किया जा सकता है।

टेलिटेक्स्ट– इस प्रणाली द्वारा संगीत से संबंधित सामग्री समाचार कार्यक्रमों की सूची, शास्त्रीय गायन, वादन या नृत्य से संबंधित कार्यक्रम की जानकारी आदि की समीक्षा प्रस्तुत की जा सकती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न कलाकारों का जीवन परिचय, उनकी गायन या वादन–शैली एवं घराने संबंधित तथ्य भी दिये जा सकते है। वाद्यों के चित्र रागो के परिचय एवं बंदिशों को भी कम्प्यूटर में फीड करके टेलिवीजन द्वारा प्रचारित किया जा सकता है।

वीडियोटेक्स्ट– इस प्रणाली का शास्त्रीय संगीत से संबंधित सूचना प्राप्त करने हेतु प्रयोग किया जा सकता

है। जैसे– किसी सभागार में कौन–सा कार्यक्रम चल रहा है। शास्त्रीय संगीत के कौन–कौन से वाद्य बाजार में उपलब्ध हैं आदि सभी सूचनाएँ कम्प्यूटर के डाटा बेस में संचित रहती हैं।

टेलिकांफ्रेन्स– टेलीकाफ्रेन्स का अर्थ है– दो या दो से अधिक स्थानों पर तीन या तीन से अधिक व्यक्तियों का आपस में दूरसंचार साधनों द्वारा विचार–विमर्श करना। टेलिकांफ्रेंस तीन प्रकार की होती हैं– 1. ऑडियो कांफ्रेस 2. वीडियो कांफ्रेंस 3. कम्प्यूटर कांफ्रेंस। इस प्रकार भी सुविधाओं का प्रयोग संगीत की गोष्ठियों हेतु किया जा सकता है। दूर बैठे संगीतज्ञ टेलीकांफ्रेन्स के द्वारा संगीत–गोष्ठी का आयोजन कर सकते है। इसके अतिरिक्त अपने गुरू–शिष्यों को दूर बैठकर शिक्षा प्रदान कर सकते हैं।

साइबर शिक्षा– साइबर शिक्षा के अन्तर्गत विद्यालय और विश्वविद्यालय की शिक्षा घर बैठे ही 'इंटरनेट' के माध्यम से संभव है। आजकल इसे 'ऑनलाइन एजुकेशन' भी कहा जा सकता है। हमारे देश में इस दिशा में तेजी से कार्य चल रहा है। बंगलौर की सॉफ्टवेयर कंपनियों ने साइबर शिक्षा हेतु सॉफ्टवेयर तैयार किया है। संगीत विषय में भी इस तकनीक को अपनाकर घर बैठे लोगों को संस्थाओं से जोड़ना सरल हो गया है।

इलेक्ट्रॉनिक पुस्तकें– इंटरनेट और वेबसाइट के प्रचार द्वारा अब साहित्य, विज्ञान, समाजशास्त्र, संस्कृति एवं कला आदि अनेक विषयों की पुस्तकों की इलेक्ट्रॉनिक प्रिंटिंग की जा रही है।

स्पष्ट है कि आज कम्प्यूटर द्वारा दूर–संचार के क्षेत्र में नई क्रांति आई है। वस्तुतः कम्प्यूटर एक ऐसा तीव्र मशीन है जो एक सेकेण्ड में हजारों शब्द एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेषित कर सकता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि इन सभी वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग वर्तमान समय में संगीत की गुणवत्ता को बढ़ा रहा है। ''**यह यांत्रिक युग है जिसकी गति स्पूतनिक के समान है, अतः हमको भी उसी गति के साथ चलने की चेष्टा करनी चाहिये। यदि प्राचीन और नवीन अर्थात् दोनों युगों के श्रेष्ठ तत्व उपलब्ध कर समन्वित किये जाएँ, तो व्यावहारिक दृष्टि से यह हमारी परंपरा को समृद्ध करेंगे।**''[8]

दूरस्थ शिक्षा– वर्त्तमान में दूरस्थ शिक्षा ने शास्त्रीय संगीत की शिक्षा पद्धति पर काफी प्रभाव डाला है– ''दूरस्थ शिक्षा क्षेत्र विगत दो–तीन दशकों से विकसित हो रहा है जिसमें मीडिया व प्रौद्योगिकी के विकास का बहुत बड़ा हाथ है। वास्तव में सम्पर्कशीलता व सम्पर्क प्रवणता किसी भी दूरस्थ शिक्षा प्रणाली की नींव और कुंजी है।[9] दूरस्थ शिक्षा में वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा संगीत–शिक्षा प्राप्त करते हैं।

निष्कर्ष :

वर्तमान युग में वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग संगीत के प्रचार–प्रसार में हो रहा है। उपर्युक्त वर्णित वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न प्रकार की सुविधाओं का लाभ उठा सकते हैं एवं संगीत के जिज्ञासु अपनी उत्कण्ठाओं का समाधान कर सकते हैं। साथ ही, यह कहा जा सकता है कि तकनीक प्रयोग होना चाहिये किन्तु इसका प्रयोग करते हुए हमें लक्ष्य को ध्यान में रखना होगा। तकनीक को अपने ऊपर हावी होने से हमें खुद को बचाना भी होगा। तकनीकी विज्ञान ने जन–जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है और हमारा संगीत भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा है।

संदर्भ सूची :

1. काव्या, डॉ. सिंह लावण्य, संगीत सुधा, कनिष्क पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण– 2009, पृ. 17
2. दत्ता, डॉ. पूनम, भारतीय संगीत (शिक्षा और उद्देश्य), राज पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण– 2005, पृ. 72
3. अनीता, डॉ. गौतम, भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग, कनिष्क पब्लिशर्स, द्वितीय संस्करण– 2008, पृ. 32
4. पुरी, डॉ. मृदुला, संगीत मीमांसा, सत्यम पब्लिशिंग हाउस प्रथम संस्करण– 2010, पृ. 386
5. अनीता, डॉ. गौतम, भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग, कनिष्क पब्लिशर्स, द्वितीय संस्करण– 2008, पृ. 34
6. शर्मा, डॉ. अमिता, शास्त्रीय संगीत का विकास, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, प्रथम संस्करण, 2000, पृ. 133
7. संगीत, मासिक पत्रिका, दिसम्बर 2006, पृ. 15
8. शर्मा, प्रो. स्वतंत्र, सौन्दर्य रस एवं संगीत, प्रतिभा प्रकाशन, प्रथम संस्करण– 2005, पृ. 325
9. काव्या, डॉ. सिंह लावण्य, संगीत सुधा, कनिष्क पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण– 2009, पृ. 19

The European Style of Art at Bengal as a Document of Time

Dipto Narayan Chattopadhyay*

Abstract

In India, the tastes of the Mughal Empire and the Mughal Nawabs and the deep interest in art and architecture are noticeable. Proof of this is the advanced and aesthetic depth of art and architecture built during the Mughal period. When the Mughal Empire was coming to an end during the reign of Emperor Aurangzeb, it was at this time that a group of French and Portuguese merchants established a trading center here. The importance of art and esthetics in the lives of European foreigners was immense. Paintings in particular was a very important aspect throughout their lives. Like the Mughals, they too lived a bright and graceful life with art and paintings. This created an important aspect in the art history of Bengal. The new foreign patrons hired local artists to invent art according to their tastes and needs. These artists were employed to paint portraits in places like Chinsurah, Chandarnagar, and Serampore. From the mid-eighteenth century to the mid-nineteenth century, many capable and skilled local artists received the patronage of the company's bureaucrats and officers. One of the main purposes of painting for these artists was to make a living. That is why they followed the instructions of their patrons, and they set the content of the paintings to please the patrons, keeping in mind their emotions. The subject of their paintings became the lords of patrons' homes and women, their pets, and various forms of architecture. At that time, most of these artists became acquainted with the paintings of European painters who came to the country from abroad.In particular, they created a deep connection with the landscape images. The first of the notable names among these local artists was Sheikh Mansoor Ali of Kareya, who created paintings in the European style. His highly realistic paintings became known as the Company School of Painting. Some of the paintings created during this period are called 'Dutch Bengal' or 'French Bengal' paintings according to their predecessors.

Keywords: *European style of art, academic naturalism in Bengal art, Early Bengal paintings, Paintings as a document of time, oil paintings of Bengal, European influence on Bengal art.*

Methodology : *The research paper is based on both primary and secondary data like books, magazines, catalogues, journals and interviews.*

In the Bengal art scenario, the colonial period refers to the period from 1757 to 1947. The visual art and esthetics of Bengal flourished in various ways during nearly two hundred years of British colonial rule. And in this course of development, the great influence of the attitude and taste of the English ruling class is reflected. But in spite of this, it is not difficult to identify the different genres and styles of Bengal art. After the establishment of British rule in Bengal, many artists from England and other European countries entered India with the desire to become rich overnight. At least 60 such artists are specifically mentioned in the art history of Bengal. All these artists mainly worked in three technical ways. The first process is painting through oil on canvas. The second one is, miniature painting on ivory with great precision and detailing. The third method was watercolour painting on paper, and later printing in the engraving method. Some of the prominent oil painters include Tilly Kettle, John Zoffany, Arthur Davies, Thomas Hickey,

*Research scholar, Raja Mansingh Tomar University of Music and Arts, Gwalior

Francisco Ronaldi, Robert Home, William Beechey, Marshall Claxon, and Vereshagin. Georges Humphrey, George Chinnery, and Sir Charles Doyley were prominent artists of miniatures on ivory. Notable engravers and printers were William Hodges, Balt Solvins, James Moffat, Colsworthy Grant, William Simpson, and uncle and nephew Thomas and William Daniel. Thomas and William Daniel were Known as the Daniel Brothers. There were also several other painters present at that time. All these artists painted for leisure and out of curiosity and documentation. Printed by Swaraj art archive the book called "Artists from Afar" features various oil paintings and watercolours by these artists. The works of these European artists who came to India from 1780 to 1947 can be found in this book/ catalog.

Except for John Zoffany and a few others, most of the artists were of mediocre talent and reputation.Although the aesthetic significance of their paintings is not much,Nevertheless, they contributed greatly in capturing the life and nature of Bengal in the eighteenth and nineteenth centuries.There is no doubtthat these paintings have helped in the documentation of the history of Bengal. Not only documentation in art but their works were very lively and natural. Since all these artists painted as a hobby, hence the extra fluency and focus in the use and handling of colour by these artists.

With the entry of the British in India, the power of the company gradually increased with the passage of time. Along with the British Crown came a shift in economic, political, social, and regional control. At that time and situation, an irreversible transformation of the economic landscape of the country took place. India at that time got transformed into a colony. As I mentioned between 1770 and 1825 a group of artists entered India, among them were about thirty oil painting trained, British portrait painters, and twenty-eight miniature painters. They travelled to India in search of commission work in the hope of earning money. The first European artists to enter India were, Johan Zoffany, William Hodges, Tilly Kettle, William, and Thomas Daniells, Emily Eden, and others. These travel-loving artists worked for local patrons from about 1760 to the mid-19th century. The patrons used these artists to create documentation types of paintings. They were commonly used to paint monuments, architecture, landscapes, and portraits. Their full ability to present realistic paintings fascinated local patrons. Some of their paintings which showed mythological scenes or architectural and natural scenes were converted into prints using lithograph and oleographs process to increase interest and acceptance of the common man's art. Artists painted oil paintings on canvas, embracing the Western technology and strategy of academic realism, with a special emphasis on linear perspectives in the European style. These European artists recorded the details of lifestyle and images of the new colony, in print and paintings. Which carried vast landscapes as well as historical architectural monuments, historical edifices, and a detailed picture and information of many communities living in the area. In presenting all these paintings and evaluating the aesthetic aspect, Indian art historians and orientalists depicted India as an alien and mysterious land. From the content of these paintings came the ghats of Benares, Kings, princes, dances of the court girls, and the colourful costumes and the local rulers and their court images. Also depicted were people of different local professions, various occupations, portraits of local rulers, landscape, flora, and fauna.

During the second quarter of the 19th century, Calcutta's artistic scene gradually adapted to the Western sensibilities of image-building, as it witnessed a gradual transformation. Although this process of artistic prosperity of Bengal started a century ago under the puppet Nawabs of Murshidabad. Seeing the English, these Nawabs of Murshidabad became fascinated with European painting and the luxuries of life. Their interest in European –style painting was immense from the very beginning. Indigenous artists used to create works of art under the officers of the company. As the wheel of time reached the nineteenth century, the art world of Bengal found

a new expression. This new expression was born in a mixture of European tradition with Mughal and Indian traditions. Company officials were the main reason behind hiring these native artists. Initially, all the European painters who trained the painters of this country were peripatetic European painters, who usually painted portraits, theatre props idealistic landscapes, and commissions. They trained local artists through oil paints. In the then West Bengal, apart from British Calcutta, the Dutch and French colonies at Chinsurah and Chandernagar became a major center of artistic creation.

Bombay and Madras along with the Indian port city of Calcutta were very special places for eighteenth-century painters. Artists like William Hodges, Jan Van Ryne, William, and Thomas Daniel, travelled to these ports and toured various places to create landscapes with subjects of their choice. In the eighteenth century, the British artist Benjamin West created a painting depicting the Mughal emperor Shah Alam II, where he is handing Robert Clive a scroll as a gift. The image was painted on oil on canvas, that shows the Mughal emperor Shah Alam, who sits on a high throne in his court, including ministers and members of the house and, he is handing over the diwani to Robert Clive a British colonel. This painting proves as a document of time that he handed over the tax collection rights of Bengal, Bihar, and Orissa. It should be kept in mind that there was no similarity between the map of Bengal at that time and the map of Bengal at the present time. At that time the boundaries of the Nawab of Bengal consisted of the territory of Bihar and Orissa, including Bengal. According to historian John McAleer, this is one of the most important events in the history of the British Empire. This event can be classified as one of the most important heirs of the Battle of Palashi which took place in 1757. The scroll in the center of the painting was responsible for the right to levy taxes and for the transfer of Bengal's jurisdiction to the East India Company. This is a very important historical event, it set the ball rolling, and this event established the East India Company as a major force in the history of India and, Calcutta became the new capital of the English and also an eventful place of art and culture.

Artists like William Hodges, Jan Van Ryne, William, and Thomas Daniell, travelled to every corner of the remote places of India and painted what seemed beautiful and exotic to their eyes. All these artists did a lot of landscape paintings along with people and culture, which are not only important to art historians, it proves its authenticity and purity to the common people as a document of time. By 1770, Europeans had no idea about India, based on the first-hand observation of European artists, they gradually began to learn about life in India. Earlier it was published that line drawings and sketches were made by European artists, naturally, all these amateur sketches had numerous subject-based errors. After 1770 when professional European painters began to travel the subcontinent and look at the lives of countries and peoples through European tastes, then all these misconceptions in painting were corrected and a huge change came in the history of painting. All these European artists entering India created a number of watercolour and oil paintings for the native Indians, especially for the aristocracy and the royal family, however, most of the creations they often created were for Europeans. Sketches by other European artists from this country were the layout of the final painting, they later used these sketches to paint or to change the lithography or oleograph prints. Both north and south of the country were not limited to British administration and coastal settlements, and a large number of British military and civilian officers began to enter and work in India. It was mainly from these people that the demand for both the European-style landscape and portrait in India arose. William Hodges was the first professional artist to travel to India who gained a landscape specialty. He worked and stayed in India from 1744 to1797, from 1772 to 1775 he spent time with Captain Cook, and he spent three years with him worldwide and became one of the greatest traveller artists of the eighteenth century. In 1780 he arrived at Madras, and in February of the following year he moved to Calcutta.He enjoyed the generosity and patronage

of the Governor-General. William Hodges then traveled to Lucknow, Agra, and Delhi in North India under the auspices of the government. At the same time, he was able to document the Mughal monuments. He painted some very different scenes for Augustus Cleveland the administrator.

The presence of European artists greatly influenced the lifestyle and paintings of the local painters of Bengal. Like European painters, they started painting in oil on canvas. In oil, they started creating paintings on religious subjects, especially the Ramayana, the Mahabharata, and mythology, which was considered as Early Bengal painting.

The brilliance of early Bengal painting undoubtedly stemmed from the depth and richness of traditional Indian miniature paintings. These miniature paintings were created by the combination of powder tempera and indigenous pigments. With the founding of the'Government School of Art' (which later became the Government College of Art) and the influx of talented and educated artists from there, the zamindars of Bengal and the aristocracy that patronized early Bengal painting gradually began to lose interest and excitement. They started getting attracted to new types and much more realistic paintings. Then in the early twentieth century, Santiniketan (now Viswa Bharati University) got established, under the leadership of Gurudev Rabindranath Tagore, winner of the 'Nobel Prize' in literature. Under the overall umbrella of Rabindranath Tagore, a new art movement began in Bengal under the leadership of his nephew Abanindranath Tagore. Renowned painter Nandalal Bose stayed with him and contributed in the movement. Some of the rare paintings of early Bengal painters were displayed at the auction of some world-famous art auctioneers. These paintings began to be sold at auction at exhorbitant prices. Maybe that's why, towards the end of the twentieth century, many prominent aristocratic families realized the significance of these works. But by then most of the paintings in the familys' collections had been destroyed or sold. The personal efforts of all these families or the efforts of few organizations to revive the paintings were not sufficient. Hence over time most of the Early Bengal paintings were no longer available for art lovers and art visitors.

References :

1. Calcutta in the eyes of Thomas Daniell, Reproductions from the Victoria Memorial Collections. The six reproductions in this album are from Thomas Daniell's twelve views of Calcutta.

   Text/ layout : Chakrabarti Hiren. Published by the Trustees of the Victoria Memorial, Calcutta and Printed at the Eagle Lithographing Co. Pvt. Ltd. Calcutta. January 1990
2. Paul Ashit(Curated by), 19th Century Swadeshi Art, artist: Multiple Artists, 28th July to 31st oct, 2017, Venue Akar Prakar, New Delhi, info@akarprakar.com, (c) akarprakar 2018.
3. 6. William Dalrymple (10th September 2019). The Anarchy: The Relentless Rise of the East India Company. Bloomsbury Publishing. ISBN 978-1-4088-6440-1.
4. Bhattacharaya Ashok, Banglar Chitrakala, Paschimbangabangla academy. Information and Culture, Government of West Bengal (First published: 20th May 1998.)
5. Mr. Dalrymple William , Forgotten Masters: Indian Painting for the East India Company, Published on 28th November 2019, 192 pages, Published by Philip Wilson Publishers, ISBN: 9781781300978.
6. Authored by Mitter Partha, 'Art and Nationalism in Colonial India, 1850–1922: Occidental Orientations', Published by Cambridge University Press, Published in 1994, ISBN: 9780521443548.
7. Authored by India Office Library 'British Drawings in the India Office Library', Volume 3, British Drawings in the India Office Library, Mildred Archer, Oriental and India Office collections, Published by H.M. Stationery Office, 1969, Original from 'the University of Michigan', Digitized on 25 Nov 2009, ISBN No: 0118804162, 9780118804165, Total pages-712.

Contribution of Tawaifs to the Indian Independence Movement

Dr. Tapasi Ghosh** **Aritri Majumder***

Absrtact

Indian Freedom Movement represents a huge area of Indian history where struggle and sacrifices of revolutionaries make a sense of independency. In the many struggling voices of freedom fighters there were many obtrusive voices of Tawaifs, the women performers who sacrificed their everything including their lives for their motherland. Their involvement in Freedom Movement was directly and indirectly and they played a crucial role. The scenario was gradually changed. The effect of colonialism on society made their position disgraceful. So in one side they fought against British Rule for their existence but on the other hand they contributed for their country. The most talked mysterious community of courtesans, the Tawaifs threw away anklet, ornaments, attire and happily accepted the 'Chain'. Their anger hatred against British Raj made same conscience like freedom fighter. Their 'Kotha' was the shelter behind their performance. Even sometime their performance of music became patriotic. Participating in freedom movement was not easy at any means and wars, bloodsheds, sacrifices-all these are accepted by them, The Tawaifs.

Key Words: *Freedom Movement**, Tawaif**, Kotha, Obtrusive, Patriotic*

Methodoloty : *The study is a qualitative resarch work. It has been done with the help of books, journals, video & audio recordings, interviews, online articles etc.*

Freedom movement of India was a revolt against British Raj, British Colonialism, a revolt against servitude, a revolt against overseas, outsider captivities, and a revolt for independency of motherland which made a series of historic events. Every corner of India conveys the corroboration of sacrifices of freedom fighters. It goes without saying that 1857 Sepoy Mutiny, against British East India Company, was first war of Independence in India. Though the movement against British started a century ago. A sepoy, Mangal Pandey, from 34th Bengal Native Infantry of Barrackpore, took his weapon against his lieutenant and Sergeant-major on 29th March, 1857. The seed of revolt was already grounded in the soil of Lucknow also.1857 Sepoy Mutiny was not a successful revolt but it was the strongest protest which made British Raj awakened and afraid about Indian Freedom Struggle and the struggler. It was a storm, and its influence knocked up every Indian.

It is well known to all that 1857 Sepoy Mutiny was the first war of Independence. History told again and again about struggle, struggler, movements, national awakening, and we know about freedom fighters which history describes to us. But history presents to us the contributions of some particular personalities and leaders. It is a really gap of history cannot gather all the information about revolutionaries. Some text books just touch some specific portion. May be it is quiet impossible to pile up all the information but many unknown movements, revolt, bloodsheds, sacrifices gave us freedom. In every battle, won or defeated, may be loading figures stood at the front but a hidden pedestal was the cause of strength. In these hidden unknown heroes there was a community of 'other women' who were the unsung heroes of freedom movement (Bhardwaj, 2020). These 'other' women played crucial role in freedom movement. These 'other' women were significantly other community; they

*Ph.D. Research Scholar, University of Calcutta
**Professor, Department of Music, University of Calcutta

were women performers of India. A typical image which was established by so called aristocrat society, they made them marginalized, they made them only entertainer. But their contribution for the country was undeniable always. Though the active involvement of Tawaifs in Indian Freedom Struggle was not a coincident, it was a consequence of two reasons. Firstly they were well aware about British Raj, who was outsiders, who were captivates, on the other side their social and financial status gradually lost its radiant glory (Bhardwaj, 2020).

During 18th and 19th century these courtesans or Tawaifs were virtuously unique class. They touched the zenith. They socially, culturally played a distinctive role as performers of India. They were not only ordinary women of pleasure, their splendid personality made a different culture in India. They were honored, rewarded, patronized by Nawab, Raja, Zamindars and Nobles and patronized by Elite Europeans (Bhardwaj, 2020). They became Gramophone Artist on that time. They started stage performances like Ustads and Pandits. But a change was started a decay ago. The British Colonial atmosphere, British culture as well as some Indian aristocrat society became different canopy which was antithetical of Tawaif culture and their performances. This kind of atmosphere made contradictive perception. The Kotha culture was no longer considered. In the time of freedom movement some reform-minded Indians also started purity movement; especially Arya-Samaj did not allow the profession of these performing artists in civilized society (Bhardwaj, 2020).

British elite class in somehow enjoyed the Tawaif culture until then they were aware about the connection between nationalist movement and Tawaifs. These Tawaifs directly- indirectly provided shelter, donated fund to keep the national struggle unhindered. They collected many information from British officers who visited their Kotha and they made them, the British officers pleased by their performance and charm. They passed the next plan of British Army to the freedom fighters. For this they never denied to allow the British. Their Kotha was the meeting place and hideouts for freedom fighters.

Before a discussion about contribution of the Tawaifs in freedom movement of India, it is very important to highlight little a bit about status of the Tawaifs in Mughal era. And it is also important to point out how Tawaifs failed from grace during British period and. the Mughal era to Sepoy mutiny a long period of time where these talented performing women of India or the Tawaifs were the witnesses of many ups and downs, many crisis of country, struggle, torture, stages of life, changes of era and most of all starting of movement for freedom for own motherland.

From the time of Akbar to Shah Jahan a beautiful continuous flow of cultural trend of music glorified the era. A huge number of musicians and dancers wanted to be a part of Agra or Mughal court. They were high class talented and beautiful even they were appointed for royal. It was the time of glory of Indian culture specially music and dance. According to Naveil (2019) "After the decline of Mughal authority, Delhi losts its former glory and the scene shifted to Lucknow, the seat of Oudh nawabs,where leading dancing girls from Delhi found a new home, thanks to patronage of its rulers."(p.20) The former glory, trend, culture shifted to Oudh to Lucknow because of Lucknow Nawab who was a great patron of music and dance. The sophisticated culture of Lucknow gave these Tawaifs or women performers a respectable place. Contribution of Lucknow culture was undeniable. Lucknow became cultural institution of pre independent India. It made a refined, virtuous, well mannered Cultural Centre and Nawab Wajid Ali Shah was the chief patron of there.

The involvement of British was started at the end of 18th century, it is better to say not only involvement it was interference also. Their political power increased day by day along with political prestige. These English men were captivated by the grace and charm of these women performers or Tawaifs (Prakash, 2014). On the other side these women became necessity of living

of these English men because of their lonely life in India but when British Raj noticed that their employee and soldiers were seriously involved with these performing women they counted their mistake. They resolved this problem with another way, that was another history but an anti perception against these performing artists gradually took place which started before Sepoy mutiny and a part of Indian also dislike these performing women.

Pre independent India was replete with the fragrance of highest calibre artist like Tawaifs. In British India they were highest taxpayers their status quo was too much strong but everything went wrong when they stood up against British. After Sepoy mutiny they lost their glory terribly because many Tawaifs were involved already in freedom movement they are unknown. Their pivotal role in freedom struggle against British is a lost history. It is very important to mention some of heroic and brave Tawaifs who were directly and indirectly involved with freedom struggle and helped freedom struggler also. Their patriotism kept impact on their music and their performance also. These 'dancing and singing girls' as the Englishmen called them jumped and fought against British Raj which Indian history did not feature prominently (Rajan, 2022). According to Ravi Rajan in his Article 'The Fearless Women Musicians Who Fought for India's Independence' (2021) "But their only mistake was that they went against the British in the Indian Rebellion 1857 and the British made them pay a terrible price for it by destroying their reputations and making them prostitutes for the British soldiers." Some of fearless women were Dulari Bai, Azizun Nisa Bai, Husseini Khanum, Begum Hazrat Mahal, Gulab Kali, Shamim Putli Bai, Lalita Bai, Alakeswari Bai, Vidyadhari Bai, Husna Bai, Gauhar Jaan, Rasoolan Bai, Indubala Devi.

It is already discussed that the Tawaifs helped and gave shelters to revolutionaries of freedom movement of India. They acted as secret agent to these revolutionaries, when British rulers got the whole planning about these women performers and revolutionaries, they attacked the Kothas of the Tawaifs, started raiding, destroyed everything of Kotha, captured tortured to know about the secrets of revolutionaries from these performing artists. When British rulers banned tricolored flag of India, these Tawaifs proposed their admirer to brought tricolored Indian sweet to their hands as a protest against British rule. They also carried tricolored betel leaf in public places, Banarasi pan, barfi, ladoo were coated and packed with tri colour as a protest. According to Bhardwaj (2020). "The patriotic passion was increasing day by day. It grew to such zeniths that even the sweets got new names like shown patriotism, the sweets like Jawhar laddoo, Gandhi Gaurav barfi, Madan Mohan Barfi, Neheru barfi and so on"(p.21). This passion of patriotism made worried the British and made a phobia among them. And this was a beginning of a movement which made freedom movement stronger but made the lives of the Tawaifs miserable. Their Kothas were looted, properties were seized but these brave Tawaifs didn't stop, they hid in unknown places and helped the freedom fighters and freedom movement secretly (Bhardwaj, 2020).

It was very obvious that patriotic effect or impact, which was like a storm, fell on their music also. Their musical protest against British rule was unique. They not only composed patriotic song, after every concert or Mahefil they beautifully presented a song which reminded about freedom movement and freedom fighter. Renowned Thumri singer Rajeshwari Bai ended her every musical rendition with the patriotic song- "Bharat kabhi ban sakela Ghulam". (Bhardwaj, 2020). Her passion for freedom never let it be forgotten to sing this patriotic song the famous song "Phool Gendwa Na Maro Maika lagata Jovanava mein Chot" by Rasoolan Bai not only represented about love, actually Rasoolan Bai stopped wearing the gold ornaments till India got freedom, it was her promise to herself. These famous and great and also brave hearted Tawaifs took oath to sing patriotic songs and national anthem end of their every concert (Bhardwaj, 2020).

The national movement of India always encouraged these brave Tawaifs and they loved to sing nationalist song with their full throated voice and audiences also started to enjoy it, but their love for their country, contributions are not properly documented in Indian history. In late 17th century Dulari Bai, the famous Tawaif of Daal Mandi near Chowk of Banaras, continued her protest against British Raj and she always helped the revolutionaries in different way. Dulari bai and her lover Nanhaku Singh always tried to guided and mobilized people against British. (Bhardwaj, 2020). In 1781 Warren Hastings suddenly attacked Banaras. At that time Dulari Bai performed in Mujra, after hearing about attack she threw away anklet and ran outside and called Nanhaku and told about the attack. Nanhaku saved Maharaja Chet Singh from British. Dulari Bai and Nanhaku Singh did their duty to their motherland bravely (Bhardwaj, 2020).

It is quite impossible to explain or discuss about freedom movement without those people who were quite unknown but without them the movement without them the movement was impossible. Azizun Nisa, the famous courtesan, was a true warrior during Siege of Kanpur. Azizun Bai was born in Lucknow and spent her professional life as a Tawaif in Kanpur city. Azizun Bai had an abhor to British. At the young age Azizun Nisa was tortured by British soldiers. It was a starting of hatred against British rulers. Secret meeting of revolutionaries was held at the place of Azizun Nisa and collecting of arms and ammunition to the freedom fighters. She established headquarters for soldiers when needed; she fought like a soldier with her troops against British. These powerful women were marginalized by moral narratives by the independence movement of India. Not only Azizun Nisa but also these Tawaifs played a role of strategist and financer against British government and British rule. Azizun Nisa was a brave soldier of 1857 revolt and she had a good term with Tatiya Tope and Nana Sahib. Azizun Bai was a renowned and talented performing artist, she earned a good quantity and donated all her earnings and assets to the fund of revolutionaries. She established Mastani Toli, the woman soldier's troop and the crucial role of Mastani Toli helped the freedom fighters in different way. They boosted the tired soldiers with their music, song and dance. Azizun Bai herself disguised as a soldier. After a time British caught her and tortured for secret plans of revolutionaries and exact news about Nana Sahib but failed. Love for her country, love for her motherland was same as other freedom fighter of India. British soldiers tide her on the mouth of cannon and shoot. This brave Tawaif, the woman performer, performed as a Shaheed (Pandey, 2021). Sugandha Pandey in her article Azizun Nisa: The Courtesan & Strategist Who Played A Crucial Role In The Revolt Of 1857 (2021) "The story of Azizun Nisa is only one example that highlights this marginalised narrative.The intensity of their involvement was so high that after quelling the revolt,the foreign power centers targeted them.Apart from confiscating their property,the puritan idea of a 'Good Wife' versus 'The Prostitute'was pushed to the forefront to malign the reputation of Courtesans and those who associated with them".

Like Azizun Bai, Hussaini Khanum was inspired by nationalist movement. She followed Azizun Bai. Hussaini Khanum was appointed by Nana Sahib. She was remembered for Bibi Ghar Massacre. She was a Tawaif who did not afraid to move forward for her motherland and she took part in first war of independence in 1857.

According to an Article of Indian Culture "Begum Hazarat Mahal was one of the few women who challenged the British during the revolt of 1857." Begum Hazrat Mahal was one of the bravest soldiers. She was Mut'ah Begum of Nawab Wajid Ali Shah of Oudh. She was a talented Tawaif of Parikhana of Nawab from where she got a prestigious place. British East India company sent Nawab Wajid Ali Shah into exile in 1856 but Hazrat Mahal decided to stay with her son Brijis Quadir in Lucknow and protested bravely. She took over the all charges of Oudh herself. She fought against the British in

the first independence war; she was most challenging woman for British rulers (Bhardwaj, 2020). She organized a woman army team where Uda Devi, a Pasi women warrior, was commander in chief. British occupied Alam Bagh of Lucknow where she fought against British furiously but could not stop the British, being defeated she took shelter in Nepal and after a time she died there (Bhardwaj, 2020). Actually in a few words it is quite impossible to say about Hazrat Mahal and other brave Tawaifs like her.

Very few people know about Tawaifs and the Tawaif culture and about their contribution in various fields. Not only in performing art but also they contributed directly indirectly for their country. Highly educated, cultured and well mannered Tawaifs took a step forward against East India Company and British rule. Gulab Kali of Ara, the beautiful young Tawaif did not think a while to take a step against British rule. Music and dance lover Raja Kunwar Singh of Shahbad, Bihar, protected Gulab Kali from an intruder. Brave, bold, courageous Gulab Kali had a passion and emotion for her mother land and accompanied Raja Kunwar Singh and gave a tough fight against British (Bhardwaj, 2020).

Dhaneshi Bai of Banaras was a famous Tawaif who gave shelter to freedom fighter. This Tawaif felt proud when she gave shelter two great Chandra Shekhar Azaad. There was another Tawaif whose Mujra was enjoyed by many people. Shameem Putli Bai, she was not only a dancer singer, academically she was very exponent person of literature. She could speak Urdu, Hindi and English fluently. She published and edited a newspaper in Urdu Ara Sewo. This newspaper was related with freedom struggle, society and much other news. She ran an Orphanage for girls also.In one side she was an editor writer and a great helper of freedom fighter and on the other side she performed Mujra to gather funds for freedom movement and collecting secrets information from British.

Nationalism and patriotism of Lalita Bai was unquestionable. She became famous as Charkhavali Bai when she stopped performing and responded on Gandhiji's calling.She kept working on spinning wheel and wore khadi. She collected funds from her performances for the freedom movement. When she stopped doing Muzra, she also stopped singing romantic songs and sang patriotic song. The fabulous performer of Kolkata Alakeswari Bai was the most talented, beautiful courtesan on Gandhian era and participated in noncooperation movement. She performed in British cantonment and gathered funds for revolutionaries and also gathered many information. She was a good strategist, intelligent, talented, highly educated and brave (Bhardwaj, 2020). According to Vikram Sampath in his Article 'When Vande Mataram inspired many recording artistes to join India's freedom movement' (2019) Indu Bala,a celebrated artiste and a disciple of Gauhar Jaan…….Indu Bala recorded nearly 280 songs…..Here's an excerpt one of her songs- 'Payara watan humara' –where she goads Indians to leave their petty differences aside at a timewhen the house is on fire, and instead concentrate all their energies on dousing it."

It is very important to say that these women performers or courtesans or Tawaifs were royal artists of Indian performing arts. So it is very obvious that every movement of their life reflected on their performance. Their patriotism and nationalism also affected on their performance. Many of them were involved in nationalist movement, sang patriotic songs during their performance. Patriotic song became encouragement, energy and dynamic tool which touched the heart of Indians. A call from Mahatma Gandhi to stop Tawaif profession and join the national movement encouraged many Tawaifs to doing so. During late 19th century there was a Tawaifs whose contribution for her motherland was unquestionable. Husna Bai, talented and expert Tawaif who was famous for Khayal, Thumri, Tappa gayaki in Banaras, stepped forward and sang patriotic songs and inspired other singers to follow the path of patriotism. When Gandhiji travelled through Kashi, Husna

Bai supported non cooperation movement and gathered other singers or Tawaifs or Baijis and told them to sing Bhajans and patriotic songs. These Tawaifs were frequently equated with sex workers, Husna Bai took initiative formed Tawaif Sabha where they could hold their dignity as an artist. She suggested other Tawaifs not to change their profession, not to wear gold ornaments, wear shackles instead of ornaments, compose patriotic songs, and collect the patriotic songs from Vidyadhari Bai and other Tawaifs. On 8th August 1921 Vidyadhari Bai presented nationalist song in Husna Bai's house:

"Chun chun phool ley lo armaan reh na jaaye,
ye Hind ka bagicha gulzar rahe na jaaye
Kar do zuban bandi, jailon me chahe bhar do
Mata pe koi hota qurban rahe na jaaye"

Vidyadhari Bai performed this song in every Mahefil she invited. The moral of Gandhiji made an impact on many Tawaifs specially Vidyadhari Bai. She even rejected foreign made clothes and happily accepted hand spin fabric. Husna Bai and Vidyadhari Bai both organized many meetings of Tawaif community (Dewan, 2019).

The Tawaif with exceptional beauty, talent and grace with mesmerizing voice Gauhar Jaan, she was an icon of that time but she was quite offended when Gandhiji denied taking money for the movement from fallen sister. According to him the money was ill gotten though Gandhiji told her to collect money from a concert for movement. Gauhar Jaan had a condition, she requested Gandhiji to attend the concert but he did not. Gauhar Jaan then paid half of money she earned from the concert. It was actually a protest by which she tried to mean that the culture of Tawaifs and who are Tawaifs, they were not falling. Their performing was not impure as society treated them. They were blessed with Sur Taal Lay Chhanda and obviously voice by which they could sing romantic piece of music as well as patriotic and nationalist song to encourage all Indians same time.

One important part of Indian history is Indian culture. Music, dance and poetry- these are included in Indian cultural history but it is very unfortunate that woman performers or Tawaifs or Baijis and their contribution in different areas are excluded from history (Singh, 2017). British rule also made an erosion of that Tawaif culture. These courtesans, after Mughal era, were ill treated and their contribution became out of framework from society, from history and obviously from our mind. Some historical evidence shows the participation and significant role of these women performers in politics but their voice their contribution their sacrifices is invisiblized. In mainstream they are omitted, somehow they were separated from society they were separated from normal everyday life but their contribution was visibilised, realized through their music, through their dances, through their poetry.

References:

- Bhardwaj, Dr. K.S, 2020, The Unsung Martyred Tawayafs, Namya Press, New Delhi
- Nevile, Pran, 2009, Nautch Girls of Raj, Penguin Random House Haryana, India
- Dewan, Saba, 2019, Tawaifnama, Westland Publication Pvt. Ltd, Chennai
- Pandey, Sugandhaa, 2021, Azizun Nisa: The Courtesan & Strategist Who Played A Crucial Role In The Revolt of 1857# Indian Women In History, https://feminisminindia.com
- Singh,Vijay Prakash, 2014, From Nautch Girl to Tawaif : The Lucknow Courtesan in Transition, University of Lucknow
- Sampath,Vikram, 2019, When Vande Mataram inspired many recording artistes to join India's freedom movement, https://theprint.in
- Singh, Lata, 2017, Visibilising the 'other' in history: courtesans and the revolt, Economic and Political Weekly, https://www.jstor.org
- Singh, Lata, 2017, Raising the Curtain, Recasting women performers in India, Orient Black Swan Pvt. Ltd, Hyderabad
- Rajan, Ravi, 2022, The Most Fearless Female Musicians of India, discover. hubpages.com

The musical practices of people of Dima Hasao, Assam

Priyanka Howladar*

Abstract

This paper has been studied with a purpose of finding the importance of mother Nature on musical practices of the earliest inhabitants of Brahmaputra valley,a tribal community of NorthCachar hills, Assam called Dimahasao people. The relationship between music and Nature,effects the life and musical practices in so many ways.Based on reviewing documents and research studies conducted in India and abroad it is found that our different musical practices were inspired and derived from various natural resources and environment that surrounding us. The musical practices that the Dimasa people use for their different festivals when they perform their age-old rituals which reflects that above stated information.This agrarian peoplehave a lot of festivals and rituals regarding agriculture and different natural phenomena. This paper is going to be furnished with a bunch of evidence that shows this keen relation. Here the musical instruments, songs, dance that they used for their performances of ritual and festivals are going to be discussedwith an objective to study the way of living the life of this people that could help to know their obsolescent folk practices. Hence the following paper will discuss about one of a resource that has its own importance in world of music.

Keywords: *music, kachari, dimahasao, festival, harvest, instruments.*

Methodoloty : *To study this paper the conventional music research as well as ethnomusicological data collection methods have been deployed. The field studies have been done in the areas where selected group of people inhabitats. Purposive sampling technique were deployed to get representative samples from Dimasa musical community of Assam. Also related documents and primary varified data resources were incorporated for the study. Such as¯oral history, one-to-one interaction, audio-video recording etc.*

Introduction:

The Dima hasao or dimasakacharis are said to be the earliest inhabitants of the Brahmaputra Valley. The word 'dima' means hummock in bodo language, perhaps it lead the name this hilly community people as dimahasao. The Kacharis belong to the Indo-Mongoloid (Kirata) group which include the Bodos and their allied tribes and linguistically they belong to Sino-Tibetan group .The Dimasa people of North Cachar Hills, being musical in nature, those agrarian people, celebrate their various agricultural festivals in different ways and at different times. Mostly Dimasas inhabiting North Cachar Hills and Karbi Anglong districts are successful in preserving their age old traditional religious beliefs and practices in and through the celebration of several festivals, with some exceptions, due to being Hinduism. Here it is going to be discussed about their different musical practices during various festivals, where they use some vocal and instrumental music and dance to celebrate their festivals and perform the rituals with the use of those songs or instrumental music.

Objectives of the study:

This paper has been studied with some following objectives-

* To study about their culture

*SRF, Doctoral Research Scholar, Sangeet Bhavana, Visva-Bharati, Shantiniketan

* To explore the musical practice of this tribal community.
* To understand their relation of music and life.
* To study the traditional musical instruments of the community.

Geographical location:

Large Dimasa Kachari settlements are in Dima Hasao (this is why they are also known as dimahasao people), Karbi Anglong, Nowgaon and Kachar districts of Assam. A small number of dimasa people have settled in Nagaland too. The Dimasas of Cachar are known as Barmans.

Music and dance play an important role in the day-to-day life of the Dimasa Kacharis. Let us first discuss about the different songs that they use for performing their rituals and festivals to celebrate.

Music:

The dimasa people are very fond of music and dance. Being agrarian, they have a lot of festivals and rituals regarding agriculture. like- Busu, jhum cultivation etc. where male and female persons sing songs during their every aspect of life even while they work also. Where at cultivation field, weaving at looms etc.

There are lot of songs they sing at various stages of Busu festival, jhoom cultivation or at Nodrung* (fig.1). Various songs of sorrow or joy are sung at Nodrung at different prefixed time.

Some specimens of these songs are cited here and a brief description of different songs are discussed here-

Nanathilikbani- There some cradle songs or lullabies are sung by the mothers or other women of the society for the children, are known as nanathilikbani

Nodrung Thubani:

The following songs are sung by the youths when they go to sleep at Nodrung.

Dimasa	English
Horsini hor paiba prangde Thudada mudiri lailangnang Hogjer hakhongma gamathi Digejer dikhongma lumathi Oikhongna lumab di gini Hangkhama ganargbo ha giri Anuya gahoni narause, Khormon hamaya sarause Hashri hajaigasi khormon hamba sajaba Hashri saddi rigasiha badera hambani sajaba Sainsini sain paika thikabo Haubagrang songhise sain laiba	As the darkness of night comes we shall sleep. All the animals are also sleeping after working for the whole day. Where shall we climb hill in the night ? Where shall we cross any river in the night ? If we search for rivers we do not find it. There are no more lands though there are much hills. We are like the fishes of a dried tank. We shall have to spend our time by working hard day by day like the deers of dry field of jhum, or the grasses which are born on the dry peak of the hill.

Jinijā Rāji :

In ancient times the Dimasa's were a ruling race of Assam. The archaeological evidences hither and thither in the Districts of Nowgong, N.C. Hills, Cacher, Karbi Anglong etc. are the proofs of their

past kingdom. Now-a-days they are a doomed tribe in comparison to their past history. This song gives us a recollection of the past glories of the Dimasas.

Dimasa	**English**
Gabara ajuni madaidao	We pray the Sibrai in the direction
Sainjra gede klimdu	of the east, we pray the goddess
Gabara adaini madaidi	in the direction of the west
Sainjrara gede klimdu	Hello everybody (mothers, brothers,
Knadi mamarau baharau	sisters etc.), we wore garlands of the flower
Knadi adungrau ajongrau	of cotton, we spent our days happily.
Jiniba rijiha kundijang	Our country was full of gold, silver etc.
Kum barbagainbamu	but to-day we had to
Mairongjang maithaiba jlbamu	be the neighbor of the Ahom kingdom
Jiniba rajiha gajaojang.	Tonight, we have acquired
Yaubaihi dongbamu	health like as fisherman.
Gupujang yauwalhi dongbamu	Hello fathers, mothers! Donot spend
Dinini sain rauli sainhade	time by sleeping, donnot sit idle.
Ajin Jang nohari dongmaidu	Get up, rise, my dear brothers, fathers,
Dinini horrauli horhade	sisters, the Ahom had crossed the
Ditni Jang manghari kham maidu	boundary of out kingdom as the
Knadi adungrau ajangrau	fisherman had pushed the water for
Thuhide mudiri dalaisi. Khamhilai silinggi dalaisi	checking of fishes. The Ahom wanted a
Baijadi adungrao babarausmall	portion of land. The fisherman
Baijadi mamarau korarau	wanted a little water. The Ahoms had
Asimde ha nedao nepaidu Dimide di nedao nepaidu	exploited us.
Asimde tirilai laisini ha saindu	Hello brothers and sisters, bad days
Dimide thurisa gongsini di saindu	have come. Get up from sleep to acquire
Asimde kalureng baoringbi	the intelligence of our forefathers. If
Dimide kabudhi jaringbi	you donot leave the bed you will not
Knadi adungrau ajangrau	acquire the cleverness of our
Knadi mamarau babarau	forefathers. The intelligences of our
Kulini sainjora sopalkha	forefathers are the intelligences which
Kulini horjora sopaikha	are written in the book. The intelligence
Dikhro diyapang japaikha	of our foremothers were of making of
Diyapang dikhro japaikha	beautiful designs on the clothes. Close
Thubani smauya thikhade	the lid of the tin of time immediately,
Paniba dangbudhi maiyanang	keep the end of the chaddar in a
Thubani baijaya thikhade Maniba dangbudhi maiyanang	tight position. Do not discard the morals of forefathers, do not accept
Paniba daubuthi thiyaba	Morals of foreigners.*

Songs used for Busu festival-

Dimasas have musical practices in various community and local festivals like Busu (the harvesting festival), after sunset the music competition called Baiba Bdailaiba consisting of singing, dancing and playing musical instruments of Muri are held in the courtyard of the bachelor's traditional house called Nodrung. Haangseu Manaoba, a kind of busu is to be celebrated for seven days or seven nights without stopping of the Khrams (drums) and Muri (trumpet), music, dance, feasting and drinking, therefore the undertaking of this particular category needs a sound economy and healthy background of the village. on the second day of Haangseu Manaobabusu which is called Nagaraonisithaiba, which is animal slaughtering day by young men. They offer meat before cooking to the deity Sibrai, while offering the meat the following songs are sung by one and all so that they could have a blessed Busu. The song is like-

"Ningmijing ang mijing saimaiya,
Sibrai ribani saimaiba,
Sainjora dojijang sainmaiba,
Horjira dujijang hormaiba,
Waimusa gelekbo diodanang
Dimusa gelekbo didanang
Baithelik baihining lailadi adungrao
Lu thiliklu hi ning, lailadi ajangrao."

And the meaning is- Not by our wishes, But, because of Sibrai we see this day, let us make merry and be happy, as this day comes only but once.

The following song is one of the oldest songs of the Hangseu Busu, which is believed to have its origin from the Zeme Princess:

"Hangso Manaubani Bagauthai
Baoring jawing jingswe,
Araonjai baoring jiwang jingse
Jiwang jingse sonai soni wangselei.

Jawring gainlao aki hangmai gao,
Heleo ronjai mairing gede gom
Aki longo kilong longba meser,
Gesemsa lairui nihangloba meser,
Gesemsa lairui lai.

Sengmai gaomai senem bamse,
Baigaoke atem maigao,
Goke naisong naigaoyalao,

Semringpake ningrimjen atem
Baujailang."

There are more songs could be found in their festivals. The Bushu songs play an important role in the life of the Dimasas as Bihu songs is important in the lives of the Assamese people. The Bushu songs are interesting. The Bushu is a harvesting festival. Some specimens of the Bushu songs are given here. The Dimasas start their Bushu songs with a prayer to BraiSibrai and mother goddess Gamadi.

There are many more songs are sung in this particular festival. There are so many songs regarding different situation like: Majangdini (love songs), Garasimang, Badathijaobani, marriage song. But as we are here to discuss about the festivities regarding nature, harvesting, other natural phenomena. Like-

The following songs are sung by the Dimasas when they go for cultivation in the jhum field.

Dimasa	English
Paithangnang jalairao paithangnang	Come, come flocks of youths and Jalaijang
dangsmai danghinang	work together. If we work together
Jalaijang dangsmai dangkhase	we shall learn the lessons of our
Pagera dangbudi mairene	father's work. If we work together
Jalaijang dangsmai dangkhade	we shall learn the lessons of our
Magera dangbudi mairene	mother's work. Boys and girls joint
Jalaijang dangsmai danghika	their hands and work. They eat
Jalaijang jismai jihika-	together. The water of the pits of
Jalangma sain raoba raoyaba	the river Kapili is dried up due to
Kholongma dioyari raijoba	the severe heat of the sun shine. .
Namajik khuroba raoyaba	The mothers abuse us. There are
Bajani nuiyungkhu jadanba	sunshines in front of the palace of
Sainjalang sainbani sainraolaba	the king. The sun is so hot due to
Jalangna sairaoba dathidao	the summer season. Do not say the
Jalangna dangbudi ribase	heat of the sun is much during the
Namajik khuraoba dathidao	summer days, because the summer
Namajik dangbudi ribase	season only gives us the days to work.
Jalaijang dangsmai dangladi	Do not feel sorrow if your mother,
Jalaijang jismai jiladi	abuses. The mother teaches us to
Magera dangbudi dangladi	work. Let all the youths, boys and
Pogera dangbudi dangladao	girls come together, work together
Eboning pagera dangbudi	and eat together. Do the works
Eboning magera dangbudi	which our mother asks to do. Do
Khudipong yaogarya dangladao	the works which our fathers ask to
Boronfang aikhuya daoladi	do. This is the moral of father's
Saigajer khorsao Japaika	work, this is the moral of our
Paithangnang Jalairao paithangnang	mother's work. Do the works with
Masongba maisamsa Jihinang	hard hands, weave the cloths swiftly
Jalaijang khasmai khamdada	

Musical instruments:

The dimasas have only a few numbers of musical instruments made and played by them (fig.2). They have major three kinds of wind instruments- muri, muri-wathisa, suphin. Only one string instrument they have is khram-dubung and only one drum instrument called khram. A short briefing is given below-

Muri- long wooden pipe of two pieces lengths 1.75 metre approx. There are three parts of it. The three parts are mathai, morifong and muribar. On the other hand, there is an important part Kudam by name. The Kudam is flat and round. It is tied to the mathai. At the time of producing sound if the kudam is tied, the operator of the instrument is at an easy position. It has six holes. It produces bugle

like sound and used essentially in every song and dance. (fig.3, 7, 8)

Muri-Wathisa- Made up of especially locally available bamboo tube called wathisa, bamboo flute called Muri-Wathisa. Small boys like to produce sound through it. It also has six holes.

Suphin- sounds like a clarionet, made by joining two bamboo tube flutes together. This flute is different from other flutes. A small piece of bamboo tube is inserted into one end of the bigger portion of a bamboo tube. The suphin also has six holes.(fig.4)

Other instruments like string instrument of Dimasa is only one, named

Khram-Dubung- This is the only string instrument of this tribe. It is commonly used by females. It is an instrument like a Been or harp (a kind of one stringed instrument) made from reeds of dubong grass. It measures 1 ft. wide and 1 and half ft. length. They do not use it for everyday purpose.

Khram- a long hollow wooden crust measuring about a metre, double membrane drum, strained across both ends of the hollow crust and both membranes are used for production of sound. The hollow wooden crust is made of a tree named jashim and the membrane that is made of deer skin. In every dance it is essential like muri . (fig.5)

Dance-

The dance forms of the Dimasa Kacharis are complex in character. They are strictly dependent on instrumental music. No songs are used. Khram (drum) follows the rhythm of the Muri (fife) and so also the dancers. Though one may find the music trilling from Muri to be monotonous, but there are variations with noticeable microtones for different dance forms. The steps of the Dimasa dance forms are hard. The minute observation and training of the steps of the dance form will only lead a person to perform the dances properly. The young men practice dancing at Nodrang during leisure hours and the village kids follow the rhythm and stepping at a distance from an early age. (fig.6)

Using those instruments, they perform the traditional dances named - Baidima, Jaubani, Jaupinbani, Rennginbani, Baichargi, Kunlubani, Daislelaibani, Kamauthaikim, Kaubani, Nanabairibani, Baururnjla, Kailaibani, Homaudaobani, Rongjaobani, Dausipamaikabani, Daudngjang, Nowaijang, Dailaibani, Narimbani, Rogidawbihimaiyadaw, Maijaobani, Maisubanai, Richibbani, Michaibonthaijibnai, Homojingladaibani, Bermacharaopaibani, Mangushabondaibani, Madaikalimbani etc. A group dance of young girls of kachari's called BaidimaYaohaibani.

They dance for their own pleasures, for honoring respected guests visiting their villages, religious ceremonies of community festivals; they also have some ceremonies related nature like harvesting, rainy season and many more.

Conclusion:

Tracing the history of the Kacharis, Sir Edward Gait says:

The Kachari may perhaps be described as the aborigines, or earliest known inhabitants, of the Brahmaputra valley. They are identical with the people called Mech in Goalpara and North Bengal. These are the names given to them by outsiders. In the Brahmaputra valley the Kacharis call themselves as Bodo or Bodo fisa (sons of the Bodo). In the North Cachar Hills they call themselves Dimasa. (Gait 1963:299)

Dimasa people always love to celebrate their festivals through dance and music. They have various types of rituals or festivals. Sometimes they also perform dance with music for the guest who have come to visit their villages but they do sing song only for special purpose like when they are performing some rituals. Tribal people live in

mother nature. So, their everyday life and culture is always been related to natural resources or harvest or some special natural features that they depict through their rituals and festivals. The way they celebrate their festivals or express their emotions comes out as performance like dance or singing which reflects those emotions, what makes their musical practices unique and special to the rest of the world.

*This song lyrics were originally written in Ahomia script in the source book.

Fig.1

fig. 2

Fig.3

fig.4

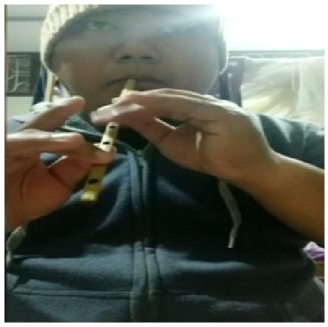

Fig.5

fig.6

Fig.7

fig.8

References:

1. Paul K. Benedict:(1972) Sino-Tibetan A Conspectus, Cambridge.

   * A traditional bachelor's house's courtyard.

2. Baruah, N.N.; (1976) The Dimasa Society and their Folk Songs, Guwahati.

   * a bachelor's house court yard.

3. Bathari, U; (Nov 2008) "the Assamese as reflected in Dimasa folklore: excerpts from a song jiniba raji". Indian folklife no. 31.

   *as the song text is very large in size, it is not given full, it has been shown only as reference.

4. It is a song of sorrow sung when a person dies, but not sung when a pregnant woman dies.

5. Baruah, N.N.; (1991) Dimasa sokolorgeet- maat, 2nd edition, p. 8

6. It is like an ancient Jewish harp. Played by plucking the string with fingers like mandolin.

7. Bordoloi, B. N.; (1984) The dimasakacharis of assam, 2nd edition, page no.- 84.

8. Gait, Sir Edward. 1963 [1933]. A History of Assam. Calcutta: Thacker, Spink and Co. Page - 299.

Bibliography

1. Baruah, N.N.; 1. The Dimasa Society and their Folk Songs, 1976.

   2. Dimasa sakalarGeet-mat, 1982, Guwahati.

2. Bora, S., (1985)Deeyung Nadeer Geet. - a novel containing the cultural aspects of the Dimasa people, Haflong.

3. Bordoloi, B.N.;(1984) The dimasakacharis of assam. 2nd edition, Tribal research institute, Assam. Guwahati-781003.

4. Chatterjee, S.K.;(1951) Kirata Jana Kriti.

5. Duwarh, D;(1988), The Folk cultures of N.C. Hills, Guwahati.

6. Gait, Sir Edward. 1963 [1933]. A History of Assam. Calcutta: Thacker, Spink and Co.

7. Glimpses from Boro Folksongs, Indian Linguistics, Vol. XVII, 1957 (contains Boro tests).

8. Boro Folksongs and Tales: Intended as an appendix to Shri Bhabandra Nerzi's Boro Kaeharifana Sahitya (Assamese), Gauhati, 1957; pages 52: contains Boro texts with English rendering

9. Majumdar S.K.;(1988) Some cultural aspects of the Dimasas, published in the Bulletin of the Assam state Museum, No. IX, Guwahati.

10. Narzi, Bhabendra;(1957) BoroKach?rir Jana Sahity?, Kharghuli Road, Gauhati, contains discussion on Boro Kachari's folksongs, folktales, Bihu, Marriage festival etc.

11. Reddy, Y A Sudhakar & Durga, P S Kanaka (2008) Indian Folklife, Serial No.29, Chennai: NFSC

12. Bathari, U;(Nov 2008) "the assamese as reflected in dimasafolklore:excerpts from a song jinibaraji". Published in Indian folklife No. 31.

Peculiarities of *Guru Debaprasad Das* Tradition of Odissi Dance

Monidipa Ghosh*

Abstract

Conventionally, people identify Guru Kelucharan Mohapatra's Style as the only style of Odissi dance. Whereas, Guru Debaprasad Das's and other traditions remainless recognised. Das's form of dance is quite revolutionary in nature in terms of its techniques, its philosophy, etcetera. This tradition grants significance to rasa-s which are typically over looked in the traditions of performing arts and are deemed to be unpleasurable in nature. It places those rasa-s on a pedestal and choosesto choreograph dance pieces that glorify those. Guru Debaprasad Dashad a deep pull and inclination towards Tantra and Śaivism and hence sometimes his style is also known as the Śaivite Odissi. This paper aims at celebrating this beautiful style of dance.

Keywords: *Dance, Odissi, Debaprasad Das, Rasa,Śaivite Odissi, Dasa-Māhāvidyā, Tradition*

Methodology: *Due to the literary nature of the research, the Descriptive methods used. The primary sources are the original texts and translations of them, both in English and Hindi. The secondary sources involve reference works of celebrated scholars and some dissertations related to the study.*

Introduction:

Odissi, a well-known Indian Classical Dance form that originated in the state of Odisha has its history and traditions rooted in *Nāṭyaśāstra*. *Nāṭyaśāstra* credited to *Bharata-Muni* is acknowledged as the bedrock of Indian Aesthetics that also had an extensive impact on the West. The *Nāṭyaśāstra* mentions the region named *Oḍra Magadha* and also the *Oḍra Māgadhī* Style of dance which is recognized as the precursor of contemporary Odisha and the Odissi dance respectively. (Kar, 2013). The *Rasa* theory is the principal theory in the compendium and one of the focal points of discussions and debates in the discourse of aesthetics. It would be superfluous to present an introduction to such an acclaimed text.

Besides, it feels important to introduce Odissi andthe various traditions of the dance form before delving particularly into *Guru Debaprasad Das's* tradition. This dance form started with the female-exclusive dance form of *Devadāsīs.* They were the dancers appointed in the temple while rituals were carried forward. It had a prominence of *nritta* within its repertoire. Those dancers were later known as *Mahārīs*. This form of dance was subsequently adopted by the *Gotipuās,* the male dancers (It was a male-exclusive dance form) in the costumes of females that had *nritta* and *nātya* both, hence taking the dance form towards advancement both in form and popularity. The tradition took forward the world of Odissi dance out of the temples to the common audience. Slowly and steadily the dance form grew into the magnificent form we experience today. From the mid-1950 the Odissi repertoire saw three prominent *Guru-s* whose style and contribution later turned into traditions, namely, *Guru Pankaj Charan Das, Guru Kelucharan Mohapatra* and *Guru Debaprasad Das*.

Further, it is essential to identify the difference between *Nritta, Nātya and Nritya*. These terms have been mentioned in the texts such as *Nāṭyaśāstra, Abhinaya Darpaṇa* and *Saṅgīta Ratnākara*.According to *Abhinaya Darpaṇa,*which is an important text of reference

*Ph.D. Scholar, Department of Philosophy, University of Delhi

for Odissi dance,"*Nātya* is dancing used in a drama (*nāṭaka*) combined with the original plot. *Nrtta* is that form of dance which is void of flavour (*rasa*) and mood (*bhāva).Nrtya*is that form of dance which possesses flavour, mood, and suggestion (*rasa,bhāva,vyañjanā* etc.), and the like." (Nandikeśvara, 1917).

Now, a traditional full-blown concert of Odissi dance consists of five segments. These areas follows:

a) *Maṅgalācaraṇa:* The dance of invocation. Choreographies are devised to depict and eulogizea God or Goddess.

b) *Sthāyī* or *Baṭṭu:* It is an abstract form of dance. It is a*Nrtta*-dominated choreography having its emphasis on form, footwork and technique.

c) *Pallavi:* It is a rhythmic, foot-work-oriented choreography based on a single *rāga* throughout the piece and the piece is named according to the *rāga* used. Moreover, the piece is named so as to use the metaphor of a flower gradually growing (*Pallavita)* from a bud. This concept is insinuated by gradually increasing the pace of the music and foot movements, going from the *vilambit* (slow) to *drut* (fast) *laya*.

d) *Abhinaya:* It conveys a story. There is a dominance of expressions and *nātya* elements, full of *bhāva* rather than the otherwise dominant foot-works, it is mostly slow or medium-paced.

e) *Mokśa*: It is a fast-paced piece, dominated by foot movements. At end of the piece, a *Śloka* is included wherein the dancers pay their ode to the deities. The piece is significatory for the concept of liberation in Indian traditions.

Guru Debaprasad Das's tradition of Odissi has been comparatively sidelined from the very beginning, both in terms of popularity and scholarly interests. The uniqueness of the dance form is explored in the due course of the paper, our subject matter here is the *rasa-s* employed primarily in *Guru Debaprasad Das* tradition of Odissi. The paper attempts to bring the unique and beautiful tradition of Odissi under the limelight in the field of aesthetics as well as dance as a performing art and also in its scholarly tradition.

Brief Exposition of the *Rasa* Theory formulated in *Nāṭyaśāstra*:

Bharata introduces the term *Rasa* in his theory of aesthetics by borrowing metaphors and analogies of the word's literal translation, i.e., taste or relish. To clarify the metaphors; merely eating something cannot be qualified as tasting. One can eat mindlessly but to taste a thing one has to be fully present, also the sensitivity towards the tasting matters. Similarly, a work of art demands similar engrossment and sensitivity towards it to have an impact on the audience. Further, the term *Rasa* can also be employed in the sense of juice, though in this case the analogy of the fruit and juice cannot be taken too far, as the fruit pulp is thrown after extraction of the juice, on the other hand, a work of art is not discarded and timelessly remains. (Saxena, 2010). Examining through another lens, the metaphor of tasting does not go hand in hand with *Rasa* of *Bharata*, as some things that can be tasted, such as blue cheese, red wine, and certain pungent and bitter foods may not be appetising to many and is certainly not relished by everyone. Whereas, the concept of *Rasa* propounded in the aesthetics of *Bharata* is always enjoyed by a *rasika,* of course with discernment. *Rasa* can be explained to be "the aesthetically sublimated, yet direct and deeply satisfying experience of a basic determinative mode of our emotional life *(Sthāyībhāva)*." (Saxena, 2010).

The famous *rasa-sūtra*credited to *Bharata* is*:*

विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः (NŚ, VI. 32)

The *sūtra* states that *rasa* is a result of *vibhāva* (Determinants)*, anubhāva* (Consequents)

and *vyabhicarībhāva* (Complementary-Transitory Psychological States). *Bharata* puts forward total eight *rasa-s* which can be attested by this *Śloka:*

तदेषं रसानामुत्पत्तिवर्णदैवतनिदर्शनान्यभिव्याख्यास्यामः । तेषामुत्पत्तिहेतवश्चत्वारो रसाः । तद्यथा– शृङ्गारोरौद्रौ वीरो बीभत्स इति । अत्र–शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः । वीराच्चौवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः (NŚ, VI. 39)

He explains that there are four original *rasa-s*that are named as Erotic (*Śṛṅgāra*), Furious (*Raudra*), Heroic (*Vīra*) and Odious (*Bībhatsa*). The Comic (*Hāsya Rasa*) arises from *Śṛṅgāra Rasa*, the Pathetic (*Karuṇa Rasa*) arises from the *Raudra Rasa* and the Marvellous (*Adbhutaḥ Rasa*) arises from *Vīra Rasa* and the Terrible (*Bhayānakaḥ Rasa*) arises from the *Bībhatsa Rasa*.

This paper would not delve deep into the basic theory of *rasa,* since that already has an extensive amount of work present in the scholarly world. Rather the focus is to take up certain *rasa-s* which are generally ignored in the scholastic field also which appear and hold a great significance in the *Debaprasad Das* tradition of Odissi.

***Guru Debaprasad Das*-The Revolutionary:**

Guru Debaprasad Das was a man of convention and purism. He had a strong inclination and love towards the *Oriya* tradition, he staunchly resisted the Sanskrit-isation of the dance form. There are many examples to substantiate the same; starting from using pure *Oriya* words for the terminologies in the dance form to resisting the "refinement" of the movements such as exaggerating the waist movements, hip movements and torso movements, leading to the conversion of the original nature of the dance form to a sensual nature of the dance form well known today. Moreover, *Das* promoted the works of local *Oriya* poets, namely, *Upendra Bhanja* and *Banamali Das*. He advocated the usage of *Oriya* language to maintain the feel, purity and experience of Odissi. (Kar, 2013).

Additionally, He included the *Tāṇḍava aṅga* in his repertoire and thus this form is said to be a celebration of *Śaivism* andmasculine energy, sometimes also known as *Śaivite* Odissi." *Guru Debaprasad Das*, in his investment in the *Gotipuā* repertoire and movement vocabulary… embraced the dance tradition of men dressing and dancing as women. However, his style is noted also for its "vigorous and masculine" qualities." (Kar, 2013). The inclusion and promotion of *Gotipuā* repertoire was also an indicator of the *bhakti* movement prevalent in Odisha in the fifteenth century along with being the indicator of purism. Due to the inculcation of these characteristics, we find that he uses *rasa-s* such as *Raudra,Bībhatsa* and *Bhayānakaḥ* significantly. Thus, ignoring, avoiding and rebelling against thedominant, well-known paradigm of Odissi which is the sensuous and *Śṛṅgāra pradhāna* form.

Further, it can be noted that not only was he influenced and did include *Śaivism* in the dance form, which is clearly pronounced above and through his famous choreographies such as *Aśṭaśaṁbhū*, composed by poet *Venkatmakhin* and *Śiva Maṅgalācara Ga*also known as *Gangā TaraEga,*but he also included and was influenced by *Tantra* and *Śākta ParaAparā.*This is observed in his famous choreographies such as *Māhākāli Dhyāna, Dasa-Māhāvidyā, Saptamātrika,* and more. "The inclusion of these *Tāntric* elements in the repertoire of Odissi extends the range of depictions in Odissi from the sensuality of the female form, as embodied by the emulation of temple sculptures in Guru Kelucharan Mahapatra's style of Odissi to embodying the grotesque and "terrifying" depictions of female characters." (Kar, 2013).

***Rasa-s* of Significance in *Das's* Style:**

Guru Debaprasad Das had a keen interest and inclination towards the *Tāntric* cult and the fact that there is a tremendous amount ofsignificance given to the so-called unpleasurable *rasa-s*such as *Raudra Rasa, Bhayānaka Rasa* and

Bībhatsa Rasa in his dance along withhis distinct philosophy of dance is a mark of his brazen impudence to establish a pure and unique form of the dance. This portion of the paper attempts to analyse those *rasa-s*in his choreographies and his proclivity towards *Tantrism.*

One can easily detect that *Raudra Rasa* is the significant *rasa* in *Guru Debaprasad Das* Tradition.Elements of *Bhayānaka Rasa, Bībhatsa Rasa* and *Vīra Rasa* are also present in *Guru Debaprasad Das's*tradition as complementary and support to that significant *rasa*. He does not forget the *Śṛṅgāra Rasa* too but his affair with *Raudra Rasa*was a prominent part of his repertoire. Along with these, *Das's* inclination toward *Tantrism* and*Śaivism* are also discussed as follows-

Guru Debaprasad Das in his composition of *Śiva Maṅgalācaraṇa* deviates from the popular style of Odissi, in which *Maṅgalācaraṇa* is supposed to be soft in nature, invoking a God or Goddess, having slow and soft movements. *Das* starts the piece with soft and slow flowy movements, describing various attributes of Lord *Śiva,* and then enters the piece into fast-paced movements and foot-works, starting the *Tāṇḍava aṅga,* wherein *Raudra Rasa* starts to flow. Anger or *Krodha* is the basis of the *Sthāyībhāva* of the mentioned *rasa.* He makes it quite evident and the *rasa* comes to shine through his choreography very well, not only through the expression of the dancer as seen in *Sh. Rahul Acharya*'s performance[1] but with overall feel through music and foot-works.

Dasa-Māhāvidyā is one of the most popular and treasured choreographies of *Guru Debaprasad Das* and it also is one of the significant concepts in *Tantra Śāstra.* The ten *Māhāvidyā-s* are named *Kālī, Tārā, boaśi, Bhubaneśwari, Bhairavī, Chinnamastā, Dhumāvatī, Bagalāmukhi, Mātaṇgī, Kamalā*. "The primal *Vidyā* is*Kālī*who is the bestower of direct liberation. The Goddess *Tārā* is of *Sattva* quality and she is the bestower of knowledge. *soaśi, Bhubaneśwari,* and *Chinnamastā* are of *Rajas*quality and they bestow minor liberations like wealth, heaven, etc. *Dhumāvatī, Bagalā, Mātaṇgī* and *Kamalā* are of *Tamas* quality. Theyare invoked especially in connection with *bamakarma* (*MaraGa, Uccātana,* etc.) and allied purposes." (Satpathy, 1985).

This choreography of *Dasa-Māhāvidyā*can be considered under both the *Maṅgalācaraṇa* portion and *Abhinaya* portion. Itis valued for depicting the *Raudra Rasa* and his love for the inclusion of *Tāntric* elements into the dance form. To analyse the choreography, one may take up a performance ofdisciples of *Guru Durgacharan Ranbir* (who was animmediate disciple of *Guru Debaprasad Das*)-*Smt. Shatabdi Mallick*[2]. In the choreography there is a lot of usage of *Raudra Rasa* because many Goddesses in the *Dasa-Māhāvidyā* cult are ferocious in nature, but what is interesting to note is that he did not shy away from depicting those Goddesses in full glory and drenched in *Raudra Rasa,*as opposed to the shyness noticed in other traditions of Odissi, they shy away from depicting the mentioned *rasa* in its full glory and potential, even when performing the ferocious parts.

The Goddesses namely, *Kālī, Bhairavī* and *Chinnamastā* are shown in their epitome of rage and fury. The performance above mentioned demonstrates a perfect embodiment of the *Raudra Rasa.* The foot movements are quick, strong, and fast-paced, the music compliments the *rasa* depicted and the *abhinaya* is beautiful. The paradox here is that though these sentiments and emotions are looked upon as unpleasurable in life and sometimes are even avoided by dancers and some dramatists alike, with perfect context and courage to illustrate the *rasa* in its magnificence, for a true connoisseurit leads them to aesthetic pleasure, delight and compels them to label the act as beautiful.

One witnesses Goddesses *Tārā, soaśi* and

*Bagalā*as an embodiment of*Vīra Rasa*. In between, *Das* evidently adds *Bībhatsa Rasa* too while portraying Goddesses *Tārā, Dhumāvatī*. In previously mentioned pieces of Goddesses, *Bībhatsa Rasa*is not evidently seen but is pointed towards it also may and sometimes it certainly does arouse *Bhayānaka Rasa* and the *Bhaya bhāva* within the audience,as fear or *Bhaya* is the basis or the *Sthāyībhāva* of the mentioned *rasa.* The evoking of the *rasa* does invariably depend upon the dancer and audience.Whether they both are *sahṛdaya* or not plays a significant part in evoking the *rasa*.

Another choreography of *Das* which is famous is *Kālī Maṅgalācaraṇa* which starts with depicting the *Raudra Rasa.* The piece is an amalgamation of *Vīra*and *Raudra Rasa,* as Goddess *Durgā* is accepted to embody *Vīra Rasa* and Goddess *Kālī* is known to be the epitome and exemplar of *Raudra Rasa.* The piece confirms the henceforth mentioned relation between Goddess *Kālī* and *Durgā* by Gitomer."Goddess *Durgā* is transformed from the warrior queen- iconically viewed in the Heroic tableau-into bloodthirsty, out-of-control *Kālī* as she heads into battle with the demons. In fact, if we see her common features with the 'demon' *rākcasas*- pollution and cannibalism- she appears as a demonic specialization of *Durgā*." (Gitomer, 2000).

While these so-called unpleasurable *rasa-s* are present in *Guru Debaprasad Das's* tradition, it may be noted that he has also extensively celebrated *Śṛṅgāra rasa,* not only through choreographing *Aśmāpadi-s* taken from *Gita Govindam* of poet *Jaidev,* depicting *Rāsalīlā* of *Kṛsṇa* and *Rādhā* but also Goddesses, *Bhubaneśwari, MātaGgī, Kamalā* of *Dasa-Māhāvidyā-s* are also shown to be embodying *Śṛṅgāra* and *Karuṇa Rasa-s.* A dash of *Vātsalya* is also found in his choreography of *Dasa-Māhāvidyā* along with other dance pieces.

Conclusion: One can come to the conclusion that *Guru Debaprasad Das* tradition is a dance form of purism and revolution. It is strong, bold and unique in nature. The adjective 'strong' is not to be taken in respect to masculinity but rather bearing the qualities of power, courage and firmness- both in belief in its tradition or roots and also its performance. The prominent *rasa-s* such as *Raudra rasa* are exemplars of the same and well-attest my proposition. It is a dance form that enriches and revolutionises the realm of performative arts and hence aesthetics. This form of dance needs more scholarly and performative attention to flourish.

Reference :

1. Sachiko Murakami (2015, Jun 13). *Odissi Rahul Acharya 5*. [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=ghKnAjWyuT8.
2. Odissi Dancer (2016, Aug 4). *Dasa Mahavidya by Odissi dancer Shatabdi Mallick and her disciples*. [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=XcLYmZpKkMc.

Works Cited

Kar, P. (2013). *The Debaprasad Das Tradition: Reconsidering The Narrative of Classical Indian Odissi Dance History* (Doctoral dissertation, York University), p-193.

Nandikeœvara. (1917). *The Mirror of Gesture: Being the Abhinaya Darpa Ga by Nandikeœvara* (Ananda Coomaraswamy and Gopala Kristnayya Duggirala, Trans.). London: Cambridge Harvard University Press, p-14.

Saxena, S. K. (2010). *Aesthetics: Approaches, Concepts and Problems,* Delhi: Sangeet Natak Akademi, p-374.

Kar, P. (2013). *The Debaprasad Das Tradition: Reconsidering The Narrative of Classical Indian Odissi Dance History* (Doctoral dissertation, York University), p-150 & 151.

Kar, P. (2013). *The Debaprasad Das Tradition: Reconsidering The Narrative of Classical Indian Odissi Dance History* (Doctoral dissertation, York University), p-165-166.

Satpathy, S. (1985). *Dasa Mahavidya & Tantra Sastra,* Cuttack: Saraswati Satpathy, p-56-57.

Gitomer, D. L. (2000). Wrestling with raudra in Sanskrit Poetics: Gender, Pollution, and Úâstra. *International Journal of Hindu Studies* 4 (3) 219-236. https://www.jstor.org/stable/20106738.

Value-Based Education and its impact on the Tradition of Indian Music

Prof. Neelam Paul** **Prafulla Kumar Meher***

Abstract

In the present time of rapid globalisation and commercialisation, music education is more treated as a commodity. Music Education has been largely marketed as a tool for living rather than as an integral component of life. The integral Gurukula system of music education has more or less phased out and finds less acceptability among the masses. At this critical juncture, a hybrid model of education encompassing the merits and wisdom of the ancient Gurukula system yet imbibing the merits of modern education has become imperative. Herein, we present the advantages of value-based music education, which emphasizes educating music as an integral part of life rather than for a living. Value-based education is also called "Educare". The Educare system ensures the students become professionally sound, spiritually aware, and socially responsible. The word of Sri Sathya Sai Baba echoes Swami Vivekananda, who told, "The education must ensure the students to acquire the Head of Shankaracharya; Heart of Buddha and Hands of Janaka". This paper aims to convey the value-based music education system followed in ancient India and how it can be implemented in the present time.

Keywords: *Values, Music, Ancient, Medieval, Modern Gurukula.*

Research methodology: *The research study is descriptive in nature and secondary data has been used for the purpose of this study. The secondary data has been collected from various sources such as books, journals, researchers, and web sources which are available.*

Introduction:

Education is essential for the human being, to get perfection in every sphere of life. Music teaching plays an important role to have a holistic approach to run the society. This is the reason that from ancient time, music had been given as one of the subjects of learning in Indian education. In modern times, music education has become money-oriented. There are government, government-aided and private institutions in the Indian educational system. In the field of music, there are three categories of students. First, family members and students learn music in a traditional way and become performers. Second, those who learn music under a Guru personally, but also study in Institution to get a degree. They become performers and teach music at the institution. But these days most of the students opt music as a subject and learn in institutions to get a degree in music to find employment in schools, colleges, or universities. Parents, teachers, and authorities are most concerned about the successful careers of the students. Only a few institutions are interested in educating the moral values to their incumbents. Hence, the life of the children has been more complicated and crucial. Value-based education is the only thing that can guide a person in the right direction in their life. This is the perfect way to protect a nation's culture and identity. Value-based music education shapes a student's life as humane, kind, truthful, disciplined, and determined. Music should not be acquired solely

*Ph.D. Research Scholar, Department of Music, Faculty of Design and Fine Arts, Panjab University, Chandigarh/ Dept. of Music, Sri Sathya Sai Institute of Higher Learning, Prashanti Nilayam, A.P.
**Supervisor & Chairperson, Dept. of Music, Faculty of Design and Fine Arts, Panjab University, Chandigarh

as a means of surviving, but to become a perfect human. Earning is essential for survival but the aim of music education is to nurture character building. According to Sri Sathya Sai Baba, "education and educare are two wings of a bird which is essential to soar high in the sky. Education makes us great, educare makes us good. Education gives us intellect, Educare awakes one's intuition, Education teaches Svara and Tala but educare brings out Bhava". So both secular and value-based education is necessary to balance in life.

Aim and objective of the study:

In this paper, the aim of music education is to pursue effective learning, how in modern time rapid commercialized education is taking place, and also ancient and medieval Education. It also defines the importance of modern Gurukula system as well as the role played by parents, teachers and institutions to encourage value-based education in their own lives.

Study Area:

Meaning of value:

In 1880, the German philosopher Friedrich Nietzsche coined the term "values."The word "value" comes from the Latin word "Valerie," which means "strong."'Value' signifies 'Worth.' The Oxford dictionary states, the traditional Indian philosophical value is "Satyam (truth), Shivam (goodness), and Sundaram (beautiful).

Etymological meaning of education:

Education is derived from the Latin word "Educare," which means "to bring up". This indicates bringing up the child with certain goals. Another Latin word is 'educere,' which means "to lead out". This indicates leading a child from darkness to light. The authors defined education and music in accordance with their personal views. Some of which are described below:

According to Swami Vivekananda "Education is the manifestation of divine perfection already in man".

According to Mahatma Gandhi "By education, I mean an all-round drawing out of the best in child and man-body, mind and spirit".

According to Prof. Indrani Chakravarti "Music is an art to express sentiments which plays a dominant role in building the character and personality of an Individual. Therefore, music education is essential in every aspect of human life. It motivates a child to work hard, to develop his character, to improve health and good human life."

Formal and informal education:

Formal education refers to training provided by music teachers in secondary, higher secondary, or private institutions for students interested in pursuing careers in music, as well as professional courses are taken in colleges and universities. Informal education relates to when children learn from parents, neighbours, society, and the country. Formal and informal systems of education are the two sides of a coin.

Ancient education:

Ancient education was considered a source of information, customs, and practices that guided and motivated humanity. The system of music teaching continued since the Vedic period, but the names changed with time. Sama is one of the four Vedas; that is based on musical tones. Every Veda has at least one Shiksha; which explains proper pronunciation and recitation. Naradiya and Yagyavalkya Shikshas are written to teach the science of intonation and tonal values of Sama music. The recitation of Mantras of the Vedas is called "Sa-svara Patha". But Sama is sung; Hence, it is known as (Sama) Gana.

In Ancient time, music was taught under the Guru Shishya Parampara. In Guru Shishya Parampara family was not important, only Shishya was more important. The basic concept of music education was totally free for all. The Shishya used to serve the Guru. During the period, the highest

value-oriented education and holistic methods were an integral part of life, with both the inner and outer self-being cared for. Sravana, Manana, and Nididhyasana (listening, contemplating, and practicing) were the three important steps of Music Education. It was much more important to have practical knowledge than scholarly knowledge. There were very few ancient educational universities in India i.e. Takshasila, Nalanda, Sharada Peeth, etc.; which focused on the overall development of students. Morality and Integrity were focused on total personality. The recitation of Vedas was a part and parcel of their life including all subjects.

Medieval education:

In the medieval period, the Islamic system of education replaced the Vedic system of education. Despite this catastrophe, India continued to rise because of its rich culture. During this period classical music flourished, and the original concept of Guru Shishya Parampara continued. As everything changed gradually, the Hindustani teaching method of music became a part and parcel of some specific families. Therefore, the Gharana system took place; which was mainly confined to the family. Practical teaching characterised medieval education, and students also learned a moral code in addition to music.

Modern education:

In the Modern Period, Hindustani music has also continued in the modern period through the Gharana system, which includes general education, but it is not rigorously followed due to open learning. The importance of the institutional education system has increased. In 1871, Kshetra Mohan Goswami founded the first Sangit Vidyalaya in North India, followed by Raja Shaurindra Mohan Tagore as Bangal Sangeet Vidyalaya in Kolkata, Bengal. The teaching of classical music had begun to some extent in various places by the end of the nineteenth century. But Pt. V.D. Paluskar and Pt.V.N. Bhatkhande worked relentlessly to establish separate classical music education as well as to include music education in institutions. Thus, music as a subject got a place in schools, colleges, and universities. There is a limited time to learn and interact with the teachers, lecturers, and professors. The primary goal of today's educational system is to complete the syllabus on time. Students always focus on getting a degree and looking for a job. There is a lack of value implementation in music education, students are easily distracted. They tend to be aggressive. In today's time, following the ancient Gurukul system is impossible. Modern education does not help the students completely. As a result, we need the modern Gurukula system.

Modern Gurukul system:

In the modern Gurukula system, students gain both secular and spiritual knowledge. Many spiritual organisations, such as the Sri Ramkrishna Mission, the Chinmaya Educational Movement, and the Sri Sathya Sai Institute of Higher Learning, adhere to the Gurukul concept. In these institutions, students stay in the hostel and study both worldly and spiritual education in a disciplined manner. A modern Gurukula Sri Sathya Sai Institute of Higher Learning integrates value education and designs a curriculum for students. The university provides free Diploma and BPA courses in music for students. The students of the music department also take part in scheduled activities like prayer, yoga, jogging, games, mandir bhajan, chanting vedam, etc. They also learn that universal truth exists in all religions and love is the universal truth of all religions. The students adhere to all rules and regulations. At this stage not only do institutions have a responsibility to reform the students, but also parents and teachers.

The role of the parents:

As is the seed, so is the tree. The mother is the first teacher. In ancient times mothers taught the values of life to their children and made them

aware of social justice. Aryaamba was an example who played a significant role in the journey of Adi Shankara's life. Putulibai had taught his son Mahatma Gandhi the values of truth and right conduct. Nanci Hanks Lincoln, instilled in her son Abraham Lincoln the importance of maintaining his dignity in all circumstances. Sri Sathya Sai Baba was the son of mother Eshwaramma who fulfilled his mother's wish and built free schools, university, hospitals and provided drinking water for the masses. If parents want their children to succeed, they must first change themselves. Parents should teach their children values, and also encourage them to learn Indian music to balance their emotions, and also become good musicians.

The role of the teachers:

School is the second home of children, where they learn formal and value-based education. It is not only the responsibility of parents, but teachers too are responsible to make children ideal citizens. Teachers are role models for the students. Some children are highly intelligent, some average, and some below average. Children are like soft clay. It is the duty of a teacher to give shape to the clay and mould the students. Teachers face many challenges during class but they should keep patience. They should also control their anger. That is why it is important for teachers to learn values and practice. According to William Arthur Ward, "The mediocre teacher tells, the good teacher explains, the superior teacher demonstrates and the great teacher inspires".

Sources of values:

In institutions, the teachers and professors should teach values to the children in the following manner:

1. **The Direct approach:** To inculcate values in students through specific methods which can help them to become more disciplined in their daily lives; such as morning prayer, music, group singing, silent sitting, night prayer, etc.
2. **The Indirect approach:** To teach values through self-reliance, helping, serving, cooperation, cleanliness, etc.
3. **The integrated approach:** The regular curriculum should include lessons on values. For example, in the subject of music, teachers, and professors can teach the value of a guru and love of God through different bandishes, the peace of mind that comes from listening to various Ragas, and the love of one's country through patriotic songs. We may impart values to the students in this way.

Discussion:

In the Ancient period, education was totally practical based and focused on holistic education. Music was also a subject in the ancient period. The values system was gradually destroyed by the Islamic system of education, yes classical music flourished. The modern educational system is confined to institutions. Values are gradually declining. Parents, teachers, and institutions all play an important role in implementing value-based education to help youngsters to change their minds. The modern Gurukula system plays an important role in the implementation of both secular and value-based education. Value-based education should implement in all institutions.

Results and Conclusion:

Institutional education in the present time is profit-driven, with a give-and-take policy approach. The majority of music students are diverted from their intended path even after becoming teachers, lecturers, professors, and famous artists in their respective fields because of lacking value and the desire to make more money. All unpleasant emotions such as hatred, anger, frustration, and jealousy are ingrained in their minds. These negative things adversely affect their professional and personal life. The values of a person begin with their thought process. Indian scriptures say 'Trikarana sudhhi' (unity and purity of thoughts, words, deeds) purifies the mind,

improves concentration power, and leads us towards the divine. Sri Sathya Sai Baba says, "The thoughts, words, and deeds of man should always be sacred. The heart unpolluted by desire and anger, the tongue untainted by untruth and the body unblemished by the acts of violence - these are the true human values". It is difficult to teach value to a young person's mind. As it is said, "When there is a will, there is a way." We need to find a way to instil values in their mind through continuous practice. It is our collective duty and responsibility to teach values to the next generation. From an early age, parents should teach values to their children. Values should be taught to the students in institutions by teachers. Values should be integrated into the curriculum and students should be encouraged to practice them. If it is so, then the overall development of the students will take place and they will be good citizens of the country; many social issues will be avoided and the country will progress.

Acknowledgement:

I express my gratitude from the bottom of my heart to my Divine Guru Sri Sathya Sai Baba as a source of inspiration; for giving me the opportunity to pursue my research study. I also take the opportunity to be grateful to my parents, for their blessings at every stage of my life. I bestow my heartfelt gratitude to my mentor Prof. Indrani Chakravarti and Ph.D. supervisor Prof. Neelam Paul, for guiding me to prepare this paper with their valuable suggestions.

References:

1. Mookerji, Radha Kumud, Ancient Indian Education, Motilal Banarasidass, Varanasi, 1989.
2. Bhatia, K.K, Principles of Education, Kalyani Publishers, Bharatia Towers, Badambadi, Cuttack, Orissa, 1989.
3. Singh, Dr. Thakur Jaidev, Indian Music, Sangeet Research Academy, Calcutta, 1995.
4. सिंह, ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010
5. चक्रवर्ती, प्रो. इन्द्राणी, स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2000
5. Chakaravarti, Prof. Indrani, Svar Aur Ragon Ke Vikas mein Vadyon Ka Yogadan, Chaukhamba publishers, Varanasi, 2000.
6. Kapani, Madhu, Education in Human Values, Sterling publishers, Pvt. Ltd., 2000.
7. Seshadri, Dr. Hiramalini & Harihar, Dr. Sheshsadri, Educare (for parents, teachers, and students), Sai Shriram Printers, Ekkattuthangal, Chennai, 2004.
8. Burrows, Loraine, Sathya Sai Education in Human Values, Sri Sathya Sai Publication Trust, Prasanthi Nilayam, 2006.
9. Singh, Ranvir, Fundamental of Sri Sathya Sai Educare, Sri Sathya Sai Books and Publications Trust, Prasanthi Nilayam, 2006.
10. टंडन, ऋचा, शोधार्थी, संगीत विभाग, हिमांचल प्रदेश विश्वविद्यालय, 'हिमांचल प्रदेश' के वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों में संगीत–स्वर का बदलता स्वरूप– एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, 2006
11. Bhardwaj Dr.Ajay (June 2016)- "Importance of Education in Human Life: a Holistic Approach" International Journal of Science and Consciousness. ISSN: 2455-2038
12. Borah, Achyut Krishna, A comparative study on Need for Value-Based Education an Opinion Survey among School Teachers Achyut Krishna Borah, ISSN: 2349-6959, 2014.
13. Roy, Dilip, Alumnus, Value Based Education: Necessaity and Implimentation – Presidency College Alumni Association, Calcutta, 1967/70.
14. Bhat, Reyaz Ahmad, Value-based education: a need of present society. International Journal of Advanced Research. 843-ISSN: 2320-5407, 2018.
15. S. Srinivasan, Value Education Concepts as reflected in Sri Sundara Kanda of Srimad Valmiki Ramayana. Research paper: ISSN No 2277 – 8179, 2013.
16. M. Mangesh, Ghonge, Bag, Rohit, & Singh Aniket, Indian Education --Ancient, Medieval and Modern, https://www.researchgate.net/publication, 2020.

बिहार के लोक संगीत में प्रयुक्त विविध लोक वाद्य : एक अध्ययन

प्रो. बिरेन्द्र नाथ मिश्र**

आलोक कुमार*

शोध सार

सांस्कृतिक दृष्टि से भारत अत्यंत वैभवशाली देश है । हमारे देश भारत के संदर्भ में एक वाक्यांश प्रचलित है जो इस देश की अनेकता को दर्शाता है– "कोस कोस पर पानी बदले चार कोस पर बानी ।" हमारी भाषा तथा उसका प्रकार कुछ दूरी के बाद बदल जाता है । केवल भाषा ही नहीं अपितु रहन–सहन, आहार–विहार, पहनावा तथा मान्यताएँ आदि भी भिन्न हैं । इस अनकेता में भी हम सभी भारतीय एकता के भाव से हिल–मिल कर रहते हैं । विविध प्रकार की अनकेता का प्रभाव लोक संगीत पर पड़ना स्वाभाविक है । अतः हमारा लोक संगीत भी अत्यंत समृद्ध है । प्रस्तुत शोध–पत्र में बिहार प्रांत के प्रचलित लोक संगीत में प्रयुक्त वाद्य–यत्रों की चर्चा की गयी है ।

सूचक शब्द :– *संगीत, वाद्य, लोक, बनावट, आकर्षण, शास्त्रीयता*

शोध प्रविधि :– *प्रस्तुत शोध–पत्र के लेखन हेतु विविध पत्र–पत्रिकाओं एवं पुस्तकों से तथ्य सामग्री एकत्र की गयी है।*

शोध–उद्देश्य :–

प्रस्तुत शोध–पत्र के लेखन का मुख्य उद्देश्य भारत के बिहार प्रांत में प्रचलित लोक संगीत में प्रयुक्त विविध लोक–वाद्यों का अध्ययन प्रस्तुत करना है।

भारतीय संगीत में शास्त्रीयता के साथ ही लोक संगीत को भी विशिष्ट स्थान प्राप्त है। विद्वानों का मत है कि शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोक संगीत के अंक से ही हुई है। सामान्यतः लोक संगीत को जन–सामान्य का संगीत कहा जाता है। लोक संगीत का संचरण (गायन, वादन तथा नृत्य) बिना विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किये ही सहज भाव से जन–सामान्य द्वारा होता है। इस संगीत के माध्यम से सामान्य मानव अपने मनोभावों को श्रोता अथवा समाज के सम्मुख रखता है।

बिहार प्रांत में लोक संगीत के विशाल भण्डार के साथ ही शास्त्रीय संगीत की भी परम्परा देखने को मिलती है। मुग़लों के पतन के पश्चात् संगीत–साधकों ने दिल्ली से पलायन किया। इस काल में देश की अन्य रियासतों ने संगीतकारों को संरक्षण तथा संगीत–साधना के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान किया। सांगीतिक संरक्षण प्रदान करने वाली रियासतों की इस सूची में बिहार प्रांत की भी अनेक रियासतें (दरभंगा, डुमराव, बनैली, बेतिया आदि) रही हैं। बिहार प्रांत में प्रायोगिक संगीत के साथ ही शास्त्र–पक्ष पर भी उत्कृष्ट कार्य मिथिला के प्रख्यात कवि लोचन की ग्रन्थ 'रागतरंगिणी' तथा पटना के मुहम्मद रज़ा कृत 'नग्मात–ए–आसफी' आदि के रूप में देखा जा सकता है। शास्त्रीय संगीत के इस सम्मान के साथ ही लोक संगीत की भी एक विशेष परम्परा दृष्टिगोचर होती है। बिहार में स्थान विशेष के लोगों द्वारा लोक की किसी एक विधा में दक्षता द्रष्टव्य है। इसका उदाहरण छपरा की पूर्वी, सोहर आदि हैं।

संगीत के सभी प्रकारों (शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम तथा लोक) में वाद्यों का विशिष्ट स्थान है। वाद्यों की उपस्थिति से संगीत की प्रस्तुति में सहज आकर्षण अनुभव किया जा सकता है। लोक संगीत में तो वाद्यों की उपस्थिति से परिवेश में मनमोहकता सहज ही घुल जाती है। बिहार में प्रचलित लोक संगीत में भी विविध वाद्यों का चलन दृष्टश्रव्य है। भारतीय संगीत के अनुसार वाद्यों के वर्गीकरण (तत्, सुषिर, अवनद्ध एवं घन) के अनुसार बिहार के लोक वाद्यों की चर्चा अग्रलिखित है–

*शोधार्थी, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**आचार्य (सितार), वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

बिहार प्रांत के लोक गीतों में प्रयुक्त होने वाले तत वाद्य :–

जिन वाद्यों का वादन तार के माध्यम से किया जाय, उन्हें तत वाद्य कहते हैं । इसके भी अनेक उपभेद, हैं जैसे :– अंगुली से बजाए जाने वाले तत् वाद्य (तानपुरा, स्वरमंडल आदि), मिजराब की सहायता से बजाए जाने वाले तत वाद्य (सितार, सरोद, वीणा आदि), डंडियों के प्रहार से बजाए जाने वाले तत वाद्य (संतूर), गज की सहायता से बजाए जाने वाले तत वाद्य (सारंगी, वायलिन, इसराज आदि) इत्यादि।

1. एकतारा

भारतीय शास्त्रीय संगीत के विविध प्राचीन ग्रन्थों में एक तंत्रीय वीणा का उल्लेख मिलता है। 'एकतारा' इसी एक तंत्रीय वीणा के प्रकार का एक वाद्य है। एकतारा का प्रयोग बिहार के लोक गीतों में बहुतायत होता है। इस वाद्य से केवल एक स्वर निष्पादित होता है। इसी स्वर के आधार पर गायक द्वारा अपना गायन किया जाता है।

"इस वाद्य की बनावट में कद्दू का गोल तुम्बा, बांस की डांड तथा तार का सहज संयोग होता है। एकतारा में प्रयुक्त बांस की लम्बाई 3 फुट होती है। तुम्बा के एक भाग को भेंड़ की खाल से मढ़ दिया जाता है। तबली (तुम्बा का ऊपर का भाग) के ऊपर से तार को ले जा कर खूंटी से बाँध देते हैं । इस प्रकार एकतारा का स्वरूप साकार होता है।"[1] बाएं हाथ से पकड़ कर तर्जनी अंगुली से इसके तार पर प्रहार कर इसका वादन किया जाता है।

2. सारंगी

सारंगी का वादन बिहार में विविध अवसरों पर गायन किये जाने वाले लोक गीतों में होता है । सन्यास लेने वाले योगी सारंगी का वादन करते हुए विचरण करते हैं । इस वाद्य की उत्पत्ति के संदर्भ में विद्वत समुदाय विविध मत पर सहमत हैं । पंडित रामनारायण जी का मत है कि एक समय में सारंगी को सौरंगी अभिधान प्राप्त था । समय के साथ सौरंगी, सारंगी हो गया ।

इस वाद्य की लम्बाई लगभग 2 फुट होती है । इसका अन्तरंग भाग खोखला होता है जिसे ऊपर की ओर लकड़ी से तथा नीचे की ओर चमड़ा से मढ़ते हैं। चमड़ा से मढ़े हुए भाग को मथान कहा जाता है। यह भाग स्वर–पेटी का कार्य करता है। मथान में ही ब्रीज को व्यवस्थित किया जाता है। वाद्य की लम्बाई के मध्य भाग को छाती अथवा गला संबोधित करते हैं। तरबों के लिए छाती के बायीं ओर 24 छोटी–छोटी खूटियाँ लगाई जाती हैं। ऊपर के भाग को मगज कहते हैं। इसके दायीं तथा बायीं ओर मुख्य तार हेतु दो बड़ी खूंटियां लगी होती हैं। सारंगी में 35 तरब के तारों के साथ तीन मुख्य तार लगे होते हैं। इनमें से प्रथम तार को मध्य सप्तक के सा से, दूसरे तार को मन्द्र सप्तक के प से, तीसरे तार को मन्द्र सप्तक के सा से मिलाते हैं। सारंगी के वादन के लिए गज का प्रयोग करते हैं। स्वर–निकास हेतु दाहिने हाथ से गज को पकड़ कर तारों पर घर्षण किया जाता है तथा बाएं हाथ के नाखून से तारों को स्पर्श किया जाता है।

3. बनामा

बनामा विशेष रूप से बिहार में ही प्रचलित वाद्य–यंत्र है। मुख्यतः इस वाद्य का प्रयोग बिहार की संथाल जनजातियों द्वारा किया जाता है। यह प्राचीन वाद्य–यंत्र है। इस का वादन कमानी की सहायता से किया जाता है। 'बनामा' को सारंगी के पूर्वज के रूप में देखा जा सकता है।"[2] इस वाद्य का तुम्बा कटे हुए नारियल की भाँति होता है। इस भाग को चमड़ा से मढ़ा जाता है। इस वाद्य में 2 तार होते हैं जिनमें से एक तार लोहे की होती है तथा दूसरी तार घोड़े के बालों की होती है। इस वाद्य के वादन हेतु गज की सहायता ली जाती है।

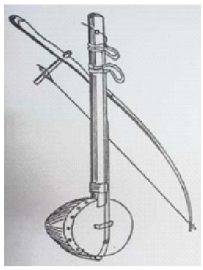

बिहार प्रांत के लोक गीतों में प्रयुक्त होने वाले सुषिर वाद्य :–

वायु की सहायता से जिन वाद्यों में स्वर उत्पन्न होते हैं उन वाद्यों को सुषिर वाद्य की सूची में संगृहित किया

जाता है, जैसे :– बांसुरी, शंख, हारमोनियम इत्यादि।

1. शहनाई

यह प्राचीन लोक वाद्य है। वर्तमान काल में इसका प्रयोग शास्त्रीय संगीत में भी होने लगा है ''मतंग मुनि द्वारा उल्लिखित 'मधुकरी' तथा पंडित शारंगदेव द्वारा वर्णित 'सनांदी' वाद्य शहनाई के सदृश ही थे।"[3] भारत में शहनाई को मंगल वाद्य के रूप में मान्यता प्राप्त है। मुंह से फूंक कर बजाए जाने वाले इस वाद्य की बनावट धतूरे के फूल के समान होती है। लाल चन्दन अथवा चाँदी से निर्मित इस वाद्य की लम्बाई लगभग एक हाथ होती है। इस वाद्य में एक–एक अंगूठे की दूरी पर बेर के आधे बीज के आकार के छः छिद्र बने होते हैं। इसके मुख पर चाँदी की सिटी बनी होती है जिसे पी–पी कहते हैं। पी–पी के अंदर सरकंडा लगा होता है। मांगलिक कार्यक्रमों में शहनाई के स्वरों का गुंजायमान होना अत्यंत शुभ माना जाता है।

2. हारमोनियम

हारमोनियम मूलतः पाश्चात्य वाद्य है किन्तु इसका प्रचार भारतीय संगीत में इस प्रकार हुआ है कि शास्त्रीय, उपशास्त्रीय अथवा लोक संगीत के गायन में इसकी उपस्थिति देखी जा सकती है। लोक संगीत में हारमोनियम का प्रयोग बहुतायत देखने को मिलता है। इस वाद्य में रीड लगे होते हैं जिनमें भाथी की मदद से हवा भरने पर तथा रीड की चाभी को दबाने पर स्वर निकलता है। हारमोनियम के कई प्रकार हैं जिनमें पैर से हवा भरने वाला हारमोनियम, सिंगल रीड का हारमोनियम, डबल रीड का हारमोनियम इत्यादि। लोक नाटकों में पैर से हवा देने वाले हार्मोनियम का विशेष प्रयोग होता है।

बिहार प्रांत के लोक गीतों में प्रयुक्त होने वाले अवनद्ध वाद्य :–

संगीत में प्रयुक्त ऐसे वाद्य जो अंदर से खोखले हों तथा चमड़ा से मढ़े गये हों एवं इस चमड़े पर आघात से नादोत्पत्ति होती हो तो उन्हें अवनद्य वाद्य की संज्ञा दी जाती है। अवनद्ध वाद्यों के अनेक भेद हैं, जैसे :– दोनों हाथों की अँगुलियों की सहायता से बजाए जाने वाले अवनद्य वाद्य (तबला, ढोलक, पखावज इत्यादि), डंडियों की सहायता से बजाए जाने वाले अवनद्ध वाद्य (ताशा, ढोल, नगाड़ा इत्यादि), एक हाथ की अँगुलियों से बजाए जाने वाले अवनद्ध वाद्य (ढफली, खंजरी इत्यादि) इत्यादि।

1. ढोलक

यह एक विशिष्ट वाद्य–यंत्र है जो लगभग पूरे उत्तर भारत में विशेष प्रचार में है। लोकशैली के सभी प्रकार के गायन उक्त वाद्ययंत्र के साथ विधिवत तथा विशेष रूप से अपनी पूर्णता को प्राप्त करते हैं। इसके आकार में अंतर होने के कारण इसके प्रकार एवं नाम में भी अंतर देखा जाता है। बहुत छोटे आकार के ढोलक को ढोलकी शब्द से अभिहित किया जाता है। इसी प्रकार बहुत बड़े आकार के ढोलक को ढोल अभिधान प्राप्त है। इसके मुख्य भाग के निर्माण के लिए नीम, आम, शीशम, सागौन तथा जामुन आदि की लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है। इसका मुख्य भाग खोखला होता है, इसके दोनों सिरे पर बकरे की खाल मढ़ी जाती है। दोनों सिरे पर मढ़ी गयी खाल को रस्सी की सहायता से कस लिया जाता है। रस्सी में छल्ले लगे होते हैं जिनकी सहायता से दोनों सिरे की खाल को आवश्यकतानुसार कसा तथा ढीला किया जाता है। इस क्रिया से वाद्य से निकलने वाले स्वर में अंतर आता है। इस के बाएं मुख पर विशेष प्रकार का लेप लगा कर इसे वादन हेतु तैयार किया जाता है। इस के वादन के लिए आवश्यकतानुसार इसे गले में लटकाया जाता है, गोद में रखा जाता है अथवा जमीन पर रखा जाता है।

2. मांदल

मांदल वाद्य बिहार में प्रचलित अत्यंत लोक प्रिय वाद्य है। विविध जाति के लोग अपने लोक गीतों में मांदल का वादन करते है। जनजातीय समुदाय में भी मांदल अत्यंत लोक प्रिय वाद्य है। आकार–भेद के कारण मांदल

वाद्य के अनेक वर्ग हैं। बड़े आकार का मांदल गंभीर ध्वनि उत्पन्न करता है। सामान्यतः मांदल की लम्बाई 13 से 14 इंच होती है। लगभग ढोलक के आकार में लाल मिट्टी से मांदल का स्वरूप बनाया जाता है जो अंदर से खोखला होता है।

इसके दोनों ओर मुँह पर बकरे की खाल मढ़ दिया जाता है। इन खालों पर विशेष प्रकार के लेप लगाया जाता है। इसके दोनों मुंह पर लगे चमड़े की खाल को चमड़े की पतली रस्सी से बांधा जाता है।

3. हुड़का

बिहार में प्रचलित लोक वाद्यों में हुडका का विशेष स्थान है । होली के अवसर पर लोक नृत्य जोगीरा के साथ वादन किये जाने वाले विशेष वाद्य के रूप में हुडका का प्रचलन है। हुड़का का मुख्य भाग लकड़ी से निर्मित होता है। यह भाग अन्दर से खोखला होता है। इसके दोनों सिरे को बकरे के आमाशय की झिल्ली से मढ़ा जाता है। दोनों सिरे पर झिल्ली को मढ़ते हुए आपस में इसे रस्सी से कस दिया जाता है। लोक भाषा में लकड़ी को नाली अथवा नाई कहते हैं। इसके वादन के समय इस नाली को कमर में कपडे की सहायता से बाँध लिया जाता है।

4. नगाड़ा

नगाड़ा भारतीय लोक संगीत में एक अत्यंत लोकप्रिय अवनद्ध वाद्य है। इसे नगारा, नक्कारा आदि के नामों से भी जाना जाता है। इसे मगंल वाद्य के रूप में मान्यता प्राप्त है। मंदिरों में आरती के समय भी इस का वादन किया जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में युद्ध के समय भी नगाड़ा का वादन उल्लिखित है। इस वाद्य का निर्माण कड़ाहीनुमा बर्तन पर चमड़ा मढ कर किया जाता है। सामान्यतः इसका आकार लगभग 2×2 फुट होता है। इससे छोटे तथा बड़े आकार के नगाड़े भी देखे जाते हैं। इस वाद्य के युग्म को लकड़ी की डंडी से बजाया जाता है। "प्राचीन काल में नगाड़ा राजशाही व गौरव का प्रतीक था। राजाओं के निवास–स्थान के आस–पास नक्कारखाना हुआ करता था। राजा की सवारी के आगे नगाड़े बजाते हुए अनुचर चला करते थे।"[4]

बिहार प्रांत के लोक गीतों में प्रयुक्त होने वाले घन वाद्य :–

इस प्रकार के वाद्यों का निर्माण धातु से होता है, जिन पर आघात कर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। "घन वाद्यों से मधुर ध्वनि का निकास नहीं होता है। इस प्रकार के वाद्यों के निर्माण के लिए किसी विशेष तकनीक के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे वाद्यों का प्रयोग अधिकतर लोक संगीत एवं लोक नृत्य में किया जाता है।"[5] इस श्रेणी में आने वाले वाद्य घंटा, मंजीरा आदि हैं।

1. मंजीरा एवं झाल

उक्त वाद्य धातु (लोहा, पीतल, कांसा आदि) से निर्मित कटोरीनुमा होते हैं। इसका उभार गुम्बद की तरह होता है। इसके मुख का व्यास लगभग तीन से चार अंगुल होता है। इस वाद्य के युग्म रूप को आपस में आघात करते हैं जिससे ध्वनि निकलती है। इन वाद्यों को ताल देने के लिए बजाया जाता है। मंजीरे के युग्म को एक रस्सी के दोनों सिरे पर बांध दिया जता है जबकि झाल के युग्म को अलग–अलग रस्सी में बांध कर बजाया जाता है।

2. खड़ताल

इस वाद्य का प्रयोग लोक गीतों में तथा भजन आदि के गायन में किया जाता है। इसका आकार अंग्रेजी भाषा के "B" के समान होता है। इस वाद्य को युग्म में रखने पर इसका स्वरूप पूर्ण होता है। इस युग्म का प्रत्येक भाग लकड़ी के चार से पांच अंगुल चौड़े तथा एक से दो अंगुल मोटे टुकड़े से बनता है। इसकी लम्बाई लगभग 10 इंच होती है। इस लकड़ी के टुकड़े में लम्बे छिद्र कर दो–दो झाँझें पिरो दी जाती हैं। इस वाद्य के युग्म को आपस में टकराने पर स्वर उत्पन्न होता है।

उक्त वर्णित वाद्य–यंत्रों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के वाद्य–यंत्र लोक संगीत की शोभा बढाते हैं। कभी–कभी स्त्रियों के लोक–गायन में रसोई में प्रयुक्त बर्तनों के वादन को भी देखा जा सकता है। इस प्रकार, किसी भी प्रांत की लोक शैली के किसी भी एक अवयव को एक शोध–पत्र में समाहित कर पाना असंभव है क्योंकि यह विषय अत्यंत विराट है।

निष्कर्ष :–

भारत के विविध प्रान्तों के लोक संगोत की परम्परा अत्यंत समृद्ध है। बिहार प्रांत के संदर्भ में देखा जाय तो हम पाते हैं कि यहाँ लोक संगीत का अकूत भंडार है। यहाँ कुछ दूरी तय करने पर बोली तथा मान्यता आदि में अंतर अनुभव किया जा सकता है। यह अंतर लोक संगीत को पूरी तरह से प्रभावित करता है। केवल गायन ही नहीं अपितु वाद्यों के वादन तथा इसे बनाने की विधि में भी नवीनता देखी जा सकती है। इसका विशेष चलन बिहार प्रान्त में देखा जा सकता है। अनेक वाद्य–यंत्र तथा गायन–शैली ऐसे भी हैं जो स्थान–विशेष से ही जुड़े हुए हैं। हमारे देश की इस समृद्ध लोक–शैली तथा इसके अवयवों को जानने, समझने तथा इसके सृजन की आवश्यकता है। इस संदर्भ में हो रहे प्रयास के बाद भी अनेक ऐसे अवयव हैं जो अपना अस्तित्व खो दिए हैं अथवा इस स्थिति में हैं कि अब उनका अस्तित्व समाप्ति की ओर है। इस के सृजन के लिए केवल सरकार ही नहीं बल्कि निजी तौर पर भी प्रयास की आवश्यकता है। वैज्ञानिकता की चकाचौंध की ओर तेजी से बढ़ते युवाओं का अपनी लोक विरासत को निकट से समझने तथा इसमें अंतर्निहित भावों को समझने एवं संरक्षित करने हेतु आगे आने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची :–

1. बोराड़ा, रमेश, राजस्थान के लोक वाद्य, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, 2008, पृष्ठ 115
2. सिंह, गजेन्द्र नारायण, बिहार की संगीत परम्परा, तक्षशिला पब्लिकेशन, 2015, पृष्ठ 18
3. कुमारी, डॉ. अनामिका, बिहार के लोक संगीत में वाद्यों की परम्परा एवं प्रयोग, कला प्रकाशन वाराणसी, 2015, पृष्ठ 94
4. बोराड़ा, रमेश, राजस्थान के लोक वाद्य, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, 2008, पृष्ठ 89
5. पागलदास, रामशंकर, तबला कौमुदी, रामचन्द्र संगीतालय, 1967, पृष्ठ 3

औपनिवेशिक आधुनिकता और भोजपुरी के स्त्री–लोकगीतों में स्त्री–संसार

डॉ. अरविंद कुमार** कुमारी अभिलाषा*

संक्षिप्ति

भोजपुरी लोकगीतों के उपलब्ध अध्ययन को यदि गौर से देखा जाए तो पता चलेगा कि उनका विश्लेषण औपनिवेशिक आधुनिकता की दृष्टि से किया गया है। इस दृष्टि की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि यह यूरोपीय मानदंडों पर आधारित है। आधुनिकता के यूरोपीय मानदंड ने हमारी यथार्थवादी चेतना से अंतर्दृष्टि छीन ली है। परिणामतः स्त्री–लोकगीतों में रचित स्त्री–संसार को उसके मूल रूप में हम नहीं देख पाए। उदाहरण के तौर पर, स्त्री–लोकगीतों में 'सोने की थाली', सोना–चाँदी, अन्न–धन, फूलों से सजी थाली, 'महल' आदि शब्दों का इस्तेमाल खूब हुआ है। आधुनिकता की औपनिवेशिक दृष्टि से देखने पर ये सारी चीजें समृद्धि की सूचना देती हैं, जबकि भारतीय समाज का यथार्थ इससे सर्वथा भिन्न है। लोक और शास्त्र को एक साथ रखकर देखने पर इन शब्दों के वास्तविक अर्थ सामने आते हैं। इस बात को समझने के लिए हमें भारतीय लोकमानस की बुनावट को समझना होगा। भारतीय समाज की पारंपरिक संरचना में स्त्री और पुरुष की स्थिति अलग है। पुरुषों की इच्छाएँ, सपने, अधिकार और कर्तव्य शास्त्र से अनुमोदित हैं। इसलिए उनकी संवेदना व आकांक्षाएँ शिष्ट साहित्य में अभिव्यक्त है। दूसरी तरफ स्त्रियों के कर्तव्य एवं अधिकार शास्त्रानुमोदित हैं लेकिन उनकी संवेदना, सपने और आकांक्षाएँ शास्त्रों में गौण हैं। स्त्रियों के स्वप्न और संवेदनाओं को उन्हीं के द्वारा रचित लोकगीतों में स्थान मिला है। यहीं पर आकर पुरुष और स्त्री के लिए एक ही शब्द के मायने अलग–अलग हो जाते हैं। शिष्ट साहित्य में अन्न–धन, सोना–चाँदी, महल, फूलों की सेज जैसे शब्द समृद्धि सूचक हो सकते हैं लेकिन स्त्री–लोकगीतों में इन शब्दों का प्रयोग स्त्रियों ने अपनी समृद्धि की सूचना देने के लिए नहीं किया है। इन शब्दों के माध्यम से वे अपने अभाव–भरे जीवन की आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करती हैं। औपनिवेशिक आधुनिकता इस बात को समझने में असमर्थ है। इस बात को समझने के लिए हमें भक्त–कवियों की अंतर्दृष्टि चाहिए। सूर, जायसी, चैतन्य, कबीर और तुलसी की दृष्टि नारी–मन को देखने में सक्षम दिखाई पड़ती है। उनकी दृष्टि औपनिवेशिक आधुनिकता का शिकार नहीं थी। स्त्री की सोच और संवेदना से परिचित हुए बगैर स्त्री–लोकगीतों के यथार्थ को नहीं देखा जा सकता। इसी बात को ध्यान में रखते हुए इस आलेख में स्त्री–लोकगीतों का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध–लेख लोक एवं स्त्री की संवेदना व मानसिकता को एक साथ रखकर देखने का प्रयास करता है।

बीज शब्द : *लोकगीत, स्त्री, संस्कृति, समाज, संवेदना*

शोध–माध्यम : *पुस्तक अध्ययन एवं सर्वेक्षणपद्धति का प्रयोग किया गया है।*

भारतीय चिंतन–परंपरा एवं साहित्य का एक बड़ा हिस्सा वाचिक है। साहित्य एवं चिंतन की वाचिक–परंपरा ने अभिजन के लिखित साहित्य को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है और उससे प्रभाव भी ग्रहण किया है। खास बात ये है कि दोनों परंपराएँ सशक्त और समृद्ध हैं, इन दोनों के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा तय करना अत्यंत कठिन है। कुछ रचनाएँ जरूर ऐसी हैं जिन्हें पूरी तरह से लोक अथवा शिष्ट साहित्य के खाते में रखा जा सकता है पर अधिकांश रचनाओं को दोनों में से किसी एक में रखना कठिन है। यह स्मरणीय तथ्य है कि जो चीजें आज लिखित या शिष्ट–परंपरा के अंतर्गत परिगणित हैं, वे कभी वाचिक–परंपरा की संपदा थीं। वस्तुतः भारतीय साहित्य का बहुलांश अपने वर्गीकरण के आधार को ही खारिज करता हुआ दिखाई पड़ता है। वाचिक और लिखित परंपराएँ आपस में धक्कम–धुक्की करती हुई, परस्पर सहयोग एवं प्रतिरोध करती हुई विकास का रास्ता तय करती आ रही हैं। भारतीय समाज, संस्कृति एवं साहित्य की यही जटिलता हमें अन्य से अलग और विशिष्ट बनाती है। भारतीयता को करीब से देखने वालों को इस बात का खास ख्याल रखना चाहिए और इसी को आधार मानकर अपनी समझ व दृष्टि का विकास करना

*शोधप्रज्ञ, संगीत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

**शोध पर्यवेक्षक, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, मगध महिला महाविद्यालय, पटना विश्वविद्याल, पटना

चाहिए। कहने का आशय यह है कि विश्लेषकों को लोक और शास्त्र की साधना एक साथ करनी चाहिए। इसी तर्ज पर हमें स्त्री और पुरुष की अभिव्यक्तियों को साथ रखकर निष्कर्ष निकालना चाहिए। पुरुषों ने अपनी अभिव्यक्ति को कलात्मकता के शिष्ट रूप में दर्ज किया है जबकि स्त्रियों ने अपनी अभिव्यक्ति को लोकगीतों में रूपायित किया है। स्त्री–लोकगीतों में स्त्री और लोक दोनों की मानसिकता और संवेदना को करीब से देखा जा सकता है।

स्त्री–लोकगीतों की एक विशिष्ट प्रकृति होती है, उसमें बड़ी–बड़ी बातें साधारण घटना–प्रसंगों के माध्यम से कही जाती हैं। अनुभव की गहराई को केन्द्रीय महत्व दिया जाता है और गीत के अंत में ऐसी पंक्तियों का नियोजन किया जाता है जिससे वह साधारण घटना–प्रसंग एकदम से असाधारण तथा महत्वपूर्ण हो जाता है। इस प्रक्रिया में जीवन के बड़े–बड़े रहस्य वस्तुनिष्ठ सह–संबंधों के सहारे उजागर होते हैं और स्त्रियों की वास्तविक दुनिया विन्यस्त होती है। जन्म से लेकर वृद्ध होने तक स्त्री–जीवन के लगभग सभी पहलुओं को स्त्री–लोकगीतों में इसी पद्धति से दिखाया गया है। उदाहरण के तौर पर घर में जब बेटी पैदा होती है तो परिवार में खुशी का माहौल होना चाहिए परंतु भारतीय समाज में कुछ आशंकाओं के कारण वह मातमी हो जाता है। यह भारतीय समाज का कटु सत्य है। कन्या के जन्म लेने पर मानों जीवन अंधकारमय हो जाता है। कन्या को जन्म देने वाली माँ स्वयं को कोसती हुई नजर आती है। ऐसी भी घटनाएँ देखने को मिलती हैं कि उस नवजात कन्या को त्याग दिया जाता है या मार दिया जाता है। ऐसी अनेक लोककथाएँ या कहानियाँ सुनने को मिल जाएंगी, जिससे ऐसी घटनाओं की पुष्टि होती है। पितृसत्तात्मक समाज में एक पिता बेटी पैदा कर अपनी ही नजरों में अपराधी बन जाता है। इसलिए बेटी के जन्म लेने की खबर पाकर उसका मुँह लटक जाता है, उसका चेहरा मुरझा जाता है। स्त्रियाँ इस बात को लोकगीतों में अभिव्यक्त करती हुई गाती हैं–

> ''जब मोरे बेटी हो लीहलीं जनमवाँ
> अरे चारो ओरिया घेरले रे अन्हार रे ललनवाँ
> सासु ननद घरे दीयनो ना जरे
> अरे आपन प्रभु चलें मुरुझाइ रे ललनवाँ''[1]

बेटी के पैदा होने पर ऐसी मनःस्थिति का दर्शन लोक–जीवन की सामान्य घटना है। बेटी के प्रति लोक की ऐसी मानसिकता के पीछे अनेक धार्मिक एवं सांस्कृतिक कारण बताए जाते हैं, लेकिन वस्तुस्थिति कुछ और है। बेटी के प्रति ऐसे माइंड–सेट का मूल कारण आर्थिक है। लोकजीवन में अर्थाभाव सामान्य बात है और बेटी के पैदा होने से एक अतिरिक्त आर्थिक बोझ का एहसास परिवार को होता है, खासकर पिता को। दूसरा कारण है बेटी विवाह के बाद अपने ससुराल चली जाती है, वह अपने पैतृक परिवार के लिए उपयोगी नहीं रह जाती। तीसरा कारण है बेटी की सुरक्षा। भारतीय समाज में स्त्री को धन माना गया है। लक्ष्मी से उसकी तुलना की गई है लेकिन उसका लक्ष्मी–तत्व मूल रूप से उसके शरीर में निहित है जिसकी शुचिता की रक्षा होनी चाहिए। अगर किसी स्त्री का शरीर पवित्र नहीं है तो फिर वह लक्ष्मी नहीं कुलक्षणी हो जाती है। उस स्थिति में उसका दान और ग्रहण दोनों वर्जित हो जाता है। दूसरी तरफ पुरुष–समाज अपनी बेटी को छोड़कर अन्य सभी बेटियों के लिए किसी गिद्ध से कम नहीं होता। इस परिस्थिति में बेटी एक जिम्मेदारी है जिसके लिए सामर्थ्य की आवश्यकता है। पर सवाल उठता है कि इतना सामर्थ्य किसके पास है जो अपनी बेटी को सकल पुरुष समाज से बचाकर पाले–पोसे और कन्यादान के दिन तक उसे धन की तरह सुरक्षित रखे। लिहाजा, हर आदमी ऐसी जिम्मेदारी से बचना चाहता है। यही बातें बेटी की उपेक्षा का कारण बनती हैं। लेकिन वर्तमान समय में बेटियाँ अनेक स्तरों पर अपनी योग्यता प्रमाणित कर रही हैं, वे अपनी सुरक्षा के लिए किसी के ऊपर निर्भर नहीं हैं। उनकी उपयोगिता परिवार, समाज और राष्ट्र के स्तर पर बढ़ती जा रही है। वे अपने ससुराल के साथ–साथ अपने माता–पिता की देखभाल भी पूरी निष्ठा के साथ करने लगी हैं। पिता की आर्थिक जिम्मेदारी को भी बेटियों ने अपने ऊपर ले ली है। कहने का आशय यह है कि वे अपना विकास एक व्यक्तित्व के रूप में करने लगी हैं। उनके पैदा होने से अब पिता कमजोर नहीं होता, अपितु मजबूत हो जाता है। इस परिवर्तन के कारण बेटियों के प्रति समाज का माइंड–सेट बदलने लगा है। अब लोग बेटियों की आकांक्षा करने लगे हैं। यह परिवर्तन अपनी व्यापकता में भले ही आज की उपलब्धि हो, लेकिन बेटी पाने की आकांक्षा बहुत पुरानी है। पितृ–सत्तात्मक समाज की सामान्य धारणा के विपरीत बेटी पाने की आकांक्षा बहुत पुरानी है परंतु कारण भिन्न है। वर्तमान समय में बेटी पाने की आकांक्षा का कारण उसकी उपयोगिता है, जबकि पारंपरिक समाज में बेटे के साथ बेटी

पाने की कामना धार्मिक कारणों से की जाती थी। इस आकांक्षा या धारणा का प्रचार–प्रसार नहीं किया गया। लेकिन इस धारणा से संबंधित लोकगीत उपलब्ध हैं, इसलिए ये तो मानना पड़ेगा कि भारतीय समाज में बेटियों के पैदा होने पर केवल मातम ही नहीं मनाया जाता रहा है, खुशियाँ भी मनायी जाती रही हैं और बेटे के साथ बेटी पाने के लिए ईष्टदेव से प्रार्थना भी की जाती रही है। खास बात यह है कि ईष्टदेव ने आकांक्षी को बेटी प्राप्ति का आशीर्वाद भी दिया है। यह गीत देखिए–

''सोनवा त मागीला हरदी एइसन
रूपवा दधीय एइसन हो
ललना धीयवा त मागीला हो लवंग एइसन
पूतवा हो नरीयर एइसन''[2]

इस गीत में एक स्त्री अपने ईष्टदेव से लौंग के समान तन्वंगी बेटी की मांग करती है और नारियल के समान गोरा बेटा चाहती है। सुंदर, स्वस्थ बेटा और तन्वंगी पुत्री के अलावा स्त्री सोना और रूप भी चाहती है। जब ईष्टदेव इन सभी चीजों को पाने का कारण पूछते हैं तो वह जवाब में कहती है–

''सोनवा त लेब सोहाग खातिर
रूपवा सिंगार खातिर हो
ललना धीयवा त लेबों धरम खातिर
पूता धन सँउपऽ खातिर हो''[3]

पारंपरिक भारतीय स्त्री की ये चार आकांक्षाएँ हैं। वस्तुतः ये चार आकांक्षाएँ स्त्री की नहीं हैं, ये स्त्री से समाज अथवा परिवार की अपेक्षाएँ हैं जिसे पूरा न करने पर स्त्री–जीवन घोर उपेक्षा और त्रासदी का शिकार हो सकता है। भारतीय स्त्री का समस्त जीवन इन चार आकांक्षाओं के बीच दोलायमान है। ये इच्छाएँ पूरी होंगी तो वह अपने परिवार में सुरक्षित स्थान पाएगी, और अगर न पूरी हुई तो उपेक्षा व त्रासदी की भागीदार बनेगी।

सोना से स्त्री का सौभाग्य जुड़ा है। यह उसकी वास्तविक संपत्ति है। केवल सोना अथवा आभूषण ही है जिसपर वह अपना अधिकार समझती है। घर की संपत्ति पर तो उसका अधिकार है नहीं। मायके की संपत्ति पर अधिकार भाई का होगा, ससुराल में उत्तराधिकार बेटे को मिलेगा। केवल सोना है जिसपर केवल उसका अधिकार है। वह अपने हर सुख–दुख में इसी के सहारे अधिकार–भाव को महसूस करती है। बेटी को, बेटा को, बहू को और पति को सहारे के रूप में वह सोना ही अर्पित कर सकती है। इसलिए सोना की आकांक्षा उसकी एक बड़ी जरूरत को दर्शाता है। वह अपना प्यार बाँटने से लेकर बलिदान देने तक के सुख के लिए इसी पर निर्भर है। सोना स्त्री–जीवन का आत्मविश्वास है, एक आश्वस्ति है।

स्त्री की दूसरी आकांक्षा उसका आकर्षक रूप है। उसे पति का प्यार, सास का दुलार और अपनी सहेलियों में रूतवा इसी बदौलत प्राप्त होता है। अतः वह रूप–सौंदर्य की कामना करती है। स्त्री के पास अगर सुंदर रूप नहीं है तो उसका विवाह अच्छे परिवार में नहीं होता और कई प्रकार की उपेक्षाएँ ताउम्र उसका पीछा करती रहती हैं। नस्ल की उत्कृष्टता के लिए भी सुंदर बहू की आकांक्षा सबको रहती है। अतः रूप की चाहत स्त्री की अहम जरूरत रही है। गौरतलब है कि स्त्री की तमाम कमियाँ नजरअंदाज कर दी जाती हैं लेकिन उसके कुरूप होने की सजा उसे जरूर मिलती है। यही कारण है कि, वर्तमान हो या अतीत, रूप के प्रति स्त्री की सजगता अपेक्षाकृत अधिक रही है। पाश्चात्य विद्वानों में कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने यहाँ तक कह दिया कि ''स्त्री अगर सुंदर है तो उसके पास और क्या है, उसका कोई महत्व नहीं; और, अगर स्त्री असुंदर है तो उसके पास और क्या है, उसका कोई महत्व नहीं।'' पुरुष–प्रधान समाज का यह एक बड़ा सच है, जिसे आज भी झुठलाया नहीं जा सकता। स्त्री के प्रति यह नजरिया समाज में सामान्य है। स्वभावतः स्त्री के लिए रूप–सौंदर्य की चाहत व्यसन नहीं है, उसकी एक अहम जरूरत है। कह सकते हैं कि वह एक ऐसी अर्हता है जिसके बूते पर समाज की तमाम सुविधाएँ प्राप्त कर सकती है।

बेटे और बेटे की आकांक्षा भी परिवार व समाज की मांग को पूरा करने के लिए ही है। स्त्री बेटे की कामना करती है, क्योंकि समाज को वंश बढ़ाने के लिए बेटा चाहिए, संपत्ति के उत्तराधिकार के लिए भी बेटा चाहिए। बेटे की कामना पूर्ण न होने पर वंश के खत्म होने का खतरा बढ़ जाता है। जो स्त्री वंश न बचा सके, उसे सम्मान और सुरक्षा कैसे दिया जा सकता है। जो स्त्री बेटा पैदा न कर सके वह स्त्री नहीं डायन है, वह वंश को खत्म करने आई है। यह लोक की आम धारणा है। इस धारणा के कारण स्त्री–जीवन को अनेक कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। अनेकशः वे कठिनाइयां अमानवीय भी हो जाती हैं।

स्त्री से समाज व परिवार की एक और अपेक्षा होती है, वह है बेटी की। बेटी की आवश्यकता इसलिए है कि कन्या–दान कर पुण्य कमाया जा सके। स्त्री–लोकगीतों में बहुप्रचारित–स्थापित धारणा के विपरीत बेटी की कामना करना इसी पुण्य के लिए है। इस प्रकार, यह बात स्पष्ट है कि स्त्री की सभी कामनाएँ और चेष्टाएँ पुरुष–प्रधान समाज की आवश्यकताओं के निमित्त विकसित हुई हैं। उसके जीवन का समस्त योग–क्षेम इन्हीं धारणाओं व कामनाओं से संचालित हैं।

भोजपुरी के स्त्री–लोकगीतों में स्त्री–संसार मुख्य रूप से दो रूपों में विन्यस्त है। पहला संसार बेटी रूप में है और, दूसरा रूप पत्नी और माँ के रूप में है अर्थात् स्त्री–जीवन का एक भाग पिता के संरक्षण में तो दूसरा भाग पति के संरक्षण में गुजरता है। पिता के संरक्षण में पोषित बेटी का जीवन वस्तुतः एक प्रशिक्षण अवधि है जिसमें बेटी का लालन–पालन कुछ इस तरह से किया जाता है कि वह ससुराल की जिम्मेदारियों को बखूबी संभाल सके और उनकी उम्मीदों पर खरी उतर सके। बेटी का पालन–पोषण करते हुए माँ ससुराल की आवश्यकता को ध्यान में रखकर संस्कार देने का प्रयास करती है तो दूसरी तरफ पिता धीरे–धीरे बेटी के विवाह की तैयारी कर रहा होता है। उसके लिए वह पर्याप्त संसाधन जुटाने का प्रयास करता है। अगर पिता संसाधन जुटाने में असमर्थ हो तो उसकी मानसिक दशा अवसादपूर्ण हो जाती है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि संपूर्ण संसार नीरस और बेजान है–

''धनवाँ सूखइनँ ए बेटी
धान के कियरिया हो
पनवाँ बरइया के दुकान
गंगा सूखइनीं ए बेटी जमूना सूखइलीं हो
सूखि गइलीं नदी क सेवार
बेटी के बाबा के मनवाँ सूखइलँ हो
अब बेटी रहबू कुँआर।''[4]

पिता की जिम्मेदारी है कि वह अपनी बेटी के विवाह के लिए पर्याप्त संसाधन जुटाए; परंतु, प्रकृति ने उसका साथ नहीं दिया। एक तरफ धान की फसल खराब हो गई तो दूसरी तरफ दुकान पर पान भी सूख गया। गंगा और यमुना भी सूख गईं। नदी का सेवार भी सूख गया है। अब कोई उम्मीद नहीं रही। पिता का मन भी सूख गया है। आशंका है कि अब बेटी का विवाह न हो सकेगा। यह पिता की वास्तविक मनःस्थिति है जो संसाधनों के अभाव से उपजी है। संसाधनों के अभाव से एक काल्पनिक दुनिया का उदय होता है जिसमें मनुष्य अपनी कामयाबी के सपने को देखकर खुश होता है। इस गीत की अगली कड़ी में पिता स्वप्नलोक की यात्रा करता है। वहाँ उसे पर्याप्त मात्रा में संसाधन प्राप्त हो चुके हैं। प्रकृति ने भरपूर सहयोग किया है, पूरा परिवेश अनुकूल है, हरा–भरा है–

''धन हरियइलँ ए बाबा
धान के कियरियाँ हो
पनवा बरइया के दुकान
गंगा उमड़लीं ए बाबा जमुना उमड़लीं हो
बढ़ि गइलीं नदी के सेवार
बेटी के बाबा के मन हरियइलँ हो
अब बेटी ब्याहन जाय''[5]

स्थिति बदल गई तो मनःस्थिति भी बदल गई। लोक–मानस संसाधनों के अभाव और प्रभाव पर आधारित है, इसलिए उसकी संवेदनाएँ भी वहीं से पोषित होती हैं। वही संवेदनाएँ परिस्थितिवश मान्यताओं को जन्म देती हैं। ऐसी मान्यताएँ जिनसे स्त्री और पुरुष दोनों का जीवन प्रभावित होता है।

आम तौर पर औपनिवेशिक आधुनिक दृष्टि ने स्त्री और पुरुष को एक–दूसरे के खिलाफ खड़ा पाया है लेकिन स्त्री–लोक गीतों से यह बात प्रामाणित नहीं होती। समाज में जो अमानवीय प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं उसे केवल स्त्री ही नहीं झेलती, उसके पुरुष–परिजन भी झेलते हैं। परिवार और समाज एक–दूसरे से पृथक नहीं हैं। इनके बीच रिश्तों के अनेक आयाम हैं और प्रत्येक आयाम पुरुष तथा स्त्री दोनों को प्रभावित करता है। अगर स्त्री किसी प्रकार के शोषण का शिकार है तो उससे पुरुष अप्रभावित नहीं रह सकता। पुरुष और स्त्री दोनों मिलकर समाज की एक इकाई बनते हैं। दोनों के मिलने से ही परिवार और समाज का वजूद बनता है। इसलिए ये मान लेना कि शोषक की भूमिका में पुरुष खुश रह सकता है, ये बात बेमानी है। दूसरी बात, पुरुष द्वारा संचालित शोषण–प्रक्रिया को जाने–अंजाने स्त्री के सहयोग के बिना संभव नहीं बनाया जा सकता है। हमारे देश की जो पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना है उसमें पिता और भाई अपनी बेटी एवं बहन की सुख–समृद्धि के लिए प्राणपन से प्रयासरत रहते हैं। इस प्रयास के कारण ही पिता और

पुत्री के बीच एक गहरा संवेदनात्मक रिश्ता कायम होता है जिसके कारण पुत्री पिता के प्रति मौन सहयोग को स्वीकार कर लेती है और पिता की आंकांक्षाओं व प्रयासों के बीच कोई प्रतिरोध खड़ा नहीं करती। बल्कि, वह उसके अनुरूप सपने संजोने लगती है। पिता ने अगर बेटी की शादी तय कर दी है तो बेटी कुछ खास जिज्ञासा नहीं करती, और न हि वह अपनी इच्छा को लेकर पिता से बात करती है। इन बातों से परे पिता के फैसले को, उनकी इच्छा को स्वीकारती हुई सपने संजोने लगती है।

बेटी के जन्म के बाद जिस पिता का मुँह मुरझा गया था, घर में मातम छा गया था, वही पिता दरवाजे पर बेटी की बारात देखकर अपने जीवन को प्रकाशित महसूस करता है। जिन आशंकाओं के कारण बेटी पाकर लोग दुखी हुए थे, वह आशंका ध्वस्त हो गई और पूरा परिवार अपने सामाजिक धर्म को निभाकर प्रसन्नचित्त है। इस प्रसन्नता को इस गीत में देखा जा सकता है–

"जब हमरे बेटी क अइलीं बरियतिया
अरे चारों ओरियाँ भइन अँजोर रे ललनवा
सासु ननद घरे दियना जरत है
अरे आपन प्रभु चलें हरसाइ रे ललनवाँ"[6]

पिता के लिए यह समय अत्यंत हर्ष का तो है ही, एक बड़ी उपलब्धि का भी है। एक लंबी साधना के फलित होने जैसा है यह समय। पिता ने इसी दिन के लिए वर्षों से साधना की थी। साधना करते हुए उनकी आँखों में जो तस्वीर सदा से थी, वह बेटी थी। अतः बेटी आँखों की पुतली है। आज उस पुतली को आँखों से निकालकर मंडप में बैठा रहे हैं–

"अरे काढ़ैलँ कवन बाबा आँखी के पुतरिया
अरे ईह मति जनिहा समधी काठे के पुतरिया
अरे हमरी कवनि बेटी आँखी कै पुतरिया"[7]

पिता ने बेटी, नहीं अपने आँख की पुतली मंडप में बैठा दी है। समधी जी से आग्रह है कि वह पुतली को काठ का न समझें अर्थात् यह निर्जीव नहीं है, यह मेरी बेटी है, इसका मेरे साथ स्नेह का रिश्ता है, आप भी इसी रिश्ते के साथ इसे स्वीकार करें। पिता चाहते हैं कि बेटी अपने ससुराल में सदा स्नेह–सिक्त रहे। वे मंडप में उसके साथ बैठे हैं और हर रस्म के साथ उसे पति के सुपुर्द करते जा रहे हैं। इस समय पिता–पुत्री दोनों के मन में अनेक भावों का उदय हो रहा है। एक गीत में बेटी अपने मनोभाव को इस तरह व्यक्त कर रही है–

"केथुअन क छतिया बाबा कइले बाड़ा
हम्में धनकारत बाड़ा"[8]

अर्थात् बाबा, आज आपका हृदय कैसा हो गया है कि मुझे खुद से दूर कर रहे हैं? इस बात पर पिता का जवाब है कि,

"बजरे के छतिया बेटी कइले बाड़ीं
तोहें धनकारत बाड़ीं"[9]

गीत का ये अंश बताता है कि पिता और पुत्री दोनों विदाई की पीड़ा से ग्रस्त हैं। परन्तु संदर्भ 6 से यह भी पता चलता है कि पिता के मन में जिम्मेदारी निर्वहन, धर्म–पालन की एक खुशी भी है। दूसरी तरफ पुत्री भी अपने भावी जीवन को लेकर रोमांचित है। संवेदनाओं और रिश्तों की यह एक जटिल घड़ी है जिसकी अभिव्यक्ति स्त्री–लोकगीतों के अलावा शिष्ट साहित्य में भी हुआ है। 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

पितृसत्ता में बेटी के प्रति पिता की जिम्मेदारी में माँ की भी अहम् भूमिका होती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पिता बेटी से संबंधित जिम्मेदारियों के लिए संसाधनों की व्यवस्था करते हैं और माँ बेटी को ससुराल में अपनी जिम्मेदारी निभाने के योग्य बनाती है। जाहिर है, इस विदाई के क्षण में वह गुरु का अंतिम कर्तव्य निभाने जरूर आएगी। लिहाजा, माँ बेटी को नए घर में नए जीवन और नए रिश्तों को संवारने की सीख देती है। वह कहती है कि,

"सासु क बतिया बेटी अँचरे छिपइहा
अरे ननदी जबाब जनि करिहा रे ललनवाँ
देवरू क बतिया बेटी हँसी भूलवइहा
अरे सामी के हिरदयाँ लगइहा रे ललनवाँ"[10]

माँ ने सभी रिश्तों के प्रति व्यवहार की सीख दे दी, फिर भी उसकी चिंता और अधीरता दूर नहीं होती। उसका अपना जीवन अनुभव भी है जिसके कारण वह आश्वस्त नहीं हो पाती। पर उसके हाथ में है ही क्या? विदाई के समय वह हृदय की वेदना को, अधीरता को और चिंता को दबा लेती है। लेकिन रात होते ही उसका कलेजा फट उठता है। बेटी की याद सताने लगती है और उसे छटपटाकर रह जाना पड़ता है।

विदाई के बाद बेटी ससुराल आ जाती है। ससुराल का जीवन स्त्री–संसार का अगला पड़ाव है जो पिता के घर

से बिल्कुल अलग है। यहाँ स्त्री–संसार जिम्मेदारियों, कर्तव्यों और बलिदानों के पहाड़ से गुजरकर निर्मित होता है। स्त्री–संसार के इस पड़ाव पर संक्षिप्त चर्चा मुनासिब नहीं है और स्थानाभाव के कारण यहाँ विस्तृत चर्चा संभव भी नहीं है। अतः इस संदर्भ में स्त्री–लोकगीतों का विश्लेषण न करते हुए केवल निष्कर्ष रूप में केवल इतना कहना चाहती हूँ कि औपनिवेशिक आधुनिकता के चश्मे से भारतीय समाज के जिस स्त्री–संसार को दिखाया गया है, वह वास्तविक नहीं है। अकादमिक जगत में प्रचलित धारणाएँ भारतीय समाज को पिछड़ा हुआ, संवेदनहीन और जड़ साबित करती हुई दिखाई पड़ती हैं जबकि स्त्री–लोकगीतों में भारतीय समाज अत्यंत संवेदनशील दिखाई पड़ता है। पिता–पुत्री, भाई–बहन आदि रिश्तों से संबंधित रीति–रिवाजों में प्रेम, जिम्मेदारी, बलिदान और संरक्षा की जो भावना दखिाई देती है, वह अद्वितीय है। स्त्री–लोकगीतों में स्त्री या पुरुष खलनायक रूप में कहीं भी आमने–सामने नहीं हैं। पिता और भाई दोनों बेटी व बहन के सुखद जीवन के लिए प्रयासरत दिखाई पड़ते हैं। ये बात दीगर है कि वे पितृसत्ता के दायरे से बाहर नहीं निकल सके हैं किंतु उनकी फिक्रमंदी और चिंता रिश्तों के प्रति गहरी संवेदना का परिचायक है।

निष्कर्ष :

अस्तु, स्त्री–लोकगीतों के अध्ययन को आधार मानकर यह कहा जा सकता है कि उपनिवेशवादी आधुनिकता ने भारतीयता के अनेक महत्वपूर्ण पहलुओं की अधूरी तस्वीर प्रस्तुत की है। ऐसा नहीं है कि हमारे समाज में कमियाँ नहीं हैं लेकिन उन कमियों को जिस मानदंड पर परिभाषित किया गया है, वह त्रुटिपूर्ण है।

नोट : आलेख में संदर्भित गीत गाजीपुर (पश्चिम), बलिया (पश्चिम–उत्तर) और देवरिया जिले से फील्ड वर्क के दौरान (अगस्त 2010 से जून 2013 के बीच) अशोक सिंह यादव ने रिकार्ड किए हैं। श्री अशोक सिंह यादव ग्राम : गोपालपुर, थाना : शादियापुर, जिला : गाजियाबाद के निवासी हैं। मैं अशोक सिंह यादव और संदर्भित गीतों की गायिकाओं के प्रति आभार ज्ञापित करती हूँ।

संदर्भ :

1. फुलेश्वरी देवी, उम्र 55 वर्ष (2010 में रेकॉडिंग के समय), ग्राम : गोपालपुर, थाना : शादियाबाद, जिला : गाजियाबाद, उ.प्र.
2. आराधना यादव, उम्र 20 वर्ष (2011 में रेकॉडिंग के समय), निवास : उपरिवत्
3. वही।
4. सोनिया देवी, उम्र 60 वर्ष (2011 में रेकॉडिंग के समय) ग्राम : गोपालपुर (उत्तरी टोली, दलित बस्ती), थाना : शादियाबाद, जिला : गाजियाबाद, उ.प्र.
5. वही।
6. फुलेश्वरी देवी, उम्र 55 वर्ष (2010 में रेकॉडिंग के समय), ग्राम : गोपालपुर, थाना : शादियाबाद, जिला : गाजियाबाद, उ.प्र.
7. वही।
8. फुलझारी देवी, जिउतिया के दिन 2010 में उम्र 60 वर्ष (मृत्यु 2011 में), जाति : कानू, ग्राम : कस्बा दयालपुर, थाना : शादियाबाद, जिला : गाजीपुर, उ.प्र.।
9. वही।
10. फेंकना देवी, जिउतिया के दिन 2010 में उम्र 80 साल, जाति : गोंड, ग्राम : कस्बा दयालपुर, थाना : शादियाबाद, जिला : गाजीपुर, उ.प्र.।

संगीत रामायण का सौन्दर्य

डॉ. राजीव कुमार*

सारांश

रामायण हिन्दी साहित्य का महाकाव्य है। इसमें सात काण्ड हैं, जिसमें इष्ट और अभीष्ट के मिलन के लिए सुन्दरकाण्ड भी विद्यमान है। मतलब यह कि सातों काण्डों में यह काण्ड सर्वसुन्दर है। हॉलाकि सातों काण्ड सुन्दर हैं, लेकिन सुन्दरकाण्ड सर्वसुन्दर है। इसी को उपजीव्य मानकर 'संगीत रामायण' की रचना की गई है, जिसके प्रणेता महावाग्गेयकार पं0 रामाश्रय झा 'रामरंग' जी ही है।

सुन्दर शब्द में 'त्व' प्रत्यय लगाने से सुन्दरत्व हो जाता है, तल् प्रत्यय लगने पर सुन्दरता शब्द बनता है और 'यक्' प्रत्यय करने पर व्याकरण के व्यावहारिकता से गुजरते हुए सौन्दर्य शब्द बनेगा। तीनों का अभिप्राय एक ही माना गया है। इस परिप्रेक्ष्य में यदि सौन्दर्य शब्द का अवलोकन करें तो सुन्दर या सुन्दरता के सारे अवयव इसमें समाहित हो जाते हैं। इसका कोई भी कोना अछूता नहीं रहता। इस तरह सौन्दर्य सम्पूर्णता का आभास देता है। जब हम संगीत रामायण की चर्चा करते हैं तो स्वयमेव सिद्व हो जाता है कि यह अद्वितीय, अभूतपूर्ण सांगीतिक ग्रंथ महान संगीतर्षि पं. रामाश्रय झा 'रामरंग' द्वारा रचित एक अनुपम अवदान है।

मुख्य शब्द : *संगीत, रामायण, सौन्दर्य, रस, साहित्य*

शोध–प्रविधि : *इस आलेख के लिए मुख्यतः पं. रामाश्रय झा 'रामरंग' रचित 'संगीत रामायण' को ही आधार बनाया गया है । साथ ही, अन्य स्रोतों का भी अध्ययन किया गया है ।*

एक तो संगीत सुन्दर, दूसरा साहित्यिक सामग्री सुन्दर और तीसरा साहित्य को संगीत में पिरोकर अति सुन्दर बनाना तो सौन्दर्य का खजाना ही प्रतीत होता है। इसलिए 'संगीत रामायण' के सौन्दर्य की चर्चा का अभिप्राय रामरंग रचित 'संगीत रामायण' की चर्चा है । तुलसीकृत रामायण में सात काण्ड हैं तो 'रामरंग' के रामायण में भी सात काण्ड हैं। तुलसीकृत रामायण में एक सम्पूर्ण कथानक समाया हुआ है और 'रामरंग' रचित संगीत रामायण में भी कथानक विद्यमान है। तुलसी रामायण में जो क्रम है, वही क्रम 'संगीत रामायण' में भी है। ''संगीत रचना के उपकरणों में पद, छंद, तत्सम्बन्धी, भाव, लय तथा ताल का महत्व है। ऐसी रचनाओं को आलाप, तान अलंकार, मीड़, घसीट, आन्दोलन, गमक तथा आकस्मिक स्वर–संदर्भ–रूपी अलंकरणों से सजाया जाता है और तब वह रचना रक्तिदायक बनती है। इन सभी उपकरणों तथा अलंकरणों का संतुलित और समुचित प्रयोग ही राग को रक्ति प्रदान करता है। यह रक्ति ही संगीत का सौन्दर्य तत्व है। दूसरे शब्दों में इसे 'राग से उद्भूत रस' की संज्ञा दे सकते हैं।

रस और सौन्दर्य एक ही है। लय में जो ताल का महत्व है, वही रस में सौन्दर्य का है। 'रस' भाव से उत्पन्न अनुभूतिपूर्ण वह तत्व है, जो झरने की सतत् प्रवाहित जलराशि के समान कला–सुमेरू से फुटकर बहता रहता है। इस भाव में जहाँ उद्रेक की अवस्थाएँ आती रहती है, वहीं सहृदय को सौन्दर्य की अनुभूति होती है। छंद की लय–रूपी–घारा में ताल के आधातों से भी वहीं सौन्दर्य प्रकट होता है। इसीलिए संगीत–रचना में जहाँ स्वर, अलंकार एवं तान इत्यादि क्रियाओं का महत्व है, वहीं गीत के शब्द, छंद, लय और ताल का महत्व है। इस प्रकार संगीत–रचना एवं गीत दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। किसी राग में निबद्ध संगीत–रचना एक ऐसे सागर के समान है, जिसमें सौन्दर्य–रूपी तरंगें उठती रहती हैं।[1]

साहित्य में मूलतः नौ रस हैं– श्रृंगार, हास्य, रौद्र, करुण, वीर, अदभुत, वीभत्स, भयानक, और शांत। ये सभी रस यथास्थान सुन्दर हैं। जगह पर श्रृंगार भी सुन्दर लगता है तो करूण भी। करूण के प्रसंग में अद्भुत रस का आभास रस–भंग करता है तथा साहित्य के सौन्दर्य का

*पूर्व शोध छात्र, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल0 ना0 मि0 वि0 दरभंगा।
सम्प्रति उच्चतर माध्यमिक शिक्षक (संगीत विभाग), परियोजना बालिका+2 विद्यालय, मेघौल, खोदावंदपुर, बेगूसराय (बिहार)

हरण कर लेता है। जहाँ भयानक दृश्य हो वहाँ हास्य प्रसंग अनुचित लगता है और यदि ऐसा प्रयोग किया जाय तो उसका साहित्यिक पक्ष असुन्दर हो जाता है। अभिप्राय यह है कि सभी रस यथास्थान ही सुन्दर प्रतीत होते हैं। रस अपने आप में ही सुन्दर होता है। रामायण में सभी रसों के प्रसंग उपस्थित होते रहे हैं। प्रसंगानुसार पदानुबन्ध है। अतः स्वाभाविक है कि इस की उपस्थिति हो जाती है।

'संगीत रामायण' दो भागों में लिखित है। प्रथम भाग में तीन काण्ड और दूसरे भाग में चार काण्ड समाहित हैं। सभी काण्ड कथानक से आपस में जुड़े हुए हैं। बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, और अरण्यकाण्ड प्रथम भाग में आते हैं तो किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड दूसरे भाग में लिखे गए हैं।

उदाहरणार्थ :

वीर रस की एक झलक बालकाण्ड के अन्तर्गत देखने में आती है। यह प्रसंग धनुष भंग का है:–

राग–पीलू, त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई– काहू सो धनुष टारे ना टरे, सब नृपति हारिश्रीहत भये।

अन्तरा– (1) निरखि जनक अकुलाने पछताने जिय,
पन करि ठाने परिहास भयो जग में,
बसुधा बिहीन बीर कैसे अब धरूँ धीर,
सिय सुकुमारी कुमारी रहे घर में,
लखन वचन कहे रोस भरे।

अन्तरा– (2) सुनिये दिनेश कुल कमल दिवाकर,
कहौं स्वभाव कछु नहिं अभिमान को।
राउर निदेश पाऊँ पल में धनुष तोरूँ,
बापुरो पिनाक ये पुरानो कौन काम को।
जनक वचन सुनि जियरा जरे।।[2]

यह बंदिश राग पीलू में तीनताल (मध्यलय) में निबद्ध है। इस बंदिश का दूसरा अन्तरा वीर रस से ओत–प्रोत है। यह लक्ष्मण जी की उक्ति है, जिसमें उन्होंने वीर भाषण किया है।

इसी तरह श्रृंगार रस का साक्षात् दर्शन वाटिका प्रसंग में होता है :

राग–अड़ाना, त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई– सुनि सखि बैन सिय ललचाने नैन चाहे दरशन को।
अन्तरा– निरखत फिरती बिहग तरू बगिया,
देखन रूप अकुलाने हिया, जागी प्रीत पुरातन को।।[3]

यह बंदिश श्रृंगार रस का अनुपम सौन्दर्य प्रकट करता है। यह 'संगीत रामायण' के बालकाण्ड में वर्णित है। अयोध्याकाण्ड में रस ओत–प्रोत कर देता है। राग गौरी जो भैरव थाट आश्रित है, में तीनताल (मध्यलय) में एक बंदिश बड़ी ही कारूणिक छवि प्रस्तुत करती है। इस प्रसंग से करूण रस भी अप्रतिम सुन्दर हो गया है :

राग–गौरी (भैरव थाट), त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई – भूप जब सुने राम नहिं आये,
राम बिरह कहि राम राम तन तजे जमन फल पाये।

अन्तरा– गुरू अनुशासन आये भरत जब,
सुनी मातु की करनी, पितु सुरपुर सिय राम बन गवन,
सुनि व्याकुल परे घरनी, कौशिला बीहु बिध भरत बुझाये।[4]

यहाँ दशरथ की मृत्यु एवं भरत के अयोध्या–आगमन का प्रसंग उपस्थापित किया गया है। कारूणिक दृश्य होने के कारण यह अपने करूण रस से ही इस रामायण को सुन्दर बना दिया है।

सीताहरण के बाद सीता अन्वेषण में तत्पर भगवान श्रीराम का विलाप करूणासिक्त विप्रलंभ श्रृंगार को उपस्थित कर देता है। पत्नी के वियोग में पति का तड़पना, विलखना, कलपना और उत्साह सहित अन्वेषण करना वियोग–श्रृंगार को जीवन्त कर देता है। ये सारे प्रसंग अरण्य काण्ड में वर्णित हैं। भगवान श्रीराम का स्त्री–वियोगी–विलाप का एक दृश्य बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। यह छवि राग सोहनी, तीनताल (मध्यलय) में वर्णित है :

राग सोहनी, त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई– सिय बिरह बिलखे हरी,
नर पॉवर ज्यों पूछत सब लता पता सन बिबिध विनय करी।

अन्तरा– हे खग मृग हे मधुष निकर, तुम कहुँ देखी वैदही,
कुन्द कली कामिनी देखी, तुम जानकि बिपद भरी।[5]

इस बंदिश में भगवान राम का विलाप करूणार्द्र भी करता है और वियोग–श्रृंगार का सम्पूर्ण एहसास भी करा देता है। इसे पंडित जी ने अपने संगीत से सुन्दर बना दिया है।

इस तरह रसान्वेषण के क्रम में किष्किन्धाकाण्ड में शांत रस का आभास होता है। यह प्रसंग श्री राम और श्री हनुमान जी के मिलन का है। यहाँ इष्ट और सेवक के मिलन की परम शांति मिलती है। चूँकि रस साक्षात् सौन्दर्य है, इसीलिए यहाँ उसकी सुन्दरता निखर जाती है। जब भक्त और भगवान का मिलन होता है तो दोनों एकाकार हो

जाते हैं और सर्व शांति हो जाती है। पंडित जी ने राग ललित में इस प्रसंग का सम्यक् वर्णन किया है।

राग ललित, झपताल

स्थाई– जेहि शैल बसता भयभीत सुग्रीव,
तेहि निकट गये दोउ, निरखि त्रसित कहेउ, सुनु हनुमन्ता।
देखहु जाय, कौन बलवन्ता।।[6]

इसी क्रम में राग देश में भी शांत रस का सम्पूर्ण उदय हुआ है। पंडित जी ने इसे तीन ताल में निबद्ध किया है।

राग देश, त्रिताल (मध्यलय)

स्थाई– कपि को हृदय लगाय बुझाये,
सम दरसी मोहि कह सब कोई,
पर सेवक मोहे भाये।
अन्तरा– सकल चराचर महं मोहि देखे ऐसो सेवक ग्यानी,
प्राण समान सदा सो प्रिय मोहि निश्छल रहे अमानी,
तुम तो लखनहुँ ते मोहे भाये।[7]

भयानक रस लंका–दहन में दिखता है जो सुन्दरकाण्ड का प्रसंग है। यह राग लंकदहन सारंग में वर्णित है। आग की लपटों से भयानक दृश्य उपस्थित हो गया है :

राग–लंकदहन सारंग, झपताल

स्थाई– कनक रचित लंक जारयो मारूति नन्द,
नगर के नर नारि हा हा करे।
मान हनन हनुमान न जानेउ कोउ,
'रामरंग' रावण के मान छिन में हरे।।[8]

लंका काण्ड में वीभत्स युद्ध वर्णन देखने को मिलता है। वीर और अद्भुत रस लंकाकाण्ड में विद्यमान है।

'संगीत रामायण' में रसात्मक सांगीतिक सौन्दर्य के सारे तत्व विद्यमान हैं। उत्तरकाण्ड में राम राज्याभिषेक में श्रृंगार, अद्भुत और शांत तीनों की अनुपम छटा देखने को मिलती है। राम–राज्य–वर्णन में भी शांत रस झलकता है। 'संगीत रामायण' का यदि सम्यक् अवलोकन किया जाय तो इसमें सौन्दर्य के सारे तत्त्व मिल जाते हैं। जैसा प्रसंग है, तदनुरूप पदबन्ध एवं स्वर–लयों का समायोजन, विलक्षण चामत्कारिता और चामत्कारिता ही सौन्दर्य को सम्पुष्ट करता है। सौन्दर्य अपने सभी अंगों के साथ वहाँ विद्यमान है।

'संगीत रामायण' एक राग मालिका के सदृश है जिसमें 249 राग एवं 358 बंदिशें एक जगह प्राप्त हो जाती हैं । यह संगीत रामायण का एक अलग ही सौन्दर्य है। सिन्धु में बिन्दुओं का संग्रह या बिन्दु में सिन्धु का समायोजन दोनों एक जगह मिल जाते हैं। कथा के पथ का अनुसरण करता हुआ यह 'संगीत रामायण' कई नए रागों से भी परिचय कराता है और विभिन्न तालों से भी। तालों का समायोजन ग्रंथ को गति ही प्रदान करता है, गतिरोध नहीं, जो आश्चर्यचकित कर देता है। इसीलिए 'संगीत रामायण' में लौकिक और शास्त्रीय साहित्य कदम–कदम पर रस श्रोत का दर्शन करा देता है। रस का ऐसा सम्मिश्रण किसी को भी भाव विह्वल बना देता है। 'संगीत रामायण' में काव्यात्मकता, स्वरात्मकता, लयात्मकता और पौराणिकता– ये सभी विद्यमान हैं। कथानक की एक संहिता है तो भावों की पवित्रता भी है। प्रसंगों में शिथिलता कहीं नहीं है जिससे यह 'संगीत रामायण' साहित्यिक और सांगीतिक दृष्टि से निर्दोष हो जाता है।

निष्कर्ष :

'संगीत रामायण' में सैकड़ों रागों और सैकड़ों बंदिशों का ऐसा गुम्फन अन्यत्र दुर्लभ है। साहित्यिक महाकाव्य तो बहुत सारे हैं लेकिन सांगीतिक महाकाव्य प्रथम है। यह इसका एक अनुपम सौन्दर्य ही है। भगवान की नित्यता भगवान की भक्ति भगवान के प्रति अनुरक्ति को रखते हुए जैसा आस्तिक भाव का संचार हुआ है, यह भी रसोद्रेक का एक कारण है। रामायाण गेय है, पदानुबंधित है, इसीलिए इसे कोई कुशल गायक ही गा सकता है। यह रामायण गुणीजनों का परम संबल है, अनुकरणीय है, और श्रमावगाहिनी हैं। संगीत की गंगा धारा है। रस से ओत–प्रोत है। सौन्दर्य से पूर्ण है। अलंकरण से युक्त है, सर्वविशेषण से विशिष्ट है।

संदर्भ सूची :

1. वसंत, संगीत विशारद, पृष्ठ सं0–594
2. 'रामरंग' पं0 झा रामाश्रय, (संगीत) रामायण भाग–1, बालकाण्ड, पृष्ठ सं0–119
3. वही, पृष्ठ सं0–105
4. वही, अयोध्याकाण्ड, पृष्ठ सं0–163
5. वही, अरण्यकाण्ड, पृष्ठ सं0–190
6. वही, भाग–2, किष्किन्धाकाण्ड, पृष्ठ सं0–05
7. वही, किष्किन्धाकाण्ड, पृष्ठ सं0–09
8. वही, सुन्दरकाण्ड, पृष्ठ सं0–59

भारतीय संगीत में लोक गीत का महत्त्व

डॉ. सोनी कुमारी*

सारांश

किसी भी देश की सांस्कृतिक परम्परा में लोकगीत का एक अलग ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। लोक संगीत से शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति मानी गयी है। सरल धुनें, सरल शब्दावली इत्यादि लोकगीतों की मुख्य विशेषताएँ हैं। यही कारण है कि लोकगीत शीघ्रता से हर उम्र की जनता को आकर्षित करता है। लोकगीत में धुनें मधुर होती है, इसलिए ये अधिक आकर्षक होते हैं। ये अपने अर्थ से श्रोताओं को तन्मय कर देते हैं। अलग–अलग अवसरों पर अलग–अलग गीत अपनी सरल स्वरावली और सरल शब्दावली के कारण इंसान की आत्मा से जुड़ जाते हैं। इन गीतों में जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत होते हैं। विभिन्न अवसरों पर ये गीत असंख्य युवा और वृद्ध नर–नारियों के द्वारा गाए जाते हैं। ये लोकगीत मानव की आंतरिक भावनाओं की ही अभिव्यक्ति हैं।

मुख्य शब्द : *संगीत, लोक, गीत, धुन, संस्कार*

प्रविधि : *प्रस्तुत लेख के लिए पुस्तकों के अध्ययन द्वारा सामग्री संकलित की गई है ।*

भारत वर्ष में विभिन्न प्रकार की आबादी रहती है और विभिन्न प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं, इसीलिए यहाँ विभिन्न प्रकार के लोकगीत भी पाए जाते हैं। इन लोकगीतों के अन्तर्गत संस्कार गीत, पर्व–त्यौहार गीत, धार्मिक गीत, ऋतु गीत, श्रम गीत, जाति गीत, एवं अन्य विविध गीत पाए जाते हैं। ये गीत विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों में होने के कारण सहज ही आकृष्ट करते हैं । लोकगीतों के अन्तर्गत देश भक्ति एवं समाज के उत्थान में सहायक शब्दावलियों वाले गीत भी उपलब्ध हैं । ये लोक गीत प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं । लोकगीतों का जन्म किसी एक अभिप्राय की प्रेरणा से नहीं हुआ है इसीलिए किसी एक सामान्य दृष्टि से इस जटिल समस्या पर विचार नहीं किया जा सकता है। जीवन की सभी क्रिया एवं प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति इन्हीं लोकगीतों से हुई है। अतः इसके वर्गीकरण के लिए जीवन की समस्त भाव–प्रेरणाओं एवं क्रिया–प्रतिक्रिया के साथ उनके संबंध को समझना आवश्यक होगा। लोकगीतों की परम्परा को सीमा में घेर कर रखना वैसे तो संभव नही है, फिर भी व्यवहारिक अध्ययन एवं अनुशीलन की सुविधा के लिए लोकगीतों को वर्गों में बाँटना आवश्यक है।

डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों का विभाजन इस प्रकार किया है–

1. रसानुभुति की प्रणाली से,
2. क्रिया गीत की दृष्टि से,
3. विभिन्न जातियों के प्रकार से,
4. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से, और
5. संस्कार की दृष्टि से ।

लोक संगीत सामान्य जन के स्वाभाविक मन चेतना के भावगत उदगारों का लयबद्ध प्रकाश पुँज है। इस पुँज में उसके परिवेश एवं दैनिक जीवन की वे बहुविध प्रक्रियाएँ एवं गतिविधियाँ वर्णित रहती हैं जहाँ उसकी सभ्यता एवं संस्कृति की सहजता एवं स्वाभाविकता का बोध होता है, अर्थात् लोकगीतों में लोकजीवन के दार्शनिक, आध्यत्मिक एवं लोकव्यवहार–संबंधी विचार धाराओं तथा व्यापारों की पर्याप्त झलक मिलती है।

लोकगीत एक स्वर लहरी है, हृदय का उद्‌गार है, एक अद्‌भुत लोक–स्वर वितान है, जो हृदय से अचानक ही फूट पड़ता है। लोकगीत की विशेषताओं में सरसता, सरलता, माधुर्य एवं स्वाभाविकता इत्यादि आते हैं। वह निस्सीम है–उसका न ओर है न हि छोर, अनन्त है । इसमें मानव–जीवन के सभी तत्त्वों का उन्मीलन है। इन लोकगीतों में माँ की ममता मृत्यु का विषाद, दीन की करूणा, ईर्ष्या, राग–द्वेष, उल्लास, कामना क्रोध, अहम्, मद, लोभ, आशा, निराशा, दिग्दर्शन आदि सहजता से मिलता है।[1]

नए–नए भाव उत्पन्न होने के कारण लोकगीत कभी पुराना नहीं होता। इन गीतों में नए भाव होने के कारण पूरे संसार में लोकप्रिय है। लोकगीत का संरक्षण विशेष कर ग्रामीण

*अतिथि शिक्षिका (संगीत), एम.आर.एम. कॉलेज, दरभंगा

क्षेत्रों के निवासियों के द्वारा हुआ है। इन लोकगीतों के माध्यम से किसी भी क्षेत्र की सामाजिक स्थिति का ज्ञान होता है। किसी भी क्षेत्र की प्रगति–अवगति को लोकगीत के माध्यम से मापा जा सकता है। प्रारंभिक काल के लोकगीत में अलंकार, शब्दाडम्बर, विभिन्न ताल–लय एवं लौकिक भाषा सौष्ठव लोकगीत में पाया जाता है। महात्मा गाँधी ने लोकगीत के बारे में कहा है कि ''लोकगीत में धरती गाती है, पहाड़ गाते हैं, नदियाँ गाती हैं, फसले गाती हैं, उत्सव मेले, ऋतुएँ और परम्परा गाती हैं''।[2] प्राचीन काल में मानव गुफाओं में रहते थे। उनमें धीरे–धीरे सभ्यता और संस्कृति पनपने लगी। यह समाज के विकृत स्वर, वितान आदि संगीत भावनाओं का स्पर्श पाकर कन्दराओं को गुंजित करने लगा।

मानव जीवन के सभी आयाम लौकिक धर्म से ओत–प्रोत हैं। प्राचीन काल में हमारे धर्म–शास्त्रियों ने षोडश् संस्कारों का विधान किया। प्राचीन काल की तरह आज भी हम गाँवों में जीवन के संस्कारों की अभिव्यक्ति उन्हीं लोक गीतों की स्वर लहरियों द्वारा देखते हैं।[3] सामान्यतः लोकगीत शास्त्रीय संगीत की भाँति नियम से बंधे नहीं होते हैं। यद्यपि इनमें भी उपयुक्त स्वर, लय, ताल एवं माधुर्य का प्रचुर समावेश है । ये शास्त्रीय राग, रागिनी तथा आलाप इत्यादि से मुक्त होते हैं। ये कठोर अभ्यास के बंधन से मुक्त होते हैं। इन गीतों में स्वतः ही रस, भाव इत्यादि का समावेश हो जाता है, जो सुनने वालों को आश्चर्यचकित और भाव–विभेर कर देता है। लोकगीत जीवन एवं आत्मा की मधुर अभिव्यक्ति है।

लोक संगीत अंग्रेजी के 'Folk Song' का हिन्दी रूपान्तरण है । इस शब्द का प्रयोग जन या ग्राम शब्द के लिए किया गया है, परन्तु प्रयोग और परम्परा के आधार पर लोक शब्द 'Folk' के अधिक समीप माना जाता है।

लोकगीत को 'स्वतः स्फूर्त गीत' भी कहा गया है, संगीत एवं लय इसके प्राण हैं। ये लोकगीत मौखिक परम्परा में प्रस्तुति रूप में रहने के कारण एक–दूसरे कंठ तक गुजरते रहते हैं और इसी कारण उसके शब्द विकृत भी हो जाते हैं परन्तु सरल शब्दावलियों एवं मधुर धुनों के कारण ये अत्यन्त जीवन्त बन जाते हैं। भारतीय लोकगीतों में मानव–सभ्यता एवं संस्कृति के चित्र इतिहास से भी अधिक सूक्ष्म रूप में रहते हैं। किसी भी जाति का विश्वास, धार्मिक, विचाार, साधारण प्रथाएँ एवं विचार श्रोतों का संगम स्थल लोकगीत ही होते हैं।[4] लोकगीतकार अपनी परम्परागत कला को जीवित रखते हैं तथा बिना किसी अहं भावना के खुले हृदय से गायन का प्रदर्शन करते हैं। लोक संगीतकार शीघ्रता से संवेदनशील हो जाते हैं और भौतिक सुख–दुख भूलकर एक अद्वितीय आनन्द में डूब जाते हैं। रचनाएँ बँधी–बँधाई धुन में ही रस का संचालन करने लगती हैं। इसके कलाकारों में आत्मसमर्पण की भावना कला–प्रदर्शन से पूर्व ही विद्यमान रहती है। यह एकत्व उन्हें दिव्यत्व की ओर आकर्षित करता है।

भारतीय लोकगीतों का इतिहास मानव विकास की कहानी से अधिक पुराना नहीं है। इससे आपस में सहयोग की भावना जागृत हुई, जो उन्हें प्राकृतिक आपदा–काल में उससे लड़ने की ताकत देती है। उसके पश्चात् धीरे–धीरे पारस्परिक स्नेह तथा सौहार्द की भावना जागृत हुई। इन लोकगीतों में मानव के सामूहिक श्रम, उल्लास एवं संघर्ष के साथ–साथ विभिन्न ऋतुओं एवं पर्वों की कथाएँ मौजूद हैं, जो स्वर तथा लय की सहायता से लोगों के कंठों में बस गई हैं जो मानव को श्रम के बोझ से मुक्त करता है, उल्लासमय वातावरण तैयार करता है । परिस्थितिजन्य साहित्य का संगीत के साथ प्रस्फुटन नई ऊर्जा प्रदान करता है ।

निष्कर्ष :

लाला लाजपत राय ने कहा है ''देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक तथा समाजिक आदर्श इन गीतों में सुरक्षित है। इनका विनाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी। अतः हमें अपने लोकगीतों को सुरक्षित रखना आवश्यक है।'' लोकगीतों की परम्परा हमारे देश में कितने वर्षों से चली आ रही है, इसका अनुमान भी नही लगाया जा सकता, परन्तु यह आज भी उसी रूप में विद्यमान है। लोकसंगीत के स्वरूप में जो बदलाव दिखाई पड़ता है। वह कुछ हद तक वर्षों से चले आ रहे समाजिक वातावरण में आए परिवर्तन का परिणाम है। एक–से–दूसरे तक पहुँचने की प्रक्रिया के कारण भी आंशिक परिवर्तन हुआ है, किन्तु इसका महत्व आज भी ज्यों–का–त्यों है ।

संदर्भ सूची :

1. मित्तल, डॉ. अंजली, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में संगीत, कनिष्क पब्लिशर्स, नयी दिल्ली–2003
2. गर्ग, डॉ. लक्ष्मी नारायण, लोक संगीत अंक, संगीत, मासिक पत्रिका, 1971, पृष्ठ 77
3. सिंह, अणिमा, मैथिली लोकसाहित्य स्वरूप ओ सौन्दर्य, पृष्ठ 54
4. गर्ग, डॉ. लक्ष्मीनारायण, लोकसंगीत अंक, संगीत मासिक पत्रिका, 1983, पृष्ठ 35

यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

संगीत में ईश्वर-भक्ति और आध्यात्मिक तत्त्व

डॉ. नमिता कुमारी*

सारांश

भारतीय सभी कलाओं का उद्‌गम हम धर्म से जोड़ते हैं। ईश्वर में अगाध श्रद्धा और विश्वास के कारण हम सभी अपने लक्ष्य को भी अपने–अपने इष्ट के साथ जोड़ लेते हैं। सब कुछ उसी परम–परमात्मा में दृष्टिगोचर होने लगता है। परिणामस्वरूप संगीत विधा से जुड़े होने के कारण हमें परमानन्द का लक्ष्य दिखाई देता है। धर्म, अर्थ, काम–यहाँ तक कि मोक्ष प्राप्ति का मार्ग भी संगीत के साथ जुड़ा माना गया है। आत्मिक आनन्द का साधन यह संगीत धर्म और अध्यात्म का भी मार्गी है।

सूचक शब्द– *संगीत, धर्म, अध्यात्म, आनन्द, भक्ति*

शोध–प्रविधि– *विभिन्न पुस्तकों के अध्ययन एवं व्यवहार में सम्पन्न सम्बद्ध क्रियाओं को इस पत्र का माध्यम बनाया गया है।*

धर्म–प्रधान देश भारत में संगीत का आधार भी आध्यात्मिक माना गया है। यहाँ की समस्त कलाएँ दर्शन, चिंतन आदि इसी ओर उन्मुख रहीं। यही वजह है कि धर्म से संगीत का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध भी माना गया है। संगीत के आरंभिक स्वरूप की जानकारी वेदों से प्राप्त होती है। चारों वेदों में साम संगीतमय है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में सामवेद को ईश्वर का अंश माना गया है– ''वेदानां सामवेदोऽस्मि''। अनादि काल से ब्रह्माण्ड में एक दिव्य ध्वनि 'ऊँ' गुँजायमान है। ओंकार ही दिव्य नाद है–

''आदि नाद अनहद भयो ताते उपज्यो वेद।
पुनि पायो वा वेद में सकल सृष्टि को भेद।।''[1]

इस दिव्य नाद को हमारे मनीषियों ने भी 'प्रणव' अथवा ओम् के रूप में वर्णित किया है। ओम् ही चारों वेदों का मूल तत्त्व है। नाद की चर्चा करते हुए दामोदर पंडित ने 'संगीत दर्पण' में कहा है–

''नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते।।''[2]

अर्थात्– 'नकार' प्राणवाचक तथा 'दकार' अग्निवाचक है जो वायु एवं अग्नि के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, उसी को 'नाद' कहा जाता है।

भारतीय दर्शन में परब्रह्म को आध्यात्मिक चेतना से उस अनंत, अव्यक्त, तत्व को समझने का प्रयास किया गया, संगीत आचार्यों ने 'नाद' को ब्रह्म की तरह नित्य कहकर उस परब्रह्म के ज्ञान के लिए नाद के दर्शन का विस्तार भी किया।

संगीत में दो प्रकार के नाद का प्रयोग हुआ है– आहत और अनाहत। सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित संगीत–उपयोगी ध्वनि 'आहत नाद' है। संगीत साधना अथवा अध्यात्म साधना के द्वारा चित्त को एकाग्र कर हृदय में एक मधुर ध्वनि की अनुभूति 'अनाहत नाद' है। संगीत नादमय है एवं नाद–उपासना को योग–साधना के समतुल्य ब्रह्म आराधना के लिए उत्तम माना गया है।

इसी भाव को 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में इस प्रकार कहा गया है–

''वीणा वादन तत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गनिगच्छति।।''[3]

धर्मशास्त्रों में तथा हमारे ऋषि–मुनियों ने नाद को नाद–योग की उपमा दी है। संगीत–साधना नाद–योग साधना है। योग का अर्थ जीवात्मा तथा परमात्मा का एकीककरण है। आध्यात्म एवं नाद–योग एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। पथ चाहे जो भी हो, परन्तु हर एक विद्या का उद्देश्य तो परमात्मा की प्राप्ति ही है– ऐसा हमारी संस्कृति में ही सन्निहित है।

ईश्वर से एकनिष्ठ प्रेम का नाम ही भक्ति है। भक्ति का अर्थ है, ईश्वर की सेवा, आराधना, स्नेह अर्थात् ईश्वर में पूर्ण शरणागति। पुराणों में नवधा भक्ति की बात बताई गई है जिसमें नाम–स्मरण और कीर्तन को भगवद्‌भक्ति में श्रेष्ठ माना जाता है।

प्राचीन काल से ही संगीत भगवद्‌प्राप्ति का, देवताओं

*अतिथि शिक्षक, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

को प्रसन्न करने का, परमानन्द की प्राप्ति का प्रमुख साधन है । भक्त का मन जब भक्तिमय कीर्तन से प्रभु में लीन हो जाता है, तब भक्त भाव–विभोर होकर कभी झूमता है, कभी नाचता है, हँसता है, रोता है, प्रफुल्लित होकर संसारिक सुध–बुध खो बैठता है। ऐसी सम्मोहिनी शक्ति है, उपासना में, कीर्तन में, भजन में। यह मान्य है कि जहाँ भगवान के नाम का कीर्तन, भजन होता है, वहाँ भगवान स्वयं निवास करने लगते हैं–

''नाहं वसामि बैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।''[4]

वैदिक काल में संगीत, धर्म और अध्यात्म से जुड़ा था। विष्णु के हाथ में शंख, शिव के हाथ में डमरू, कृष्ण के हाथ में मुरली, सरस्वती के हाथ में वीणा, गणेश के हाथ में मृदंग आदि के द्वारा संगीत की धर्मिक महत्ता ज्ञात होती है।[5]

वैदिक काल से ही परमात्मा की आराधना के लिए 'साम' के सस्वर गान की प्रणाली विकसित हुई। सामगान का उद्देश्य परब्रह्म की उपासना करना है । पुराणों में ईश्वर आराधना के लिए संगीत की मान्यता दी गई है। मार्कण्डेय, विष्णु धर्मोत्तर शिव, ब्रह्मादि पुराणों में ईश्वर आराधना हेतु गायन, वादन एवं नृत्य–सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होते हैं। महाकाव्य–काल के रामायण–काल–खंड में संगीत अपनी पराकाष्ठा पर था। ''रामायण में ऐसे अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि संगीत का संबंध भगवदुपासना से रहा है। श्री राम के आदर्श चरित्र के माध्यम से भक्ति का प्रचार करना तथा काव्य और संगीत को मनोरंजन का वस्तु न बनने देना, महर्षि बाल्मीकि का आदर्श रहा है।''[6] महाकाव्य–काल के ही महाभारत–कालखंड में भी संगीत विषयक कतिपय उद्धरण मिलते हैं।

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन 14वीं शताब्दी से शुरू होकर 16वीं शताब्दी में अपनी संपूर्णावस्था में पहुँच गया। पंजाब में गुरूनानक, गुजरात में नरसी मेहता, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, महाराष्ट्र के नामदेव सन्त तुकाराम, राजस्थान में मीरा, पूर्वी उत्तर क्षेत्र में रामानंद, कबीर, तुलसी एवं ब्रज क्षेत्र में श्रीमदवल्लभाचार्य, सूरदास, हरिदास आदि भक्त मनीषियों ने अपनी–अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से भक्ति आन्दोलन को जन–आन्दोलन बनाया और उसे सर्वसाधरण तक लोकप्रिय शक्तिशाली, सफल आन्दोलन बनाने के लिए सभी ने युगयुगीन भक्ति–संगीत–कीर्तन, भजन, संकीर्तन, नगर संकीर्तन की महत्ता को सर्वसिद्ध कर दिया।

वर्त्तमान में मंदिरों में घंटियों के साथ भजन–कीर्त्तन–आरती, गुरुद्वारों में शबद–कीर्त्तन आदि अनेक भक्तिपरक दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। किसी भी कार्य के आरम्भ में ईश्वर का स्मरण कर भजन, गीत आदि प्रस्तुत किए जाते हैं।

निष्कर्ष– ईश्वर–आराधना का यह कार्य मात्र भक्ति या अध्यात्म नहीं हैं, इसके द्वारा हमारी अनेक निषिद्ध चित्त वृत्तियाँ शान्त और समाप्त होती हैं और हम अनेकानेक सुन्दर अपेक्षित कार्यों के प्रति जागरूक हो जाते हैं।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, डॉ. बी. एल., संगीत मासिक पत्रिका, दिसम्बर, 1982, पृ.– 5
2. भट्ट, विश्वम्भर नाथ (डॉ.), संगीत दर्पण, श्लोक 39, पृ.– 14
3. यतिधर्म–प्रकरण, श्लोक–15
   (उद्धृत– बनर्जी, नमिता (डॉ.), मध्यकालीन संगीतज्ञ एवं उनका तत्कालीन समाज पर प्रभाव, पृ.–48)
4. श्रीमद्भागवत् पुराण स्कंध–5
5. काव्या, लावण्य कीर्ति सिंह, पं. ओंकार नाथ जी ठाकुर, 1998, पृ.– 1
6. बैनर्जी, नमिता (डॉ.), मध्यकालीन संगीतज्ञ एवं उनका तत्कालीन समाज पर प्रभाव, पृ.– 50

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

भारतीय संगीत शास्त्र की अनुपम विदुषी डॉ. विमला मुसलगॉवकर व्यक्तित्त्व एवं सांगीतिक योगदान

प्रो. संगीता पण्डित**

पूनम यादव*

सारांश

बीसवीं शताब्दी की कतिपय विशिष्ट महिला संगीत शास्त्रियों में डॉ. विमला मुसलगॉवकर का नाम आदरपूर्वक लिया जा सकता है। शास्त्रीय चिन्तन की पद्धति की लीक न छोड़ते हुए भी डॉ. विमला मुसलगॉवकर ने अपने मौलिक चिन्तन का जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया है, वह उनकी अपनी प्रतिभा के उन्मेष है। भारतीय चिन्तन की अखण्डता का यह ज्वलन्त उन्मेष है कि सभी कलायें, विधायें शास्त्र मानव–जीवन के प्रयोजन चतुर्वर्ग के साथ जुड़ी है।

प्रत्येक परिवार में, प्रत्येक संस्था में कोई–न–कोई ऐसा व्यक्तित्व होता है जो अपनी कर्मठता, अपनी कर्त्तव्यपरायणता, अपनी निष्ठा, अपने सर्वमित्र भाव के कारण हमारे बीच का एक अनिवार्य अंग बन जाता है और अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है, जिसके कारण वह सदैव के लिए चिरस्मरणीय बन जाता है। ऐसे ही व्यक्तित्व की धनी थीं, डा. विमला मुसलगॉवकर। परिवार में प्राण स्वरूप, अपने विभाग का अनिवार्य अंग, प्रो0 प्रेमलता शर्मा जी का दाहिना हाथ, सहयोगियों की प्रेरणा स्रोत, छात्र–छात्राओं की अतीव हितैषी, ज्ञान पिपासु और अर्जित ज्ञान के दान–यज्ञ में उत्साही सेवा–भाव से प्रवृत्त थीं डा0 विमला मुसलगॉवकर।

मुख्य शब्द : *संगीत, शास्त्र, संस्कृत, ग्रन्थ, कला, चिन्तन*

शोध–माध्यम– *संगीत एवं संगीत शास्त्र–सम्बन्धी ग्रन्थों के अध्ययन एवं साक्षात्कार द्वारा सामग्री संकलित की गई है।*

डॉ. विमला मुसलगॉवकर का जन्म 1 जनवरी, 1929 को उत्तर प्रदेश के फतेहपुर शहर में एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। शैशव–काल में माता–पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण फतेहपुर के ही एक निकटस्थ कपूर परिवार ने आपके पालन–पोषण की जिम्मेदारी निभाई और उन्हीं के संरक्षण में आपकी शिक्षा–दीक्षा पूरी हुई। डॉ. विमला मुसलगॉवकर का विवाह संस्कृत व दर्शन के अग्रिम पक्ति के विद्वान–दार्शनिक डॉ. गजानन शास्त्री मुसलगॉवकर के साथ जुलाई 1965 में सम्पन्न हुआ। विद्वान दार्शनिक सहधर्मिणी के रूप में आपने एक गौरवशाली, सुखमय अध्यवसायी जीवन व्यतीत किया और अपने जीवन को अंतिम साँस तक देववाणी संस्कृत, दर्शन व संगीत–शास्त्र की सेवा व साधना से जोड़कर रखा।

डॉ. शुभा मुसलगॉवकर (डॉ. विमला मुसलगॉवकर की बेटी) के शब्दों में ''अम्माम 11 भाई–बहनों में सबसे अधिक सरल विवेकवान एवं सक्रिय थीं। वे अपने सभी भाई–बहनों की मार्गदर्शक बनकर उनके अन्दर जागरूकता उत्पन्न करती थीं तथा पढ़ाई–लिखाई के प्रति सदैव प्रेरित करती रहती थीं, उनके जीवन का उद्देश्य सिर्फ देना था। उन्होंने अपने जीवन में जो भी कार्य किया पूरे समर्पण भाव से किया।''[1]

डॉ. विमला मुसलगॉवकर मूल रूप से एक शिक्षिका थीं और उनके शैक्षिक सेवा का एक बड़ा हिस्सा काशी हिन्दू विश्वाविद्यालय के संगीत एवं मंच कला संकाय में व्यतीत हुआ। यहाँ उन्होंने 24 वर्षों तक एक समर्पित शिक्षिका की भूमिका निभाते हुए प्रमुखता से जिन विषयों में अपनी सेवा प्रदान की, वो है संस्कृत, दर्शन व संगीत शास्त्र। डॉ. विमला मुसलगॉवकर स्वभाव से अतीव अन्तर्मुखी थीं और उसी के अनुसार अपने कार्यक्षेत्र में मौन सेवा–व्रती भी थीं, इस कारण उनके व्यक्तित्व के कई महत्वपूर्ण पहलू अनुद्घाटित रह गये।[2]

प्रो. प्रेमलता शर्मा के अनुसार– ''डॉ. विमला मुसलगॉवकर के चिन्तन ने संगीतशास्त्र की इस दिशा में प्रवेश करने का मार्ग प्रशस्त किया है। संगीत–शास्त्र में पड़े गुप्त संकेतों का आविष्कार और उनका पल्लवन उनके ग्रन्थ की निजी विशेषता है जो इसे भारतीय संगीत–शास्त्रं के आधुनिक अध्ययन के इतिहास में विशिष्ट स्थान दिलाएगी। संगीत और उसका शास्त्र ये दोनों ही भारतीय संस्कृति के

*शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शोध निर्देशिका, पूर्व अध्यक्ष, गायन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

मुख्य स्तम्भों में से हैं। इसीलिए विमला जी का कार्य न केवल भारतीय संगीत, अपितु भारतीय संस्कृति के विशाल परिवेश को छूता है। मेरे द्वारा बोए इस लघु बीज ने इतना विशाल और सफल आकार धारण किया इससे मैं अत्यन्त आप्यायित हूँ।''[3]

'पद्मश्री' पं. बलवन्तराय भट्ट जी के शब्दों में– ''डॉ. विमला मुसलगॉवकर जी का ध्यान आते ही संस्कृत की प्रसिद्ध सूक्ति 'विद्या विनयेन शोभते' मानो साकार हो उठती है। अनेक अलग–अलग सेमिनारों में जब उन्होंने अपना निबन्ध प्रस्तुत किया तब उनकी विद्या का बड़ा उज्ज्वल और सहज रूप देखने को मिलता था। किसी विषय पर अपना पक्ष प्रस्तुत करते समय वे बड़ी विनम्रता से बातों को समझाती थीं। साथ ही, बड़ी सरलता से बिना किसी पूर्वाग्रह या दुराग्रह के दूसरों की बात सुनना और समस्या का समाधान करना उनकी बड़ी विशेषता थी। उदारता और कर्मठता डॉ. विमला मुसलगाँवकर के स्वमभाव में घुले–मिले थे। सुश्री प्रेम बहन जी (प्रो. प्रेमलता शर्मा) के संगीत–शास्त्रक विभाग में डॉ. विमला मुसलगॉवकर जी के बिना किसी समारोह की कल्पंना संभव नहीं थी।''[4]

डॉ. सुभद्रा चौधरी जी के शब्दों में– ''डॉ. विमला मुसलगॉवकर से ज्यों–ज्यों मेरा सम्पर्क बढ़ता गया उनके स्नेह के आकर्षण ने उन्हें मेरे लिए अध्यापिका की अपेक्षा मित्र बना दिया और उन्होंने भी मुझे अपनी छात्रा नहीं, अपितु मित्र ही माना। यूं पढ़ने–पढ़ाने, सीखने–सिखाने का क्रम हम–दोनों में परस्पर लगभग अन्त तक चलता रहा। गुरू, पत्नी और अध्यापिका के रूप में अनेक छात्रों ने उनसे माता का वात्सल्य पाया और कइयों ने उनके व्यवहार में ममतामयी माँ का रूप देखा।''[5]

प्रो. प्रदीप कुमार दीक्षित (नेहरंग) ने अपने एक आलेख में लिखा है– ''विद्वता के साथ विनम्रता का, निष्ठा के साथ सन्निष्ठा का, अनुशासन के साथ छात्र–वत्सलता का, कर्त्तव्य–बोध के साथ सदाचार का, आदर्श के साथ व्यवहारशीलता का, योग्यता के साथ आडंबरहीनता का, सामर्थ्य के साथ निराभिमानता का मणिकांचन योग किस एक विलक्षण व्यक्तित्व, में पाया गया? वह हैं डॉ. श्रीमती विमला बहन।''[6]

सांगीतिक योगदान–:

सांगीतिक योगदान के परिप्रेक्ष्य में डॉ. विमला मुसलगॉवकर के व्यक्तित्व को दो भागों में रेखांकित कर सकते हैं, एक लेखन से जुड़ा यानि लेखिका का व्यक्तित्व, दूसरा शिक्षण से जुड़ा यानी 'शिक्षिका' का व्यक्तित्व। इन दोनों ही रूपों में उन्होंने संगीत–जगत् को अपनी सेवा से उपकृत किया है और दोनों ही क्षेत्रों में कृतित्व का एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

लेखिका के रूप में योगदान–:

डॉ. विमला मुसलगॉवकर द्वारा रचित दो ग्रन्थों को देखा जा सकता है–

1. संगीतोपयोगी संस्कृत (भाग–1 व भाग–2)
2. भारतीय संगीतशास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन।

संगीतोपयोगी संस्कृत–

अपने नाम के ही अनुरूप यह सृजन संगीत के विद्यार्थियों से संबंधित है। यह पुस्तक उन ज्ञान–पिपासुओं के लिए वरदान है जो संगीत व संगीत–शास्त्र की गहराइयों में प्रवेश करने की अभिलाषा से संगीत के प्राचीन संस्कृत–ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहते हैं पर संस्कृत के ज्ञान के अभाव में उनके लिए वह संभव नहीं हो पाता। वस्तुतः नाम से भले ही यह पुस्तक संस्कृत विषयक प्रतीत होती हो पर इसके उत्स में है– संगीत । संगीत के विद्यार्थी, संगीतशास्त्र के ज्ञान–पिपासु इत्यादि तथ्यों को समाहित किये हुए है। इस संबंध में लेखिका स्वयं कहती हैं– ''काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत और ललित कला संकाय में संस्कृंत–अध्यापन कार्य करते हुए मेरे नौ वर्ष व्यतीत हुए। यहाँ संगीत के विद्यार्थियों को संस्कृत की पाठ्य–पुस्तकों के नाम पर जो कुछ पढ़ाया जा रहा था, उससे विद्यार्थी लाभान्वित नहीं हो पा रहे थे, यह अनुभव बराबर होता था। अन्यान्य कारणों में से इसका एक यह भी कारण था कि विद्यार्थियों की रूचि और विषय–चयन की दृष्टि से वे पुस्तकें नहीं लिखी गयी थीं। इन्हीं परिस्थितियों में ग्रन्थन हुआ– संगीतोपयोगी संस्कृत का। एक अन्य स्थल पर वे कहती हैं– संगीतशास्त्र के प्रेमी विद्यार्थियों की अभिरूचि के अनुकूल उनके अध्ययनार्थ वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय ठोस प्रमाणों के आधार पर इस पुस्तक की रचना की गई है।

उपर्युक्त विवरण से 'संगीतोपयोगी संस्कृत' की रचना की पृष्ठभूमि में लेखिका का संगीत के प्रति उसकी संवेदनशील जागरूकता व आवश्यकता के अनुरूप लेखन का दायित्व–निर्वाह दोनों एक साथ प्रकट होता है।

संगीतोपयोगी संस्कृत ग्रन्थ के प्रथम भाग में वर्ण–परिचय, पाणिनी व्याकरण का परिचय, शब्द–परिचय, शब्द–रूपावली, सन्धि–परिचय, वाक्य–परिचय, गद्यात्मक और पद्यात्मक वाक्यों के अन्वय का प्रकार, वाक्य–संग्रह के प्रमुख

ग्रन्थों से महत्वपूर्ण उद्धरण तथा उनका अन्वय सहित भावार्थ यथा– नादोपासना नाथ–प्रशंसा नाद–वर्णन, वर्ण–पद वाक्य–नि–वर्णनम्, गीत महिमा, संगीत–लक्षणम्, स्वर–लक्षणम्, चतुर्विद्याः स्वराः ग्राम–लक्षणम्, राग–लक्षणम्, मूर्च्छना–तद्भेदाश्च, तानाः शुद्धः कूटाश्च इत्यादि की व्याख्या है।

भारतीय संगीत का दर्शनपरक अनुशीलन–

'भारतीय संगीत शास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन' के माध्यम से भारतीय संगीत शास्त्र व दर्शन के समन्वित आलोक में इस 'समग्रता' का दिग्दर्शन करना लेखिका का मूल अभिप्रेत रहा है। इस ग्रन्थ को तीन खण्डों में विभक्त किया गया है–

–देश खण्ड,
–काल खण्ड एवं
–संधि खण्ड

'देश खण्ड' के अन्तर्गत तीन अध्याय बताये हैं– नाद–संबंधी चिन्तन, श्रुति–संबंधी चिन्तन तथा संगीत में ताल का स्वरूप। 'काल–खण्ड' के अन्तर्गत दो अध्यायों का वर्णन हैं– काल तत्त्व–संबंधी तथा संगीत में ताल। 'संधि खण्ड' के अन्तर्गत दो अध्याय हैं– राग ध्यान–परम्परा पर उपासना की दृष्टि से विचार तथा वाद्य–संबंधी चिन्तन। प्रस्तुत अनुशीलन में लेखिका द्वारा संगीत के जिन शास्त्र–ग्रन्थों का ग्रहण किया गया है, स्पष्टतः वे सभी दर्शन से प्रभावित हैं। इन ग्रन्थों में सांगीतिक तत्त्व–निरूपण तथा प्रतिपादन–शैली, इन दोनों बिन्दुओं पर भारतीय दर्शन का प्रभाव दिखाई पड़ता है। डॉ. विमला मुसलगॉवकर ने अपने इस अध्ययन के लिए संगीत, संगीत शास्त्र एवं दर्शन के लघु व वृहद आकारीय प्रायः 180 ग्रन्थों से सन्दर्भ लिया है जो इस बात को दर्शाता है कि विषय–विवेचन के प्रति आपका दृष्टिकोण कितना व्यापक है और प्रयास कितना गम्भीर व जागरूक है।

डॉ. विमला मुसलगॉवकर ने अपने कुछ आलेखों के माध्यम से भी संगीत की सेवा की है। इनमें सर्वाधिक चर्चित है 'मतंगकृत वृहद्देशी' में योग और तन्त्र का स्वरूप तथा परवर्ती संगीत–शास्त्रियों पर मतंग का प्रभाव।

शिक्षिका के रूप में योगदान–:

वर्ष 1966 में जब 'संगीत कला संकाय' के अन्तर्गत संगीत शास्त्र विभाग का औपचारिक शुभारम्भ हुआ उसी समय से संस्कृत के साथ–साथ शास्त्र के पठन–पाठन से भी आपका जुड़ाव हो गया। प्रो. प्रेमलता शर्मा जी के साथ रहकर व निरन्तर उनकी कक्षाओं में बैठकर अपने को इस स्तर पर पहुँचा दिया।

विभागाध्यक्ष किसी कारणवश लम्बे समय तक विभाग में नहीं आ पातीं तो प्रशासनिक दायित्वों के साथ–साथ संगीत शास्त्र विभाग की कक्षाओं का दायित्व स्वतन्त्र रूप से आप ही सम्भालती थीं। आप संगीत शास्त्र की स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाने से लेकर, एम.फिल. तथा म्यूजिक अप्रेसियेशन की कक्षाएँ भी लेती थीं। इन कक्षाओं में भारतीय के साथ–साथ विदेशी छात्र भी हुआ करते थे। डॉ. विमला मुसलगॉवकर से संस्कृत, दर्शन व संगीत शास्त्र पढ़ने वालों की एक बड़ी संख्या है, उनमें– डॉ. आदिनाथ उपाध्याय, डॉ. सुभद्रा चौधरी, डॉ. एन. रामनाथन, डॉ. अर्चना दीक्षित, डॉ. इन्द्राणी चक्रवर्ती, डॉ. तेज सिंह टाक, डॉ. अनिल बिहारी व्योहार, डॉ. उषा बन्दोपाध्याय, डॉ. लिपिका दास गुप्ता आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ. विमला मुसलगॉवकर के निर्देशन में पंजीकृत दो शोध–छात्रों ने म्यूजिकोलॉजी में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की– डॉ. आदिनाथ उपाध्याय एवं डॉ. पूनम निगम।[7]

आपने अपने कार्य–काल में कई महत्वपूर्ण गोष्ठियों का आयोजन किया तथा कई राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में संगीत व शास्त्र विषय पर आलेख भी प्रस्तुत किया। इनमें प्रमुख हैं– काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, संगीत एवं मंच कला संकाय द्वारा 1981 में आयोजित गोष्ठी 'अभिनव गुप्त भारतीय संस्कृति की देन, एवं सन् 1986 में आयोजित संगीत दर्शन परिचर्चा, नादार्चन पर्व, वाराणसी द्वारा 1996 में आयोजित 'हमारी चिन्तन परम्परा हमारा दिशा बोध' तथा संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली द्वारा हम्पी में सन् 1995 में आयोजित गोष्ठी 'मतंग तथा उनका ग्रन्थ वृहद्देशी'।

निष्कर्ष : डॉ. विमला मुसलगॉवकर का बहुमुखी व्यक्तित्व व कृतित्व उन्हें जहाँ एक ओर संगीत–शास्त्र के विश्वविद्यालयीय शिक्षण के इतिहास में उच्च पद पर आसीन करता है, वहीं दूसरी ओर संगीत व संगीत–शास्त्र के क्षितिज पर उन्हें वैश्विक संप्रतिष्ठा से भी विभूषित करता है।

संदर्भ सूची :

1. मुसलगॉवकर, डॉ. शुभा से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त ।
2. उपाध्याय, डॉ. आदिनाथ से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त।
3. मुसलगॉवकर, डॉ. विमला, भारतीय संगीतशास्त्र का दर्शन परक अनुशीलन, संगीत रिसर्च अकादमी, पृ.सं. 16
4. 'काव्या', डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह (सं.), भारतीय संगीतज्ञ, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ.सं. 47
5. वही, पृ. सं. 48
6. उपाध्याय, डॉ. आदिनाथ (सम्पादक), नादार्चन संगीत वार्षिकी, 1998, पृ.सं. 57
7. 'काव्या', डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह (सं.), भारतीय संगीतज्ञ, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली, पृ.सं. 55

दादरा : एक विशिष्ट गायन-शैली व ताल प्रकार तबला संगत के सन्दर्भ में

डॉ. शिवेन्द्र प्रताप त्रिपाठी* **प्रो. सुधा सहगल**** **भानु प्रताप सिंह***

सार

दादरा, उपशास्त्रीय अंग से गाई जाने वाली वह शैली है जो अधिकांशतः दादरा ताल में निबद्ध होती है। यह शैली लोकगीतों पर आधारित होती है तथा इसे ठुमरी का लघु रूप भी कहें तो अनुचित न होगा। जो राग ठुमरी में प्रयोग किए जाते हैं उन्हीं रागों का प्रयोग दादरा गायन–शैली में किया जाता है। तबला संगत की दृष्टि से दादरा गायन–शैली का गायन दादरा व कहरवा ताल की मध्य व द्रुत लय में किया जाता है जिसमें संगत–प्रधान कलात्मकता, रचनात्मकता व सृजनशीलता तबला संगतकार पर निर्भर होती है।

सूचक शब्दः– *दादरा, गायन, शैली, तबला–संगत, उपशास्त्रीय गायन–शैली, ठुमरी*

शोध–माध्यम : *पुस्तकों एवं मंचीय प्रस्तुतियों को इस शोध–पत्र का माध्यम बनाया गया है ।*

दादरा गायन–शैली हिंदुस्तानी संगीत की एक विशिष्ट गायन–शैली है। "दादरा वह शैली है जिसमें झरने से गिरते पानी की मधुर ध्वनि जैसे आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है।"[1] दादरा गायन–शैली के शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से इसका साहित्य तो नगण्य है, किन्तु सांगीतिक दृष्टि से दादरा ताल में निबद्ध उपशास्त्रीय गायन–शैली को दादरा गायन–शैली कहा जाता है। इस शैली को सांगीतज्ञों ने लोक संगीत की एक रस–रंग धारा माना है। अतः "इसे ठुमरी की शाख पर खिला हुआ एक फूल भी कह सकते हैं।"[2] वर्तमान में दादरा गायन–शैली उपशास्त्रीय संगीत की एक सुविख्यात शैली बन गयी है। इसके पार्श्व में प्रान्तीय लोक गीत है । संगीत मर्मज्ञ कलाकारों ने कुछ लोक–धुनों में जब कुछ सशक्त और आकर्षक गुणवत्ता देखी तो उन्होंने उन लोकगीतों की धुनों अथवा सम्भावित रागों के साथ इस को विकसित किया। इस प्रकार धीरे–धीरे लोक गीतों के दायरे से निकलकर दादरा गायन–शैली उपशास्त्रीय संगीत में न केवल स्थापित हुई अपितु अपना वर्चस्व भी ग्रहण किये हुए है। 'दादरा' एक उपशास्त्रीय गायन–शैली है, जो सामान्यतया दादरा ताल में ही गाई जाती है। यदा–कदा कहरवा ताल भी प्रयुक्त होता है। ठुमरी गायन–शैली के निर्वहन में स्वर–विस्तार की प्रक्रिया के कारण ठुमरी गायन के चलन में क्रमबद्धता एवं पूर्णता का भाव प्रकट हुआ जिसका इसमें अभाव था। फलस्वरूप इन विशेषताओं के कारण ठुमरी गायन–शैली ने ख्याल का स्थान ले लिया जिससे ये शैली निम्न कोटि की शैली न रहकर उच्च कोटि के हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का अंग बन गयी। जिस प्रकार ख्याल अंग दो भागों में विभाजित किया जाता है, ठीक उसी प्रकार ठुमरी को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है :–

(1) विलम्बित ठुमरी
(2) द्रुत ठुमरी

द्रुत ठुमरी के अन्तर्गत आने वाली उपशैली का नाम ही 'दादरा गायन शैली' है। इस शैली का गायन ठुमरी गायन–शैली से भिन्न होता है। "रागों की दृष्टि से इस शैली में ठुमरी प्रधान रागों (जैसे काफी, पहाड़ी, खमाज, माण्ड आदि) का मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है।"[3] इस शैली के प्रमुख कलाकारों में उ0 बड़े गुलाम अली खां, उ0 बरकत अली खां, "मल्लिका–ए–तरुन्नुम" बेग़म अख्तर, 'पदमविभूषण' पं0 छन्नू लाल मिश्र, सुश्री सविता देवी, पं0 अजय चक्रवर्ती, सुश्री कौशिकी चक्रवर्ती आदि प्रसिद्ध हैं।

दादरा गायन–शैली व तबला संगत :– जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है कि दादरा गायन–शैली में दादरा ताल का ही प्रयोग किया जाता है। एक मात्र यही गायन–शैली

*शोध छात्र (संगीत विभाग), दयालबाग शिक्षण संस्थान, दयालबाग, आगरा
**प्रोफेसर (संगीत विभाग) दयालबाग शिक्षण संस्थान, दयालबाग, आगरा
***असि. प्रोफेसर (संगीत विभाग), दयालबाग शिक्षण संस्थान, दयालबाग, आगरा

ऐसी है जिसमें ताल एवं गायन दोनों ही समरूप हैं अर्थात् एक ही नाम रूप है। दादरा गायन–शैली की एक विशेषता यह भी है कि जो ताल है वह गायन के बराबर चलती है। यदि दादरा का गायन मध्य लय में है तो ताल भी मध्यलय में ही चलेगी और यदि गायन द्रुत में है तो ताल की लय का स्वरूप भी चलता हुआ अर्थात् द्रुत में होगा तथा यह तबला संगतकार की कलात्मक सोच पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार अपनी संगत को सुसज्जित करे तथा इसी प्रकार दादरा गायन में जो भी बोल–बनाव, कहन, पुकार अथवा बोल–बांट हैं वह भी बराबर की लय में ही चलते हैं क्योंकि जो आलाप ख्याल गायन–शैली में देखते हैं या जो बोल–बनाव हम ठुमरी में सुनते हैं वह ख्याल अथवा ठुमरी के चलन के हिसाब से होता है, उनके अंदाज से होता है इनमें एक–एक मात्रा में एक–एक बोल का हिसाब नहीं होता किन्तु दादरा के गायन यह में भली–भांति देखने को मिलता है।

दादरा बिल्कुल बराबर की लय में चलने वाली गायन–शैली है। इसमें ताल की मात्राओं को बोल–विन्यास के अनुसार सजाया जाता है। जिस प्रकार गायक अथवा गायिका दादरा के गायन में छोटे–छोटे बोलों के स्वर–समूहों को ताल के अंतर्गत सजाते हैं। ठीक उसी प्रकार तबला संगतकार संगत करते समय अपनी रचनात्मक एवं सृजनात्मक सोच के अनुसार कोमल बोलों (जैसे– त्रक, तिट, तिरकिट, धातीधागे, घेनानाती, क्रेधिंधिं, धागेत्रक व धिनगिन आदि) से दादरा ताल के स्वरूप को सजाते हैं तथा गायक अथवा गायिका द्वारा जगह मिलने पर ताल–वाद्य–वादक लग्गी–लड़ियों को बड़ी ही खूबसूरती व सूझबूझ से बजाते हैं तथा आकर्षित बोलयुक्त तिहाई को बजाकर सभा में अपनी कलात्मक सोच एवं कुशल सूझ–बूझ का प्रदर्शन अथवा प्रमाण देते हैं। वैसे तो दादरा–शैली का गायन निश्चित रूप से दादरा ताल में ही होता है परन्तु कुछ कलाकार दादरा का गायन कहरवा ताल में भी करते हैं जो कला एवं सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण है।

दादरा गायन–शैली के क्रियात्मक पक्ष को स्पष्ट करने के लिए एक रचना उदाहरणस्वरूप दी जा रही है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :–

दादरा गायन प्रस्तुति :–

कलाकार :–	सुश्री आई वी बेनर्जी (कलकत्ता)
तबला संगतकर्त्ता :–	भानु प्रताप सिंह (शोधार्थी)
हारमोनियम संगतकर्त्ता :–	पं0 रविन्द्र तलेगावंकर (आगरा)
श्रेणी :–	मंच प्रस्तुति
स्थान :–	ताज महोत्सव, आगरा
तिथि :–	28 मार्च, 2022
समय :–	7.00 बजे (संध्या)
स्थाई :–	जरा धीरे से बोलो कोई सुन लेगा
अन्तरा :–	तुमरे कारण छुप कर आई
	देखो ना हो जाए रुसवाई
	बदनाम मोहे कोई कर देगा
	जरा धीरे से बोलो ————

दादरा ताल में निबद्ध इस रचना का मात्राओं में बोल–रखाव–विभाजन निम्नवत् है–

धी	ऽ रे ।	ऽ से ऽ ।	बो ऽ लो ।	को ई ऽ ।
x	0	x	0
ऽ ऽ सु ।	न ले ऽ ।	गा ऽ ऽ ।	ज़ रा ऽ ।
x	0	x	0
धी			
x			

उपरोक्त दादरा में शोधकर्ता को तबला–संगत का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्रस्तुत दादरा गायन–शैली के क्रियात्मक पक्ष को स्पष्ट करने हेतु उठान, ठेका, ठेका प्रकार, लग्गी व लड़ी एवं तिहाई का प्रयोग विद्यार्थियों व शोधार्थियों के क्रियात्मक पक्ष को भली–भांति समझने के लिए इस प्रकार दिया जा रहा है–

उठान :– प्रस्तुत दादरा में ताल के प्रारम्भ में उठान का प्रयोग किया गया जिसके बोल इस प्रकार हैं – **कत्तिरकिट तकताऽतिरकिट** (ठेके की पांचवी मात्रा से प्रारम्भ)

ठेका :– प्रस्तुति के दौरान ताल के वजन के अनुरूप **धा धी ना। धा ती ना** बोलों का प्रयोग दादरा के आधार रूप में किया गया है।

ठेका प्रकार :– प्रस्तुत दादरा में ठेके के प्रकार प्रयुक्त किए गए जिन्हें विविध स्थानों पर आवृत्ति के अनुसार व आवश्यकता को जानते हुए प्रस्तुत किया गया जो इस

प्रकार हैं–

धाऽतिट	धिंधिं	धाती । धाऽतिट	तिंऽनाके	तिरकिट
धातिटधि	किटघेना	नाती । धाऽतिट	तिंऽनाके	तिरकिट
धाधागेधि	तकघेना	नाती । धाऽतिट	तिंऽनाना	किटतकतिरकिट
धाऽऽक्र	धिंधिं	धाती । धाऽतिरकिट	तिंऽनातिर	किटतकतिरकिट

लग्गी व लड़ियाँ :– प्रस्तुत शैली में अंतरा के पश्चात् गायिका द्वारा जगह मिलने पर अथवा उनके आदेशानुसार लग्गी व लड़ियों का प्रयोग किया गया जिनके बोल व बोल–बढ़त इस प्रकार हैं–

धातीघेना	धातीधागे	तीनागेना । तातीकेना		धातीधागे	धीनागेना
धातीधेना	धातीधेना	धातीधेना । धातीधेना		धातीधेना	धीनागेना
धातीधेना	धातीधेना	धातीधेना । धाऽतिरकिटतक		तिरकिटधाऽतिर	किटतकतिरकिट ।
धातीधेना	धातीधेना	धातीधेना । धाऽतिरकिटतक		तिरकिटधाऽतिट	किटतकतिरकिट

तिहाई:– अंत में प्रस्तुति को विराम की ओर ले जाते हुए लग्गी व लड़ियों के साथ तिहाई का प्रयोग किया गया जो इस प्रकार है–

धाऽतिरकिटतक	तिरकिटधाऽतिर	किटतकतिरकिट ।
धाऽतिरकिटतक	तिरकिटधाऽतिट	किटतकतिरकिट ।
धाऽ1ऽ	2ऽधाऽतिर	किटतकतिरकिट ।
धाऽ1ऽ	2ऽधाऽतिर	किटतकतिरकिट ।

स्पष्ट है कि 'दादरा' एक आकर्षक गायन–शैली है जिसकी प्रस्तुति सामान्यतया उपशास्त्रीय विधा की ठुमरी के बाद की जाती है। उपर्युक्त तत्त्वों के समावेश के बाद इस सुमधुर गायन का सकारात्मक प्रभाव उपस्थित जन–समुदाय और श्रोताओं पर पड़ता है।

संदर्भ सूची :

1. सहगल, सुधा, बेगम अख़्तर व उपशास्त्रीय संगीत, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली–2007, पृ.– 1
2. वही, पृ.– 2
3. www.saptswargyan.in

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

ध्रुपद-परम्परा में डागर घराना का योगदान

प्रो. पंडित प्रेम कुमार मल्लिक**

मोनिका धर*

लेखसार

''ध्रुवपद'' प्राचीनकालीन वैदिक संगीत, भरतकालीन ध्रुवागीत और शारंगदेवकालीन ध्रुवप्रबन्ध रहे प्राचीन ''सालगसूड'' के मूल प्रकार ''ध्रुव'' से ध्रुपद को विद्वानों ने उत्पन्न माना, क्योंकि ''ध्रुव प्रबन्ध'' में निहित पंचधातुएँ ''उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, अंतरा और आभोग एवं छः अंग स्वर, तेनक, पाट, पाद, विरूद, ताल बहुत साम्यत हैं, परन्तु कुछ परिवर्तनों के पश्चात् ध्रुपद आया। प्राचीन सालग–सूड प्रबन्ध संशोधित कर ध्रुपद रूप में परिवर्तित करने का कार्य मध्यकाल के ग्वालियरनरेश राजा मानसिंह तोमर ने किया। गुणीजनों के मतानुसार, मानसिंह इस शैली के उद्भावक न भी हों, तब भी उन्होंने इस शैली के प्रचार–प्रसार में अहम् भूमिका तो निभाई ही।

अकबर–काल में यह शैली उच्च शिखर पर थी। ध्रुपदियों को ''कलावंत'' की संज्ञा दी गई, कलावंतों की गायन–शैली की विभिन्नता के आधार पर तत्कालीन समाज में चार बानियों का उद्भव हुआ– गौहार, नौहार, खण्डार तथा डागर बानी। इसमें डागर परम्परा आज सुप्रसिद्ध है।

कुंजी शब्द– *ध्रुपद, कलावंत, पंच धातुएँ, परम्परा, घराना*

शोध–माध्यम : *लेख में द्वितीयक स्रोतों को आधार बनाकर सामग्री एकत्र की गई है।*

ध्रुवपद व डागर–परम्परा–

डागर बानी को आज ध्रुपद गायकी में प्रसिद्ध गायकी का श्रेय प्राप्त है, इसका श्रेय बानी की लचीली गायकी को जाता है। इस घराने में ध्रुपद–शैली की तुलना ध्रुवतारा से की जाती है। यदि इस घराना के कलाकारों को शास्त्रीय संगीत की सुन्दरता बनाये रखना है, तो उन्हें ध्रुवतारा के समान चमकते रहना होगा। डागर वंशजों का कहना है कि स्वामी हरिदास ने इस परम्परा की शुरूआत की, उनके बाद बाबा अल्लामी, गन्धर्व, बाबे, मुसिकी और बहराय खान आये। ''इस घराना में नोम्–तोम् के आलापचारी के स्थान पर ऊँ अंनत तम तारण तारिणी त्वम् हरि ऊँ नारायण अनंत हरि ऊँ नारायण मंत्र का उच्चारण करते हैं।''[1]

ध्रुवपद में सही उच्चारण पर अधिक जोर दिया जाता है जिसे **उच्चारण शास्त्र** कहते हैं। इसमें जुबान, तालु, ऊपरी तालु, दांत, होंठ और पूरे मुख के प्रयोग को विशेष महत्व दिया जाता है। इसमें पसंद के मुताबिक ''आवाज की प्रकृति'' के अनुसार सुर का चुनाव, आवाज की तीव्रता के आधार पर उसके अष्टक पर काम, इस अष्टक के निम्न, मध्य एवं उच्च वर्गों से गुजर कर राग के मद्देनजर आगे बढ़ना। सप्त अष्टक के लिए भी यही नियम लागू होता है। ''[2]

भारत की सांगीतिक–सांस्कृतिक परम्परा सदैव मौखिक रही है। **महाभारत, रामायण, संतों द्वारा बने भक्ति स्रोत, सूफी पद एवं गुरू–वाणी** सब हमारी संस्कृति की नींव हैं और मौखिक परम्परा में निहित हैं। डागर परिवार ने इस परम्परा का विकास किया तथा इनकी ध्रुपद रचनाओं को आज भी गाया जाता है।

''स्व0 उस्ताद फैयाजुद्दीन डागर (1934–1989) ने बताया कि ध्रुपद के दो भाग हैं– **आलाप** अैर पद। आलाप से तात्कालिक औपचारिक अभिव्यक्ति का प्रारम्भ होता है जो मुक्त होता है तथा **पद** वह शब्द या वाक्यांश है जो राग की संकल्पना को दर्शाता है। ध्रुपद धार्मिक और आध्यात्मिक गीत है। उस्ताद फैयाजुद्दीन डागर के पुत्र उस्ताद फैयाज वसीफुद्दीन डागर, डागर परिवार के ध्रुपद गायकों की बीसवीं पीढ़ी हैं।[3]

कलाकारों की वंशावली–

वसीफुद्दीन डागर के अनुसार, 'डागर वंशवृक्ष की शुरूआत मुगल सल्तनत के बादशाह बाबर के समय में श्री

*शोधार्थिनी, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**अध्यक्ष, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

गिरधर नाथ पाण्डेय से हुई थी। उनके पुत्र सुरेन्द्र नाथ पाण्डेय के दो पुत्र गदाधर और ज्ञानधर पाण्डेय थे, जिन्होंने वृन्दावन के पूज्य स्वामी हरिदास से शिक्षा ली थी। बाबा बहराम खान डागर परिवार के पूज्य हैं तथा डागरबानी की (आलाप–ध्रुपद–धमार) शैली के सृजनकर्ता हैं।

डागर वंशावली में हैदर खान आते हैं जो उनके शिष्य थे जिनकी कम उम्र में मृत्यु के पश्चात् उनके पोते जकीरूद्दीन खान और अल्लाहबन्दे खान को शिक्षा दी। अलीरूद्दीन के एक पुत्र थे, जियाउद्दीन डागर, जो उदयपुर के निवासी थे। 1947 में पिता की मृत्यु के पश्चात् वे दरबार में नियुक्त हुए। ताल में बेजोड़ पकड़ होने के कारण उन्हें ''धामर नाथ'' की उपाधि दी गई। अल्लाहबन्दे खान के चार पुत्र थे– नसीरूद्दीन, रहीमुद्दीन, इमामुद्दीन और हुसैनुद्दीन।

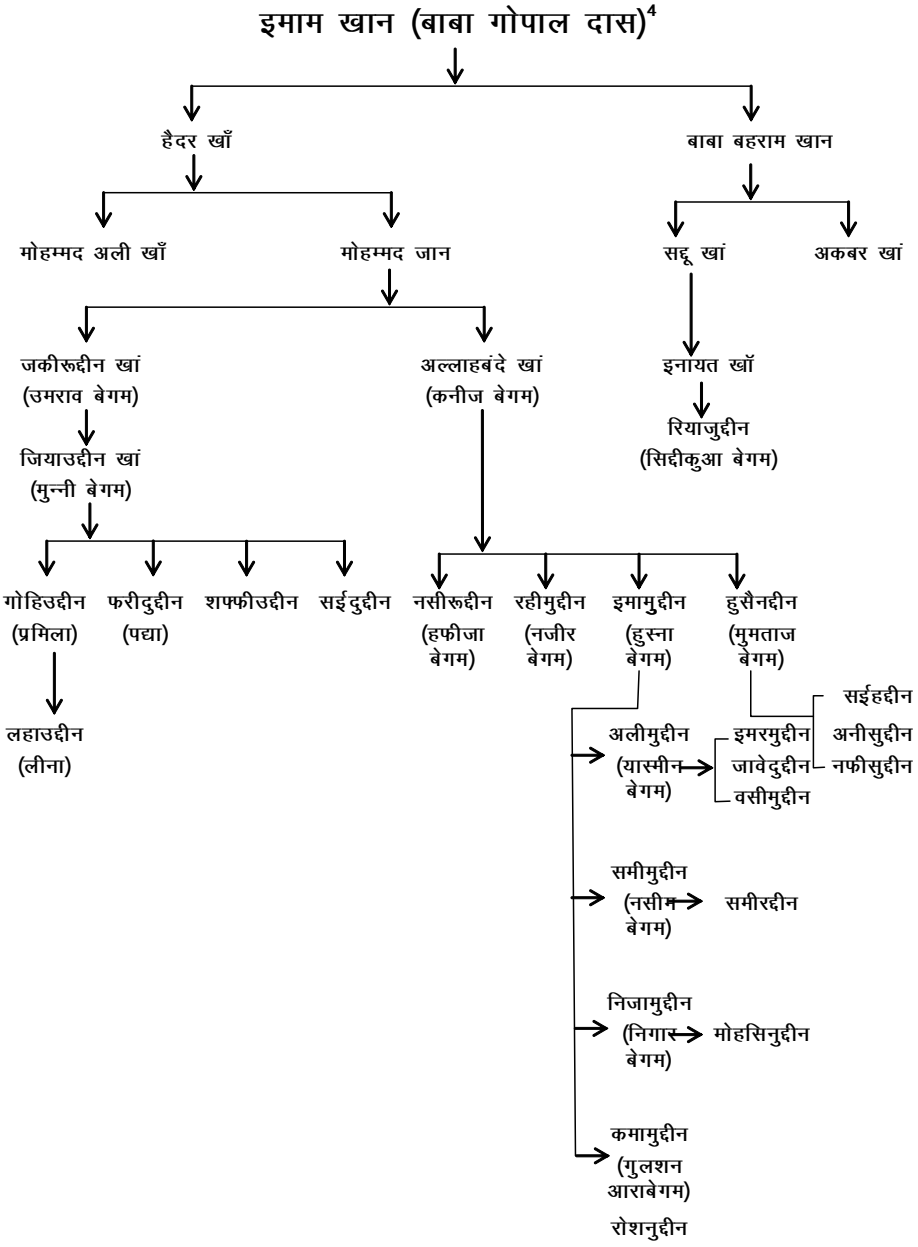

''हुसैनुद्दीन को महाराजा अलवर ने तानसेन पाण्डेय की पदवी दी और कहा कि यदि अकबर के दरबार में तानसेन थे तो मेरे दरबार में भी तानसेन हैं। वे **रविन्द्र भारती विश्वविद्यालय, कोलकाता में पढ़ते थे।** 1963 में उनका देहांत हुआ।[5]

वसीफुद्दीन खां का कहना था, कि 1857 में जब अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह ज़फर को गिरफ्तार कर रंगून भेजा गया, तब सभी दरबारी दिल्ली छोड़कर रामपुर, अलवर, जयपुर निकटवर्ती राज्यों में बस गये, बहराम खां जो 104 वर्ष के थे, परिवार एवं शिष्यों समेत जयपुर के शासक महाराजा सवाई प्रताप सिंह ने उनकी योग्यता और महानता को समझते हुये उन्हें वहीं रहने का आग्रह किया तथा उनको सात गांव देने का विचार रखा। उस्ताद साहब ने अपना जीवन संगीत को समर्पित करने तथा जायदाद से पुत्रों के बीच क्लेश से दूर रहने की इच्छा जाहिर की। महाराजा उनके विवेक व दूरदर्शिता से प्रभावित हुए तथा ध्रुपद कला दीक्षा देने के लिए 60 रुपये प्रतिमाह उन्हें गुरू–दक्षिणा निश्चित की। उनके शिष्यों में **अली बक्श, पटियाला के फतेह अली, गोखी बाई और उनके पुत्र अब्दुल्लाह** आदि थे। महाराजा सवाई राम सिंह की मृत्यु का समाचार मिलने के थोड़ी देर बाद ही '**मेरा सच्चा प्रशंसक अब नहीं रहा**' कहकर उन्होंने प्राण त्याग दिया। संगीतकारों में–नासिर मोईनुद्दीन, नासिर अमीनुद्दीन, नासिर जहीरूद्दीन, नासिर फैयाजुद्दीन, रहीम फहीमुद्दीन, जिया समोहिउद्दीन, जिया फरीदुद्दीन एवं हुसैन सईदुद्दीन शामिल हैं। इन आठ कलाकारों में अब केवल सईदुद्दीन डागर की पत्नी तथा दो पुत्र अनीसुद्दीन एवं नफीसुद्दीन पुणे में रहते हैं। आज वसीफुद्दीन डागर इस वंश की बीसवीं पीढ़ी हैं और डागर समिति के अध्यक्ष भी हैं जिन्हें 2010 में 'पद्मश्री' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

डागर परम्परा की विशेषता–

डागरवाणी की ध्रुपद परम्परा अपनी विशिष्ट आलापचारी तथा स्वर–लगाव के लिए प्रसिद्ध है। इनका आलाप वीणा पर आधारित माना जाता है। यह वीणा के वर्णों की अनुकृति है। रूद्र वीणा प्रस्तुतीकरण के 10 लक्षण हैं–**साज, सहज, गहन, झुरत, पुरत, तीख, चोख, लांग, डाट, स्वर संगत**। इसी प्रकार इस परम्परा में 10 प्रकार के स्वर–लगाव प्रयोग किये जाते हैं–**आकार, डगर, धुरन, मुरन, कंपित, आंदोलित, लहक, गमक, हुदक, स्फूर्ति**।[6] ध्रुपद–परम्परा के सभी घरानों में आलापचारी की विशेषता देखने को मिलती है परन्तु डागर सूक्ष्म स्वर–संवाद व श्रुति–प्रयोग के लिए जाना जाता है। आलाप राग का ही नहीं, स्वर का भी विस्तार करता है। अतएव कोमल, कोमलतर, अति कोमल, तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, अति तीव्रतम आदि रागों के स्वरस्थान के दर्शाते हैं। यह रसपूर्ण संवाद–रूप में राग की गहनता को दिखाता है। स्वर की स्थिरता, उतार–चढ़ाव, वाणी–संस्कार, काकु–भेद उसे सौंदर्यपूर्ण बनते हैं। प्राचीन मंत्राक्षरों (बीजाक्षर) को वर्ण की संज्ञा दी गयी है। **हरि ॐ नारायण अनंत तरन तारन तूम से री ना, नूम, र न ते त** आदि वर्णों का आश्रय लिया जाता है, जोड़ झाला में छंदात्मक गठजोड़ इसे रसमाधुर्य से ओतप्रोत कर देते है।[7]

डागर वंश की शिष्य–परम्परा–

सीखने की प्रक्रिया के दो पहलू होते हैं– **तकनीकी और आध्यात्मिक,** जो एक–दूसरे के पूरक होते हैं। स्वर्गीय सवीना सहगल सैकिया जो जहीरूद्दीन और फैयाजुद्दीन को अपना गुरू मानती थीं उन्होंने 1986 में ''**दि टाइम्स ऑफ इण्डिया**'' में ध्रुपद पर एक विशेष परिशिष्ट निकाली था। फ्रेंच अनुवादक **लॉरेंस बस्तीत बामाजी, चालीस वर्षीय नरेन्द्र गौड पेशे से आईटी इंजीनियर,** नरेन्द्र के छोटे भाई गोपेश और भाभी आरती शर्मा, 27 वर्षीय अंकित अग्रवाल, **डॉक्यूमेंट्री निर्माता नंदन सक्सेना, संगीत वैज्ञानिक एवं दार्शनिक सुशील कुमार, गुन्देचा बन्धु, डॉ. ऋत्विक सान्याल, डा0 विशाल जैन** आदि इस परम्परा के प्रमुख शिष्य हैं।

डागर घराना के सभी भाई–

नई दिल्ली में स्थित निजामुद्दीन में उस्ताद जहीरूद्दीन, फयाजुद्दीन बेगम महमूदा तथा उनके देवर अमीनुद्दीन, सईदुद्दीन, फहीमुद्दीन, मोहिउद्दीन और फरीदुद्दीन रहते थे। मोहिउद्दीन सिएटल विश्वविद्यालय में वीणा के प्राध्यापक थे। फरीदुद्दीन भोपाल के ध्रुपद केन्द्र में निर्देशक थे। **अमीनुद्दीन डागर** परिवार के सबसे बड़े **जीवित भाई** हैं, ध्रुपद कला को जिंदा रखने के लिए चौदह वर्ष पहले **कोलकाता में डागर शिक्षा मंदिर** बनाया, जो एक आश्रम की तरह है, जहां गुरू–शिष्य–परंपरा अभी भी जारी है। यहां 22 शिष्य 6 मास परिवीक्षा अवधि पर रहते हैं, जबकि 12 शिष्य वहां नियमित रहते हैं। **नदी बहनें**

और अनु बर्मन यहां के सर्वश्रेष्ठ छात्र हैं। ज़हीरूद्दीन एवं फैयाजुद्दीन जुगलबंदी में गाते थे । उनका मानना था कि यह केवल ताल–मेल की बात है जो हमारे बीच बचपन से ही बहुत अच्छी थी। जुगलबंदी के अनेक फायदे हैं, यदि किसी एक की मनोदशा सही नहीं हो तो दूसरा उसकी पूर्ति कर देता है। स्वर्गीय फैयाजद्दीन जी के पुत्र वहीफुद्दीन और उनकी चार बहनें **नीलोफर, मशर्रत, साफिया और कमर, साफिया के तीन पुत्र हुरमत, बरकत और मुनीब** हैं। डागर परिवार ने **इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फार दी आर्ट्स** में दो दिन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया था।

120 वर्ष की दीर्घायु के बाबा बहराम खां ने अपने पुत्रों, भतीजों, पौत्र, भतीजों के पुत्रों आदि को अपनी अमूल्य धरोहर–रूप में ध्रुवपद–गायकी की सुदृढ़, प्रतिष्ठित एवं सुदीर्घ–परम्परा को सौंपा जिनमें सीनियर डागर, जूनियर डागर एवं 'डागर सहाक' व अन्य परिवारिक (उस्ताद) विद्वानों के नाम उत्कृष्ट हुए। सभी की पारम्परिक तालीम हुई, परन्तु सबने अपने–अपने स्तर पर अलग–अलग ढंग से ध्रुवपद को खुबसूरत बनाकर गाया। 19वीं पीढ़ी के सभी भाइयों ने मिलकर ध्रुवपद की परवरिश को और प्रतिष्ठापित किया।

डागर परम्परा में कंठ और रूद्रवीणा सहगामी माने जाते हैं, वीणा के कई ऐसे वादन–भेदों की खोज इस परम्परा में हुई है जिन्हें कण्ठ द्वारा सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया जा सकता है। इस परम्परा की शैली में भावपक्ष प्रबल रहता है। साथ ही, **भक्ति, वीर एवं शृंगार** के ध्रुवपद और धमार को पूर्ण भाव से अभिव्यक्त करते हैं।

वर्तमान समय में 20वीं पीढ़ी में शिष्य–परम्परा अधिक प्रचलित है परन्तु परिवार में उस्ताद मोहीनुद्दीन डागर के पुत्र बहाऊद्दीन डागर (रूद्रवीणा) तथा उस्ताद फैयाजऊद्दीन डागर के पुत्र उस्ताद वासिफुउद्दीन डागर एवं सईदुद्दीन डागर के पुत्र अनीसुद्दीन तथा नफीसुद्दीन डागर अपनी परम्परा को संभाले हुए हैं।

निष्कर्ष :

ध्रुपद के संरक्षक के रूप में डागर–परम्परा की पीढ़ियों पर प्रकाश डालने से पता चलता है, कि बाबा बहराम खाँ के नाम से सुविख्यात यह घराना पीढ़ियों से इस कला–शैली को संरक्षित किए हुए है।

राग यमन–ध्रुपद (डागर घराना)

स्थाई– प्रथम शरीर ज्ञान, नाद भेद तीन स्थान द्वाविंशति श्रुति सुचिस्वर, द्वादश विध करत बखान

अन्तरा– वंश जाति वर्षद्वीप, छंद ऋषि विनियोग श्रुति जाति तीन ग्राम, एकई स्वर मूर्च्छना

स्वरलिपि

नि	ध	–	प	मं	मं	प	–	प	मं	–	ग
प्र	थ	ऽ	म	ऽ	श	री	ऽ	र	ज्ञा	ऽ	न
ग	ऽ	रे	ग	मं	मं	प	–	रे	सा	रे	सा
ना	ऽ	द	भे	ऽ	छ	ती	ऽ	न	स्था	ऽ	न
सा	–	रे	–	ग	ग	मे	ग	प	पमे	ध	प
द्वा	ऽ	वि	ऽ	श	ति	श्रु	ति	सु	चिऽ	स्व	र
प	–	ध	ध	नि	ध	सां	सां	नि	नि	ध	प
द्वा	द	श	बि	ध	क	र	त	ब	खा	ऽ	न
X		0		2		0		3		4	

अंतरा

प	म	ग	प	ध	प	सां	–	सां	सां	रें	सां
वं	ऽ	श	जा	ऽ	ति	व	ऽ	र्ण	द्वी	ऽ	प
नि	–	नि	ध	सां	–	गं	सां	नि	नि	ध	प
छं	ऽ	द	ऋ	षि	ऽ	वि	**नि**	ऽ	यो	ऽ	ग
प	ग	–	प	–	प	नि	ध	नि	मे	ध	प
श्रु	ति	ऽ	जा	ऽ	ति	ती	ऽ	न	ग्रा	ऽ	म
सां	–	नि	प	–	ग	प	–	रे	नि.	रे	सा
ए	ऽ	क	ई	ऽ	स्व	मू	ऽ	ऽ	र्छ	ऽ	ना
X		0		2		0		3		4	

अन्त टिप्पणी :

1. कुरैशी, हुमरा, डागर व ध्रुपद, पृ.सं. 17
2. वही
3. वही
4. वही, पृ.सं. 29
5. वही, पृ.सं. 31
6. जौहरी, रेनु, रस और सौन्दर्य, पृ.सं. 328
7. वही

संदर्भ सूची :

1. चौबे, सुशील कुमार, घरानों की चचा
2. व्यास, भरत, ध्रुवपद समीक्षा
3. शर्मा, अनीता, प्राचीन सांगीतिक परम्पराएं एंव ध्रुवपद शैली
4. सान्याल, डा. ऋत्विक, ध्रुपद पंच्चाशिका
5. कुरैशी, हुमरा, डागर व ध्रुवपद

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

'संगीत रत्नाकर' में वर्णित 'पटह' के 12 वाद्यों (विशिष्ट बंदिशों) का अध्ययन

प्रो. रेनू जौहरी**

कीर्ति महेन्द्र*

सारांश

'संगीत रत्नाकर' संगीत के प्रमुख ग्रन्थों में से एक है। इसकी रचना मध्यकाल में शारंगदेव द्वारा की गयी थी। इसको सात अध्यायों में विभाजित किया गया है जिसके छठे अध्याय में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का उल्लेख किया गया है, जिसमें अवनद्ध वाद्य के अन्तर्गत 'पटह' नामक वाद्य का वर्णन प्राप्त होता है। शारंगदेव ने पटह की संरचना, वादन–सामग्री व वादन–विधि का विस्तृत उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है। पटह की वादन–सामग्री की चर्चा करते हुए शारंगदेव ने पटह के विविध पाटों का वर्णन किया व 88 हस्तपाटों से बनने वाले 12 प्रकार के वाद्यों अर्थात् विशिष्ट बंदिशों का भी उल्लेख किया है।

मुख्य शब्द– *संगीत रत्नाकर, वाद्य, पटह, हस्तपाट, अवनद्ध वाद्य।*

अध्ययन की विधि– प्रस्तुत शोध–पत्र में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का क्षेत्र– इसमें केवल 'संगीत रत्नाकर' के वाद्याध्याय के अन्तर्गत 'पटह' के 12 वाद्यों को सम्मिलित किया गया है।

साहित्यावलोकन– 'ग्रन्थ सारामृत', लेखिका– प्रो. रेनू जौहरी, कनिष्क पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, 2019– इस पुस्तक में सभी ग्रन्थों में दिए गए ताल वाद्यों के तत्वों का निर्देशन किया गया है।

शारंगदेव कृत 'संगीतरत्नाकर', तृतीय खण्ड, व्याख्या एवं अनुवादक सुभद्रा चौधरी, राधा पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2006, इस खण्ड में तालों व वाद्यों का विस्तृत विवेचन है जिसमें वाद्यों की पूर्ण वादन–सामग्री व संरचना दी गयी है।

मध्यकालीन ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकर' के वाद्याध्याय में 23 प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का चित्रण मिलता है जिसमें से पटह का वर्णन सर्वप्रथम किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार भरत मुनि के काल में जो ख्याति त्रिपुष्कर वाद्य को प्राप्त हुई थी वही ख्याति शारंगदेव के काल में पटह को प्राप्त थी। अवनद्ध वाद्यों में सर्वप्रथम पटह का उल्लेख करते हुए पटह के दो प्रकार–मार्गी पटह व देशी पटह– के रूप में बताये हैं–

मार्गदेशीगतत्वेन पटहो द्विविधो भवेत्।[1]

जिस प्रकार भरत मुनि ने पुष्कर के वर्णों को 'अक्षर' कहा, ठीक उसी प्रकार शारंगदेव ने पटह के वर्णों को 'पाट' कह कर सम्बोधित किया है।

पटह के कुल 16 पाट बताए गए हैं । इन्हीं 16 पाट वर्णों के मेल से विभिन्न प्रकार के हस्तपाटों का निर्माण किया गया। शारंगदेव ने इन हस्तपाटों का वर्णन विस्तृत रूप से करते हुए हस्तपाटों की उत्पत्ति को विविध प्रकार से बताया है। शिव के पाँच मुखों से लेकर नन्दिकेश्वर द्वारा बताए गए 4 प्रकार व अन्य नाना प्रकार के हस्तपाटों को मिलाकर कुल 88 हस्तपाटों का वर्णन अवनद्ध वाद्यों के लिए किया गया है। इन्हीं 88 हस्तपाटों की सहायता से 25 प्रकार के वाद्यों (विशिष्ट रचनाओं) का उल्लेख किया है, जिसमें पटह के 12 वाद्य व हुडुक्का के 13 वाद्य सम्मिलित हैं। पटह के 12 वाद्यों को निःशंक ने इस प्रकार बतलाया है–

"वोल्लावाणी च चल्लावण्युडुवश्च कुचुम्बिणी।
चारूश्रवणिकालग्नः परिश्रवणिका ततः ।।901।।
समप्रहारः कुडुवचारणा करचारणा।
दण्डहस्तो घनरवस्तानीती द्वादशवदन् ।।902।।"[2]

अर्थात् वोल्लावाणी, चल्लावणी, उडुव, कुचुम्बिणी, चारूश्रवणिका, अलग्न, परिश्रवणिका, समप्रहार, कुडुवचारणा, करचारणा, दण्डहस्त व घनरव– ये बारह वाद्य हैं।

1. **वोल्लवाणी**–

आदिमध्यावसानेषु देंकारबहुलं भवेत्।
आद्यखण्डं द्वितीयं च तादृशं वाद्यते पृथकं।।903।।[3]

*शोधार्थी, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**शोध निर्देशिका, आचार्या (तबला), संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पटह के 12 वाद्यों में सर्वप्रथम वोल्लवाणी वाद्य का वर्णन हुआ है। इस रचना के प्रथम खण्ड के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में 'दें' वर्ण की बहुलता होती है व दूसरा खण्ड भी प्रथम खण्ड की भांति बजाया जाता है।

उदाहरण– दें ३ थों ३ दें ३ ।

2. **चल्लावणी**–

मण्डले चाल्यते यत्र प्रोचुश्चल्लावणीममूम।
इति चल्लावणी[4]

ऐसी रचनाओं का वादन वाद्य के मण्डल पर किए जाने का वर्णन किया है। इस रचना के स्पष्टीकरण में सुभद्रा चौधरी द्वारा अनुदित 'संगीत रत्नाकर' में यह मिलता है कि मण्डल का अर्थ गोल होता है तो शायद बाहर की ओर के गोल स्थान से आशय हो सकता है।

3. **उडुव**–

वामेन तलहस्तेन दक्षिणेन तु पाणिना।।903।।
लुलितेन सकोणेन ताडनादुडुवो भवेत।
इत्युडुप[5]

इस वाद्य (बंदिश) का उल्लेख करते हुए कहा है कि बाएं हाथ व दाहिने हाथ से कोण से वाद्य पर प्रहार किया जाय तो उडुव होगा। इसमें किसी प्रकार के पाटवर्ण का उल्लेख श्लोक में नहीं किया गया है, शायद इसमें उन्हीं बोलों का समावेश होगा जिनकी उत्पत्ति केवल कोण द्वारा की जाती हो।

4. **कुचुम्बिणी**–

उद्यलीपिहिते वक्त्रे हस्तस्वस्तिकताडनात्।।911।।
खुंकारबहुलं वाद्यं कीर्तयन्ति कुचुम्बिणीम्।[6]

इस रचना में वाद्य के मुख पर स्वस्तिक हस्त से प्रहार किया जाता है, साथ ही इसमें 'खुं' पाट की बहुलता पाई जाती है।

5. **चारूश्रवणिका**–

वोल्लवण्येव पाणिभ्यां क्रमाद्वा युगपते कृतैः।।912।।
भूरिभिः संभृता पाटैश्चारूश्रवणिका भवेत्।
शुद्धैश्चित्रैः क्रमात् पाटैः शुद्धा चित्रेति सा द्विधा।।913।।[7]

दोनो हाथों से क्रम से या एक साथ बहुत सारे पाटों (शुद्ध और चित्र पाट) से अन्वित वोल्लवाणी ही 'चारूश्रवणिका' वाद्य है।

6. **अलग्न**–

अलग्नः कुण्डलीस्पर्शं बिना कोणप्रहारतः।
इत्यलग्नः[8]

इस रचना को बजाते हुए कुण्डली का स्पर्श नहीं करते हैं अर्थात् कुण्डली को छुए बिना कोण से प्रहार अलग्न है। यहाँ कुण्डली का आशय शायद वाद्य के किसी भाग से हो सकता है परन्तु कुण्डली नामक भाग का वर्णन पटह की संरचना में नहीं किया गया है। इसके साथ ही अलग्न नामक एक हस्तपाट भी है जिसमें कुण्डली का आशय हाथ की अंगुलियों के सांप आकार से जुड़े होने से है, इसमें जिन पाटों कर निष्पादन होता है, उसमें दोनों हाथों के कुण्डली की तरह न जुड़े रहने की बात कही है जिसमें खुं खुं २ नखें झेहेगि २ थोंटें वर्णों की उत्पत्ति होती है। यह भी हो सकता है कि इन्हीं हस्तपाट को अलग्न वाद्य (बंदिश) की रचना में कोण से निकाला जाता हो।

7. **परिश्रवणिका**–

कर्तरी समपाणिश्चावघटो यत्र तु क्रमात।।914।।
सोक्ता परिश्रवणिका श्रीयज्ञपुरसूरिणा।
इति परिश्रवणिका[9]

जिस रचना में कर्तरी, समपाणि और अवघट का प्रयोग क्रम से किया जाता है, उसे 'परिश्रवणिका' कहते हैं। कर्तरी, समपाणि और अवघट ये तीनों हस्तपाट है।

8. **समप्रहार**–

समप्रहारो युगपत् करद्वन्द्वेन घाततः।।915।।
इति समप्रहारः[10]

दोनो हाथों से एक साथ आघात करना ही 'समप्रहार' कहलाता है।

9. **कुडुवाचरणा**–

कुडुवोद्भवपाटाभ्यां वाद्यं कुडुवाचारणा।
उच्यते वादनो दण्डः कोणः कुडुव इत्यपि।।916।।
इति कुडुवाचारणा[11]

अवनद्ध वाद्य कुडुवा से उत्पन्न दो पाट 'कुडुवाचारणा वाद्य' कहलाता है। इसे बजाने का दण्ड, कोण और और कुडुव कह सकते हैं।

10. **करचारणा**–

जाता हस्तजपाटैस्तु केवलैः करचारणा।
इति करचारणा[12]

इस रचना में केवल हाथों से उत्पन्न होने वाले पाटों का सम्मिलित किया जाता है।

11. **दण्डहस्त**–

एकैको यः करद्वन्द्वान्मृदुदक्षिणपाणिकात्।।917।।
जायते तादृशैः पाटैर्दण्डहस्तोऽभिधीयते।[13]

'दण्डहस्त' में दोनों हाथों से एक–एक पाट उत्पन्न किया जाता है जिसमें दाहिने हाथ से पाट कोमलता से उत्पन्न किए जाते हैं।

12. **घनरव**–

यः करेण कराभ्यां वा कृतैः पाटैर्निरन्तरैः।।918।।
निरन्तरघनध्वानः स स्याद् घनरवाभिधः।[14]

जब चाहे एक हाथ से या दोनों हाथों से निरन्तर पाटों का वादन अखण्ड ध्वनि वाला हो तो 'घनरव' वाद्य होता है। इसके अध्ययन से यह रचना वर्तमान समय की बंदिश 'रेला' या 'रौ' की भांति होगी।

निष्कर्ष– उपर्युक्त 12 प्रकार के वाद्य पटह के अन्तर्गत शारंगदेव द्वारा बताये गए हैं परन्तु उनमें प्रकृति व प्रयुक्त होने वाले वर्णों का वर्णन सभी रचनाओं में नहीं किया गया है। केवल एक–दो वाद्यों में ही प्रयुक्त पाटों के नाम हैं परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि उसका वादन किस प्रकार पटह पर किया जाता होगा। जो जानकारी शारंगदेव द्वारा पटह की वादन–सामग्री के विषय में दी गयी उससे यह अनुमान लगता है कि उस समय पटह के वादन हेतु प्रचुर मात्रा में वादन सामग्री उपलब्ध थी परन्तु हर ताल में निश्चित बोल व उचित ताल पद्धति के आभाव में उस समय बजने वाली बंदिशों को लिपिबद्ध न किया जा सका होगा अन्यथा वर्तमान समय में पटह के समरूपी वाद्य ढोलक पर उन वाद्यों (विशिष्ट बंदिशों) को बजाने का प्रयास किया जा सकता था। फिर भी हम कह सकते हैं कि उस समय पटह का एक महत्वपूर्ण स्थान था जिस पर संगत के साथ–साथ स्वतन्त्र–वादन भी किया जाता होगा।

संदर्भ सूची :

1. शारंगदेव कृत संगीतरत्नाकर, तृतीय खण्ड, व्याख्या एवं अनुवादक सुभद्रा चौधरी, पृष्ठ–439
2. वही, पृष्ठ–472
3. वही, पृष्ठ–473
4. वही, पृष्ठ–474
5. वही
6. वही, पृष्ठ–475
7. वही
8. वही
9. वही
10. वही, पृष्ठ–476
11. वही
12. वही
13. वही, पृष्ठ–477
14. वही

Musicians and Intellectual Property Rights in India

Prof. Revati Sakalkar** **Bhanu Pratap Sahoo***

ABSTRACT

Creative thinking in music has received only limited attention in the society of art and creation, yet it appears to be one of the most important issues in the legal matters. No one has the right to control over what one should perceive, create, or produce, but everybody has the freedom to perceive and emote.Intellectual property rights have emerged as a tactical tool in protecting the creative minds of the musicians. This analytical research article presents the copyrights, generation rights, auxiliary rights and consents of Musicians. This study suggests and demands certain changes in terms of law so that artists can be benefitted in terms of their rights and art works. No one can re-create, reproduce or copy someone else's work without due permissions or authority to do so.

Key Words: *Intellectual Property Rights, Musicians, Copyright, Generation Rights, License*

Methodology : *For this research paper, qualitative research methodolgy has been used through secondary sources.*

Introduction:

Music, as an art and a social ideology, reflects the social life and thoughts of human beings.For musicians, the law that protects their art is very important. It is vital for musicians to have a good understanding of how intellectual property rights work, especially copyright. Intellectual property rights are wide concept that covers various types of intellectual property i.e., trademarks, patents, designs, copyrights and geographical indications. The most important type of intellectual property right is copyright, since it protects the rights of the musician's art and performers, artists, painters, dancers, film-makers, actors, designers, etc.[1]A comprehension of the basics of copyright law is perilous to any expert musician, in the case of offering unique work and other multiple rights. Copyright dependably rests with the artist paying little mind to the possession of the work of art. There are exceptions to this control i.e.,artworks that has been particularly authorized amidst business, wherein copyright remains with the officials or the boss. Individuals working for a scope in this field must be aware of this.

Study Area:

However, for some musicians, it might be a combination of one or more intellectual property rights along with the copyright. For example, music production and composing can sometimes incorporate more than one intellectual property right. The composer can have a copyright in the core lyrics of the song but if the composer uses a particular, inventive process to make that song, the composer can also patent that process so used. Additionally, when these services are provided under a specific brand or production name, that incorporates a trademark. The most important right, for performers is copyright. Copyright law can be complex and sometimes complicated to understand, which is why a lot of musicians usually dismiss its importance. But it is crucial for musicians to understand what powers are and are not granted under the scope of copyright.

*Research Scholar, Department of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University
**Research Supervisor, Department of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University

Copyright refers to the legal right of the owner of intellectual property. In simpler terms, copyright is the right to copy. This means that the original creators of products and anyone they give authorization to are the only one with the exclusive right to reproduce the work. Copyright law gives creators of original material the exclusive right to further use and duplicate that material for a given amount of time, at which point the copyrighted item becomes public domain.[2] When someone creates a product that is viewed as original and that required significant mental activity to create, this product becomes an intellectual property that must be protected from unauthorized duplication. Examples of unique creations include computer software, art, poetry, graphic designs, musical lyrics and compositions, novels, films, original architectural designs, website contents etc. One safeguard that can be used to legally protect an original creation is copyright.[3]

An artistic creation and the copyright are two altogether isolate professional elements. China's copyright is presently genuinely standard around the globe, with a few exemptions: it goes on for the artist's lifetime and for a long time after their passing. In the U.S., original owners are protected by copyright laws all of their lives until 70 years after their death. If the original author of the copyrighted material is a corporation, the copyright protection period is 95 years from the date of publication or 120 years, whichever expires first.[4]The general rule is that copyright lasts for 60 years. In the case of original literary, dramatic, musical and artistic works the 60-year period is counted from the year following the death of the author. In the case of cinematography in films, sound recordings, photographs, posthumous publications, anonymous and pseudonymous publications, works of government and works of international organisations, the 60-year period is counted from the date of publication.[5]In as much as works are in copyright anybody wishing to copy them needs to look for the copyright holder's authorization. Specialists can, nonetheless, offer their copyright. Offers of copyright must be specifically stated; usually, deals are invalid and can't be legitimately implemented.

Generation rights:

Proprietors of copyright can offer generation rights, or a permit to use, for particular tasks while as yet holding copyright. For instance, a musician can pitch the privilege to duplicate a musical piece on a keep running schedules while holding by the copyright.

This allows them to offer further licenses, while once copyright is sold the musician has nothing to do with how that music is utilized. Licensees may, sensibly, need to keep licensors from pitching licenses to their immediate rivals (e.g., other music distributers), so they should need to incorporate prohibitive provisions in the agreement. They may, for instance, need to express that the licensor concurs not to pitch a permit to another music distributer, however is allowed to offer licenses into different markets. One has to consider any prohibitive provisos deliberately; to survey whether the proposed confinement is probably going to deny you any future income.The licensee has the power to purchase the permission, or authorization, while the licensor is the individual who sells it.

If a movie producer uses a musician's song in his movie, without the essential permissions and payments to the singer, the producer is violating and infringing the musician's copyright. There are two main ways in which a person can be authorized to use or reproduce the creators or artists copyright, that is by way of licensing or assignment of copyright.

- **Assignment:**

The owner of the copyright of a work (assignor) has the right to assign his copyright to any other person (assignee). The effect of the

assignment is that the assignee becomes entitled to all the rights related to the copyright to the assigned work. The mode of assignment is prescribed under Section-19 of the Act,[6] according to which an assignment of copyright is only valid if it is done in writing by the assignor or his representatives, which is called an assignment deed. This assignment deed must contain and specify the following things- which work is being assigned, the specific rights that are being assigned, the duration and territorial extent of the assignment, and the royalty payable to the assignor upon assignment. Assignment of copyright also involves the future assignment of copyright, wherein a performer can assign any future copyright in any work to the assignee whenever such work comes into existence.

- **Licensing:**

There are two types of licenses in terms of copyright licensing. Voluntary licensing is given under Section-30 and Compulsory licensing is provided under Section-31. A voluntary license is a lot like an assignment deed as debated above, essentially, where the licensee proceeds towards the licensor with a view of using the work and the licensor grants a license for such use. However, a voluntary license may be exclusive or non-exclusive. Exclusive licenses are ones which is discussed upon the licensee to the exclusion of other people. Which means no one else can be given a license to the same work. Non-exclusive is the opposite of exclusive license wherein a licensor can license his work to multiple licensees.[7]

A compulsory license is provided for certain work in the public interest under certain circumstances. According to Section-31, if a copyright holder refuses to republish or allow republishing of his or her work or refuse to communicate/ broadcast the work on reasonable terms, the Appellate Board has the opportunity to grant a compulsory license after reviewing the situation. According to Section-31 clause 'A' of the Act, where the author is dead or unknown or cannot be traced, or the owner of the copyright in such work cannot be initiate, any person may apply to the Copyright Board for a license to publish such work or paraphrase thereof in any language. Section-31 clause'C' is important for music artists as it is related to Statutory License for music covers and similarly Section-31 clause 'D' for statutory licensing for broadcasting of Literary and musical work and sound recording.[8]

Pitching consent to print:

A seeker of copyright should be centpercent clear about the kind of consent about printing a copyright matter, and what confinements on future business movement the deal may involve. On the off chance that one doesn't comprehend the phrasing utilized in the agreement or ascension, one should not be get flustered to request an explanation of its proposals.

There are three basic classifications of offer for copyright and generation rights:

i. Specialists offer copyright out and out. They have no power over the manners by which compositions are consequently utilized, and the new proprietor of the copyright is allowed to offer licenses as they see benefits.

ii. Specialists offer copyright for a particular controlled reason; neither artist nor music distributer can utilize the music for some other reason. For instance, if the music is distributed as a constrained release print it can never be utilized for whatever else, either by the craftsman or the print distributor.

iii. Artist offers multiple rights or a permit, for a particular restricted reason; the artist holds copyright and can keep on benefitting from it. For instance, the craftsman bargains the picture for use on an arrangement of place settings, yet would then be able to continue to offer it for different employments.

It is basic that one can offer licenses later on, whether one has offered the honour to do this over to another person or whether neither one of the parties can fix as such (e.g., for most restricted releases).

It is a moral standard (however not law at the season of composing) in the artistic work generation industry that compositions which have been exploited for restricted version won't be utilized for some other reason or reproduce. This dedication might be strengthened by an announcement at the base of a declaration of credibility. This should be plainly tended to while concurring an agreement with a distributor of constrained versions. Consider deliberately the negative impact to one's notoriety, if work distributed as a restricted release is seen by people in general in different structures. one has to feel certain that the agreement covers this conceivable result.

Auxiliary rights:

Unlikely other rights, it is morally adequate for pictures distributed as open releases to be distributed again as regularly as wanted and in any medium (e.g., as welcome cards, on earthenware production and stationery). On the off chance that the craftsman offers the copyright, at the point, the new copyright proprietor stands to benefit only from such deals. Not withstanding, there are exceptions: a few distributors claim owning copyright keeping in mind the end goal to have power over how the picture is utilized, yet will incorporate a proviso in the agreement expressing a rate that the craftsman will get from offers of auxiliary rights. In the event that the distributer allows you a level of optional rights, it very well may be further bolstering your good fortune to offer the copyright, as the distributor may be preferable set over you are to offer licenses.

On the negative side, it could be annoying to see a distributor benefitting from a picture over numerous years when everyone got was a little erratic charge for your copyright 10 years earlier.

Conclusion:

At long last, if one's composition (or a detailed musical piece from it) is to be consolidated into a general outline by the licensee, at that point this new plan might be the copyright of the licensee. One requires to examine with the licensee how this may influence their very own future utilization of one's own copyright. Intellectual property rights have emerged as a tactical tool in current world. It is important to protect creators and producers of intellectual content. Somehow, we have to prevent all these types of piracy including music and film. It is an area which has emerged with the growth of technology with opportunities and encounters. There are many organizations that are working in this field but it is one's fundamental duty to safeguard intellectual property. Even though there are rules and guidelines passed by the government to protect the music industry unless it is implemented properly in terms of the rights of the creators.

References :

1. Narayanan, P., Intellectual Property Law, Third Edition, Pg 02
2. https://www.investopedia.com/terms/c/copyright.asp
3. Copyright Authorship: What Can Be Registered https://www.copyright.gov/comp3/chap300/ch300-copyrightable-authorship.pdf
4. U.S. Copyright Office. "Duration of Copyright https://www.copyright.gov/circs/circ15a.pdf
5. https://copyright.gov.in/documents/handbook.html#
6. Narayanan, P., Intellectual Property Law, Third Edition, Pg 301
7 ibid, Pg 304
8 ibid, Pg 308

उपशास्त्रीय एवं लोक संगीत की परम्परा में 'कजरी'

प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'** **मणिकान्त कुमार***

सारांश

'कजरी' एक ऐसी लोक गायन–विधा है जिसके श्रवण से मन–मस्तिष्क प्रफुल्लित हो उठता है, तन–मन थिरकने को बाध्य हो जाता है। वर्षा–ऋतु का सर्वाधिक प्रचलित गीत है कजरी। चहूँ ओर हरियाली ही हरियाली देखकर मन–मयूर इन कजरी गीतों के साथ नृत्य कर झूमने को विवश हो उठता है। इन कजरी–गीतों का लोक–साहित्य और उसकी लोक रसयुक्त धुनें अन्तर्मन को भरपूर आनंदित करती हैं। इसके साहित्य में क्षेत्रीय बोलियों का सुन्दर समावेश होता है जो गीतों को कोमलता प्रदान करते हैं तो इसकी धुनों में गीतों में प्रयुक्त बोलियों की सुगंध बसी होती है। इन्हें सुनने के बाद कोई भी आनंदित हुए बिना नहीं रह सकता। वर्षा के आनन्द से अभिभूत साहित्य के साथ नायक–नायिका के श्रृंगार–वर्णन के अतिरिक्त भगवान शंकर की आराधना एवं भक्तिपरक साहित्य भी खूब सुनने को मिलता है। ऐसी कजरियाँ गायन की उपशास्त्रीय और लोक, दोनों शैलियों में पायी जाती हैं।

कजरी गायन की परम्परा भारत में अति प्राचीन समय से ही चली आ रही है। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण देश है। जीवन के समस्त उपादानों की भाँति मृदु मधुर गीतों का गान भी यहाँ के लोगों के दैनिक जीवन का प्रमुख अंग है। प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में लोकगीतों का बीज प्राप्त होता है। प्राचीन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख है, उन्हें लोक–गीतों का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। गुह्यसूत्र में विवाह, सीमन्तोनयन संस्कार तथा यज्ञादि के अवसर पर गाथाएँ गायी जाती थीं। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथों में भी गाथाओं का वर्णन प्राप्त होता है। प्राच्य गाथाओं का सम्बन्ध, लोक गीतों के अत्यन्त निकट ज्ञात होता है। अतः प्राचीनकाल से ही लोकसंगीत की प्रथा भारत में विद्यमान है।

शब्द कुँजी :– *कजरी, लोकगीत, वर्षा–ऋतु, पावस, सावन, हरियाली*

प्रविधि : *द्वितीयक स्रोतों से सामग्री संकलित कर प्रस्तुत पत्र को तैयार किया गया है।*

उद्देश्य– ऐसी अनेक भारतीय कलाएँ हैं जो आज धीरे–धीरे लुप्तप्राय होती जा रही हैं अथवा उसका वास्तविक स्वरूप नष्ट हो रहा है। उक्त शैली की कोमलता पाश्चात्य और बाजारू प्रभाव के कारण विनष्ट हो रही है। वाद्यों का शोरगुल आज संगीत बनता जा रहा है जिसका कुप्रभाव हमारे तन–मन पर पड़ रहा है। ऐसे में हिन्दुस्तानी संगीत की विभिन्न शैलियों के वास्तविक स्वरूप को जानना और उसे प्रस्तुत करना आवश्यक हो गया है। इसी उद्देश्य से यह शोध–पत्र तैयार किया गया है।

शोध–पद्धति– इस शोध–पत्र को तैयार करने में विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन किया गया है तथा वर्तमान में अनेक गायक–गायिकाओं की ध्वनि–मुद्रिकाओं का श्रवण किया गया है।

आलेख– सावन और कजरी का बहुत प्राचीन सम्बन्ध है। वर्षा–ऋतु के सम्बन्ध में संस्कृत के कवियों ने बड़ी भावपूर्ण कल्पनाएँ की हैं। महाकवि कालिदास ने तो पावस को एक राजा के रूप में 'ऋतुसंहार' में चित्रित किया है। वे कहते हैं कि जल की फुहारों से भरा हुआ, विद्युत की पताका फहराता हुआ पावस धरती पर राजसी ठाठ–बाठ से उतरता है। आदिकवि वाल्मिकि ने वर्षा का चित्रण इस प्रकार किया है– नीलकमल दल के समान काले मेघ दसों दिशाओं को श्याम बनाकर मदरहित हाथियों के समान शिथिल पड़ गये हैं। कुटज, अर्जुन वृक्ष की सुगन्ध से युक्त जल को अपने में धारे हुये महामेघ पूरे वेग के साथ वर्षा की बौछारें छोड़ते हुए इधर–उधर विचर कर अब रूक गये हैं–

नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृत्वा दिशो दश
विमदा इव मातंगाः शान्तवेगाः पयोधराः
जलगर्भा महामेघाः कुटजार्जुन गन्धिनः
चरित्वा विरताः सौम्य वृष्टिवाताः समुद्यताः।।[1]

*एस.आर.एफ., विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
**शोध–निर्देशिका, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

'श्रीमद्भागवत् पुराण' के दशम स्कन्ध में वर्षा ऋतु का सुन्दर वर्णन मिलता है–

मेघागमोत्सवा दृष्टाः प्रत्यनन्दञ्शिछखण्डिनः
गृहेशु त्तप्ता निर्विण्णा यथाच्युत जनागमे।।[2]

बादलों के आगमन से मोरों का रोम–रोम खिल रहा है। वे अपनी नृत्य द्वारा आनन्दोत्सव मनाते हैं, जैसे– त्रिविध ताप से जलते हुये गृहस्थ भक्तों के आगमन से प्रसन्न होते हैं।

वर्षा–ऋतु के आगमन पर मानव के मन में नवीन उल्लास का संचार होता है, उसको अभिव्यक्त करती है कजरी। भादों के कृष्ण पक्ष की तृतीया को कज्जली पर्व का आयोजन किया जाता है। नव विवाहित स्त्रियाँ इस दिन नये वस्त्राभूषण पहनती हैं, कजलीदेवी की पूजा करती हैं और अपने भाईयों को जई बाँधने के लिये देती हैं। कजली के अवसर पर रात–भर जागती हैं, तथा कजरी गीतों का गान करती हैं, इसे रतजगा के नाम से भी जाना जाता है।[3]

सरस सावन, हरियाली, रिमझिम फुहार– इन सभी का वर्णन कजरी गीतों के माध्यम से हमें प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। कजरी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई मत प्रचलित हैं जिनमें से कुछ मतों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

1. कजरी का नामकरण श्रावण मास में घिरने वाले काजल सरीखे बादलों की कालिमा के कारण हुआ है। काजल शब्द कज्जल का अपभ्रंश है तथा इसी से कज्जली शब्द बनता है, जिसे सामान्य बोल–चाल की भाषा में कजली या कजरी कहा जाता है।

2. इस अनुमान के अतिरिक्त भारतेन्दुजी ने कजरी के नामकरण के दो अन्य कारण भी बताये हैं– दादु राय के राज्य में कजली नाम का वन था, उसी के नाम पर इसका नाम कजली पड़ा।

3. श्रावण और भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की तीज का नाम, जिस दिन यह गीत गाया जाता है, कजली तीज है। इस नाम से भी इसकी उत्पत्ति मानी जाती है। मार्कण्डेय पुराण और काशी के स्वामी देवतीर्थ, कजरी पर्व का सम्बन्ध विन्ध्याचल देवी से मानते हैं।

4. आल्हा खण्ड में कजरी के खेल का वर्णन मिलता है। सम्भवतः कजरी गीत या खेल का समय बारहवीं शताब्दी में प्रचलित रहा हो।

कजली अथवा कजरी का सम्बन्ध एक धार्मिक तथा सामाजिक पर्व के साथ जुड़ा हुआ है। कजरी गीतों को सर्वप्रथम किसने लिखा, यह कहना कठिन है। किन्तु लगभग एक सौ पचास वर्ष पूर्व आंचलिक भाषा के सन्त कवियों, विशेष रूप से लक्ष्मी सखी की रचनाओं में कजरी गीत उपलब्ध हैं। वैसे भारतेन्दुजी के युग को कजरी का स्वर्णिम–काल कहा जाता है। यह ही वह समय था जब कजली गीतों को संगीत तथा लोकजीवन में एक प्रतिष्ठापरक स्थान प्राप्त हुआ।

इस समय अन्य कवियों ने कजरी गीतों के स्वरूप को एक साहित्यिक स्वरूप की गरिमा प्रदान की। इन कवियों में अम्बिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमधन आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। शैली तथा आंचलिकता की दृष्टि से कजरी गायन के तीन मुख्य भेद किये जाते हैं–

1) भोजपुरी कजरी,

2) बनारसी कजरी,

3) मिर्जापुरी कजरी।

अधिकांश कजरी गीत मिर्जापुर तथा चुनार की क्षेत्रीय भाषाओं में हैं। भोजपुरी छपरा की कजरी, प्रायः मिर्जापुर की कजरी का ही अनुकरण है। मिर्जापुर को कजरी गीतों के विकास का श्रेय जाता है।

उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से कजरी की दो प्रकार की शैलियाँ मानी जा सकती हैं। एक शैली ग़जल की शैली के अनुरूप है जिसे विभिन्न कजरी दंगलों में सुना जा सकता है। दूसरी शैली है– ढुनमुनियाँ शैली की कजरी। इस शैली की कजरी को महिलायें वृत्त बनाकर ताल देती हुई, झुक–झुक कर गाती हैं।

भाषाविद् डॉ॰ आर॰ एन॰ तिवारी ने कजली को दस खण्डों में विभक्त किया है। अपने पृथक वर्णों में गायी जाने वाली कजली के ढुनमुनियाँ, घुमरूइया, चरगुनिया, रूपगुनिया, रसपुनिया, डहकनिया, कमधुनिया, तनतनिया, देशदुनिया आदि स्वरूप हैं।[4]

कजरी गीतों में, घूमते–घूमते, रास्ते चलते, रूप–रंग का वर्णन, संयोग–वियोग, उमंग, उत्साह, खेतों में श्रम, सवाल–जवाब, सामाजिक विषयों का उल्लेख मिलता है।

कजरी का वर्ण्य विषय– कजरी का वर्ण्य–विषय प्रेम है। इसके अन्तर्गत श्रृंगार के संयोग तथा वियोग पक्ष की झाँकी

मिलती है। इन गीतों में पति व पत्नी के आचरण, व्यवहार का उल्लेख प्राप्त होता है। दम्पत्ति–परिहास, पीहर जाने का अनुरोध, प्रणय का निवेदन, बादल के घिर जाने के कारण कजरी न खेल पाने की विवशता की व्यथा आदि कजरी के प्रमुख विषय होते हैं। इसके अतिरिक्त भाई–बहन का प्रेम, सामाजिक प्रसंग, धार्मिक प्रसंग यथा कृष्ण का जीवन–चरित्र, देवी–देवताओं का वर्णन आदि भी कजरी गीतों के मनभावन विषय हैं।

कजरी गीतों में भाव–प्रवणता के साथ ही वर्णनात्मकता भी होती है। मेघों की घनघोर फुहारों से लेकर, मृदु रिमझिम बूंदों, कोयल की कूक, पपीहे की पुकार, मोर का शोर, दामिनी की चमक, घन–घटाओं की गरज आदि प्रिय की कामना के लिये उद्दीपन का कार्य करते है। वर्ण्य–विषय की दृष्टि से इन गीतों में सामाजिक आदर्श, इष्ट संयोग, मिलन, विछोह आदि का आकर्षक वर्णन होता है। इन गीतों में आंचलिक संस्कृतियों का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गीतों के वर्णन में स्थानीय स्थितियों का भी प्रभाव होता है।

कजरी दंगल–

मिर्जापुर एवं बनारस के अखाड़े तथा कजरी मेले अवध प्रदेश, भोजपुर, बुंदेलखंड आदि क्षेत्र से अधिक प्रभावित रहे हैं। बनारस और मिर्जापुर की कजरी की विशेषता का कजरी गीत में निम्न वर्णन मिलता है–

हरि हरि मिर्जापुर ले काशी गुलजारा ए हरी
मिर्जापुर में फूले रामा बेलिया रे चमेलिया
हरि हरि काशीजी में फूलेला हजारा ए हरी
मिर्जापुर में बहे रामा नदिया से नलवा
हरि हरि काशीजी में बहे गंगधारा ए हरी।[5]

इन स्थानों में कजरी गीतों की ऐसी प्रतिष्ठा थी जो सड़कों से चौराहों तक, मेलों और गोष्ठियों से रईसों की महफिलों तक गायी जाती थी। भारतेन्दुजी का समय कजरी गीतों का स्वर्णिम समय माना जाता था। कजरी गीतों को साहित्य, संगीत तथा लोकजीवन में उच्च स्थान प्राप्त था। विभिन्न स्थानों में कजरी के दंगल तथा कजरी के मेले व महफिलों का आयोजन किया जाता था। रात–भर श्रोता कजरी गीतों का आनन्द लेते थे। मिर्जापुर के कजरी मेलों में जन–सैलाब उमड़ पड़ता था। सर्वाधिक जन हलचल, विन्ध्याचल के कजरी मेले में देखने को मिलती थी। सार्वजनिक कजरी मेलों, दंगलों के अतिरिक्त मठों, मन्दिरों तथा रईसों के बाग व बागीचों में आयोजित कजरी उत्सवों का अनोखा ही रंग हुआ करता था। जिसके बाग में अधिक झूले लगते थे वह उतना ही अधिक धनवान समझा जाता था। इन उत्सवों में सम्मिलित होने वाली गायिकाओं के लिये धानी रंग की साड़ी और गोटे लगे ब्लाउज की व्यवस्था होती थी, जिसे पहन कर वे झूले पर बैठती थीं। बनारस और मिर्जापुर में आषाढ़ गीतों का यह क्रम आश्विन तक चलता रहता है।

कुछ विद्वानों ने कजरी दंगल करने वाले अखाड़ों तथा घरानों का वर्णन इस प्रकार किया है–

1) **जहाँगीर का अखाड़ा**– यह कजरी का एक प्रसिद्ध अखाड़ा है। कहा जाता है कि सम्भवतया डेण्डा, पदक एवं धन जीत कर अपनी प्रसिद्धि प्राप्त की। इन दंगलों में सवाल–जवाब होते थे।

एक गौनहारिन ने सवाल किया था–

बहे पुरवईया सवनवाँ का लहरा।
आजा मोरे बालमवाँ।।

इस पर श्यामलाल ने इसके जवाब में यह कहा था–

तोहरे दुअरिया मैं कैसे आऊँ।
सिपहिया का पहरा रे बालमवाँ।।[6]

शेख वफ़त द्वारा प्रतिष्ठित अखाड़े की परम्परा के अलावा कजरी की बनारसी–मिर्जापुरी धुनों में निर्गुण, चेतावनी और पचरा देवी गीतों के लिये भी यह विख्यात हुई। इस अखाड़े की परम्परा को जगन्नाथ महाराज, मुरलीधर मराल, रामदुलारे सिंह, बद्रीनाथ तिवारी, बैजनाथ, विश्वनाथ आदि ने आगे बढ़ाया।

2) सन्त कल्लूशाह का अखाड़ा– कजरी गीतों में निर्गुण, ऐतिहासिक तथा श्रृंगार–रस–प्रधान कजरी के लिये संत कल्लूशाह तथा उनके शिष्य प्रसिद्ध थे। इनकी शिष्य–परम्परा में बाबूलाल, सुकराती, पल्टू, महादेव आदि ने इस अखाड़े को प्रतिष्ठा प्रदान की।

सीखड़ ग्राम में गायकों की परम्परा सीखड़ अखाड़े के नाम से प्रसिद्ध हुई। ''अहरौरा'' अखाड़े के गायक, बनारसी रंग में कजरी गाते थे। रॉबर्ट्सगंज अखाड़ा अहरौरा की शाखा के रूप में प्रसिद्ध था।''[7]

मिर्जापुर में कजरी के दौरान रतजगा होता है।

ढोलक की थाप के साथ कजरी के स्वर गुंजायमान होते हैं। विभिन्न स्थानों पर कलाकारों के बसने से विभिन्न कजरी की परम्पराओं का विकास हुआ। परन्तु कजरी की परम्परागत शैली अब धीरे–धीरे कम हो चली है पुनरपि कजरी आज भी जीवन्त है।

उपरोक्त सभी घरानों के अतिरिक्त मोतिराम द्वारा स्थापित वैरागी अखाड़ा, रामप्रकाश पण्डित का अखाड़ा, कतवारू का अखाड़ा, छविराम का अखाड़ा, भैरो घड़ीसाज का अखाड़ा, खुदाबख़्श का अखाड़ा, नज़र का अखाड़ा, अलीबख्श का अखाड़ा, सरस्वती का अखाड़ा इत्यादि भी प्रसिद्ध हुए। आज कजरी के कलाकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुप्रसिद्ध हैं। उपशास्त्रीय कजरी–गायन की सुप्रसिद्ध गायिकाएँ हैं– श्रीमती गिरिजा देवी, श्रीमती शोभा गुर्टु, श्रीमती मालिनी अवस्थी आदि। साथ ही, लोक संगीत की कजरी गायिकाओं में आज श्रीमती शारदा सिन्हा, श्रीमती मालिनी अवस्थी का नाम अग्रगण्य है–

''कइसे खेले जइबु सावन में कजरिया
बदरिया घिर आई ननदी।''

निष्कर्ष– 'कजरी' एक अत्यंत समृद्ध गायन–शैली है। इसका साहित्य, इसकी धुनें तथा पारम्परिक शैलियों की विशालता का हमें ज्ञान होता है जिसका संरक्षण–सवर्द्धन नितान्त आवश्यक है।

संदर्भ सूची :

1. जैन, श्रीमती शांति, ऋतुगीतः स्वर और स्वरुप, पृष्ठ– 55
2. वही, पृष्ठ– 56
3. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस, 2012, पृष्ठ– 97
4. दैनिक जागरण, दैनिक समाचार पत्र, 17 जुलाई 2011, पृष्ठ– 8
5. जैन, श्रीमती शाँति, लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम (विश्वविद्यालय प्रकाशन–1999), पृष्ठ– 03,
6. वही, पृष्ठ– 204
7. जैन, श्रीमती शांति, ऋतु गीत स्वर और स्वरूप, पृष्ठ– 81

मुनव्वर–ए–मौसिकी : उस्ताद मुनव्वर अली खां साहेब

डॉ. वन्दना तिवारी** **दीपक वर्मा***

शोध–आलेख सार

उस्ताद मुनव्वर अली खां उत्कृष्ट गायन के साथ दयाशीलता, सहृदयता, उदार, सज्जन एवं सादगी पसंद व्यक्ति थे। खां साहब का स्वभाव व आचरण किसी भी व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करता। अनुशासित संगीत–साधना के साथ आपका हृदय कोमलता एवं प्रेम से परिपूर्ण था। खां साहब का व्यक्तिगत आचरण अत्यंत ही सरल व मनमोहित कर देने वाला था। भले ही मंच पर बैठे साजिंदो की बात हो या राह चलते व्यक्ति की, खां साहब बहुत ही प्रेम–भावना से मिलते व मिलने वाले के हृदय में उनका चरित्र व चेहरा आत्मसात् हो जाता। पटियाला घराना में उस्ताद बड़े गुलाम अली खां के बाद घराना के नेतृत्व का बाग–डोर स्वयं मुनव्वर अली खां साहेब ने ही सम्भाली व बतौर घराने का खलीफा घराने में गुरु–शिष्य–परम्परा का प्रयोजन व संरक्षण किया। प्रस्तुत शोध–पत्र में खां साहेब के व्यक्तित्व एवं सांगीतिक योगदान के सम्बंध में चर्चा की जाएगी।

मुख्य–शब्द : *संगीत, पटियाला घराना, सांगीतिक शिक्षा, गायकी, गायन शैली, कलाकार*

शोध माध्यम : *पुस्तकों का अध्ययन इस शोध–पत्र का आधार है ।*

जन्म– उस्ताद मुनव्वर अली खां साहेब का जन्म 15 अगस्त, 1932, को कसूर नामक प्रांत, जिला पंजाब– लाहौर (अब पाकिस्तान में) हुआ।[1] पिता उस्ताद बड़े गुलाम अली खां पटियाला घराना के मुख्य प्रवर्तक के रूप में संगीत की सेवा आजीवन करते रहे। उस्ताद मुनव्वर अली खां उस्ताद बड़े गुलाम अली खां के छोटे बेटे थे।इनके दादा उस्ताद अली बक्श खां जम्मू रियासत के दरबारी गायक थे। इसलिए बड़े गुलाम अली खां अपनी माँ के साथ कसूर में ही रहे।[2] विभाजन के पश्चात् जब बड़े गुलाम अली खां भारत रहने लगे तब बड़े खां साहब का पूरा परिवार हैदराबाद रहा व वहाँ कुछ समय बिताने के बाद दिल्ली रहा। बड़े खां साहब के इंतकाल के बाद उस्ताद मुनव्वर अली खां साहेब कलकत्ता में अपने सुपुत्र उस्ताद रजा अली खां व शाकिर अली खां, पुत्री इरम मुनव्वर व पत्नी अजमत मुनव्वर के साथ कलकत्ता में रहने लगे।

सांगीतिक शिक्षा– 14 वर्ष की आयु में ही इन्होंने अपने पिता उस्ताद बड़े गुलाम अली खां से सांगीतिक शिक्षा ग्रहण करना शुरू कर दिया था। इसके साथ ही अपने पिता के साथ–साथ खां साहेब अपने चाचा उस्ताद बरकत अली खां से भी संगीत की विभिन्न बारिकियाँ सीखी व अनुशासन–पूर्ण शिक्षा ग्रहण की। अपने पिता के साथ विभिन्न संगीत–सम्मेलनों और गोष्ठियों में भी भाग लेने का सतत सुअवसर इन्हें मिलता रहा।[3] इस प्रकार खां साहेब का पालन–पोषण बहुत ही प्रेमपूर्ण सांगीतिक माहौल में हुआ। अपने बचपन को खां साहेब याद करते हुए कहा करते थे 'मुझे याद नहीं मैंने कब और कैसे 12 स्वर सीखे, पर मैं इतना कह सकता हूँ कि जब मैं तीन या चार वर्ष का था तब मैं 12 स्वर महसूस कर सकता था। मैंने जब भी बोलना शुरू किया, मेरे पिता ने मुझे सरगम सीखाना शुरू किया, उन दिनों औपचारिक शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दी जाती थी। कम उमर के बच्चों के लिये संगीत का दैनिक अभ्यास नहीं था, परंतु मैं अपने पिता को कई घंटों तक सुनता था। जब में सात वर्ष का था मेरे पिता जी ने मुझे संगीत का नियमित और व्यवस्थित प्रशिक्षण देना शुरू किया।[4] संगीत शिक्षा का निर्वाह निरंतर चलता रहा। इस प्रकार, खां साहेब ने संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा स्व0 तानसेन पांडे, उस्ताद तानरस खां के पौत्र सरदार खां, पिता बड़े गुलाम अली खां और चाचा उस्ताद बरकत अली खां के संरक्षण में प्राप्त की।[5] उस्ताद मुनव्वर अली खां साहेब की विधिवत सांगीतिक शिक्षा समय–अंतराल अनुसार भिन्न भिन्न उस्तादों की छत्र छायाँ में हुई। जैसे भारत विभाजन के पश्चात् सन 1948 में उस्ताद सरदार खां द्वारा गंडाबंध शगिर्दी हुई क्यूँकि बतौर घराना परम्परा यह एक नियम है कि पिता अपने पुत्र को गंडा नहीं बांध सकता। संगीत में तालीम का सिलसिला इसी तरह चलता रहा व

*शोधार्थी, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, सेक्टर–11, चण्डीगढ़

**संगीत विभाग, पी.जी. गवर्नमेन्ट कॉलेज फॉर गर्ल्स, सेक्टर–11, चण्डीगढ

अपने पिता व चाचा के समीप बैठ कर खां साहब ने संगीत व प्रस्तुतिकरण की अन्य बारीकियाँ सीखी। सन् 1958 में उस्ताद हुसैनिद्दीन (तानसेन पांडे) द्वारा भी उस्ताद मुनव्वर अली खां साहब को गंडा बांधा गया व उनकी तालीम इसी तरह उन्नत रूप से अग्रसर रही।

उस्ताद मुनव्वर अली खां साहब का व्यक्तित्व : पटियाला घराना के प्रवर्तक उस्ताद बड़े गुलाम अली खां साहब का सुपुत्र होने के कारण घराने के प्रचार व संरक्षण में जिम्मेदारी बढ़ जाती है। खां साहब चाहे कहीं भी रहे हों, उनके घर में शिष्यों का आना–जाना निश्चित ही निरंतर रूप से रहता। उस्ताद मुनव्वर अली खां साहब अपने पिता के साथ रियाज पर भी बैठते व घर का काम–काज भी निरंतर सम्भालते। अतः इतने बड़े उस्ताद के समीप रहना व घर का वंश होते हुए, एक सुदृढ़ गायक अथवा कलाकार का तैयार होना निश्चित था।

उस्ताद मुनव्वर अली खाँ साहब जितने उच्च कोटि के गायक व कलाकार थे उतने ही उन्नत खां साहब का आचरण था। पिता का देहांत होने के पश्चात् घराने की जिम्मेदारी अब उस्ताद मुनव्वर अली खां साहब पर आन पड़ी थी जिसे खां साहब ने बतौर निष्ठा व सप्रेम निभाया। यदि खां साहब की मनोवृति के संदर्भ में चर्चा करें तो वह जितनी सरल थी उतनी ही असाधारण भी। खां साहब का सफेद कुर्ता–पजामा व मंच–प्रस्तुति में शेरवानी ऐसा मनमोहित करता था जैसे कोई साधु अपने निष्पक्ष प्रेम भावना से सबको अपनी ओर खींच लेता है। खां साहब के घर में व संगीत कक्ष में उनके इत्र की ऐसी खुशबू थी । किसी भी प्रकार की कुंठा, भेद–भाव, अभाव या फिर फरेब आदि खां साहब अपने मन में न रखते और केवल संगीत की ही सेवा करते रहते। व्यक्तित्व के सम्बंध में एक यह भी तथ्य खां साहब में था कि गायकी के साथ–साथ उनकी कला उनके जीवन में भी नजर आती थी, जैसे– गैर सांगीतिक लोगों से मिलना, संगीत–प्रेमियों के सम्मुख आने का अदब, श्रोताओं को लुभाने की कला, शिष्यों से अपने पुत्र–जैसा प्रेम आदि । ऐसे चरित्र के धनी थे खां साहब। गायकी के साथ–साथ खां साहब ने अनेक बंदिशों की रचना की जिसमें उनका रचना–कौशल भली–भाँति देखा जा सकता है।

खां साहब की गायकी की विशेषता : जितनी सरलता खां साहब की रचनाओं में देखी जा सकती है उतनी ही विशिष्टता खाँ साहब की गायन–शैली में भी देखी जा सकती है। पिता उस्ताद बड़े गुलाम अली खां साहब से उस्ताद मुनव्वर अली खां साहब का स्वर–लगाव भिन्न था। जैसे पटियाला घराना में गायकी "आकार प्रधान" गायकी है परंतु खां साहब का आकार व आवाज लगाने का ढंग निश्चित भिन्न था। उनका कहना था कि उस्तादों से सीखने के बाद अपनी गायकी में नवीनता लाना बहुत ही जरूरी है।

दमदार आवाज के धनी, स्वरों की शुद्धता, अनोखी स्वर जाति का मेल व तानों की तैयारी का प्रभाव देखते ही बनता। खां साहब की गायकी सुलझी व सरल थी। मंच–प्रस्तुतिकरण में खां साहब श्रोताओं पर ऐसा जादू छोड़ देते कि भुलाए न भूले। वे अपने कार्यक्रम का अंत प्रायः ठुमरी या भजन द्वारा करते थे।

पिता की ख्याल व शास्त्रीय–प्रधान गायकी व चाचा की ठुमरी अंग की मखमली आवाज, इनके सानिध्य में सीखकर भी उस्ताद मुनव्वर अली खां साहब का आवाज लगाने का अन्दाज भिन्न व निराला था। अतः यह भी कहा जा सकता है कि पुत्र होने के बावजूद खां साहब ने अपनी गायकी के अनोखे अन्दाज में कहीं कोई कमी नहीं छोड़ी। ख्याल–गायन में लयकारी के साथ जमजमे व छूट की तानों का जाल व ठुमरी–गायन में सुगम संगीत का अन्दाज इतना भिन्न था जो खां साहब को अपने घराने के अन्य उस्तादों से अलग करता था। यही रौबदार व करारी आवाज का सुरीलापन खां साहब को खलीफा कहलाने का हक प्रदान करता है। खां साहब के प्रिय राग जौनपुरी, मियाँ की तोड़ी, शुद्ध सारंग, केदार, आसावरी, कमोद, देश, जयजयवंती, भैरव, मालकौंस, बिहाग तथा दरबारी कानड़ा रहे हैं।[5]

निधन : उस्ताद मुनव्वर अली खाँसाहब अपनी उपलब्धियों, विशिष्ट गायन–शैली, गीत–गजल, ठुमरी व ख्याल आदि के मर्मज्ञ थे। वे 13 अगस्त 1989 को कलकत्ता में इस संगीत जगत को हमेशा के लिए अलविदा कह गए। खाँ साहब आज भी अपनी प्रबल गायकी व स्वरबद्ध रचनाओं में हमारे बीच मौजूद हैं। संगीत में उनके द्वारा किया गया सफल कार्य व रचनाएँ आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत रहेगी। खाँ साहब को उनके वंशीय कलाकारों व अन्य शिष्यों द्वारा संगीत–सभाओं में आज भी उन्हें श्रद्धांजलि के रूप में याद किया जाता है।

निष्कर्ष : सदियों में एक बार ऐसे घरानेदार गायक अथवा कलाकार जन्म लेते हैं जिन्हें कई दशकों तक याद किया जाता है और संगीत में उनके योगदान के सम्बंध में शोध व स्मरण किया जाता है। ऐसी हस्ती थे मुनव्वर अली खां जिन्होंने केवल अपनी विशिष्ट गायकी एवं साधारण आचरण द्वारा सारी दुनिया में अपनी जगह बना ली। स्वनामधन्य घराना में जन्म लेना और फिर उसे नियमित व अनुशासित रूप से आगे बढ़ाना, यह बल केवल एक उत्कृष्ट कलाकार ही अपने सिर पर उठा सकता है जिसे खां साहब ने साबित भी किया। निष्पक्ष भाव से शिक्षा का प्रचार व प्रेम भाव से संगीत की सेवा में अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर दिया। अनेक बंदिशों एवं ठुमरियों का निर्माण कर उन्होंने एक सम्पूर्ण वाग्गेयकार होने का परिचय दिया। उन्हीं बंदिशों व ठुमरियों के साथ आज भी उस्ताद मुनव्वर अली खां साहब हम सबके के मध्य जीवित हैं।

संदर्भ सूची :

1. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, हमारे संगीत रत्न, पृष्ट– 310
2. पैंटल, गीता, पंजाब की संगीत परम्परा, पृष्ट– 205
3. वही, पृष्ट– 157
4. शर्मा, मनोरमा, ट्रेडिशन आफ हिंदुस्तानी म्यूजिक, पेज– 110
5. शर्मा, मनोरमा, शास्त्रीय संगीत की परम्परा (पटियाला घारना), पृष्ट– 98

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

हिन्दुस्तानी संगीत में विद्युत (इलेक्ट्रॉनिक) वाद्यों का प्रयोग वरदान या अभिशाप

प्रो. पं. विद्याधर प्रसाद मिश्रा**

रेखा सेन*

सारांश

संगीत अनेक वर्षों से परिवर्तनशील रहा है। इस परिवर्तन के परिणाम हमारे लिए लाभकारी एवं हानिकारक दोनों ही सिद्ध हुए हैं। हिन्दुस्तानी संगीत ने अपनी मूल अवस्था और समाज में स्थान व सम्मान प्राप्त करने के लिए अनेक उतार–चढ़ाव देखा है। अध्ययन एवं सर्वेक्षण में मैंने पाया कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध काल तक संगीत के क्षेत्र में आयी आधुनिकता अतुलनीय है किन्तु बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही विद्युत (इलेक्ट्रॉनिक) वाद्यों के आगमन के कारण हमारे संगीत की मूल–वाद्य संस्कृति अपनी गरिमा को खोती जा रही है जो हिन्तुस्तानी संगीत के लिए घातक सिद्ध होगा। प्रस्तुत लेख में विद्युत वाद्य–यंत्रों के आगमन एवं प्रयोग का सकारात्मक प्रभाव एवं दुष्प्रभाव का वर्णन किया गया है। अपने मूल वाद्य–यंत्रों के संरक्षण में जागरूकता हेतु यह मेरा छोटा–सा प्रयास होगा।

मुख्य शब्द– *विद्युत वाद्य–यंत्र, म्यूजिक बॉक्स, तालोमीटर, कलाकार, इलेक्ट्रॉनिक।*

शोध–माध्यम– *पुस्तकों के अध्ययन एवं सर्वेक्षण के आधार पर शोध–पत्र तैयार किया गया है ।*

भारतीय संगीत का अस्तित्व अनन्त काल से है। इसकी प्राचीनता का प्रमाण वैदिक ग्रन्थों, पुराणों तथा राजवंशियों के काल और गीता के सार में मिलता है। वर्तमान समय में संगीत के स्वरूप में आये परिवर्तनों के स्पष्ट विवेचन हेतु भारतीय संगीत में वाद्य प्रयोगों का पूर्वावलोकन करना आवश्यक व उचित होगा। आनन्द दर्शन और आध्यात्मिक ज्ञान ही संगीत कला का परम लक्ष्य है। गीति–काव्य का ऐसा कोई पहलू न होगा जिसमें वाद्य ध्वनि का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से दर्शन न हो। प्राचीनकाल से ही गीति काव्य में वाद्यों का महत्व देखा गया है। लौकिक साहित्य के आदिकाव्य रामायण में वाद्य तथा उनकी ध्वनियाँ महत्वशाली रही हैं। परन्तु 19वीं शताब्दी के पश्चात् संगीत जगत में क्रान्ति आयी है। विद्युत वाद्य–यंत्रों का आगमन हुआ।[1] जिसके निरंतर बढ़ते प्रयोग से वाद्य कलाकारों एवं निमार्ताओं की जीविका को नकारात्मक रूप से प्रभावित होना पड़ रहा है। इसके पूर्व जिन वाद्यों का प्रयोग होता रहा है वह प्राकृतिक रहे हैं, उन वाद्यों की निर्माण प्रक्रिया में प्रयोग में आने वाली प्राकृतिक वस्तुओं के विक्रेताओं से लेकर वाद्य वादक तक अनन्य लोगों के रोजगार का प्रश्न है। चूँकि यह उनकी जीविका का एकमात्र सहारा है, इसलिए यह तथ्य विचारणीय है जिनकी मधुरता व गंभीरता आपको आनन्दमग्न होने पर विवश कर देती है।

मूल ढाँचा अर्थात् वाद्य की मूल बनावट में लगने वाली वस्तुओं पर यदि विचार किया जाए तो ऐसा ज्ञात होता है कि इनके निर्माण में अधिकांशतः प्रकृतिप्रदत्त वस्तुओं का ही प्रयोग किया जाता है। घन वाद्यों का ढाँचा सूखी पत्तियों, हड्डियों एवं अष्ट धातुओं से बना होता है जो कुछ अन्य वाद्यों (झुनझुना, रूंजा इत्यादि) को छोड़कर ठोस होता है। धातुओं में पीतल, लोहा, ताँबा और चाँदी इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। अवनद्ध तथा सुषिर वाद्यों के ढाँचा हेतु हड्डी, मिट्टी, बाँस, लकड़ी, पीतल, काँसा, लोहा एवं चाँदी इत्यादि का प्रयोग होता है। ढाँचा तैयार करने के पश्चात् वाद्यों के निर्माण में अगला चरण कम्पित पदार्थों का होता है। अवनद्ध वाद्यों में कम्पित पदार्थ चर्म (चमड़ा) का प्रयोग किया जाता है। तन्त्री वाद्यों में तार का प्रयोग करते हैं। प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं द्वारा निर्मित होने के कारण इन वाद्यों की ध्वनि अत्यन्त मृदु (मधुर) होती है।

हमें इलेक्ट्रॉनिक वाद्यों की दिन–प्रतिदिन लोकप्रियता में वृद्धि पर विचार करना है कि इलेक्ट्रॉनिक वाद्य क्या हैं ? इनके गुण–दोषों को जानना अत्यन्त आवश्यक है। वर्ष 1975 के पूर्वार्द्ध में पूना स्थित भौतिक विज्ञान के

*शोधार्थिनी, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**शोध निर्देशक, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रोफेसर एच. वी. मोडक ने प्रथम तन्त्री इलेक्ट्रॉनिक वाद्य निर्मित किया । आपने स्वयं ही वाद्य को संचालित किया था। वाद्य की विशेषता थी कि इस वाद्य के वादन के लिए कलाकार की आवश्यकता नहीं थी। यह वाद्य स्वयं ही संगति एवं संचालन हेतु सक्षम था।[2] संभवतया 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आसपास राज नारायण जी ने दक्षिण भारतीय संगीत के ताल के संदर्भ में दृश्य–श्रव्य से सम्बन्धित प्रदर्शन हेतु– ''**तालोमीटर**'' विकसित किया जो स्वरूप में मेट्रनोम के जैसा ही था। इस वाद्य को 35 तालकी पद्धति के अनुसार व्यवस्थित किया गया था।[4]

तालोमीटर[3]

मुख्य रूप से प्रयोग में सर्वाधिक लोकप्रिय इलेक्ट्रॉनिक वाद्य सिंथेसाइजर है। सिंथेसाइजर एक ऐसा वाद्य है जो लाउड स्पीकरों के माध्यम–विद्युत संकेत कम्पन्न करता है।[6] सिंथेसाइजर का मुख्य गुण यह है कि इसमें अनेक नाद जाति के वाद्यों, जैसे– गिटार, सारंगी, सरोद इत्यादि वाद्यों का भी एक ही वाद्य में वादन किया जा सकता है। इसमें रिद्म की भी व्यवस्था होती है। प्रयोग तथा आवश्यकता के अनुसार विभिन्न बनावट वाले सिंथेसाइज़र उपलब्ध हैं। जैसी लागत होती है उनमें उतनी ही विशेषताएँ होती हैं।

सिन्थेसाइज़र[5]

पाँच या पौने तीन इंच की चौड़ाई तथा साढ़े नौ इंच लम्बे बाक्स के समान दिखनेवाला इलेक्ट्रॉनिक वाद्य **सुरपेटी** है जिसका संचालन 9 वोल्ट की बैटरी द्वारा होता है। संगत वाद्य के रूप में इसे तानपूरा के विकल्प के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह स्वरों को असीमित काल तक स्थिर रखने में सक्षम है। इसका वॉल्युम कंट्रोल नॉब द्वारा किया जाता है।[8]

सुरपेटी[7]

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में विकसित वाद्य श्रुति बॉक्स, स्वर माधुर्य रहित होने के कारण कुछ संगीतज्ञों ने इस वाद्य का तिरस्कार किया, ऐसी विडंबना को देखते हुए जी. राज नारायण ने इसे पुनः सृजित करने का फैसला किया। उनके द्वारा संशोधित वाद्य जो पुनः विकसित हुआ उनका नाम उन्होंने सारंग रखा।[10] सुविधाजनक यह वाद्य तानपूरा की आवश्यकताओं का पूर्ण समाधान था। इस वाद्य से मिलते–जुलते अनेक वाद्य अस्तित्व में आये परन्तु वे आकार और बनावट में भिन्न थे, जैसे–सारंग माइक्रो, उन्नत सुरपेटी डिजिटल तानपूरा, इलेक्ट्रानिक तानपूरा इत्यादि।

सारंग[9]

डिब्बी के आकार का एक छोटा इलेक्ट्रॉनिक म्यूजिक बॉक्स सुनादमाला सिंगार है। यह एक लहरा प्लेयर जिसका निर्माण अवनद्ध वाद्य वर्ग के वादकों के तबला एवं पखावज की संगति हेतु किया गया है। इसमें विभिन्न मात्राओं में सम्बन्धित धुनों (नगमों) का संग्रह किया गया है[12] जो एक नागमाकार के कार्य के लिए उपर्युक्त होता है। यह धुन को वादन क्रिया के अंत तक दोहराता रहता है। इसमें गति को बढ़ाने एवं कम करने की व्यवस्था भी रहती है।

सुनादमाला सिंगार[11]

तबला टच विश्व का सर्वप्रथम विद्युत तबला है जिसकी ध्वनि भारतीय संगीत में प्रचलित वाद्य तबला के समान होती है। तबला टच का निर्माण 30 अक्टूबर 2019 ब्रिटिश के निवासी भारतवंशी संगीतज्ञ कुलजीत भामरा एवं समूह ने किया है। इसके मुख की बनावट तबला से मिलती–जुलती है। वादन की पद्धति भी तबला के अनुरूप ही है। इस वाद्य को किसी भी सप्तक में

तबला–चट[13]

अत्यन्त सरलता से मिलाया जा सकता है। तबला के अतिरिक्त इस पर अन्य वाद्यों की ध्वनि उत्पन्न होती है जिसमें पखावज, ढोलक, खोल, गाँभ, तबला तरंग, मंजीरा–मान्दर, झाँझ इत्यादि वाद्य सम्मिलित हैं। इस का प्रयोग भारतीय संगीत में भी अपेक्षित है।[14]

विद्युत वाद्य–यंत्रों का राजस्व सम्पूर्ण रूप से भारतीय संगीत पर प्रतीत होता है क्योंकि इनमें अनेक सकारात्मकता व्याप्त हैं, जिसने संगीत को विकासात्मकता की ओर अग्रसर किया है। सर्वपप्रथम विद्युत वाद्यों के सकारात्मक प्रभाव पर विचार करेंगे।

हमारे संगीत ने वैज्ञानिक प्रगति की है। ध्वनि विस्तारक यंत्रों द्वारा आज लाखों श्रोताओं के समक्ष प्रदर्शन करना संभव हुआ है। आज तत् वाद्यों में ध्वनि–विस्तार का जो परिवर्तन आया है उसका श्रेय आधुनिकता को जाता है। विद्युत वाद्य–यंत्रों, जैसे सुनाद माला, सारंग इत्यादि का सीधा लाभ विद्यार्थी वर्ग को हुआ है जिनकी सहायता से विद्यार्थी वर्ग को रियाज में सुगमता आयी है।[15]

सितार, सन्तूर, जल–तरंग जैसे अनेक वाद्यों की ध्वनि एक ही वाद्य में उपलब्ध होने से संगीत में प्रदर्शन हेतु आर्थिक लागत में सुधार हुआ है। प्राकृतिक तत्त्वों द्वारा निर्मित वाद्यों की अपेक्षा इनके निर्माण में समय और धन दोनों की ही बचत होती है। विद्युत वाद्य–यंत्रों के प्रयोग के लिए अतिरिक्त कलाकार की आवश्यकता नहीं होती है। इसे सरलता से स्वयं ही प्रयोग किया जा सकता है। वर्तमान समय में इनका इतना अधिक प्रचार–प्रसार हो गया है कि सामान्य दुकानों पर भी यह उपलब्ध है। विद्युत वाद्य–यंत्रों का रख–रखाव भी सरल है क्योंकि इन पर पर्यावरण या ऋतु–परिवर्तन का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। विद्यार्थी वर्ग आज मात्र गुरू की शिक्षा तक सीमित नहीं अपितु इन वाद्यों का पूर्णतः लाभ ले रहा है। यह विद्युत वाद्य–यंत्र आज मोबाइल फोन में एप के रूप में भी उपलब्ध है जिसका प्रयोग न सिर्फ संगीतज्ञ या संगीत के ज्ञाता अपितु सामान्य वर्ग के व्यक्ति के लिए भी अत्यन्त सरल है। आज वैज्ञानिक प्रगति ने संगीतज्ञ को इतना सक्षम कर दिया है। संगीत की अन्य विधा सम्बन्धित कलाकारों (संगतकारों) के योगदान के बिना ही स्वयं के प्रयास से एक नयी प्रसिद्धि हासिल कर सकता है।

सभी चीजों के दो पक्ष होते हैं– एक सकारात्मक तो दूसरा नकारात्मक। विद्युत वाद्य–यंत्रों की ओर यदि हम–विचार करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि वैज्ञानिक परिवर्तनों की चमक में हम आज इतने गुम हो गये हैं कि अपने पारंपरिक संगीत की बहुमूल्य विरासत से मीलों दूर होते जा रहे हैं। यदि हम यूँ कहें कि संगीत में आई क्रांति ने हमें स्वार्थी बना दिया है तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

विद्युत वाद्य–यंत्रो की बढ़ती उपज व दिन–प्रतिदिन प्रयोग में आयी वृद्धि से हमारे मूल वाद्यों को क्षति पहुँच रही है। विद्युत वाद्य–यंत्रों के राजस्व का लोकवाद्य, लोकवाद्य निर्माताओं तथा वाद्यों के अस्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इस सर्वेक्षण हेतु मैने कुछ लोकवाद्य कलाकारों तथा वाद्य–निर्माताओं से भेंट वार्ता की। कुछ कलाकार जैसे, सुगना राम जी (रावणहत्था), उस्ताद लालु खाँ साहब (कमायचा), सिकंदर लांगा समूह (सिंधीसारंगी) इत्यादि। सभी कलाकारों ने इसके नकारात्मक प्रभाव को एक मत में स्वीकारा है। राजस्थान के सुगना राम कहते हैं ''हमारा वाद्य दिन–प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है। विद्युत वाद्यों के प्रचलन ने उनके रोजगार को हानि पहुँचाई है। उनका जीविका चलाना मुश्किल हो गया है। इस कारण अनेक कलाकार संगीत को छोड़ अन्य व्यवसायिक क्षेत्रों से जुड़ने लगे हैं।'' इस संदर्भ में विदुषी आश्विनी भिंडे कहती हैं :– Because of 'Ragini'', Lots of tanpura makers Profession is threatened more & more student are buying Ragini because they find tuning the tanpura is difficult. So, many tanpura makers are out of work. As a result of which their skill is also liked to die, after all, they need to do the tanpura tuning with a lot of skill & expertise which comes only by experience they are not out of experience how will they improve? Making instrument is also an art because which is very-very adversely affected because of the electronic instrument.[16] उस्ताद लालु खाँ साहब इस विषय में कहते हैं कि ''उनकी ही पारम्परिक धुनों को चुरा कर उन्हें विद्युत वाद्य–यंत्र की तर्ज पर पिरोकर सामान्य जनों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाता है किन्तु पारंपरिक कलाकार को नियुक्ति नहीं दी जाती है। खाँ साहब ने ऐसे राजस्थान को देखा है जहाँ 20–30 कलाकार एक साथ बैठकर एक ही वाद्य की प्रस्तुति दिया करते थे किन्तु वह आज स्वप्न हो गया है।''[17] सिकंदर लांगा जी का कहना है कि ''विगत वर्षों में संगीत जगत में

वाद्य–यंत्रों में आये परिवर्तन से वह अत्यन्त हताश हैं। ऐसे में कलाकारों को क्षण मात्रिक सुनना सभी पसन्द करते हैं किन्तु रोजगार देने वाला कोई नहीं है । वे इतने हतोत्साहित हैं कि अब किसी अन्य व्यक्ति को इस विधा से जुड़ने का सुझाव भी नहीं देना चाहते हैं।''[18]

यदि इन कलाकारों के मतों पर विचार किया जाय तो स्पष्ट है कि आज कलाकारों की स्थिति दयनीय है। वाद्यों पर अधिक लागत आने के कारण यह स्वयं ही अपने वाद्यों का निर्माण करते हैं। इलेक्ट्रॉनिक वाद्यों की प्रगति ने इन्हें अपनी वाद्य–विधा का त्याग करने को विवश कर दिया है जिससे ऐसी आशंका है कि संगीत जगत में आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही मूल वाद्यों का दर्शन कर पाएँगी और इनकी मधुर ध्वनि का श्रवण कर पाएँगी। संगीत में विगत वर्षों से कलाकारों को जो क्षति पहुँची है उसका तो हम भरण नहीं कर सकते किन्तु वर्तमान में हमें भविष्य के लिए सजग होने की आवश्यकता हैं।

निष्कर्ष :

संपूर्ण लेख का सर्वेक्षण करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विकास के मार्ग पर प्रशस्त होना आवश्यक है किन्तु अपने वाद्यों के मूल्यों को एवं कलाकारों की गरिमा को संरक्षित करना भी हमारा कर्तव्य है जिसके लिए संगीतज्ञों को अपने स्तर से भी प्रयास करने होंगे। विद्युत वाद्य–यंत्रों को अपने रियाज़ तक सीमित रखें, पारंपरिक प्रकृतिप्रदत्त वस्तुओं द्वारा निर्मित वाद्यों के कलाकारों को मंच प्रदान कर उन्हें उज्ज्वल भविष्य प्रदान करें। शैक्षणिक संस्थानों एवं संगीत–शालाओं में कलाकारों को कार्यशाला इत्यादि हेतु आमंत्रित कर वाद्यों की प्रगति का मार्ग प्रशस्त करें जिससे हमारा संगीत और भी समृद्धिशाली हो।

संदर्भ सूची :

1. गौतम, अनिता, भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग, पृ0 सं0–175
2. Modak, H.V., Automatic music instrument, page no.1
3. चित्र सं0 – 1 https://www.taalmusical.com
4. व्यास, सुनीरा कासलीवाल, भारत में विकसितइलेक्ट्रॉनिक वाद्य, पृ.सं.– 99
5. चित्र सं0 – 2 https://encrypted-tbn0.gstatics.com
6. व्यास, सुनील कासलीवाल, भारत में विकसित इलेक्ट्रॉनिक वाद्य, पृ.सं.– 100
7. चित्र सं0 – 3 https://play-lh.googleusercontent.com
8. साम्बमूर्ति, पी0, स्वर वाद्य प्रकाश
9. चित्र सं0 – 4 https://kaayanamusicals.com
10. गौतम, अनिता, भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग, पृ0 सं0– 66
11. चित्र सं0 – 5 https://m.media-amazon.com
12. H.V. Modak, Automatic music instrument] page no.1
13. चित्र सं0 – 6 https://encrypted.tbh0.gstatics.com
14. Http://keda.co.uk
15. गौतम, अनिता, भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग, पृ. सं. – 50–51
16. मित्तल, अंजलि, इलेक्ट्रॉनिक वाद्यों के प्रयोग से भारतीय संगीत के परिवर्तनात्मक स्वरूप, पृ0 सं0– 26
17. खाँ लालू, साक्षात्कार
18. लांगा सिकंदर, साक्षात्कार

राग ध्यान

साक्षी कुलश्रेष्ठ*

सारांश

प्राचीन काल में संगीत का संबंध नाट्य से था। अतः संगीत व नाट्य का मिश्रण रहने से पात्रों, दर्शकों व श्रोताओं के मध्य एक भावनात्मक संबंध बना रहता था किन्तु कुछ समय उपरान्त संगीत व नाट्य दोनों विधाओं ने स्वतंत्र रूप धारण कर लिया। दोनों विधाओं के अलग–अलग होने से गायक व श्रोता के मध्य जो संबंध था वह छिन्न–भिन्न हो गया और उनके मध्य रिक्तता–सी आ गई। अतः अब प्रश्न इस बात का था कि गायक व श्रोता किस केन्द्र–बिन्दु पर अपने चित्त को एकाग्र करें ? अतः इस समस्या के समाधान हेतु राग–ध्यान का आश्रय लिया गया। राग की भावमयता को ध्यान में रखकर ही रागों के रूप की कल्पना की गई। प्राचीन ग्रन्थों में नाद को उपासना का आधार माना गया है। उपासना में तन्मयता लाने के लिये उपास्य देव का सदैव साकार व सगुण रूप में होना अधिक उचित होता है। रागों के संबंध में भी यही प्रक्रिया क्रियाशील है। राग का मानवीय रूप कल्पित करने से उनमें तन्मय होने में सुविधा बनी रहती है।

मुख्य शब्द– *संगीत, राग, ध्यान, आध्यात्मिक, चेतना, आवाहन*

प्रविधि : *इस पत्र को द्वितीयक स्रोतों से सामग्री संकलित कर अध्ययन द्वारा प्रस्तुत किया गया है।*

ध्यान का अर्थ है 'अपने चित्त को अपने ईष्ट में एकाकार करना।' किसी भी राग के मुख्य स्वरूप के अनुसार उसकी आकृति का चिन्तन कर उसे अनुभव करना ''राग ध्यान'' है। भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन में किसी भी वस्तु अथवा मनुष्य के स्वरूप की नहीं अपितु उसकी आत्मा में निहित आध्यात्मिक चेतना को ही पूजा जाता है। इसी चेतना के फलस्वरूप किसी भी मूर्ति में अपने आराध्य देव की प्राण प्रतिष्ठा कर उनका ध्यान किया जाता है। संगीत में राग स्वयं एक चेतना है। राग स्वरों का वह संयोजन है, जो निश्चित रंजक भाव को जगाता है और अपने ही रंग में रंग लेता है।

आरम्भ से ही भारतीय संगीत आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में पल्लवित हुआ है। भक्तिकाल में संगीत के विशेष प्रयोग–स्थल मंदिर अथवा आध्यात्मिक केन्द्र ही थे, इसलिये वाग्येकारों ने देव–ध्यान, छन्द–ध्यान व ताल–ध्यान के साथ–साथ राग–ध्यानों की भी रचना की। इसके अतिरिक्त मतंग मुनि के समय (लगभग 7वीं–8वीं शताब्दी) से ही तांत्रिक प्रभाव की एक लहर उठी जिसमें बिना ध्यान के कोई भी चिन्तन पूर्ण ही नहीं होता था, इसी तांत्रिक विचारधारा से प्रभावित होकर मतंग मुनि ने तांत्रिक राग–ध्यान भी रचे, ऐसा महाराणा कुम्भा के ग्रन्थ 'संगीत राज' से अवगत होता है।

राग–ध्यान का चित्रण देव–स्वरूपों में ही ढूँढ़ा गया तथा ऋतु एवं दिन प्रहरों से इनका संबंध जोड़ा गया। राग–ध्यान के प्रमुख देव शिव, विष्णु, दुर्गा एवं काली आदि रहे हैं। शिव शांत रस, रौद्र रस तथा श्रृंगार रस के प्रतीक के रूप में तथा भगवान विष्णु श्रृंगार व शांत रस के प्रतीक स्वरूप दिखाई दिए। शिव एवं विष्णु इन दो प्रमुख देव–स्वरूपों से राग–ध्यान में भी शैव एवं वैष्णव दो सम्प्रदाय हुए और यही कारण रहा कि राग–ध्यान के दो सम्प्रदाय होने से एक ही राग के दो–दो ध्यान देखने को मिलते हैं।

राग–ध्यान के दो सम्प्रदायों के साथ–साथ शास्त्रकारों ने ध्यान के दो स्वरूप भी बताये हैं–

1. नादमयी, 2. भावमयी

नादमयी स्वरूप राग का शरीर है और भावमयी स्वरूप उस शरीर में रहने वाली आत्मा। उपास्य देव के आवाहन के लिये ध्यान किया जाता है और उस ध्यान का एक बीज–मंत्र होता है जो उस उपास्य देव के आवाहन में सहायक होता है। इसी प्रकार के देवमय स्वरूप के आवाहन के लिये ध्यान–पद्धति अपनाई गई।

राग के ध्यान से तात्पर्य उस राग की प्रकृति अथवा उसके देवमय रूप को मन में इस प्रकार चित्रित या समाहित किया जाय कि वह उसके नादमय रूप में उतर आए। जब किसी भी राग का देव–स्वरूप में ध्यान किया जाता है तो राग में शक्ति आ जाती है जिससे वह सजीव हो उठता है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि राग के प्रत्येक स्वर से

*ए–42/2, न्यू फोर्ट न्यू कॉलोनी, कोटेश्वर रोड, ग्वालियर

राग की प्रकृति ओत–प्रोत हो उठती है, तत्पश्चात् राग के नादमय रूप में उसके प्राण झंकृत हो उठते हैं। राग के रूप पर चित्त को समाहित करने की क्रिया को ही 'ध्यान' कहते हैं।

राग–ध्यान की प्रक्रिया में सर्वप्रथम गायक या वादक को राग से संबंधित रस–रूप व उसके देव–रूप पर चित्त को एकाग्र करना चाहिए, तत्पश्चात् धीमे–धीमे उस राग के स्वरों को लगाते व गुनगुनाते हुये राग के देवता का आवाहन करना चाहिये। इस क्रिया को करते समय ध्यान मानसिक न होकर वाचिक हो जाता है। राग–ध्यान के तीन रूप हैं–

1. मानसिक, 2. उपान्सु, 3. नादात्मक

इन्ही रूपों में गायक या वादक राग–ध्यान की क्रिया को सम्पन्न करता है। प्रथम रूप 'मानसिक' है, उसमें गायक या वादक राग देव को केवल चित्त में समाहित करता है। द्वितीय रूप 'उपान्सु' में राग के स्वरों को गुन–गुनाकर राग देव का आवाहन करता है और अंतिम 'नादात्मक' रूप में राग के नादमय रूप को प्रकट करता है।

प्राचीन संगीतज्ञों ने एक–एक राग–रागिनी को अलग–अलग देवी–देवता की संज्ञा दी है। इसका ध्यान करने के लिये किसी मूर्ति रूप का ध्यान होना चाहिये। इस प्रकार राग के इन स्वरूपों की कल्पना प्राचीन संगीतकारों द्वारा की गई थी। 'संगीत दर्पण' में सभी रागों के ध्यान इसी प्रकार दिये गये हैं। रागिनी का ध्यान यथायोग्य रीति से करने पर उसकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और तभी गायक उसके द्वारा कीर्ति पा सकता है। ऐसी ही धारणा गायकों द्वारा समझी गई है। पण्डित सोमनाथ व अहोबल पण्डित ने भी उत्तर की परम्परा के सुन्दर ध्यान की रचना की है। अहोबल पण्डित द्वारा रचित भैरव का ध्यान–

गंगाधर शशिकला तिलकस्त्रिनेत्रः ।
सर्पे बिभूषितनुर्गजकृतिवासः ।।
भास्वत् त्रिशूलकर एव नृमुण्डधारी ।
शुभाम्बरो जयति भैरवः आदिरागः ।।

अर्थात् गंगा जिसके मस्तक पर विराजमान है, जिसके भाल पर चन्द्रमा का तिलक लगा है, जिसका शरीर सर्पों से आच्छादित है, जिसने वस्त्रों के स्थान पर गज–चर्म धारण किया हुआ है, जिसके हाथ में चमकता हुआ त्रिशूल है, जिसके गले में मुण्डमाल है– ऐसा आदिराग भैरव का स्वरूप है।

'वृहद्देशी', 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार', 'संगीतराज' आदि में राग–ध्यान देवी–देवताओं के रूप में पाये जाते हैं। मतंग तंत्र–दर्शन से बहुत प्रभावित थे, जिसे 'वृहद्देशी' में कई जगह अनुभव किया जा सकता है। तंत्र में देवी–देवताओं के स्वरूप का वर्णन किसी विशिष्ट वाहन, आयुध आदि से युक्त विशिष्ट शक्तियों से सम्पन्न रूप में किया गया है।

प्राचीन काल में तो राग का यही स्वरूप था किन्तु मध्ययुगीन रीति–परम्परा का प्रभाव जब समस्त साहित्य जगत पर छा गया तब संगीत भी इसके प्रभाव से न बच सका। रीति–काल के काव्यों में नायक–नायिका भेद का वर्णन हुआ है, उन्हीं का रूपांकन राग–रागिनियों के चित्रों में होने लगा तथा रागिनियाँ विरह–पीड़ित नायिकाओं की भाँति चित्रित की जाने लगीं। पण्डित सोमनाथ ने तोड़ी रागिनी को प्रिय–मिलन की उत्सुकता में विचलित रागिनी के रूप में चित्रित किया है। वह श्वेत वस्त्र धारण किए हुए है, वीणा लिये हुए वन में घूम रही है और वीणा–वादन से हिरणों को आकर्षित कर रही है–

कलितविपंची विपिने ललितहरिणारूणाम्बरा हरिणी ।
ध्वलांगरामरचना मृदुवचना भूषिता तोडी ।।

इन्हीं राग–ध्यानों के आधार पर हिन्दी में भी राग–ध्यानों की रचना की गई है। लक्ष्मण कवि, हरिवल्लभ तथा महाकवि देव द्वारा रचित ध्यान इसके सुन्दरतम उदाहरण हैं। ये ध्यान भी तत्कालीन राग–रूपों को ध्यान में रखकर ही रचे गये हैं, ऐसा गुणि–जनों द्वारा माना जाता है। महर्षियों द्वारा ऐसा माना जाता है कि यदि संगीतज्ञ रागों के रूपों को मूर्तिमय रूप देना चाहता है तो उसके नादमय रूप के साथ–साथ मूर्तिमय रूप का भी चिन्तन करना होगा। इसी आधार पर रागों के ध्यान, उनके देव–रूप को प्रकट करने के लिये ही अनेक संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित हैं।

अतः हम यह कह सकते हैं कि संगीत कला में राग–ध्यान की परम्परा के अन्तर्गत संगीत, साहित्य व चित्रकला इन तीनों ही ललित कलाओं का अत्यन्त सुन्दर समन्वय हुआ है और ये तीनों ही कलाएँ राग–ध्यान के चिन्तन को क्रमशः स्थूलतर आधार एवं विस्तार प्रदान करती चली गईं। राग–ध्यान–परम्परा हमारे संगीत की अमूल्य निधि है। राग–ध्यान भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक ऐसी विशेष परम्परा है जो सम्पूर्ण विश्व के संगीत में कहीं भी देखने व सुनने को नहीं मिलती। उक्त अवधारणा के मूल में हमारी सुदृण आध्यात्मिक चेतना का भी योगदान है।

संदर्भ सूची :

1. बनर्जी, डॉ. उषा, स्वर स्पंदन
2. परांजपे, डॉ. शरदचन्द्र श्रीधर, संगीत बोध
3. मुसलगॉवकर, डॉ. विमला, भारतीय संगीत शास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन

The Psychological and Physiological Effect of Music Training

Prof. K. Sashi Kumar** **Sumedha Singh***

Abstract

Various researches and experiments have proved that music affects all kinds of living beings on this planet, including humans, animals, birds, and plants. Consistent vocal training not only trains our voice but also keeps us physically and mentally fit. It can significantly help in curing physical and emotional disabilities and can also treat psychological disabilities. Vocal training has proven beneficial in strengthening the respiratory system, which accordingly relieves various diseases associated with the lungs and throat. Music can treat other physical ailments like autism, high blood pressure, cardiovascular problems, cerebral stroke, and many more. In the present research paper, the researcher will highlight the importance of singing and listening to music and its impact on the human body.

Keywords : *Music, Vocal training, Psychological disabilities, Respiratory system, Mental and emotional disabilities.*

Methodology : *Qualitative research method has been used.*

Introduction :

Music is effective in curing psychological, physical, mental, and emotional disabilities. It plays a crucial role in assisting forensic psychiatrists, providing spatial awareness, and has proved therapeutic for patients dealing with cognitive disabilities. Besides that, it would not be incorrect to state that singing could significantly improve the life span of a human being. Ongoing years of research and development in the scientific aspect of music show a notable impact in treating diseases associated with the human body like lung sicknesses, COPD, asthma, Parkinson's disease[1], quadriplegia[2], and many others. During this lockdown phase as well, music is helping in keeping us mentally and physically fit. This research paper aims to discuss the impact of singing on different systems associated with the human body.

1. The sensory system issue influences development.
2. Paralysis of the four limbs caused due to brain stroke because of any organic cause or any road traffic accidents.

Music and Brain:

The human brain is the command center for the human nervous system. It receives signals from the body and sensory organs and outputs information to the muscles. It mainly consists of three parts which are Cerebrum, the brainstem, and the Cerebellum.

Each section is assigned different roles, which will be discussed below, along with their role related to music.

1. **Cerebrum :** The cerebrum performs functions like interpreting touch, vision and hearing, speech, emotions, learning, and fine control of movement. It is composed of the right and left hemispheres. The left hemisphere controls speaking, comprehension, arithmetic, and writing,

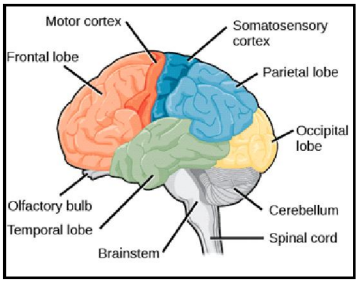

*Research Scholar, Dept. of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu university
**Supervisor, Dean & H.O.D., Dept. of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University

whereas the right hemisphere controls creativity, spatial and artistic ability, and musical skills (Mayfield Clinic.com, 2016). Each hemisphere has four types: Frontal, Parietal, Occipital, and Temporal Lobe (as shown in Figure 1).

1.1 **Frontal lobe** - This part of the cerebrum comprises the **Sulci** and **Gyri**, which have a maximum number of neurons. They are actively involved in decision-making, thinking, and planning. Hence, when one listens to music, the neurons get activated in maximum numbers and remarkably enhance the thinking capacity of a human brain

1.1.1 **Broca's Area** - Area no. 44 & 45. Broca's Area is present in the left frontal lobe. It is a motor speech area that helps in producing speech. In addition, the use of this part of the brain is to express music. According to Ayako Yonetani, a renowned violinist, 'playing a musical instrument may improve communication skills' (Kiminobu Sugaya).

1.2 **Temporal lobe** - This part is actively involved in hearing and remembering words, whereas the anterior portion of the bilateral temporal lobes plays a vital role in interpreting the melodies and chords. It gets activated when one listens to music. Therefore, whenever we hear a piece of information in musical form, the temporal lobe gets activated and helps us to memorize it faster.

1.2.1 **Wernick's Area -** Area no. 40. It lies in the left temporal lobe and comprehends functions related to language. This part of the brain is for the analysis and appreciation of music. It is difficult for anyone to learn a new language, but when we hear a song of that language; we can memorize the meaning of the words quickly, which indirectly boosts our knowledge of that particular language.

1.3. **Occipital Lobe -** Posterior part of the cerebrum interprets what we see. It plays a crucial role for musicians. When a person with non-musical background, listens to music, they use the temporal lobe, but it might be possible that when musicians listen to music, they visualize a music score with the help of this part (Kiminobu Sugaya).

1.4. **Parietal Lobe -** The Parietal lobe handles interpretation of language & words, signals from vision, hearing, motor, sensory, and memory. It is responsible for spatial and visual perception as well.

2. **Cerebellum** - Cerebellum is located at the back of the head, below the temporal and occipital lobe, and above the brainstem. It controls the movement of the body. When one hears a fast song or dances on the beats, this part helps our body to balance. Listening to music stabilizes conductivity in the Cerebellum.

3. **Limbic System** - It is involved in our feelings of emotions, pleasures, and motivations that are mostly related to survival. For example, by activating the fight-or-flight response, the limbic system triggers a physical reaction to emotional experiences, such as fear (Villines, 2019). Music helps in increasing dopamine and serotonin content in the limbic system, which leads to an increase in our happiness and pleasure. Additionally, the limbic system is involved in memory function. Listening to music increases the neurotransmitter level in the brain, resulting in an enhanced memory function as well. The three parts of the Limbic system that are involved are Amygdala, Hippocampus, and Nucleus Accumbens.

3.1 **Amygdala** - It processes and triggers emotions and also stores temporary memory. Music tends to regulate your fear, can cause you able to fight, and increases pleasure.

When we attempt to learn a specific raga or any musical tone, the capability of the Amygdala expands.

3.2 **Hippocampus** - Hippocampus creates and recovers memories, manages emotional reactions, and encourages one to explore. Atrophy of the Hippocampus causes Alzheimer's disease, which is more common in old age. Clinically, a patient suffering from this disease experiences episodic memory loss. Music helps in building neurogenesis in the hippocampus, permitting the creation of new neurons which improve memory.

3.3 **Nucleus Accumbens** - Mostly, the Nucleus accumbens is associated with delight & reward and is responsible for any addiction since it discharges the neurotransmitter dopamine. Music expands dopamine inside the Nucleus accumbens and hence, gives good results like pleasure and many more.

4. **Hypothalamus** - It links the pituitary gland in the brain. It also connects the endocrine and nervous systems and produces essential hormones and chemicals that regulate thirst, appetite, sleep, mood, pulse, body temperature, metabolism, growth. Some ragas can reduce blood pressure, pulse, and metabolism as well.

5. **Corpus Callosum** - This part enables the left and right cerebral hemispheres to communicate, which results in movement in a coordinated way. This part is far more important for musicians as they have to possess the right-hand side and the left-hand side of the brain in coordination while singing.

6. **Putamen** - Putamen is the outermost portion of the Basal Ganglia. The other layers connected to Putamen are Substantia Nigra, Globus Pallidus, Claustrum, and the Thalamus. It regulates movement and influences various types of learning by releasing GABA, Ach, and Enkephalin to perform the function concerned with Parkinson¡¦s disease. Music helps in increasing dopamine as well, which improves the condition of Parkinson's patients.

Music and Respiratory System: Respiratory changes are one of the preeminent evident changes identified because of singing. The air breathed out from the lungs is the source of strength for verbalization and singing. Periodically stable gaseous tension vibrates the vocal cords, while resonance apparatuses and articulators change the structures to cause various tones. Proficient artists with appropriate singing appear to have an improved "breathing reserve" than others. Researchers have conducted many experiments to analyze the changes within the respiratory system, which states that singing increases the **Forced vital capacity (FVC)** and **forced expiratory flow**, which is extremely good for our health. It also proves that singers have higher **Residual volume (RV)** than untrained ones, which again shows that music is beneficial for a respiratory system (Scholp, 2017).

Circulatory System: The change in the respiratory system can also explain the modification in the circulatory system because, at the time of inspiration, **Thoracicvolume** increases, **Intrathoracic pressure** decreases, **Cardiac output** decreases, and **Venous return (VR)** increases. When any healthy person forcefully breathes out or faces any problem while breathing, then his heart rate decreases because of the activation of the **Vagusnerve**. The Vagus nerve is a **parasynthetic nerve**, which is responsible for the deceleration of heart rate. Deceleration of heart rate[3], is a risk factor for **arrhythmia**[4] and **sudden cardiac death**, due to which individual dies. Singing improves the heart rate because it decreases the residual volume without affecting the inspiration rate. Due to this, the probability of arrhythmia and sudden cardiac death decreases.

3. The heart is unable to systole and diastole properly.
4. Sudden changes in heart rate.

There is another condition known as **Bradycardia**, in which the heart rate becomes slower than the average heart rate. It can be a problem if the heart is not pumping enough oxygen-rich blood to the body. This condition can be treated by listening to some hymns or songs by a music therapist regularly, which will improve the heart rate.

According to various researchers, non-singers have a higher systolic blood pressure than singers, and singers have a higher diastolic blood pressure than non-singers. Slightly higher diastolic pressure is good for health. One can say, that the blood pressure of non-singers is close to **122/80 mmHg,** whereas, in singers, the blood pressure is close to **114/82 mmHg**.

Hormonal changes while singing: A study of 210 adults, conducted over 18 months in which they recruited 108 members into the singing group to participate in community singing rehearsals, while they recruited the remaining members as the control group. Results revealed notable progress in recovery levels, quality of life, sense of connectedness, and social support among the proportion of adults in the singing group classified as depressed, whereas they observed no significant changes in the control group (Jing Sun, 2016).

Whenever a person is in a stressful or fearful situation, the pituitary gland, which resides in the brain, releases the ACTH hormone (Adrenocorticotropic hormone). This ACTH goes to the adrenal gland and stimulates the release of adrenaline or noradrenaline, which prepares a body for a fight or flight response. The increase in adrenaline hormone increases the symptom of stress level, and that can be treated together by listening to music and medication prescribed by music therapists and doctors.

People, who feel low or demotivated, have low levels of serotonin and dopamine.[5] Listening to music increases the level of serotonin & dopamine that boosts the activity of the brain, and helps in being motivated & positive.

Conclusion: The therapeutic use of singing is successful in diminishing harmful psychological and behavioral symptoms. Along with this, upgraded quality and control of respiratory muscles because of proper vocal practice improves the productivity of respiratory and circulatory responses.

Music is a universal language and hence helps us in conveying and expressing our emotions. It is a good way of advertisement, through which one can gain emotional, mental, and physical balance. Additionally, through a folk form of music, we get to know a lot about our culture and heritage. The new education policy has also recommended music as a compulsory subject because it enhances our thinking skills. These are some of the crucial points for us to recall the advantages of singing and listening to music, and these points emphatically show that it influences us physiologically and mentally.

5. Hormones present in the brain are neurotransmitters.

Reference :

- Bailey, R. (2018, March 28). The Limbic System of the Brain. Retrieved July 29, 2020, from ThoughtCo.: https://www.thoughtco.com/limbic-system-anatomy-373200
- EstherMokb, M. F. (2010, April 30). Complementary Therapies in Medicine. Retrieved July 30, 2020, from Science Direct: https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/S0965229910000233?via%3Dihub
- Jing Sun, N. B. (2016, March 1). American Journal of Health Promotion. Retrieved August 1, 2020, from SAJE journals: https://journals.sagepub.com/doi/10.1177/0890117116639573
- Kaur, N. (2012). Music for Life: Social and Psychological Objectives. New Delhi: Kanishka Publishers.
- Kiminobu Sugaya, A. Y. (n.d.). PEGASUS The

magazine of the University of Central Florida. Retrieved August 2, 2020, from UNIVERSITY OF CENTRAL FLORIDA.

- MayfieldClinic.com. (2016). Anatomy of the Brain. Mayfield Brain & Spine. Retrieved from Mayfield.
- Schaefer, H.-E. (2017, November 24). Music-Evoked Emotions¡XCurrent Studies. Retrieved August 1, 2020, from frontiers in Neuroscience Neural Technology: https://www.frontiersin.org/articles/10.3389/fnins.2017.00600/full
- Scholp, J. K. (2017). A Review of the Physiological Effects and Mechanisms. Journal of Voice, 1-6.
- Stanborough, R. J. (2020, April 1). The Benefits of Listening to Music. Retrieved August 1, 2020, from HealthLine: https://www.healthline.com/health/benefits-of-music
- Thomas Schafer, P. S. (2013, August 13). The musical brain. Retrieved August 3, 2020, from frontiers in Psychology Cognition: https://doi.org/10.3389/fpsyg.2013.00511
- Villines, Z. (2019, March 16). GoodTherapy Blog. Retrieved August 2, 2020, from Good Therapy: https://www.goodtherapy.org/blog/6-ways-the-limbic-system-impacts-physicalemotional-and-mental-health-0316197

Indian Classical Music : An antidote to the human health

Prof. Sangeeta Pandit** **Nibedita Shyam***

Abstract

Listening to the right kinds of music brings out the best in an individual helping him unleash his inner potential. Music being the most divine art helps in purifying the minds of the individuals. When it comes to Indian music, it has got a contemplative texture and potential of healing. The ragas, in Indian classical music, have got their own divine quality to heal human minds thereby healing the body. This research paper focuses on different aspect of Indian music and the different healing qualities and potential of it.

Keywords: *Music, Ragas, Indian music, therapeutic effects, healing, inner potential.*

Research methodology *: The paper aims to study the different health benefits that Indian music have and how it really heals the human body and the mind. The nature of the research is completely descriptive in nature. It is conceptual in nature that is based on the analysis of different researches that has been done. All the data has been collected from secondary sources like Journals, books, and other authentic materials.*

Introduction

One of the richest traditions of India is its classical music. Indian classical music has got two traditions- North Indian classical music and South Indian classical music.Indian classical music consists of two basic elements, the Raga, and the Tala. The raga consists of the melodic structure with the arrangement of various notes in a particular order and tala consists of the measurement of the time cycle. North Indian music generally consists of ragas and emphasizes on improvisations while south Indian ragas are composition based. Although the two distinct forms evolved much after, the origin or the roots are found in the Vedic literatures. In fact, similarity in the structural forms of music during Vedic period and today's ragas are also found. Apart from considering classical music as a form of entertainment, this art form has got huge health benefits which has been recognized earlier and in the modern time through scientifical procedures. In fact, there is both the healing of the body and the mind with the effects produced by the ragas. Obviously, the effect of music can be easily ascertained through the emotional impact upon the listeners and thereby on the minds. Although our ancient Indian musicologists had recognized the actual health benefits of these ragas and had spoken about in their different books but there were hardly any scientifical explanations of all those. The recent practices on music therapy through different process have really proved what health benefits ragas do really have.

Objectives :

To study how Indian music heals the body and the mind

To study the different health benefits of Indian music

The concept of Raga and Rasa

A 'Raga' (literally means the act of colouring or dyeing) is a melodic framework with certain musical motifs which have the ability to colour the mind and affects the emotions ofthe audiences. A raga is the heart and soul of Indian music. The Sanskrit phrase "Ranajayati iti Raga"

*Research Scholar, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University
**Professor and former HOD, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University

means that which colours the mind. The melodic beauty of a raga colours the mind of the listener in such a way that it pleases the audience and heals both the mind and the body of the listener. The way of colouring the minds of the listeners comes out through the correct rendition of the raga and invoking the rasa of that raga.

Rasa literally means the emotional aspect of a raga. The word 'rasa' means 'to taste'. This Sanskrit word is such that its significance is as diverse as its usage. This is the very essence of any art form. The word 'rasa' was very much confined in the Vedic literature and Upanishads until Bharat Muni introduced it into the realm of art. The concept of 'rasa' was first mentioned in the treatise 'Natyashastra' (a treatise of dramaturgy) of Bharat Muni written during 2-4th century B.C. He recognised rasa as the main element of any art form and he stated that the main function of any artist would be to evoke rasa in percipient. There is an extraordinary bliss or 'Ananda' of rasa is being produced by the virtue of the work of the art. The ways in which the swaras (notes) are created in a raga and are rendered are very much responsible for arousal of emotions in a listener. And, this emotional arousal gives the perceiver an experience which brings about a total identification with that artistic creation and complete annihilation of the perceiver's ego leaving behind the state of 'Ananda' or 'bliss'.

Bharata classified rasas into eight categories- Shringar (love), Raudra (furious), karuna (tragic), vibhatsa (grotesque), veer (heroic), Adbhuta (wonder), Hasya (comic), Bhayanak (terror). The idea of classifying rasas into eight different categories does not imply that it is quantitatively divisible into eight different categories but it implies that these eight rasas are various colourings of one's experience. Further he also suggested about eight static emotions or sthayi bhavas. The eight rasas actually arise from the eight sthayi bhavas. Not only this, he also suggested about thirty-three transitory emotions or sanchari bhavas that arouses in the mind of the percipient. The eight static emotions in conjunction with the transitory emotions are responsible for evoking the eight rasas. Although it is hard to classify emotions as this but the main suggestion was these are some of the extremities of emotions of the human conscience. He also elaborated about the rasas that different notes produced. But the notes in combination and the way in which the notes are delineated in a raga by an artist producesan emotional experience. The rasa theory stated by Bharat Muni and its application to swaras (notes), jati (modal patterns) and dhruvas (songs) were exclusively in the context of drama. In the later period, many authoritative treatise and musicologists have upheld the associations into Raga- rasa relation. The different bhavas and rasa are as followed:

Sthayi Bhavas	**Rasas**
Rati	Shringara
Hasa	Hasya
Shoka	karuna
Krodha	Raudra
Utsaha	veer
Bhay	Bhayanak
Juguptsa	Vibhatsa

How do Ragas heal?

One of the most important factors about the concept of ragas are, they are not only for melodic or entertainment purpose but they do have a great capacity of healing the human health. Raga Chikitsa was an ancient manuscript which involved healing through the ragas. Listening to the ragas have got a lot of health benefits be it physical or mental. In the recent days, a lot of researches on therapeutic healing or music therapy with ragas are going on. The healing process is yet very complicated. As earlier mentioned, ragas do have their own particular rasa or emotional qualities. In fact, the tonal quality of a raga creates

an emotional response within a listener. Depending on the nature of the raga, a raga can induce emotions like joy or sorrow, tensed or peace. And, that inducive quality actually heals the listener. Also, while listening to ragas certain stress releasing hormones are released which in turn heals the individual listening to the ragas. There are experimental works on peoples with depression, anxiety, stress related disorder, aphasia, amnesia, etc. being treated with Indian classical ragas. In fact, ragas can also heal neurological disorders too. Listening to ragas have also proved beneficial in increasing cognitive abilities, enhancing attention and memory etc. According to the Indian shastras, there are 72 important nerves in the human body. Based on this, pt. Vyankatmukhi (17th century Carnatic musicologist) formulated the system of 72 melakartas in Carnatic music. According to the ancient Indian text, Swara shastra, 72 melakarta ragas control the 72 important nerves in the body. It is believed that if one sings adhering to the exact form or rules of the raga then, the raga could affect the particular nerves in the body. Further, in North Indian classical music there are particular times in which the exact ragas are being played or sung. Ragas are being created in such a way that they closely relate to different parts of the day. As it is already known that our music has got its roots in the Vedic period so, the healing therapy of Ayurveda can also have some connection in regard to this. Ayurveda recognizes five elements in which all the manifested beings of the Earth are made up. These are- air, water, fire, earth, ether (space). It says that human body is having three principle doshas, known as tri doshas which are actually a mixture of these five elements. They are- vata, pitta, kapha. These are the physiological fluids in our body which work in a cyclical manner in the diurnal cycle. A proper balance of these three fluids helps to keep our body in order. Also, a reaction of these three differs in the seasonal cycles. Listening to the ragas, in their proper time can help in maintaining a proper balance of these three fluids and keep our body in order.

Ragas and their effects

Music therapy through ragas have proven very effective during the last few years. But it is to be understood that healing through ragas is only a complimentary therapy that can be used in combination with other treatments. With the passage of time, diseases have changed and their treatments too. Despite being an ancient practice, raga music therapy is still in infancy. In an article published in Indian journal of surgery, it says that on exposure to raga Ananda Bhairavi there is a positive effect on postoperative pain management. Similarly other studies have also shown effects of raga therapy in combination with other allied treatments. Raga therapy is proven much more effective in psychological disorders, cognitive and psychomotor disorders. The other conditions in which it has been found to reduce discomfort and alleviate symptoms are diabetes, hypertension, Post traumatic stress disorder (PSTD) Alzheimer's or Parkinson's diseases and many others. Here is a list of few ragas which shows their effects:

Raga Darbari- A north Indian classical raga known to have been created by Miyan tansen in the court of Akbar. It helps in releasing tension. Also, it has been found in increasing attention of listeners.

Raga Todi- This is a morning raga. It has been known to bring down the blood pressure levels and thus decreasing cardiovascular disorders.

Raag Bhairavi- provides relief to severe cold, phlegm, sinus, toothache.

Raag Puriya Dhanashree- Prevents acidity and evokes a sweet, deep and stable mind.

Raag Malhar- This raag is useful in the treatment of asthma and sunstroke.

Raag Bageshree- helps in insomnia, deep sleep. Also used in the treatment of diabetes and hypertension.

Raag Mohana- A Carnatic raga useful for the treatment of migraines.

Raag Bhupali- Helps in improving memory scores.

Raag Hindol and Marwa- These ragas are useful in blood purification.

Raga Malkauns and Asavari- Helps in curing low blood pressure.

Conclusion

Indian classical music is one of the most complementary therapies used nowadays. Not only in India, it is being practiced outside India also. The therapeutic effect of this is gaining popularity among the masses and benefitting many peoples around the world. Peoples practicing Indian classical music have admitted that it adds a different quality to life. There is a sense of subjective well-being. However, researches in the field of music therapy are still needed as there are so many benefits yet to be discovered by the innermost potentials of Indian music.

References:

Krout RE. Music listening to facilitate relaxation and promote wellness: Integrated aspects of our neurophysiological responses to music. The arts in Psychotherapy. 2007 Dec 31;34(2):134-41.

Hanser, S.B., Mandel, S.E. (2005). The effects of music therapy in cardiac healthcare. Cardiol Rev., 13(1),18-23.

Kulkarni, G.B., Chittapur, D. (2017). Effects of long term Indian classical Raga Therapy in reduction of Blood Pressure among chronic hypertensive patients. APIK Journal of Internal Medicine,5, (3),10-14.

Brandes, V., Thayer, J.F., Columbus, O.H., Joachim, E. (2008). Fischer. Effect of receptive music therapy on heart rate variability in hypertensive patients. Psychosomatic Medicine, 70(3), A-18-19.

T.V. Sairam, "Melody and Rhythm: 'Indianness in Indian Music and Music Therapy", Music Therapy Today, vol. VII, no. 4, pp. 876-891, 2006.

Sarkar, Joyanta, Biswas Utpal, An Effects of Raga Therapy on Our Human Body, International Journal of Humanities and Social Science Research, 1(1) A, 40-43.

Silverman, MJ. The influence of music on the symptoms of psychosis: A meta-analysis. Journal of Music Therapy, 2003; 40(1), 27-40.

Sairam, T.V. (2006). Music Therapy: Designing Training Methods for the Mentally Retarded (MR) Children, in Sairam, T.V. (Ed.) Music Therapy: The Sacred and the Profane. (pp.74-78).

Bekiroglu, T., Ovayolua, N., Ergünb, Y., Ekerbicer, H.C. (2013). Effect of Turkish classical music on blood pressure: A randomized controlled trial in hypertensive elderly patients. Complementary Therapies in Medicine, 21, 147-154.

उपशास्त्रीय गायन विधा 'ठुमरी और दादरा' में बंदिशों का महत्व – एक संक्षिप्त अध्ययन

प्रो. शारदा वेलंकर** **अमरीष प्रजापति***

सारांश

भारतीय संगीत मेलॉडी–प्रधान है और यही रसात्मक सौन्दर्य में वृद्धि करता है। इस सौन्दर्य में अनेक तत्त्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सौन्दर्यशास्त्र के सभी मूलभूत तत्वों पर बल देना आवश्यक है। इन तत्वों में बंदिशों का उल्लेख करना अति आवश्यक है क्योंकि बंदिश शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत का एक प्रमुख अंग है और केवल बंदिश के माध्यम से शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत को समृद्धशाली परंपरा से आगे आने वाली पीढ़ी–दर–पीढ़ी तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

ठुमरी एवं दादरा में बंदिशों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। अधिकतर श्रृंगार–रसपरक बंदिशें इस विधा में गायी व बजायी जाती हैं। ठुमरी में कला पक्ष अत्यंत प्रबल होता है। ठुमरी की भाषा, उसके विषय, उसकी प्रकृति के अनुकूल उस प्रदेश के लोक–भावों में निहित होती है, जहाँ ठुमरी उपजी होती है। श्रृंगार रस–प्रधान व लोक संगीत के अत्यंत निकट होने के कारण ठुमरी के लिए लोक धुनों वाले राग बहुत समीप होते हैं, जैसे– पीलू, खमाज, भैरवी, देश, तिलंग, गारा, सिंधु भैरवी, झिंझोटी, किरवानी, पहाड़ी इत्यादि।

मुख्य शब्द– *ठुमरी, दादरा, शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, गायन–शैलियाँ*

शोध–माध्यम– *द्वितीयक स्रोतों से सामग्री संकलन कर शोध–पत्र तैयार किया गया है ।*

उत्तर भारत में प्रचलित उपशास्त्रीय, शास्त्रीय गायन–शैलियों में ठुमरी एवं दादरा का अति विशिष्ठ स्थान है। दादरा गायन–शैली ठुमरी में निहित है। वास्तविक रूप में यह ठुमरी विधा की उपशैली है। ठुमरी और दादरा में इतना अधिक सम्बन्ध है कि दादरा का नाम लेते ही ठुमरी का स्वरुप मस्तिष्क में आ जाता है। इसके विषय में विख्यात ठुमरी गायिका नैना देवी ने अपने एक आकाशवाणी प्रसारण में कहा था कि ठुमरी और दादरा में वही संबंध है जो बड़ा ख्याल और छोटा ख्याल में है। ऐसा ही विचार इलाहाबाद के वरिष्ठ संगीतज्ञ स्व. पं. शान्ताराम बी. कशालकर और शास्त्रज्ञ प्रो. हरीश चन्द्र श्रीवास्तव का भी है। Dadra bears a close resemblance to the Thumari. The text are as amorous as those of Thumris. The major differences is that Dadra have more than one antara and are in Dadra Tala. Singers usually sing a Dadra after a Thumari.

ठुमरी के विषय में सामान्यतः लोगों की धारणा है कि 19वीं सदी में अवध के शासक वाजिद अली शाह ठुमरी के अन्वेषक थे जो प्रसिद्ध कवि, नर्तक, नाट्यकार और वाग्गेयकार थे।

डॉ. शत्रुघ्न शुक्ल के अनुसार ''एक विशेष प्रकार की गायन–विधा के लिए ठुमरी शब्द का प्रयोग या व्यवहार हिन्दुस्तानी संगीत में किया गया है।'' मूलतः शब्द हिंदी भाषा का माना जाता है क्योंकि ठुमरी का उद्‌गम, विकास एवं प्रसार हिंदी क्षेत्र में हुआ है। सभी प्राचीन रचनाएँ लगभग हिंदी भाषा में ही प्राप्त होती हैं फिर भी यह शब्द थोड़े–बहुत रूपांतर के साथ उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं में प्रचलित हैं। जैसे– गुजराती में ठुमरी, सिन्धी में ठुमिरी, मराठी में ठुवरी, बंगाली में ठुमी, नेपाली में ठुम्री आदि।

'ठुमरी' शब्द एक ऐसे लघु आकर के गीत की ओर इंगित करता है जो नृत्य और उसके सुकुमार भावों से संबद्ध है। ''It is a small song with two movements not having more than one Antara the other meaning given to the tern is rumor or gossip.''

''The word Thumari is derived from Thumak or dances and Thumari is a lyrical rhythmic style of music which often accompanies kathak , the north Indian Classical Dance which was born in the 19 century in the court of Avadh.''

ललित कलाओं में संगीत कला को सर्वश्रेष्ठ स्थान

*शोध–छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, का. हि. विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रोफेसर, गायन विभाग,संगीत एवं मंच कला संकाय, का. हि. विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्राप्त है। संगीत का आधार स्वर और लय है जिसके माध्यम से कोई भी कलाकार अपने सूक्ष्मतम भावों को अभिव्यक्त करता है। जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म की उपासना सर्वधारण के लिए सम्भव न होने के कारण भगवान को सहज रूप में जानने और पहचानने के लिए सगुण ब्रह्म की उपासना का मार्ग अपनाया गया, ठीक उसी प्रकार स्वर और लय से संतुलित संगीत का आनन्द प्राप्त करने के लिए संगीत में सगुण ब्रह्म के समान रचनाओं की सृष्टी की गयी होगी। यदि संगीत रचना रहित है तो विद्वान ही नहीं बल्कि आम जनमानस को भी पूर्ण रूप से आनन्द प्रदान नहीं करा सकता अर्थात् संगीत के सहज आनन्द की प्राप्ति मूल रूप से रचना या बंदिश पर निर्भर करती है। यही कारण है कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक लोक, शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय में ही नहीं बल्कि दुनिया के प्रत्येक देश के संगीत में रचनाओं का किसी–न–किसी अर्थ या रूप में प्रयोग हुआ है। भारतीय संगीत का इतिहास विभिन्न प्रकार की रचनाओं से भरा पड़ा है जिसमें वैदिक काल में सामगान–स्तुतिगान, प्राचीन काल में ध्रुवागान–जातिगान गीतिगान, मध्यकाल में ध्रुपद–धमार तथा आधुनिक काल में ख्याल–ठुमरी–दादरा–टप्पा–तराना आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शास्त्रों के अनुसार, प्राचीन काल में रचना को गीत, मध्यकाल में प्रबंध और आधुनिक काल में बंदिश के नाम से संबोधित किया गया है। आदिकाल से ही भारतीय संगीत में बंदिशों का अत्यंत महत्त्व रहा है। जिस प्रकार वाणी के बिना मनुष्य मूक है उसी प्रकार बंदिश रहित संगीत का अस्तित्व भी लगभग मूक मनुष्य के समान हो जाता है। संगीत को पूर्णता प्रदान करने के लिए बंदिश एक आवश्यक अंग है अर्थात् संगीत–रूपी शरीर में प्राणवायु के समान है।

किसी कला का मुख्य उद्देश्य होता है– पूर्ण भावाभिव्यक्ति और कोई भी कला रूप या आकार के बिना परिलक्षित नहीं हो सकती। सम्भवतः इसी कारण भारतीय संगीत में बंदिशों (रचनाओं) की सृष्टि हुई होगी। भारतीय संगीत में परम्परागत बंदिशों को आधार स्तम्भ कहा गया है। बंदिश संगीत को आधार अथवा एक सतह प्रदान करती है जिसके आधार पर कोई भी कलाकार अपनी पूर्ण भावाभिव्यक्ति प्रकट करने में सफल सिद्ध होता है।

मध्यकाल को भारतीय संगीत का स्वर्णकाल कहा जाता है। इस काल में विभिन्न विषयों पर अनेक सौन्दर्यमय बंदिशों का सृजन हुआ जो विभिन्न रसों एवं भावों पर आधारित थी। आधुनिक काल में जब ठुमरी का प्रादुर्भाव हुआ तब कलाकारों द्वारा ईश्वर–भक्ति, राधा–कृष्ण, सांसारिक परम्पराएँ, प्रकृति–वर्णन आदि अनेक प्रसंगों को लेकर कलाकारों द्वारा बंदिशों की रचनाएँ की गयीं। ठुमरी और दादरा की बंदिशों के माध्यम से कलाकार अपनी भावाभिव्यक्ति सहज रूप से कर सकता है तथा कई प्रकार के भावों को बोलों के अनुसार सुसज्जित करने में सफल होता है क्योंकि इसमें कहन अथवा बोल–बनाव की अपार सम्भावनाएँ दिखाई देती हैं। ठुमरी में कहीं त्वरित गति को लेकर चमत्कारपूर्ण बनाने की चेष्टा की जाती है तो कहीं शब्दों में स्थिरता, रूठना, व्यंग्य करना, या तीव्रता से तर्क देना सम्मिलित होता है। ठुमरी और दादरा की बंदिशों में कल्पनाशीलता और सृजनात्मकता की अपार संभावनाएँ होती हैं जो कलाकार की सोच और सृजन पर निर्भर होती है।

विद्वानों द्वारा माना गया है कि ठुमरी का विकास लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के दरबार से हुआ। वाजिद अली शाह स्वयं भी एक उत्तम ठुमरी गायक और वाग्गेयकार थे। इन्होनें ''अख्तर पिया'' के नाम से अनेक रचनाएँ की। राग भैरवी में प्रसिद्ध ठुमरी ''बाबुल मोरा नैहर छूटो जाय'' इन्हीं की रचना है। इनके द्वारा बनाई गयी अन्य ठुमरियाँ इस प्रकार हैं जो ब्रज भाषा में हैं–

राग – काफी, ताल – अद्धाताल
स्थाई– मोरो आली री पनियाँ कैसे जाऊ री
सखी री नागर नटखट मुकुटधारी,
मोसो करत ढिठाई बंसीधर जमुना तट।
अंतरा – उझक–उझक और उचक–उचक झाँके री
तट पनघट बंसीधर जमुनातट
पनियाँ कैसे लाऊँ री।।

* * *

स्थाई– उरझि रहें नैना जीवन पर तुम्हारे
अंतरा– तिरछी नजरियाँ घायल करि डारो,
नाम रखो के अख्तर प्यारे।।

आरम्भ से ही ठुमरी का सम्बन्ध नृत्य के साथ प्रस्तुत की जाने वाली विधा से रहा है। यह बात और है कि उस समय उसका स्वरूप भिन्न था। अतः ठुमरी श्रृंगार रस–प्रधान गीत विधा है और मध्य काल में यह सुन्दर एवं सुमधुर स्वरूप धारण कर चुकी थी। इस तथ्य के प्रमाण

मध्यकाल में लिखे गये ग्रन्थों एवं अनेक साक्ष्यों से प्राप्त होते हैं। इनमें फकीरउल्ला कृत 'राग दर्पण' एवं मिर्जा खां कृत 'तोहफतुलहिन्द' का प्रमुख स्थान है।

जाति–गायन, प्रबंध–गायन के विलुप्त हो जाने के बाद ध्रुपद और ख्याल–गायन के बीच मुगल काल में शासकों की श्रृंगारिक व विलास–प्रधान रूचि के कारण जिन गायन शैलियों को आश्रय मिला उनमें ठुमरी का महत्वपूर्ण स्थान है। मध्ययुग में भक्त कवियों द्वारा जन–बोली में कुछ पद गायक–गायिकाओं द्वारा ठुमरी–शैली में गाये जाने के कारण आगे चलकर यह ठुमरी के रूप में भी मान्य हो गया । मध्ययुगीन अष्टछापीय कवि कुम्भनदास जी का एक पद इस प्रकार है–

''सखी री बूंद अचानक लागी/सोवत दूती मदनामद–माती/घन गरज्यो तब जागी/दादुर मोर पपैया बोले,/कोमल शब्द सुहागी।/'कुम्भनदास' लाल गिरधर सों,/जाय मिली बड़भागी।।''

मध्ययुगीन कृष्णभक्त कवियित्री मीराबाई का निम्नलिखित पद राग पीलू में एक पुरानी ठुमरी के रूप में प्रसिद्ध है–

''पपैया रे पिव की बोली न बोल/सुन पावेली बिरहणी रे/धारी राखेली पांख मरोर''

ठुमरी की बंदिशों में प्रेम, अनुराग, हर्ष, मान, आशा–निराशा, शोक इत्यादि स्थायी भावों की अभिव्यक्ति पाई जाती है– वियोग–श्रृंगारपरक ठुमरियों के कुछ उदहारण इस प्रकार हैं–

राग–काफी (तीनताल)

स्थाई– मितवा माने ना है।

अंतरा– नित जन, निपट निज पग, धरत छैल, ऐसो बिकट
मग रोके, रोके गैल, कर बिनती,
सुध–बुध बिसर गई।।''

राग–खमाज (तीनताल)

स्थाई– कोयलिया कूक सुनावे सखी री
मोहे बिरहा सतावे पिया बिन कछु न सुहावे
जिस अंधियारी कारी बिजुरी चमक
जिया मोरा डर पावे।।

अंतरा– इतनी विनती मोरी कहियो जा उन सों
उन बिन जिया मोरा निकसो जात अब
उमगे जोवन पर मोरा सैंया घर न आए।।

जो ठुमरियाँ लौकिक प्रेम को प्रदर्शित करती हैं उनमें सांसारिक स्त्री–पुरुष को नायक एवं नायिका माना जाता है–

स्थायी– समझ न पाये बतियाँ सैयां रे
तुम बिन कासे कहे सारी रतियाँ।

अंतरा– जाय बसे परदेश सजनवा रे
एक न मानी हारी मोरी बतियाँ।।

जिन ठुमरियों में सूफी रहस्य, इश्वरीय प्रेम का वर्णन होता है उनकी भाषा सुनने में तो साधारण प्रतीत होती है, परन्तु उनका गूढ़ अर्थ अलौकिक इश्वरीय प्रेम की ओर इंगित करता है। इसलिए इस प्रकार की ठुमरियों के दो अर्थ होते है जैसे–

राग–भैरवी

स्थायी – बाबुल मोरा नैहर छूटो जाय

अंतरा – चार कहार मिल डोलिया मगावे
अपना बेगाना छूटोहि जाय।।

इस ठुमरी में एक ओर विवाह के पश्चात् नव वधू का पिता के घर से बिछड़ने का दुःख है और चार कहारों द्वारा उठाई जाने वाली डोली में बैठकर पति के घर जाने का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर इसके गूढ़ अर्थ में मनुष्य की मृत्यु के उपरांत संसार से बिछड़ने और चार व्यक्तियों के द्वारा कंधों पर रखी अर्थी द्वारा शव की श्मशान–यात्रा और आत्मा के परमात्मा से मिलने की अभिव्यक्ति का वर्णन है।

भक्ति–मार्गीय प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए ठुमरियों में नायक के रूप में कृष्ण और नायिका के रूप में राधा एवं गोपियों को प्रतिष्ठित किया जाता है, जैसे–

राग–खमाज (तीनताल)

स्थायी– कान्हा न कर मोसे बरजोरी

अंतरा – मैं तो जाती हूँ मानूं न कहना तोरा
गारी दूंगी तोको मैं तो लाख न करो री।

ऋतु–वर्णन से सम्बंधित ठुमरी रचनाएँ भी मिलती हैं। उदहारणस्वरूप बसंत ऋतु का मनमोहक वर्णन इस ठुमरी में परिलक्षित है–

राग – मालकौंस

स्थायी– आई बसंत बहार
भँवरा गुंजत डार–डार गुजार रे

अंतरा– नव पल्लव लतान द्रुम बेलारियाँ भांति–भांति उमंग रही

मद यौवन रस सों ढंग–ढंग सों रही आली
ललन पिया शोभा देखी वारी–वारी
विधि विचार ऋतु सृंगार।।

दादरा एक श्रृंगार–रस प्रधान गायन–शैली है। प्रेम, व्यवहार, प्रेमियों के उलाहने और शिकायतें, विरह, वेदना, रूप के प्रति आसक्ति, नाज–नखरे आदि दादरा गायन–शैली के प्रमुख विषय रहे हैं। कृष्ण राधिका से सम्बन्ध रखने वाली प्रेम–लीलाओं को भी विषय–वस्तु बनाया जाता है। भावपूर्ण स्वर–संगतियों और मुर्की एवं खटकों के प्रयोग से रसमय वातावरण की सृष्टि होती है।

राग–पीलू (दादरा)

स्थायी– सांवरिया प्यारा रे मोरी गुंइया।

अंतरा– वो तो ठाडे कदम की छइयां
धूप का मारा प्यारा रे मोरी गुइयां
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कटी में सोहे बाँसुरिया
जुलुम कर डाला, प्यारा रे मोरी गुइयां।।
जमुना के तट पे बंसी बजावे नाचत झूम–झूम छइयां
जुलुम कर डाला, प्यारा रे मोरी गुइयां।।

राग–शिवरंजनी (ताल दादरा)

स्थायी– मोरी टूट गयी अब आस, मोर बलमुवा नाहि आये।

अंतरा– जपते–जपते प्रीतम–प्रीतम, बीत गये कितने ही मौसम
मोहे प्रीत न आई रास।
ऐरी सखी जब सावन आये, मैं जानू मोरे प्रीतम आये
पर ओ तो आये सौतन पास।।

दादरा नाम की संज्ञा से यह गीत दादरा ताल में ही निबद्ध होना चाहिए, ऐसा प्रतीत होता है परन्तु यह नियम नहीं है। अनेक दादरा गीत दादरा ताल में निबद्ध पाए जाते हैं तो कुछ दादरा गीत दादरा ताल में निबद्ध नहीं भी पाए जाते हैं। कुछ दादरा गीत कहरवा जैसे आठ मात्रा के तालों या चांचर (मध्यकाल में दीपचंदी ताल के बोल) में भी निबद्ध पाए जाते हैं। ओ. गोस्वामी का कथन है कि कभी–कभी यह भी कहा जाता है कि ठुमरी का उद्‌गम दादरा से हुआ है क्योंकि दादरा ताल ठुमरी की ताल से काफी प्राचीन है। इस गायन–शैली की रचना अधिकतर चंचल प्रकति के रागों, साधारणतया पहाड़ी, खमाज, भैरवी, पीलू, खम्बावती, गारा, काफी, मांड, देस, सोरठ, झिंझोटी आदि जैसे रागों में प्राप्त होती है। उपर्युक्त रागों के चलन, प्रकृति एवं रसभाव की दृष्टि से विचार किया जाय तो यह उचित ही प्रतीत होता है।

दादरा के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण सर्वेक्षण और है कि ठुमरी विशेषज्ञ ही इसे अधिकतर गाते हैं। आधुनिक युग में दादरा जिस विधि से गाया जाता है उसको भी ठुमरी ही कहा जाता है। उस्ताद बड़े गुलाम अली खान की गाई प्रसिद्ध रचना ''का करूँ सजनी आये न बालम'' दादरा का ही एक प्रकार है लेकिन उसको ठुमरी ही कहा जाता है क्योंकि पंजाब अंग के ठुमरी गायक इन दोनों में कोई भेद नहीं मानते। वे इन सभी को ठुमरी ही कहते हैं। प्रस्तुत है राग मिश्र गारा में यह दादरा–

स्थायी– आन बान जिया में लागी प्यारी चितचोर
जिया में बसी कैसे फंसी।

अंतरा– परन लागी झुक के पैंया
तुम हो मेहरबान सैंया
तुम बिन मोहे कल न परे तुम्हरे कारन जागी।।
(रचनाकार गौहर जान)

राग–मिश्र खमाज (दादरा)

स्थायी– क्या जादू डाला, दीवाना किये श्याम।

अंतरा– उस गलियन आना रे जाना
हमसे करत बहाना।। (गायिका विदुषी गिरिजा देवी)

इस विधा के गायन में बड़े गुलाम अली खान एवं उनके अनुज उस्ताद बरकत अली खान और सिद्धेश्वरी देवी, रसूलन बाई, बेगम अख्तर, विदुषी नैना देवी, सिद्धेश्वरी देवी, निर्मला अरुण, लक्ष्मी शंकर, गिरजा देवी, सविता देवी, बागेश्री देवी आदि ख्याति प्राप्त गायक–गायिकाओं के नाम हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपशास्त्रीय विधाओं में, ठुमरी एवं दादरा इन दोनों में, बन्दिशों का अति विशिष्ट स्थान है–

निष्कर्ष– प्रत्येक ललित कला में सुन्दर रचना की कामना करना प्रारंभ से ही कलाकारों और कला पारखियों का स्वाभाविक गुण–धर्म रहा है। वास्तु जैसी स्थूल कला से लेकर संगीत जैसी सूक्ष्म ललित कला के निरंतर विकास के लिए श्रेष्ठ रचना की कामना ही प्रेरणा–श्रोत का कार्य करती रही है । इसी के परिणाम स्वरूप संगीत कला में सुव्यवस्थित, सुनियोजित सार्थक व चित्ताकर्षक रचनाओं को महत्त्व व सम्मान मिलता रहा है। वैदिक मंत्रों के उच्चारण से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय संगीत का विकास विभिन्न पड़ावों से गुजरा है जिसमें समयानुसार अनेक प्रकार के सांगीतिक परिवर्त्तन भारतीय संगीत से

जुड़ते रहें परन्तु आरम्भ से लेकर आज तक बंदिश की महत्ता ज्यों–की–त्यों बनी हुयी है। ठुमरी और दादरा भारतीय शास्त्रीय संगीत की समृध्दशाली गायन–शैली हैं। इसमें रस, रंग और भाव की प्रधानता अधिक मात्रा में देखने को मिलती है अर्थात् इसमें राग की शुद्धता की तुलना में भाव–सौन्दर्य को ज्यादा महत्वपूर्ण माना गया है। यह विविध भावों को प्रकट करने वाली शैली है। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता अधिक होती है । साथ ही, करुण, भक्ति आदि रसों का प्रभाव भी देखने को मिलता है तथा यह रागों के मिश्रण की शैली है। इसमें एक राग से दूसरे राग में गमन करने की भी छूट होती है। बंदिशों में बहुधा राधा–कृष्ण के प्रेमाख्यान से विषय लिए जाते हैं। इसमें शब्द कम होते हैं, किन्तु बोल–बनाव व शब्दों के भाव द्वारा बन्दिश का अर्थ प्रकट किया जाता है। बन्दिशों के साहित्य को आधार बनाकर ही इन दोनों शैलियों में रागानुरूप बोल–व बढ़त की जाती है जिससे प्रस्तोता और श्रोता दोनों अन्तर्लीन हो जाते हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. पोहनकर, अंजलि– सफर ठुमरी गायकी का, पृष्ठ 30, 33, 34, 64
2. शुक्ल, डॉ. शत्रुघ्न– ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ पृष्ठ 48, 55, 170, 277
3. शर्मा, प्रो. स्वतंत्र– सौन्दर्य, रस एवं संगीत, पृष्ठ 124, 130, 132
4. सिन्हा, डॉ. ज्योति, बनारसी ठुमरी की परम्परा में ठुमरी गायिकाओं की चुनौतियाँ एवं उपलब्धियाँ (19वीं–20वीं सदी), पृष्ठ 1, 10, 17
5. सहगल, डॉ. सुधा एवं डॉ. मुक्ता– बेगम अख्तर व उपशास्त्रीय संगीत, पृष्ठ 55, 63, 64, 67

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

उपशास्त्रीय संगीत में बनारस की कतिपय महिला कलाकारों का योगदान

कुमारी सुरुचि*

शोध सार

काशी में संगीत एवं अन्य कलाएँ प्राकृतिक वरदान स्वरुप आदिकाल से ही विद्यमान हैं। यहाँ की कलाओं ने काफी उतार–चढ़ाव देखे हैं। समय का एक कालखंड ऐसा था जब आक्रान्ताओं ने यहाँ की कला को नष्ट करना चाहा परन्तु भारत देश की यह विशेषता रही है कि उसके रीति–रिवाज़ एवं कला की लौ कहीं–न–कहीं जलती ही रही है एवं समय के प्रसार के साथ उसमें वृद्धि भी होती रही, संगीत के परिप्रेक्ष्य में भी यह बात लागू होती है। धीरे–धीरे संगीत कई कारणों से विभिन्न घरानों में विभाजित होता चला गया तथा राजा–महाराजाओं को प्रसन्न करने हेतु यह कला रियासतों से होते–होते मात्र मनोरंजन की वस्तु बन गयी और गणिकाओं के द्वार तक पहुँच गयी। इस काल खंड में सभ्य घरों की महिलाओं को संगीत सीखने की आज्ञा नहीं होती थी, संगीत को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा था परन्तु समय अंतराल के बाद समाज की परवाह न करते हुए संगीत को बनारस की कई प्रतिष्ठित महिला कलाकारों ने समाज में उच्च स्थान दिलवाया एवं भविष्य की महिला कलाकारों हेतु संगीत के मार्ग को प्रशस्त किया।

मुख्य शब्द– *बनारस, उपशास्त्रीय संगीत, महिला कलाकार, गायन–शैली।*

प्रविधि– *इस लेख के लिए द्वितीयक स्रोतों से सामग्री संकलित की गई है ।*

विषय प्रवेश– मानव–मन की कल्पनाओं को कलाओं द्वारा सार्थकता प्रदान करना एवं अपनी सूझ–बूझ द्वारा उन कल्पनाओं में नित्य नवीनता लाना किसी भी कला को जीवंत बना देता है। हमारी भारतीय परम्परा में वात्स्यायन द्वारा बताये गये 64 कलाओं में से 5 कलाएँ प्रमुख मानी गयी हैं जिनमें संगीतकला, चित्रकला, काव्य कला, मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला है। इन सारी ही कलाओं में कल्पना और उन कल्पनाओं में नवीनता की आवश्यकता होती ही है।

संगीत एक ऐसी कला है जहाँ मनुष्य अपनी भावनाओं को आसानी से एक–दूसरे तक प्रेषित कर सकता है। हमारे शास्त्रों में भी बताया गया है कि ईश्वर को पाने एवं उनसे साक्षात्कार का परम साधन संगीतोपसना है। बनारस के कलाकारों ने इन गुणों को अवश्य ही समझा तथा अपने संगीत में समाविष्ट किया तभी यहाँ के कलाकारों की गायकी में एक अलग विशेषता देखने–सुनने में आती है।

उपशास्त्रीय संगीत का भावार्थ– उप–शास्त्रीय यानी शास्त्रीयता के समीप। 'गीतंवाद्यंतथानृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते' अर्थात् संगीत में गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों का समावेश होता है। संगीत की परिभाषा को पूर्ण करने के लिये इन तीनों ही विधाओं की नितांत आवश्यकता होती है। ये तीनों एक–दूसरे से परस्पर इतने सम्बंधित हैं कि तीनों में से किसी एक की भी कमी संगीत की परिभाषा को पूर्णता नहीं दिला सकता। "उपशास्त्रीय संगीत का अस्तित्व शास्त्रीय संगीत के स्रोत से निःसृत हुआ है। शास्त्रीय अर्थात् शास्त्रोक्त (नियम परिधिबद्ध), उपशास्त्रीय संगीत अर्थात् ऐसा संगीत जो शास्त्र के निकट रहे तथा जिसमें शास्त्र पालन कटिबद्धता से न होकर शिथिलता से होता हो। इस संगीत में नियमेत्तर प्रयोगों की यदा–कदा सम्भावना रहती है।"[1]

उपशास्त्रीय संगीत चूँकि चंचल प्रकृति का माना जाता है इसलिए इसमें चंचल प्रकृति के रागों की प्रधानता होती है परन्तु इसकी गायकी बहुत आसान भी नहीं होती । यह भी गुरुमुखी विद्या है और इसके लिए विशेष रियाज की आवश्यकता होती है। "उपशास्त्रीय संगीत में शास्त्रीय पक्ष (राग शुद्धता) से अधिक भाव–सौन्दर्य एवं रस माधुर्य को प्रधानता दी जाती है। इसमें पद के साहित्यिक सौन्दर्य को आधार मानकर उसके भाव पक्ष पर बल दिया जाता है।"[2]

बनारस की महत्ता– सम्पूर्ण विश्व में सबसे प्राचीन नगरी होने के साथ ही सांगीतिक एवं सांस्कृतिक नगरी होने का भी गौरव इस काशी को प्राप्त है। इसे बनारस या वाराणसी के नाम से भी जाना जाता है। देवाधिदेव महेश्वर की इस पुण्य भूमि

*शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

में जन्म लेना या इसे अपनी कार्यस्थली/साधनास्थली के रूप में चुनना और अंततः यहीं मृत्यु को प्राप्त हो जाना–सब ईश्वर–कृपा एवं अपने पूर्व–जन्म के संस्कारों द्वारा ही संभव है। ऐसा विदित होता है कि जितना चीर–प्राचीन इस धरा पर काशी का अस्तित्व है उतना ही प्राचीन यहाँ का संगीत भी है। बनारस के प्रतिनिधि देवता के रूप में भगवान् शिव की मान्यता है तथा उनका डमरू संगीत का प्रतीक है। भगवान् शिव के रौद्र–रूप में नृत्य का वर्णन कई ग्रंथों में प्राप्त होता है। बनारस के इतिहास में आज तक एक–से–बढ़कर–एक कलाकार हुए जिन्होंने अपनी साधना से इस पुण्य भूमि को सर्वोच्च स्थान दिलाने में अपना अहम् योगदान दिया है। विशेष कर यहाँ की महिला कलाकारों ने संगीत जगत को बहुत बड़ा योगदान दिया है। "काशी के प्राचीन इतिहास के अवलोकन से यह ज्ञात होता है, कि संगीत परम्परा को निरंतर गतिमान बनाये रखने में यहाँ की गायिकाओं की पीढ़ी–दर–पीढ़ी की अटूट श्रृंखला का महत्वपूर्ण योगदान है, जिन्होंने काशी के घरानेदार संगीतज्ञों से संगीत–शिक्षा प्राप्त कर संगीत–जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया। सभी परिस्थितियों से जूझते हुए भी इस वर्ग ने संगीत–परंपरा को प्राणवान बनाये रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। निःसंदेह काशी की संगीत–परंपरा का इतिहास इनके उल्लेख के बिना अधूरा ही होगा।"[3]

बनारस की कतिपय महिला संगीतज्ञों का वर्णन–

1. **विद्याधरी बाई**– वाराणसी के चंदौली तहसील के जसुरी नामक ग्राम में सन 1881 ईस्वी में जन्मी विद्याधरी को संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा अपनी माता से ही मिली थी जो अपने जमाने की कुशल गायिका थीं। आप बनारस की एक बहुत ही जानी–पहचानी शख्सियत थीं। माता से शिक्षा के उपरान्त काशी के मूर्धन्य संगीत विद्वानों से संगीत की शिक्षा प्राप्त कर ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना, सरगम आदि गायन–शैलियों में विद्याधरी बाई ने महारत हासिल की थी। "जयदेव कृत 'गीतगोविंद' की अनुपम गायिका के रूप में इन्होंने देश की प्रमुखतम रियासतों से अपार धन, आदर, कीर्ति प्राप्त की।"[4]

2. **हुस्नाबाई**– काशी की पुरानी गायिकाओं में विद्याधरी बाई, हुस्नाबाई तथा बड़ी मोती बाई को विशेष रूप से आदर सम्मान प्राप्त था। 'सरकार' के संबोधन से जानी जाने वाली हुस्नाबाई जितनी सिद्दत से ख्याल गाती थीं, ठुमरी गाने में उतनी ही गहरी पैठ रखती थीं। अपनी संगीत–साधना और प्रतिष्ठा के अनुरूप ही आपने अपनी जीवन–शैली भी बनाई एवं काशी की रूआबदार गायिका की प्रतिष्ठा प्राप्त की। स्वतंत्रता सुधारवादी आन्दोलन के दौरान महात्मा गाँधी से मुलाकात के उपरांत उनके संदेशों को अपनी संगीत–साधना द्वारा जन–जन तक पूरे उमंग एवं जोश के साथ पहुचाने में सक्रिय भूमिका निभाई। "एच० एम० वी० कम्पनी ने इनके रिकॉर्ड भी तैयार किये थे, शायद दो रिकॉर्ड थे, एक में वह ठुमरी गाई थी '**अलबेले की नार झमाझम पानी भरे री**' अब ये रिकॉर्ड तो शायद ही कहीं मिले किन्तु मिले तो राष्ट्रीय संग्रहालय की अनमोल निधि होंगे।"[5]

3. **राजेश्वरी बाई**– काशी की सुप्रतिष्ठित एवं कुशल गायिका की प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाली राजेश्वरी बाई ने संगीत की शिक्षा काशी के ही संगीतज्ञ श्री ठाकुर प्रसाद मिश्र जी से तथा उनकी मृत्यु के पश्चात सारंगी वादक श्री सरजू प्रसाद मिश्र जी से ली जो 'पदम् विभूषण' श्रीमती गिरिजा जी के भी गुरु थे। काशी के इन संगीत विद्वानों से शिक्षा लेकर अपनी कला साधना से ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना, होरी, चौती, कजरी आदि सभी गायन–शैलियों पर समान रूप से अधिकार प्राप्त किया। आपकी अप्रतिम कला–साधना की सुगंध देश के अनेक रियासतों तक पहुंची और आप संगीत–कार्यक्रम हेतु आमंत्रित भी की जाने लगीं। "परिपक्व गायिका के रूप में एक बार काशी के सिद्ध अघोरपीठ कीनाराम स्थल के वार्षिक समारोह पर राजेश्वरी बाई का गायन हुआ। इनकी गायकी से तत्कालीन अघोर पीठाधीस्वर अत्यंत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद देते हुए पिता विदेशी राय से बोले– 'इसे दरभंगा ले जा यह तो राजधानी का भाग्य ले कर आई है।'[6]

"राजेश्वरी बाई को 'हुस्ना' के उपनाम से भी संबोधित किया जाता था। आप बड़ी मैना बाई की पुत्री एवं श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी की मौसी थीं। आपकी छोटी बहन श्यामा के गुजर जाने के बाद इन्होंने ही सिद्धेश्वरी देवी का लालन–पालन किया था। राजेश्वरी के साथ बलदेव प्रसाद के पिता भैरो सहाय जी तबले पर तथा सारंगी पर सिया जी संगत किया करते थे। इनकी ठुमरी से बनारस अंग टपकता था।"[7]

4. **बड़ी मोती बाई**– इन्होंने ख्याल, टप्पा, तराना आदि की शिक्षा काशी के रससिद्ध गायक श्री मिठाईलाल मिश्र जी से एवं ठुमरी की शिक्षा काशी के ही अप्रतिम ठुमरी गायक उस्ताद मौजुद्दीन खाँ साहब से प्राप्त की। आपकी गायकी की यश–पताका बांसवारा, नाहन, कश्मीर आदि अनेक रियासतों के कार्यकर्मों में बड़ी मोती बाई जी ने अपनी अद्भुत प्रस्तुति

से धन–यश एवं सम्मान प्राप्त किया। "आपकी वृद्धावस्था में कुछ प्रसारित कार्यकर्मों के अंश आकाशवाणी संग्रहालय में अमूल्य निधि के रूप में सुरक्षित हैं। आपकी गायकी के कुछ रिकार्ड्स 'काशी संगीत समाज' के पास भी सुरक्षित हैं, जिनमें आपकी मनमोहक गायकी की स्पष्ट झलक और उस युग की प्राचीन टप्पा–ठुमरी गायकी की विशिष्ट पहचान मिलती है।"[8]

5. **छोटी मोती बाई**– काशी की विख्यात ठुमरी गायिकाओं में छोटी मोती बाई का अपना एक अलग ही स्थान प्राप्त था। चूँकि आप उम्र में बड़ी मोती बाई से छोटी थीं, इसीलिए आप छोटी मोती बाई के नाम से जानी जाती थी। आपने संगीत की शिक्षा काशी के रामापुरा निवासी प्रसिद्ध सारंगी वादक 'श्री कसेरू मिश्र' से प्राप्त की, और बनारसी–शैली की 'ठुमरी' की गायकी में विशेष दक्षता प्राप्त की। देश की अनेक रियासतों में अपनी गायकी से प्रसिद्धि प्राप्त करने के उपरान्त कुछ निजी कारणों से संगीत–सभाओं में अपनी प्रस्तुति को पूर्णतया बंद कर दिया एवं गृहस्थ जीवन का चुनाव कर अपना शेष जीवन आपने व्यतीत किया।

6. **काशीबाई**– आप सिद्धेश्वरी देवी की समकालीन एवं ठुमरी, टप्पा, चैती, कजरी आदि गायन–शैलियों की विशिष्ट महिला कलाकार के रूप में प्रतिष्ठित थीं। आपने सारंगीवादक सियाजी मिश्र से ख्याल, टप्पा के साथ ही ठुमरी की भी शिक्षा प्राप्त की थी किन्तु आपकी आपनी इच्छा ठुमरी–गायन में थी और आपने ठुमरी–गायकी को विशेष प्रधानता दी। आप जिस किसी महफिल में पहुच जातीं वहाँ सभी लोगों को अपनी सुमधुर गायकी से अपना बना लेती थीं। आपकी ऐसी खुली आवाज़ थी कि जब आप तार सप्तक में अपनी खुली आवाज़ का प्रयोग सुरों पर करतीं तो सारी महफिल आपके नाम हो जाती थी। एक बार की बात है कि किसी महफिल में सिद्धेश्वरी देवी आमन्त्रित थीं परन्तु वह किसी कारणवश महफिल में पहुँच न सकीं और उस स्थान पर काशीबाई का गायन रखा गया, गायन के उपरांत श्रोताओं ने इनकी गायकी की खूब प्रशंसा की।

7. **सिद्धेश्वरी देवी**– आप बनारस अंग की ठुमरी, दादरा, होरी, चैती, कजरी आदि गायन–शैलियों की अनूठी गायिका के रूप में लोकप्रिय हुईं। सम्पूर्ण देश के संगीतप्रेमी रियासतों से लेकर आकाशवाणी केन्द्रों एवं जन–सामान्य के बीच भी आपने प्रसिद्धि प्राप्त की। आपकी प्रभावशाली गायकी के कारण आपको 'पद्मश्री', संगीत नाटक अकादमी, शान्ति निकेतन द्वारा देशिकोतम आदि सम्मान प्राप्त हुए। बचपन से ही संगीतमय वातावरण में पली–बढ़ी सिद्धेश्वरी देवी को संगीत की शिक्षा परंपरागत रूप से मिली। "ठुमरी की रानी सिद्धेश्वरी संगीत उपवन का ऐसा पुष्प थीं जिनकी यादों की खुशबू आज भी चमन को महका रही है। इस बनारसी ठुमरी की रानी ने 50 वर्षों तक लोगों के हृदय में राज किया। संगीत के अथाह सागर में सिद्धेश्वरी देवी एक मोती थीं। उनका समस्त जीवन संगीत के प्रचार व उत्कर्ष के लिए समर्पित रहा।"[9]

8. **रसूलन बाई**– काशी के उस्ताद शम्मू खां साहब के शागिर्दों में रसूलन बाई एवं उनकी बहन बतुलन का नाम आता है। काशी की एक अच्छी गायिका का सम्मान पाकर बतुलन तो अल्पायु में काशी में ही मृत्यु को प्राप्त हो गयी थीं परन्तु रसूलन बाई ने सच्चे मन से गुरु सेवा तथा संगीत के प्रति अभिरुचि के कारण बनारस के उपशास्त्रीय संगीत के अंतर्गत आने वाली गायन–शैलियों, यथा– ठुमरी, दादरा, चैती, कजली, होली की प्रभावशाली गायकी से पहचान पाकर काशी की सुप्रसिद्ध गायिका के रूप में प्रसिद्धि पाईं। श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी की समकालीन गायिकाओं में आपका नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। आपने अपने देश के अलावा अन्य कई देशों में भी अपनी गायकी द्वारा काशी का नाम रौशन किया। "तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री वी० वी० केसकर आपकी गायकी के अत्यंत प्रशंसक थे, जिनके सहयोग एवं प्रभाव से आपको विशेष धन–लाभ मिला और आकाशवाणी की विशिष्ट श्रेणी की कलाकार की प्रतिष्ठा प्राप्त कर देश के विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रों से कार्यक्रम कर आपने अच्छी लोकप्रियता अर्जित की। भारत सरकार एवं संगीत नाटक अकादमी ने आपको पुरस्कृत किया। आपके गायन के अनेकानेक रिकार्ड्स सरकारी संगीत संग्रहालय में सुरक्षित हैं।"[10]

9. **बेगम अख़्तर**– संगीत जगत की ऐसी गायिका जिन्होंने न केवल सभी उपशास्त्रीय विधाओं का तदनुरूप निर्वहन ही किया वरन् शास्त्रीय एवं गजल–गायन द्वारा भी अपनी पृथक् पहचान कायम की। संगीत में इनकी ऐसी गहरी अभिरुचि थी कि इसके लिए इन्होंने औपचारिक शिक्षा लेना जरुरी नहीं समझा। जीवन में अनेक प्रकार की बाधाओं के बावजूद इन्होंने संगीत से कभी नाता नहीं तोड़ा। "विवाहोपरांत आपका गायन सुचारू न रहा क्योंकि 'अब्बासी साहेब' का मानना था कि एक खानदानी बहु को कतई यह शोभा नहीं देता कि वो स्टेज पर सबके सम्मुख अपने फन का मुज़ाहरा करे।"[11]

माँ की मृत्यु के पश्चात् आप बहुत उदासीन रहने लगीं और दिनोंदिन अस्वस्थता से भी जूझने लगीं, तब डॉक्टरों ने परामर्श दिया कि इन्हें स्वतंत्र रूप से गाने की इजाजत दी जाय वरना इनका मानसिक संतुलन बिगड़ सकता है और आपके पति को भी संगीत के लिए इजाजत देनी पड़ी। इसके उपरांत आपने ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी, बारहमासा आदि गायन–शैलियों को गाकर प्रसिद्धि पाई। आपकी उपशास्त्रीय गायकी के रिकार्ड्स ग्रामोफोन कंपनी द्वारा निकाले गए और इन रिकॉर्डिंग्स को आकशवाणी के केन्द्रों द्वारा प्रसारित भी किया गया। कई अवार्ड्स से सम्मानित बेगम अख़्तर जी ने जब करांची में अपना दादरा– "**हमारी अटरिया पे आयो सजनवा, सारा जगत खतम होई जाए**" गाया तो श्रोतागणों में सनसनी भर गयी और उन्होंने हजारों लोगों के दिलों को जीत लिया।[12]

10. **गिरिजा देवी**– सन् 1929 में बनारस के जमींदार रामदास राय जी के यहाँ जन्म लेने वाली गिरिजा देवी में संगीत की रूचि बाल्यकाल से थी। इसी रूचि को देखते हुए इनके पिता ने इनकी संगीत की विधिवत शिक्षा पंडित सरयू प्रसाद मिश्र से शुरू करवाई। कुछ समय उपरांत पं० सरयू प्रसाद मिश्र जी का स्वर्गवास हो जाने के बाद इनकी आगे की संगीत शिक्षा पं० श्री चंद्र मिश्र जी से आजीवन चलती रही। ठुमरी–गायन के लिए प्रसिद्ध गिरिजा देवी जी को 'ठुमरी की रानी' की संज्ञा दी गई थी। भारत सरकार द्वारा इन्हें 'पदम्श्री', 'पदम्भूषण', 'पदम्विभूषण' सम्मान से नवाजा गया। इन्होने आजीवन महिलाओं के सर्वांगीण विकास हेतु कार्य किया। उपशास्त्रीय संगीत में इन्होने भाव–पक्ष तथा भक्तिपरक रचनाओं पर विशेष जोर दे कर इसके प्रचार–प्रसार का कार्य किया। बनारस की प्रख्यात उपशास्त्रीय महिला कलाकारों में इनका नाम सम्माननीय है।

निष्कर्ष– बनारस की संगीत–परंपरा अखंड रही है। पुरुष कलाकारों के समान ही यहाँ की महिला कलाकारों का भी योगदान नियमित एवं अन्य घरानों से अलग रहा है। काशी की महिला संगीतज्ञों का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व रहा है। गायकी के साथ सर्वांगीण विकास पर यहाँ के महिला कलाकारों का जोर रहा। महिलाओं के गाने पर कई प्रतिबंधों को तोड़ कर यहाँ की महिला कलाकारों ने यह सिद्ध किया कि आत्मबल से परिपूर्ण एक महिला किसी भी मुकाम को प्राप्त करने की शक्ति रखती है। इन महिला संगीतज्ञों द्वारा पूर्व में किये गये संघर्षपूर्ण प्रयासों और समाज में अपने अस्तित्व की लड़ाई का ही परिणाम है कि काशी की महिला कलाकारों को आज सामानांतर स्थान प्राप्त है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी तैयार किए गये इनके शिष्य आज भी इस परंपरा का निर्वहन बखूबी कर रहे हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. सहगल, डॉ० सुधा एवं डॉ० मुक्ता, बेगम अख्तर व उपशास्त्रीय संगीत, पृष्ठ सं. 02
2. वही, पृष्ठ सं. 03
3. मिश्र, पंडित कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परंपरा, पृष्ठ सं. 134
4. वही, पृष्ठ सं. 143
5. मेहता, डॉ. भानुशंकर, सो काशी सेईय कस न, पृष्ठ सं. 95
6. मिश्र, पंडित कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परंपरा, पृष्ठ सं. 146
7. मिश्रा, डॉ० नम्रता, संगीत तीर्थ : मथुरा और काशी, पृष्ठ सं. 236
8. मिश्र, पंडित कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परंपरा, पृष्ठ सं 147
9. वही, पृष्ठ सं. 266
10. वही, पृष्ठ सं. 150
11. बेगम अख़्तर दास्तान–ए–ग़ज़ल, संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्राप्त पुण्य स्मृति पर प्रकाशित
12. द्विवेदी, डॉ० पूर्णिमा, ठुमरी एवं महिला कलाकार, पृष्ठ सं. 209

संगीत–शिक्षा का महत्व एवं उद्देश्य

डॉ0 ज्ञानेशचन्द्र पाण्डेय**

शिवानी जायसवाल*

सार

मानव अपने हर्ष, विषाद, सुख–दुःख आदि भावों को गायन, वादन, नृत्य व नाट्य आदि माध्यमों से व्यक्त करता आ रहा है, प्रारम्भ से ही संगीत मनोरंजन का साधन मात्र ही नहीं परन्तु ईश्वर की आराधना का सशक्त माध्यम भी रहा है। संगीत ध्यान केन्द्रित करने की प्रेरणा और अभ्यास करने में सदैव ही सहायक रहा है। शिक्षा का विकास मनुष्य के सर्वांगीण विकास का एक सुदृढ़ आधार है, जो उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण निर्माण करती है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक परम्पराओं एवं सांसारिक गतिविधियों को जानने व समझने में मनुष्य की आन्तरिक अभिव्यक्तियाँ क्रियाशील रहती है। संगीत शिक्षा का हमारे समाज से अभिन्न सम्बन्ध रहा है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों, महाकाव्यों आदि के आधार पर यह निश्चित हो चुका है कि प्राचीन काल में संगीत–शिक्षा एक अनिवार्य रूप में विद्यमान थी। एक सुसभ्य तथा सुसंस्कृत समाज की गरिमा के परिचायक के रूप में संगीत का प्रयोग होता है, यही कारण है कि विश्व के अनेक सुलभ्य देशों में विश्वविद्यालय स्तर तक संगीत को अपने पाठ्यक्रम का विषय बनाया गया है।

मुख्य शब्द : *संगीत, शिक्षा, दार्शनिक, आध्यात्मिक, ललित कला*

शोध माध्यम : *इस आलेख हेतु विभिन्न पुस्तकों के अध्ययन द्वारा सामग्री संकलित की गई है ।*

शिक्षा एवं संगीत :

मानव अपने हर्ष–विषाद, सुख–दुःख आदि भावों को गायन, वादन, नृत्य व नाट्य इत्यादि माध्यमों से व्यक्त करता आ रहा है, प्रारम्भ से ही संगीत मनोरंजन का साधन मात्र ही नहीं परन्तु ईश्वर की आराधना का भी सशक्त माध्यम रहा है। संगीत ध्यान केन्द्रित करने की प्रेरणा और अभ्यास करने में सदैव ही सहायक है।

मनुष्य में जन्म से ही कुछ विशिष्ट प्रकार की मूल प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं, जिनके आधार पर वह अपने कार्य करता है। वह अपनी चिन्तन एवं तर्कशक्ति की सहायता से उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर कार्य करता है तभी वह समाज के साथ सामंजस्य रखता है और इसी कारण मनुष्य सुसंस्कृत एवं संस्कारी कहा जाता है। मानव को संस्कारी बनाने में शिक्षा एक व्यापक क्रिया है। शिक्षा प्राप्त कर मानव अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण रूप से विकास करता है।

शिक्षा का विकास :

शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का एक सुदृढ़ आधार है, जो उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण निर्माण करती है, बच्चे में अन्तर्निहित जन्मजात शक्तियों का परिष्कार कर, उसमें दोषपूर्ण शक्तियों का निराकरण कर उसके आन्तरिक गुणों को निखारती है। शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक परम्पराओं एवं सांसारिक गतिविधियों को जानने व समझने में मनुष्य की आन्तरिक शक्तियाँ क्रियाशील रहती हैं।

शिक्षा समाज का दर्पण है। शिक्षा ही मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ–साथ उसमें पारलौकिक तत्वों का समावेश कर सर्वांगीण विकास का कारण बनती है तथा उसे सभ्य, सुसंस्कृत, सुयोग्य, सहृदय व्यक्ति बनाती है।

वैदिक साहित्य में मनुष्य–कृतित्व से सम्बद्ध होने वाली हर एक रचना को 'कला' कहा गया है और ये कलाएँ चौसठ बतायी गयी हैं, लेकिन ये सभी कलाएँ रस की प्राप्ति में सक्षम नहीं हैं। ललित कलाओं के अन्तर्गत पाँच विशिष्ट कलाओं को रसत्व की प्राप्ति का साधन बताया गया है एवं शेष कलाओं को उपयोगी कला माना गया है, क्योंकि इन कलाओं के द्वारा ही मनुष्य के उपयोग में आने वाली भौतिक आवश्यकताओं की रचना की जाती है और संगीत को इन कलाओं में सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

*शोध–छात्रा, गायन विभाग,संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

संगीत आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं सन्दर्भ पक्ष की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है, संगीत–शिक्षा से तात्पर्य मात्र स्वर एवं लययुक्त धुनों व राग, तालों को सिखाने से ही नहीं है परन्तु संगीत के प्रति विद्यार्थी को पूर्ण रूप से समर्पित होना पड़ता है और आज का संगीत तो प्रायोगिक संगीत है। नित नवीन तकनीकी के बढ़ते प्रभाव ने संगीत को भी प्रभावित किया है।

संगीत शिक्षा का आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण

आध्यात्मिक दृष्टिकोण :

आध्यात्मिक विकास से तात्पर्य आत्मसन्तोष से है, विशुद्ध वाद्य संगीत मानव की इन्द्रियों को गति प्रदान करता है इसी कारण से उसके दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दार्शनिक चिन्तन से आत्मा को जानने का प्रयास है आत्मा, जीवन ब्रह्मा और जगत, जीवन के पुरुषार्थ को पहचानना व उस पुरुषार्थ की साधक पद्धतियों के द्वारा ही जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति का माध्यम ही दर्शन के मुख्य विषय हैं और इन विषयों को जानने के लिए आत्मनुभूति का अभ्यास, साधना, चिन्तन, मनन आदि ही आध्यात्मिक क्षेत्र हैं और आध्यात्म को प्राप्त करने का सबसे सरल एवं सुलभ माध्यम संगीत है, संगीत एक अथाह सागर है।

वैदिक संस्कृति में भक्ति और संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, सामवेद में गेय छन्दों का प्रयोग था और इन छन्दों को तीन स्वरों उदात्त, अनुदात्त व स्वरित में निहित स्वर–विन्यास के साथ गाने की परम्परा थी, स्वर को ब्रह्मा की उपासना के समान साध्य मानकर स्वरों के ऋषि, देवता आदि का भी निरूपण किया गया है। स्वर के आधारभूत तत्व नाद को उपाष्म तत्व व उपासना का साधन स्वीकार कर वेद, तन्त्र शास्त्र, उपनिषदों आदि में नाद की अपार महिमा गायी गयी है, जिनसे शब्द, वाक्, नाद, प्रणव, ओंकार, साम तथा उद्गीत आदि के माध्यम से संगीत के आध्यात्मिक व दार्शनिक पक्ष की विशद् व्याख्या तथा उसकी महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

दार्शनिक दृष्टिकोण :

दार्शनिक एवं आध्यात्मवादियों के अनुसार, दर्शन के अनेक प्रकारों में से मोक्ष–दर्शन को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, क्योंकि उसका प्राणवायु से सीधा सम्बन्ध है। प्राणवायु का विशिष्ट स्थान होने के कारण नाद–ब्रह्म के रूप में संगीत को भी योग के समान स्थान देकर मोक्ष–प्राप्ति का साधन स्वीकार किया है। संगीत एक ऐसी कला है, जिसका स्वर एवं लय आधार है और यह स्वर विचारों को प्रकट करने के लिए प्रतीक स्वरूप नहीं होते बल्कि वह अन्तःकरण में भी ध्वनित होते हैं। संगीत विशिष्ट बोध न होकर भाव–बोध कराने में समर्थ होता है, यही कारण है कि प्रत्येक जीव संगीत की ध्वन्यात्मकता से प्रभावित होता है।

संगीत शिक्षा का हमारे समाज से अभिन्न सम्बन्ध रहा है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों, महाकाव्यों आदि के आधार पर यह निश्चित हो चुका है कि प्राचीन काल में संगीत–शिक्षा अनिवार्य रूप में विद्यमान थी।

एक सुसभ्य तथा सुसंस्कृत समाज की गरिमा के परिचायक के रूप में संगीत का प्रयोग होता है, यही कारण है कि विश्व के अनेक सुलभ्य देशों में विश्वविद्यालय स्तर तक संगीत को अपने पाठ्यक्रम का विषय बनाया गया है। संगीत–शिक्षा से अवलोकन की क्षमता में वृद्धि होती है । इसके अन्तर्गत व्यक्ति में सौन्दर्य–बोध, जिज्ञासा, मनोरंजक कार्यक्रमों में भागीदारी, ज्ञान प्राप्ति के लिए उत्सुकता व अवलोकन की क्रिया में प्रवीणता, जीवन की दिशा निर्धारण करने की क्षमता आदि गुणों का विकास सम्भव है। व्यक्तिगत रूप के साथ ही समूह गान, समूह नृत्य तथा वाद्य–वृन्द आदि के माध्यम से सामूहिक रूप से दी जाने वाली संगीत शिक्षा व्यक्ति में परस्पर सहयोग की भावना, समाज में एक–दूसरे के लिए प्रेम व सहृदयता की भावना जाग्रत करती है।

संगीत–शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपनी भावनाओं एवं विचारों को अधिक गहराई से समझ पाता है तथा दूसरे के विचारों और भावनाओं को समझने की क्षमता उसमें आ जाती है जिससे मनुष्य में सामाजिक प्रवृत्ति का विकास होता है।

ललित कलाओं का संगीत में स्थान

मानव भावनाओं की सुन्दरतम अभिव्यक्ति का साकार रूप ही कला है, जब मानव अपने किसी गुण की अभिव्यक्ति सुन्दर व आकर्षक ढंग से करता है तब उसके उस गुण की अभिव्यक्ति कला का रूप ले लेती है, उस सन्दर्भ में कला ही सबसे सौन्दर्यमयी विधा है।

उसके उसी आनन्द को अधिकाधिक दिव्य व सौन्दर्यमयी बनाने के लिए कलाओं का जन्म हुआ, ये कलाएँ भिन्न हैं :–

भवन निर्माण के रूप में – वास्तुकला।

भावों को मूर्त रूप देने की कला – मूर्तिकला।

प्रकृति के दृश्यों को चित्र पटल पर उतारने की कला – चित्रकला।

शब्द तथा भाषा के माध्यम से भाव व्यक्त करने की कला – काव्यकला।

सप्त स्वरों के माध्यम से भाव व्यक्त करने की कला – संगीत कला।

भौतिक साधन एवं उपकरण की आवश्यकता

भौतिक साधन एवं उपकरण की आवश्यकता से कलाओं को क्रम में रखना आसान हो जाता है, वास्तुकला में ईंट, पत्थर, चूना, मिट्टी, लकड़ी तथा अनेक वस्तुओं छैनी, हथौड़ा, खुर्पी आदि उपकरणों की आवयकता होती है, मूर्तिकला में साधन केवल पत्थर या चूना प्लास्टर और उपकरण, चित्रकला में कागज अथवा कैनवास के साथ तूलिका व रंग की आवश्यकता होती है। काव्य व संगीत के लिए केवल नाद व शब्द के इस आधार पर वास्तु, मूर्ति, चित्र में स्थूल साधनों की आवश्यकता होती है, काव्य व संगीत में इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह तीनों से श्रेष्ठ है। काव्य में भाषा के साथ नाद भी रहता है, जबकि संगीत में केवल नाद ही प्रधान है, तभी संगीत का स्थान श्रेष्ठ है।

नवीनीकरण

मानव की रूचि व कल्पना भिन्न होती है, कौन–सी कला समय व परिस्थिति के अनुसार बदलने की क्षमता कितनी रखता है। स्थापत्य अथवा वास्तुकला में एक बार जो भवन बनाया जाता है उसे तोड़कर दोबारा निर्माण नहीं किया जा सकता है। मूर्तिकला में यदि मूर्तिकार की नवीन कल्पना उपजे तो बनी हुई मूर्ति में वह सहज ही उतार नहीं सकता बल्कि मूर्ति को पुनः आकार–प्रकार देना होगा, उसे नई मूर्ति का निर्माण करना ही होगा। काव्य व संगीत में एक ही विषय पर समय–समय के कवियों ने अपनी कल्पना व शैली के द्वारा उसे नया रूप दिया। संगीत में एक राग को गायक, वादक गाते, बजाते हैं। सभी अपनी नवीन कल्पना के आधार पर नवीन रूप देते हैं। संगीत व काव्य दोनों ही इस दृष्टि के बिना किसी बाधा के नवीन रूप धारण करते हैं।

भावाभिव्यक्ति की शक्ति

सभी कलाएँ मानव के भावों की अभिव्यक्ति होती हैं। जो कला अधिक भावों की अभिव्यक्ति करने में सक्षम है वही कला श्रेष्ठ है। वास्तुकला में कम भावाभिव्यक्ति है। नक्शे व योजना अनुसार निर्माण–कार्य किया जाता है, सूक्ष्म भागों को नहीं दिखाया जा सकता है, इसमें कुछ अधिक स्वतन्त्रता मूर्तिकार की होती है वह अपने कुछ भाव को उसमें दर्शा सकता है। चित्रकला में रेखाओं व रंगों के माध्यम से इन दोनों की अपेक्षा अधिक भावों की अभिव्यक्ति हो सकती है, चित्रकला में संगीत के अनेक रागों एवं चित्रों के माध्यम से साकार रूप दिया है। एक चित्र में प्रायः एक ही भाव की प्रधानता होती है, जबकि काव्य व संगीत में एक समय में भिन्न भाव दर्शाए जा सकते हैंः जैसे नृत्य में कृष्ण–राधा की छेड़–छाड़, मैया से शिकायत करने पर यशोदा का क्रोध करना, कृष्ण का डरना, रूठना, मनाना इत्यादि सूक्ष्म भावों को दर्शाया जा सकता है । इसी प्रकार काव्य में माध्यम हैं। अतः श्रेष्ठता की दृष्टि से काव्य एवं संगीत इन दो कलाओं में ही भावाभिव्यक्ति की शक्ति मूल रूप से होता है।

निष्कर्ष :

धार्मिक परम्पराओं, सामाजिक मान्यताओं व सांसारिक गतिविधियों को जानने–समझने में मानव की जो आन्तरिक शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं वे अदृश्य हैं, जैसे– कल्पना, अनुभव आदि। ध्यान दृष्टि से देखने, संकलित करने तथा चिन्तन–मनन के उपरान्त पुनर्निर्माणात्मक, विश्लेषणात्मक रूप से मानव द्वारा ही भावों की अभिव्यक्ति को कला कहा है, जो अपने प्रथम चरण में आनन्द व सन्तोष का कारण तथा अन्तिम चरण में रसोत्पत्ति का कारण बनती है। सभी कलाओं में ललित कला एक विशिष्ट स्थान रखती है और ललित कलाओं में संगीत को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ है। आज का युग यांत्रिक युग है, जिसकी गति स्पूतनिक के समान है। हमको उसी गति के साथ चलने की चेष्टा करनी चाहिए। प्राचीन और नवीन अर्थात् दोनों युगों के श्रेष्ठ तत्व उपलब्ध कर समन्वित किये जायें तो व्यावहारिक दृष्टि से यह हमारी परम्परा को समृद्ध करेंगे और शिक्षा का विकास तीव्र गति से होगा। संगीत–शिक्षा से अवलोकन की क्षमता में वृद्धि होती है तथा मनोरंजन कार्यों में भागीदारी, ज्ञान प्राप्ति के लिए उत्सुकता, जीवन की दिशा–निर्धारण करने की क्षमता आदि अनेक गुणों का विकास होता है।

सन्दर्भ सूची :

पटवर्धन, डॉ. सुधा, संगीत शिक्षा, कनिष्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ.– 3

'यमन', अशोक कुमार, संगीत रत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशन्स, पृ.– 521

शर्मा, डॉ. मृत्युंजय, संगीत मैनुअल, एच.जी. पब्लिकेशन्स, पृ.– 381

शर्मा, डॉ. मनोरमा, संगीत की अनुसंधान प्रक्रिया, नव भारत प्रकाशन, दिल्ली, पृ.– 13

वेदों में संगीत का स्वरूप

डॉ० कुमार अम्बरीष चंचल** **बागीश पाठक***

सार

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से संगीत का उद्गम वेदों से माना जाता है। विश्व के समस्त ज्ञान का आधार वेदों में ही समाया है। वेदों को आर्य जाति का मूल ग्रन्थ मानते हैं। ऋग्वेद में गेय–रूपी ऋचाओं का वर्णन सर्वप्रथम परिलक्षित होता है। मुख्य रूप से सामवेद को ही संगीत रूपी संज्ञा दी गयी है। सामवेद को संगीत पूर्णवेद भी कह सकते हैं। जब आर्यों का आगमन हुआ तब वहीं से वैदिक काल का प्रारम्भ माना जाता है। इस काल में वेदों की रचना हुई। वैदिक काल का साहित्य आज हमारे धर्मग्रन्थों के रूप में उपलब्ध है, जैसे वेदांग सूत्र, रामायण, महाभारत और पुराण, ब्राह्मणग्रन्थ और उपनिषद् आदि। वेदों में ऋग्वेद के मंत्रों का उच्चारण जब स्वर सहित किया जाता है तो साम रूपी गेय संज्ञा प्राप्त होती है। साम संहिता के दो भाग हैं–(1) आर्चिक संहिता, (2) गान संहिता।

सूचक शब्द– *वेद, संगीत, महाकाव्य, मंत्र, ऋचा*

शोध–प्रविधि– *इस शोध–लेख के लिए द्वितीयक स्रोतों के अध्ययन द्वारा सामग्री एकत्र कर अध्ययन किया गया है ।*

विषय प्रवेश – भारतीय संगीत के इतिहास के प्रारम्भ के संदर्भ में सटीक अध्ययन मतभेद पूर्ण है क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति तथा जीवन–सभ्यता के विकास–क्रम से ही संगीत का अस्तित्व इतिहासकारों तथा दार्शनिकों द्वारा स्वीकारा गया है। एक मत यह कहता है कि भगवान शिव के द्वारा ओंकार स्वरूप में संगीत की उत्पति हुई है । साथ ही, संगीत की उत्पत्ति के विषय में अनेकानेक अन्य मत भी विचारकों द्वारा प्रस्तुत किए गये है परंतु संगीत सम्बन्धी सामग्री (उत्पति एवं विकास) का लिखित रूप में संकलन वैदिक काल की देन ही माना जाता है। सर्वप्रथम इसी काल में संगीत के महर्षियों ने ग्रन्थों के रूप में स्थापित किया । यह संगीत के पूर्व वैदिक काल में संगीत की स्थिति एवं परिस्थिति का अनुमान लगाने में उपयोगी साबित हुई । साथ ही, यह वैदिक काल के पश्चात् के संगीत के विकास–क्रम की यात्रा को आधार भी प्रदान करती है। अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि संगीत का वैदिक कालीन इतिहास इसके पूर्व तथा इसके पश्चात् के संगीत स्वरूप का अध्ययन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

'संगीत' शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा तथा संगीत के प्रयोग आदि विषयों से लेकर सातों स्वरों का विकास, गायन–विधाओं का वर्गीकरण आदि विषयों पर विस्तृत ज्ञान वैदिक काल की ही देन है। इस काल में प्रमुख चार वेद शास्त्रों की चर्चा मिलती है जिसमें प्राप्त संगीत विषयक उल्लेख इस काल के मानव सभ्यता तथा जनमानस में संगीत की स्थिति और प्रभाव को स्पष्ट करता है। वैदिक काल के प्रागैतिहासिक काल में संगीत का सिन्धु तथा हड़प्पा से सम्बन्ध भी प्राप्त होता है । संगीत को ऋग्वेद से भी प्राचीन मानने के पक्ष में भारतीय संगीत मनीषियों डॉ० मैंने हैवास, सर मार्थल तथा दीक्षित जैसे दार्शनिक एवं पुरातत्वज्ञों ने संगीत की प्राचीनता को स्वीकार किया है। राव बहादुर दीक्षित के अनुसार वैदिक संस्कृति तथा सिन्धु संस्कृति समकालीन ही है।[1]

सिन्धु सभ्यता से प्राप्त मूर्ति जिसको नृत्य कला के मर्मज्ञ नटराज शिव का स्वरूप मानते हैं, साथ ही नृत्य–मुद्राओं में प्राप्त मूर्तियाँ भी इस काल में संगीत की व्यापकता को दर्शाती हैं। हड़प्पा में उपलब्ध चित्र में एक पुरुष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते अंकित किया गया है। साथ ही, दुंदुभी, झांझ, करताल जैसे वाद्यों का प्रमाण भी इस काल में दिखाई देता है। इन प्रमाणों से यह तो स्पष्ट होता है कि पूर्व वैदिक काल में समाज में संगीत तथा वाद्यों का विकसित रूप अवश्य रहा होगा।

वैदिक काल में संगीत– इस युग में प्राचीन आचार्यों द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का निर्माण हुआ। ऋक् शब्द की व्याख्या में जैमिनीय का मत है कि ऋक् उन

*शोध छात्र, गायन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शोध निर्देशक, सहायक अध्यापक, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

छन्दोबद्ध मंत्रों का नाम है जिनमें अर्थानुकल पादों की व्यवस्था हो, इन्हीं ऋचाओं पर जो गान निबद्ध है, उनके लिए 'साम' संज्ञा है–गीतिषु सामाख्या।[2]

ऋग्वेद काल में संगीत– ऋग्वेद में गीत के लिए गीर् गातु, गाथा, गायत्री गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग मिलता है और ऋग्वेद की ऋचाएँ जब स्वरावलियों में निबद्ध हो जायें, तब उन ऋचाओं को 'स्तोत्र' संज्ञा दी गयी है। गीत–प्रबंधों को 'गाथा' कहा जाता था, गाथाओं का गायन जो लौकिक तथा धार्मिक समारोहों में किया जाता था, इनको गायत्रिन प्रस्तुत करते थे। गाथा के लिए साम नाम भी आता है। इन सामों का गायन कुछ विशिष्ट छन्दों के साथ किया जाता था। स्तोत्र के आवृत्तिपूर्ण गान को 'स्तोम' कहा जाता था।[1] तीन प्रकार के वाद्य अवनद्ध, तन्तु एवं सुषिर जिन्हें ''नाष्ठी'' कहते थे।

शतायन ब्राह्मण के आधार पर प्रातः काल मंगल वाद्य के रूप में वीणा का प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद काल में गायन के साथ–साथ वादन का भी साहचर्य था। अवनद्ध वाद्यों में दुंदुभी, आडम्बर, भूमि, दुंदुभी, वनस्पति इत्यादि; तंत्र वाद्यों में वीणा, काण्ड वीणा, कर्करी वीणा, वारण्य वीणा तथा सुषिर वाद्यों में तूणव, नाड़ी, वाकुर आदि का उल्लेख हमें मिलता है। इस काल में स्त्रियाँ कई प्रकार के नृत्य प्रस्तुत करती थीं और पुरूष वर्ग कण्ठ संगीत सुन्दर ढंग से प्रदर्शित करते थे। यही समन्वय आगे चलकर 'समज्जा' के नाम से जाना जाता था । ऋग्वेद में 10 मण्डल एवं 1028 सूक्त हैं, इसके 10627 मंत्र हैं। ऋचाओं का गायन करने वाले को 'होता' कहा जाता था, होता के द्वारा जिन स्तुति–मंत्रों का कथन किया जाता था उन्हें ''शास्त्र'' कहते थे। स्तोत्र का गान उद्गाता आदि गायक ऋत्विजों के द्वारा किये जाने पर शास्त्र का पठन होता के द्वारा होता था, गाथाओं के गायक ''गाथिन'' कहलाते थे तथा गीत के लिए ''गायत्र'' का प्रयोग होता था।

सामवेद कालीन संगीत– सामवेद के दो भाग माने जाते हैं– आर्चिक और गान। आर्चिक में 800 मंत्र हैं और आर्चिक में दो भाग हैं– पूर्वाचिक तथा उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में छः अध्याय हैं तो उत्तरार्चिक में नौ अध्याय हैं। पूर्वार्चिक में सामों की मूलभूत ऋचाएँ हैं तो उत्तरार्चिक में इन ऋत्राओं की धुन पर गायन वाली तृचों का संग्रह है। आर्चिक ग्रन्थ साम के साहित्य को इंगित करते हैं तो दूसरा भाग यानि गान ग्रन्थ साम का स्वरमय स्वरूप है।[2] सामवेद की मुख्य तीन शाखायें हैं– कौथुमीय, जैमीनीय और राणायनीय। इस काल के प्रमुख देवता सूर्य माने गए हैं। सामवेद में मूलरूप से 99 मंत्र हैं। इस काल में तंतु वाद्यों में वीणा, कर्करी, कन्नड़ वीणा, काण्ड वीणा; अवनद्ध वाद्यों में दुंदुभी, आडम्बर, वनस्पति, तथा सुषिर वाद्यों के तुरव, नाड़ी, वाकुर, पिचोल, तुणव, काराधुनि इत्यादि वाद्यों का उल्लेख मिलता है। इस काल में छः वेदांग क्रमशः कल्प, शिक्षा, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष इत्यादि थे। सामवेदीय ब्राह्मण–ग्रन्थों में जैमिनीय ब्राह्मण के निम्नलिखित वाद्यों का उल्लेख है– कर्करी, आलाबु, वक्रा, कपिशीर्षणी, एशिकी, अपघाटरिका, कश्यपी वीणा इत्यादि। सामगान की 5 भक्तियाँ मानी जाती थीं– प्रस्ताव, उद्गीत, प्रतिहार, उपद्रव, निधन इत्यादि। इसके अतिरिक्त दो और काम माने जाते थे जिन्हें 'हिंकार' और 'प्रणव' कहा जाता था। निधन के दो भाग माने जाते थे जिन्हें 'अंतर्निधान' तथा 'बाह्यनिधान' कहा जाता था। सामगान के मुख्य गायक के साथ तीन से छः उपगायक होते थे, ये सब ''हो'' स्वर का गायन करते।

सामवेद कालीन संगीत में कण्ठ में पांच दोष माने जाते थे जिन्हें–कपिल, अव्यवस्थित, काकी, तुम्बी, संद्रष्टक कहा जाता था। साम विकार के 6 प्रकार माने जाते थे जिनकी संज्ञा विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम तथा स्तोभ है। स्तोभ के तीन प्रकार थे जिनके नाम–वर्ण स्तोभ, पद स्तोभ, तथा वाक्य स्तोभ है। सामवेद काल में संगीत की गायन–प्रणाली में सह वाद्यों को ''ड्रोन'' तथा मूल स्वर को "आरम्भिक स्वर" कहा जाता था।[3] **''स्वयं राजन्ते इति स्वराः''।**

नारदीय शिक्षा के अनुसार सामगान के 3 स्वर हैं– आर्चिक, गाथिक तथा सामिक जिन्हें क्रमशः एक स्वर, दो स्वर तथा तीन स्वरों के माध्यम से गाया जाता था। साम के 'आर्चिक संहिता' नामक ग्रंथ में तीन स्वर मिलते हैं जिन्हें उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित कहा जाता था। उदात्त में कुल 4 श्रुतियाँ, अनुदात्त में 6 तथा स्वरित में 12 श्रुतियाँ मानी गयी हैं। नारदीय, माण्डुकी तथा पाणिनी शिक्षा में षड्ज आदि सप्त स्वरों की उत्पत्ति उदात्तादि 3 स्वरों से बतलाई गयी हैं जिन स्वरों को ग, रे, सा कहा जाता था। इस काल में संगीत के स्वर–सप्तक का उद्गम तथा विकास हुआ। 'नारदीय शिक्षा' के अनुसार प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्वर में ऋग्वेद की ऋचाओं का गान होता था। 'नारदीय शिक्षा' के अनुसार सात स्वर क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय,

तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वार कहे गए हैं जिनका क्रम क्रमशः म, ग, रे, सा, नि, ध, प है। गान्धर्व व सायन के अनुसार सात स्वर क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ मन्द्र और अतिस्वार को नि, ध, प, म, ग, रे, सा ग्रामगेय गान माना गया है।

सामगान के गान ग्रन्थों को ग्रामगेय गान आरण्यक गान, उहगान तथा उह्यगान कहा जाता था। ग्रामगेय को ''वेयगान'' और ''प्रकृति गान'' की संज्ञा थी इसमें पूर्वार्चिक के पांच अध्यायों का समावेश है, आरण्यक गान में पूर्वार्चिक ग्रन्थ के छठवें तथा अन्तिम अध्याय में ''रहस्यगान'' होता था । ऊहगान को ''योनिगान'' कहा जाता था तथा ऊहगान या उह्यगान ग्रामगेयगान व आरण्यक गान से मिलकर बना है।

यजुर्वेद में संगीत– यजुर्वेद में उन मंत्रों का संकलन है जिनका गायन यज्ञादि के अवसर पर कर्मकाण्ड के लिए होता था। यजुर्वेद के ब्राह्मण तथा आरण्यक संहिता से स्पष्ट है कि साम का गायन साम गायकों द्वारा ही किया जाता था। यजुर्वेद में वर्णित सोम यज्ञ में साम गायकों का सर्वप्रथम स्थान जिसमें चार गायक होते थे, को क्रमशः होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्म कहा जाता था। यज्ञ का संचालन अर्ध्वयु नामक ऋत्विज् के द्वारा किया जाता था। यज्ञों में उद्गाता प्रमुख गायक होता था तथा गौड प्रसंगों पर गायन का दायित्व प्रस्तुत, प्रतिहर्ता, उद्गाता नामक सहयोगियों द्वारा किया जाता था। इस काल के वाद्य वीणा, 7 तंत्री वाण, तूणव, दुंदुभी, भूमि दुंदुभी, शंख तथा तालब आदि थे। यजुर्वेद में ही सर्वप्रथम वीणा शब्द मिलता है।[3] अश्वमेघ आदि यज्ञों में मनोरंजन के लिए गाथा–गान तथा वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था। तालधारी व्यक्तियों के स्वतंत्र वर्ग का उल्लेख भी इस काल में पाया जाता है।

अथर्ववेद में संगीत– इसे सामवेद का पूर्ण गौरव–गान कहा जाता है। अथर्ववेद के अनुसार ऋक् और साम दोनों यज्ञ कर्म के लिए ओज, बल, मांगल्य का सम्पादन करने वाले हैं। सामगान की समृद्धि अथर्व काल में हो चुकी थी। इस काल में आघाटि, कर्करी, दुंदुभी जैसे वाद्यों का विवरण है तथा साम के पांच विभाग हिंकार, प्रस्ताव आदि का विवरण भी मिलता है।

निष्कर्ष : वैदिक काल के अध्ययन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि संगीत का जो विकसित स्वरूप आज हमें प्राप्त होता है वह पूर्णतः वा आंशिक वैदिक काल की ही देन है। इस काल का संगीत एक धरोहर है तथा विरासत के रूप में हमारे समक्ष उपलब्ध है।

संदर्भ सूची :

1. परांजपे, डॉ० शरच्चन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2006, पृ. 19–20
2. वही, पृ. 58–59
3. सिंह, ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च एकेडेमी, कलकत्ता, 1994, पृ. 33

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

संस्कृत वाङ्मय में अभिनय के अंश

गुलिस्ता*

सारांश

अभिनय एक ऐसी कला है जो एक अभिनेता के द्वारा प्रस्तुति के रूप में सदियों से चली आ रही है। इस कला से सीधा लोक जन–जीवन को प्रभावित किया जा सकता है। इसलिए यह विधा इतिहास में राज आश्रित भी रही है। कौटिल्य ने लिखा है कि उस समय ललित कलाओं की उन्नति के लिए राज्य की ओर से उचित व्यवस्था की जाती थी।

यदि हम नाट्य और अभिनय की बात करें तो उस के प्रमाण हमें ई.पू. पाँचवी सदी से प्राप्त होते हैं। चारों वेदों से लिया गया ज्ञान, मंदिरों की भावपूर्ण मूर्तियाँ, पूजा–पाठ, उत्सव आदि से हमें ये ज्ञात होता है कि नाटक हमें वैदिक काल की धरोहर के रूप में मिले हैं।

मुख्य शब्द : *संस्कृत, वेद, अभिनय, नाटक, नट, नर्तक*

प्रविधि : *इस लेखक लिए द्वितीयक स्रोतों द्वारा सामग्री संकलित की गई है ।*

वैदिक काल के यज्ञ में अभिनय के प्रमाण मिलते हैं, हो सकता है जन–समाज के मनोरंजन के लिए किया जाता हो, परन्तु यदि इसमें केवल मनोरंजन–मात्र होता तो सभी ज्ञानी अपने शास्त्रों में इसको स्थान नहीं देते। मनोरंजन से अधिक महत्व होगा जिस कारण वेदों, उपवेदों, पुराणों, रामायण तथा महाभारत में इसके प्रमाण मिलते हैं। पाणिनि के अष्टाध्यायी तथा पतंजली के महाभाष्य में भी इसका उल्लेख है। पाणिनि के अष्टाध्यायी में उपस्थित व्याकरण के कारण वर्तमान में भी हमारी हिंदी भाषा में अ, आ, इ, ई के रूप में वैसे ही लिखा जाता है। इस व्याकरण शास्त्र में भी पाणिनि ने शैलाली और कृशाश्व नामक दो नटों, अभिनेताओं के बारे में उल्लेख किया है।

अर्ध्वयुभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ।।[1]

पाँच अर्ध्वयुओं के साथ सात होतागण कान्तियुक्त अग्निदेव के प्रिय स्थान (यज्ञ) की रक्षा करते हैं जो ऋत्विज् पूर्व की ओर मुख करके सोमपान आदि के निमित्त अथक श्रम करते हैं और देवों के व्रतों का अनुगमन करते हैं, उनसे देवगण अतिशय प्रसन्न होते हैं। उस समय जब यज्ञ होता था तो उसमें एक संवाद बहुत प्रचलित हुआ था जो अग्निष्टोम यज्ञ में अर्ध्व्यु सोम विक्रेता संवाद के रूप में उल्लेखनीय है–

अध्वर्यु – क्या यह सोम बेचोगे?

विक्रेता – हाँ श्रीमान, यह बेचने के लिए है।

अध् – मुझे इसे खरीदना है।

वि – ठीक है, आप इसे ले लीजिये।

अध् – मैं इसे गाय के सोलहवें हिस्से के बराबर लूँगा।

वि – श्रीमान सोम का मूल्य इससे अधिक है।

अध् – गाय का मूल्य क्या कम है, गाय तो हमें दूध, दही, घृत देती है।[2]

सोम विक्रेता वनवासी और अध्वर्यु दोनों संवादों को बोलते समय बार–बार दोहराते थे और संवादों में जहाँ पहले गाय के सोलहवे हिस्से में सोमरस मिलने को बोला था, वो अब धीरे–धीरे बढ़ते क्रम में पूरी गाय के बराबर हो जाता है। इसके बाद अध्वर्यु गाय के साथ ही न्यग्रोध का छोटा पौधा भी खरीद लेता है और उसका मूल्य उसे स्वर्ण के रूप में देता है। विक्रेता स्वर्ण लेकर यज्ञ की समाप्ति के बाद वापस जाने लगता है तभी बलपूर्वक अर्ध्व्यु के लोग उससे सारा स्वर्ण छीन लेते हैं। यह संवाद और अभिनय सम्भवतः लोगों को बहुत आकर्षित करता होगा, जिस कारण यह संवाद वैदिक साहित्य में बार–बार उल्लेखित है।

ऋग्वेद

'नाट्य शास्त्र' के प्रथम अध्याय में भरतमुनि के अनुसार नाट्य की रचना स्वयं ब्रह्मा ने चारों वेदों का सार लेकर की है। उसके अनुसार ऋग्वेद से पाठ लिया है

*मलाड, पश्चिम मुम्बई

अर्थात् वाचिक अभिनय की यदि हम बात करें तो ऋग्वेद ही उसका मुख्य स्त्रोत है। ऋग्वेद में जो संवाद देखने को मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं–

उरू से ज्रयः प्येति बुध्रं विरोचमानं महिषस्य थाम
विश्वेभिरग्रे स्वयशोभिरिद्धो दब्येभिः पायुभिः पाहम्स्मान् ।।[3]

महाबली अग्निदेव का उज्ज्वल तेज़ अन्तरिक्ष के व्यापक स्थानों तक फैल गया है। हे अग्निदेव आप प्रदीप्त होकर सम्पूर्ण यशस्वी सामर्थ्यों और अटल रक्षण साधनों से हमारी रक्षा करें ।। 9।।

अध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत चारू पृश्रेः ।
मातुष्पदे परे अन्ति षद्रोवृषेणः शोविशः जिह्वा ।।[4]

माता–पिता के सदृश द्यावा–पृथिवी के मध्य में आलोकित होने वाले वैश्वानर सूर्यदेव गाय के श्रेष्ठ दुग्ध का मुख से पान करते हैं। बलशाली तेजोयुक्त तथा प्रयत्नशील वैश्वानर की जिह्वा, गो माता के उत्कृष्ट स्थान में स्थित दूध को पीने की इच्छा करती है। 10 ।

नाटक के इतिहास को जानने के लिए यदि हम ऋग्वेद की बात करें तो वैदिक काल में शूद्रों और वैश्यों का आपस में युद्ध कराया जाता था और देखने वाले उसका आनन्द लिया करते थे। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में हमें ऐसे सूत्र मिलते हैं जिनमें पूर्ण रूप से संवाद तथा कथोपकथन देखने को मिलता है। पुरूरवा और उर्वशी का संवाद सबसे महत्वपूर्ण है। धरती के पुरूरवा को स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी से प्रेम हो जाता है। इस कहानी में पुरूरवा की पत्नी के रूप में धरती पर रहती है परन्तु जैसे ही गर्भवती होती है, अंतर्ध्यान हो जाती है। पुरूरवा उसे खोजने निकलते हैं, अंत में वे उसे अन्य अप्सराओं के साथ जल–क्रीड़ा करते हुए पाते हैं। फिर उसी स्थान पर दोनों का वार्तालाप होता है। प्रेम का यह वार्तालाप शतपथ में अधिक विस्तार से मिलता है। इस कथा के अनुसार उर्वशी ने पुरूरवा से तीन प्रातिज्ञा ली थी। उनमें से एक थी कि पुरूरवा उसे कभी नग्न न दिखाई दे। कुछ समय के बाद स्वर्ग के गन्धर्वों में यह इच्छा जागृत हुई कि उर्वशी को स्वर्ग वापस बुला लिया जाय। इसके लिए उन्होंने एक षड़यंत्र रचा और फिर रात को उर्वशी के भेड़ों के बच्चों को चुरा लिया। इस पर रात के अँधेरे में उर्वशी चिल्लाई 'मैं लुट गयी', पुरूरवा उसकी तेज़ आवाज़ सुन कर नग्न अवस्था में बाहर आ गये। ठीक उसी समय गन्धर्वों ने बिजली चमका दी। उर्वशी ने पुरूरवा को वस्त्रहीन देख लिया और तीसरी प्रतिज्ञा के अनुसार वह अंतर्धान हो गयी। कालिदास का नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' इसी घटना पर आधारित है। रंगकर्मी हबीब तनवीर ने कहा है 'मेरा अनुमान है कि ऋग्वेद के मन्त्रों का आग जला कर उसके चारों ओर उच्चारण रंगकर्म की भ्रूण अवस्था है।[5]

सामवेद

गंधर्ववेद वेद में भारतीय शास्त्रीय संगीत है। इसमें राग, सुर, गायन शैली और संगीत के लिए वाद्य–यंत्रों के प्रयोग को भली प्रकार बताया गया है, यह सामवेद का उपवेद है। उपवेद भी चार हैं– गंधर्ववेद, आयुर्वेद, शिल्पवेद तथा धनुर्वेद।

सामवेद से ब्रह्मा ने गीत या गान लिया है, इसकी पुष्टि गंधर्ववेद करता है और गंधर्ववेद से ही सोलह हज़ार राग–रागिनियों का जन्म हुआ है। सामवेद की ऋचाएँ संगीतबद्ध हैं और उनको गा–गा कर ही उच्चारित किया जाता है, ऐसा नियम के साथ किया जाता है।

यजुर्वेद

अभिनव भारती का यह मत है कि यजुर्वेद में यज्ञ के समय जो हस्त मुद्राएँ हैं, यदि ध्यानपूर्वक देखें तो पता चलता है कि मुद्राएँ अभिनय का रूप हैं अर्थात् आंगिक अभिनय का स्वरूप यजुर्वेद से प्राप्त हुआ है।

हरिवंशपुराण

हरिवंशपुराण में प्रद्युम्न–विवाह की कथा में वासुदेव श्रीकृष्ण के अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख हुआ है। इस अवसर पर भद्र नामक एक नट ने उपस्थित ऋषि–महर्षियों के समक्ष अद्भुत नाट्य–प्रदर्शन किया था, जिसके पुरस्कार में उसे आकाश मार्ग में विचरण करने का वरदान प्राप्त हुआ।[6]

अष्टाध्यायी

पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनटस्सूत्रयोः।
कर्मन्दकृशाश्वदिनि ।।[7]

पाणिनि द्वारा रचित 40 पन्नों की पोथी जिसका नाम अष्टाध्यायी है, इसने संस्कृत के व्याकरण को रूप दिया है। पाणिनि ने संस्कृत व्याकरण का गहन अध्ययन कर लगभग 4000 सूत्र बनाए। पाणिनि ने भी अष्टध्यायी में 'पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षु नट सूत्रयोः' द्वारा नाटकों की पूर्वरचना का आभास दिया है।

महाभाष्य

महाभारत के बाद ई. पू. दूसरी शताब्दी में पतंजलि

ने शोभनिक नामक नटों का उल्लेख किया है। ये नट परदे के माध्यम का प्रयोग करते थे। ये चित्रों की श्रृंखला बनाते थे और उन्हें अपने नाटकीय अंदाज़ में प्रस्तुत करते थे। यह नाटक का ही एक रूप था और यह बहुत ही लोकप्रिय हुआ था।

नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम्।
मनः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः ।। 14।।

उस समय वहाँ की जनता नटी और नर्तकों के समूहों तथा गाने वाले गायकों के मन और कानों को सुख देने वाली वाणी सुनती थी।। 14 ।।

रामायण

वधुनाटकसंधेश्व संयुक्ताम। 20।[8]

एक प्रसंग आया है जिसके अनुसार अयोध्या में नाटक मंडलियाँ विद्यमान थीं। श्रीराम के अभिषेक के समय नटों, नर्तकों एवं गायकों की उपस्थिति का वर्णन इस बात को बताता है कि रामायण काल में नाट्य कला अपने चरम तक पहुँच चुकी थी।

महाभारत

ततः समाजोववृधे सराजन दिवसान बहून।
रत्न प्रदान बहुलः शोभितो नटनर्तकैः ।।[9]

राजन नगर में बहुत दिनों से लोगों की भीड़ बढ़ रही थी। राज समाज के द्वारा प्रचुर धनरत्नों का दान किया जा रहा था। बहुतेरे नट और नर्तक अपनी कला दिखा कर उस समाज की शोभा बढ़ा रहे थे।

महाभारत के आदिपर्व से लिया गया यह श्लोक नट और नर्तक की कलाओं का बखान कर रहा है जहाँ नट और नर्तक अपनी प्रस्तुति से द्रोपदी के स्वयंबर की शोभा बढ़ाते हैं।

नाट्यशास्त्र

'नाट्य शास्त्र' में सबसे पुराना और सबसे व्यापक संस्कृत नाटकीय सिद्धांत और व्यवहार पर मौजूदा कार्य भरतमुनि द्वारा वर्णित है। इसमें भरतमुनि ने अभिनय की परिभाषा इस तरह दी है– किसी निश्चित समय पर, किसी स्थान पर, लोगों का आचरण कुछ दी हुई परिस्थितियों द्वारा प्रस्तुति 'नाट्य' कहलाता है। वह तथ्य नाटक की विविध प्रकृति की स्थितियों से संबंधित है। भरत मुनि ने अपने 'नाट्य शास्त्र' में 'अमृतमंथन' तथा 'त्रिपुरदाह' नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है।

अभिनय के चार प्रकार के बारे में भरतमुनि ने 'नाट्य शास्त्र' में विस्तार से बताया है। आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक अभिनय है। 'नाट्य शास्त्र' में नाट्य की कुशलता को प्राप्त करने के लिए 11 तत्वों को विस्तार से बताया गया है।

निष्कर्ष :

यदि भारतीय नाट्य या अभिनय की बात करें तो इतिहास के सभी दिग्गजों ने अपने–अपने समय के अपने–अपने मतों द्वारा नाट्य/अभिनय को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है क्योंकि समाज को उच्च स्थान देने में इस कला का महत्वपूर्ण योगदान है। इस कला में अनेक कलाओं का समावेश है, इसलिए इसे मिश्रित कला भी कहते हैं। यह कला शरीर का लचीलापन, आवाज़, गले का स्वर, उर्जा तथा स्फूर्ति बनाए रखने में सहायक है और यदि देखें तो पता चलेगा कि अभिनय सीखने से आत्मविश्वास बढ़ता है, नेतृत्व क्षमता और समूह में रह कर एक–जुट होने की शक्ति को बढ़ाने में भी यह कला महत्वपूर्ण है। भारत सरकार ने इस विधा को पाठ्यक्रम में स्थान दिया है, क्योंकि इस विधा से छात्रों का शारीरिक और मानसिक विकास होता है।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, श्री पंडित जयदेव जी, ऋग्वेद–संहिता, भाषाभाष्य, प्रथम खंड, श्लोक सं. 2524, आर्य साहित्य मंडल ली., अजमेर
2. शास्त्री, बाबू लाल शुक्ल, नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय, श्लोक 107, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
3. शर्मा, श्री पंडित जयदेवजी, ऋग्वेद–संहिता, भाषाभाष्य प्रथम खंड, श्लोक सं. 1065, आर्य साहित्य मंडल ली0 अजमेर
4. वही, श्लोक सं. 3133
5. गुन्देचा, संगीता, समकालीन रंगकर्म में नाट्यशास्त्र की उपस्थिति
6. हरिवंश पुराण, सर्ग 2, श्लोक 11 से 26, गाँधी हरि भाई देवकरण, जैन ग्रन्थमाला, पंडित गजाधर लाल जी द्वारा अनुवादित
7. पाणिनि, अष्टाध्यायी, श्लोक सं. 22
8. अयोध्या काण्डे षष्ठः सर्ग, श्लोक सं. 193, वाल्मीकि रामायण– भाग 1, गीता प्रेस
9. वेदव्यास, महाभारत, श्लोक सं. 535, अनुवादक पंडित रामनारायण दत्त शास्त्री पांडेय, (स्वमवर पर्व चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः–पाण्डवों का द्रुपद की राजधानी में जाकर कुम्हार के यहाँ रहना, स्वयंवर सभा का वर्णन तथा धृष्टद्युम्न की घोषणा) हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर।

संगीत में शोध–कार्य के विभिन्न क्षेत्र

डॉ0 ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय** **प्रमोद कुमार***

शोध सार

समाज में अभूतपूर्व प्रगति एवं विकास हो रहा है और ये सभी शोध के ही परिणाम हैं। अनुसंधान सत्य की खोज द्वारा अज्ञानता के क्षेत्र को संकुचित कर देता है और वे हमें कार्य करने की श्रेष्ठतम विधियाँ तथा उत्तम परिणाम प्रदान करते हैं।

संगीत में अनुसंधान का व्यापक क्षेत्र है, परन्तु किसी ठोस विषय पर ही अनुसंधान कार्य होना चाहिए, जो निर्धारित परिणाम स्थापित कर सके। किसी महत्वपूर्ण विषय का प्रतिपादन शोध–कार्य के विषय में होना किसी भी शोध–कार्य की आधारभूत आवश्यकता है। क्रियात्मक या प्रायोगिक पक्ष, सैद्धान्तिक पक्ष, ऐतिहासिक पक्ष और शिक्षा–विषयक पक्ष, इनमें उपविभाग बनाकर भी भिन्न–भिन्न विषय प्राप्त हो सकते हैं जिन पर विशिष्ट पद्धति के अनुसार शोध–कार्य किया जा सकता है।

बीज शब्द– *शोध–कार्य, क्रियात्मक पक्ष, शास्त्र पक्ष, ऐतिहासिक पक्ष, शिक्षण पक्ष।*

***शोध–माध्यम** : विभिन्न पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं का अध्ययन इस लेख का स्रोत है।*

भूमिका :–

आदिमानव से लेकर भरत तक के युग में संगीत ने जो लम्बी–यात्रा की तथा इस रूप को प्राप्त किया, कब उसमें नये–नये अध्याय–जुड़े? कैसे नए–नए आविष्कार हुए? यह सब हमें ज्ञात नहीं है। इन सब तथ्यों को खोज अथवा शोध के माध्यम से ही सुलझाया जा सकता है। खोज, आविष्कार एवं अन्वेषण–कार्य मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ उसकी आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, भौतिक एवं कलात्मक उन्नति का प्रखर माध्यम बनते हैं। अतः ज्ञान–विज्ञान के विविध क्षेत्रों में मानव की जिज्ञासु–प्रवृत्ति एवं खोज को आधुनिक शब्दावली में 'शोध' कहा जाता है। इसी प्रकार, भारतीय संगीत के इतिहास में ऐसे अनेक ग्रंथों की सूचना प्राप्त होती है जो हमें अधुना उपलब्ध नहीं होते तथा कुछ ऐसी गायन और वादन की विधाएँ हैं, जिनका प्रामाणिक वर्णन हमें प्राप्त नहीं होता, ऐसी ही समस्याओं के समाधान का नाम शोध है। संगीत वर्षों से आकर्षण का विषय रहा है तथा लम्बे समय से इसमें शोध की परम्परा चली आ रही है।

संगीत में अनुसंधान के प्रायोगिक एवं शास्त्र, मुख्य रूप से दो ही पक्ष हैं, परन्तु वर्तमान समय में इनसे अलग भी कुछ ऐसे विषय दृष्टिगोचर हो रहे हैं जिनको शोध–कार्य के क्षेत्रों के रूप में 'वर्णित किया जा सकता है, जैसे संगीत का ऐतिहासिक एवं शिक्षण–पक्ष आदि।[1] शोध के अनेकानेक विषय हो सकते हैं जिन पर अपेक्षित शोध–कार्य किया जा सकता है।

प्रायोगिक अथवा क्रियात्मक पक्ष :–

प्रायोगिक पक्ष से अभिप्राय संगीत के क्रियात्मक पक्ष से है। इसके अन्तर्गत हम जिन विषयों का अध्ययन कर सकते हैं, वे इस प्रकार हैं:–रागों का मानकीकरण, रागों का आधुनिक व ऐतिहासिक स्वरूप, बंदिशों के निर्माण आदि के सिद्धान्त, बंदिशों व छंदशास्त्र तथा आधुनिक व प्राचीन रचनाकारों की बंदिशों का तात्विक अध्ययन, अप्रचलित रागों का चलन व विवरण एवं उनमें मतमतांतर, राग का रस एवं बन्दिश से सम्बन्ध, शैली व घरानों का क्रमिक विकास, लयकारी व ताल तथा शास्त्र में चर्चित असंख्य तालों के आधार पर आवश्यक एवं नवीन तालों का निर्माण एवं उपयोगिता, समूह–संगीत या वृंदगान व उसकी निर्माण–विधि, नवराग–निर्मित व नए रागों की लोकप्रियता एवं उनका शास्त्रीय विवरण, राग–प्रकारों का अध्ययन आदि। इसके साथ ही चिकित्सा–क्षेत्र से संगीत का सम्बन्ध तथा राग का रस, समय व ऋतुओं से सम्बन्ध व उनकी उपादेयता आदि। इनमें से अनेकों विषयों पर शोध–कार्य हो

*शोध छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

**सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय,काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

रहे हैं और अनेक विषयों पर शोध–कार्य हो चुके हैं। अतः संगीत के क्रियात्मक पक्ष में ऐसे अनेक विषय हो सकते हैं, जिन पर प्रयोगात्मक अथवा क्रियात्मक–विधि के अन्तर्गत शोध कार्य किया जा सकता है।[2]

सैद्धान्तिक अथवा शास्त्र–पक्ष :–

भारतीय संगीत का आधार वैज्ञानिक पद्धति है। हमारे संगीत–शास्त्र के सिद्धान्त आधुनिक वैज्ञानिक–पद्धति द्वारा भी सिद्ध किए जा सकते हैं। शास्त्र के अन्तर्गत जिन विषयों को रखा जा सकता है, उनका वर्णन इस प्रकार हैः– श्रुति एवं स्वर की समस्याओं का समाधान। संगीत में नाद का महत्त्व, नाद की उत्पत्ति एवं विकास, आधुनिक युग में जाति–गायन प्रचलित होने की संभावनाएँ, वर्तमान सन्दर्भ में गीति की उपादेयता, पाश्चात्य व भारतीय सौन्दर्य–शास्त्र, संगीत का अन्य विषयों से सम्बन्ध, वाद्यों का तकनीकी पक्ष, संगीत एवं योग का सम्बन्ध, संगीत का पारिभाषिक शब्द–कोश, गायन, वादन व नृत्य की शास्त्रानुसार परिभाषाएँ, प्राचीन व मध्यकालीन अप्रसिद्ध ग्रंथों की खोज व उनकी टीकाएँ, मानव का विकास व संगीत, भारतीय रागों के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन, विभिन्न घराने व उनके विशिष्ट राग तथा लोक–संगीत से विकसित रागों का विश्लेषणात्मक विवेचन आदि। इसके अतिरिक्त अनेक विद्वानों द्वारा की गई सारणाएँ, विभिन्न विद्वानों द्वारा वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना, प्राचीन शास्त्रों के सिद्धान्तों का वर्तमान समय में व्यवहार एवं महत्त्व आदि अनेक विषय ऐसे हैं, जिन पर शोध–कार्य सैद्धान्तिक अथवा शास्त्र पक्ष के रूप में किया जा सकता है।[3]

ऐतिहासिक पक्ष :–

किसी भी विषय के ऐतिहासिक पक्ष पर शोध–कार्य ऐतिहासिक शोध–कार्य के रूप में जाना जाता है। किन्हीं बातों का क्रम समझना तथा उनमें परस्पर समानता व भिन्नता का अध्ययन करना ही उनका इतिहास समझना है। प्राचीनता व परिवर्तनशीलता को समझने का साधन इतिहास है अर्थात् इतिहास केवल भूतकाल में घटित घटना है, इतना समझना ही इतिहास नहीं है। नित्य–प्रति–क्षण इतिहास बनता रहता है। स्थापत्य, मूर्तियाँ, शिलालेख, काव्य, अलंकार–शास्त्र तथा दर्शन आदि को संगीत के साथ जोड़कर सार्थक परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। विभिन्न रियासतों के बही–खाते तथा दस्तावेजों आदि से उस देश–काल के संगीत के इतिहास पर प्रकाश पड़ सकता है। अतः यह सत्य नहीं है कि संगीत का इतिहास केवल ग्रन्थों से ही प्राप्त होगा। अन्य भी अनेक प्रकार के स्रोत हैं, जिनसे इतिहास से सम्बन्धित सामग्री को प्राप्त किया जा सकता है। भूतकाल की घटनाओं के साथ वर्तमान की घटनाओं को जोड़ा जा सकता है। संगीतज्ञ, संगीतकारों के जीवन–चरित्र व उनके जीवन में घटित घटनाओं का सम्बन्ध समाज–विज्ञान के साथ जोड़कर सामाजिक एवं सांगीतिक दृष्टि से दोनों में परस्पर प्रभाव का विश्लेषणमूलक अध्ययन किया जा सकता है। काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक और मुक्तक; इनका समीक्षात्मक अध्ययन भी एक विशिष्ट शोध के विषय का रूप धारण कर सकता है। मंदिर, मूर्ति, शिल्प व चित्रकला आदि को लक्ष्य करके, संगीत से सम्बन्धित पुरातात्विक स्रोतों का अध्ययन भी शोध–कार्य के रूप में किया जा सकता है।[4]

शिक्षण पक्ष :–

आधुनिक काल में 'संगीत' शिक्षण का एक आवश्यक अंग बन गया है। इस क्षेत्र में अनुसंधान की महती आवश्कता है। आज तक संगीत को साधारण जन केवल मनोरंजन का विषय मानते थे। समाज में इसको कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हुआ था और अब भी यह विषय बहुत विकसित स्थिति में नहीं है। अतः इस विषय पर शोध–कार्य कर इसको समाज के शिक्षण–पक्ष का, एक महत्त्वपूर्ण अंग बनाया जा सकता है। इससे संगीत एवं संगीतज्ञों की प्रतिष्ठा, मान एवं समाज में रोजगार आदि के साधनों का मार्ग प्रशस्त होगा। शिक्षण–पक्ष के अन्तर्गत संगीत–शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन, संगीत–शिक्षा का सामाजिक अध्ययन, संगीत–शिक्षा का पाठ्यक्रम, संगीत शिक्षण की विधि एवं संगीत–शिक्षा में प्रयुक्त की जाने वाली सहायक सामग्री आदि को रखा जा सकता है।[5]

निष्कर्ष :–

संस्थागत शिक्षण–पद्धति में हमने न तो निबद्ध परम्परा निभाई है, न ही संप्रदायगत परम्परा का अनुगमन किया है। इन अनियमितताओं के कारण संगीत के शिक्षा–क्षेत्र में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं, जिनका संतोषजनक उत्तर विचारणीय विषय है। विद्यार्थी की शक्ति और रुचि–भेद के अनुसार उसे पाठ्यक्रम दिया जाए। इसके साथ ही, परीक्षा–प्रणाली ऐसी बनाई जाय जो अपेक्षित परिणाम दे सके,

साथ ही वर्तमान परीक्षा–प्रणाली में आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है, जिसको अतिशीघ्रता से सम्पन्न करना चाहिए। अनुसंधानकर्ता भी परीक्षा–प्रणाली के लिए अपने सुझाव व शोध–निष्कर्ष दें, जो महाविद्यालय व विश्वविद्यालय की परीक्षा प्रणालियों में रखे व स्वीकृत किए जाएँ। शोधार्थी एवं शिक्षाविदों को चाहिए कि वे संगीत को विशिष्ट वस्तु न बनाकर उसको जन–साधारण के लिए सुलभ एवं शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अंग बनाकर विद्यार्थी एवं समाज के चरित्र का निर्माण करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दें। संगीत एवं संगीत के शोध–कार्यों का यही मूल उद्देश्य संगीतकारों को समाज में उच्च स्थान दिलाने में सक्षम है।[6] संगीत में शोध–कार्यों का क्षेत्र विशाल है, इसमें अपेक्षित कार्य की आवश्यकता है । अनेक उल्लेखनीय कार्य हुए हैं और आगे भी मानक कार्यों की अपेक्षा है ।

सन्दर्भ सूची :–

1. चौधरी, डॉ. सुभद्रा, संगीत में अनुसंधान की समस्याएँ और क्षेत्र' पब्लिकेशन–.ष्णा बदर्स, अजमेर–1988, पृ0 88
2. गुप्त, सुरेश चन्द्र, शोध और समीक्षा, रवीन्द्र प्रकाशन, पाटलकर बाजार, ग्वालियर, दिल्ली गेट, आगरा पृ0–112
3. नगेन्द्र, शोध और सिद्धान्त, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली. सड़क, दिल्ली, पृ0–112
4. रावत, चन्द्रभान एवं राम कुमार खण्डेलवाल, शोध प्रविधि और प्रक्रिया, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा पृ0–96
5. सिन्हा, सावित्री, अनुसंधान का स्वरूप, आत्मा राम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली–6, पृ0–148
6. शर्मा, डॉ. मनोरमा, संगीत एवं शोध प्रविधि, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़–1990, पृ0–65

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

तबला वाद्य के प्रयोग में मध्यकाल से वर्तमान काल तक आए बदलाव

प्रो० ऋचा कुमार**

अभिनव जायसवाल*

सार

संगीत के दो आधार स्तम्भ हैं– स्वर और लय। गायन, तन्त्र वाद्य तथा सुषिर वाद्यों में स्वरों की प्रधानता है, तो अवनद्ध एवं घन वाद्यों में लय–प्रदर्शन की प्रधानता है। लय के माध्यम से संगीत में स्थायित्व उत्पन्न होता है और जब लय के साथ ताल के बोलों का समावेश होता है तो संगीत सुगम, स्थायी, अनुभूतिगम्य तथा लालित्य से युक्त हो जाता है। लय के साथ ताल का समावेश अवनद्ध वाद्यों में सुगमता से होता है। हलॉकि कुछ विद्वान् ताल के लिए घन वाद्यों का भी वर्णन करते हैं किन्तु वादन–सामग्री की जो प्रचुरता अवनद्ध वाद्यों में उपलब्ध है वो घन वाद्यों में नहीं। आज उत्तर भारतीय संगीत में तबला बहुचर्चित वाद्य है, जो संगीत की लगभग सभी विधाओं में अपना आधिपत्य बना चुका है। यह वाद्य आज से लगभग 300–400 वर्ष पूर्व प्रचलन में आया और इन वर्षों में वाद्य की बनावट तथा वादन–शैली के आधार पर पर्याप्त विकास हुआ और निरन्तर होता जा रहा है। आज के इलेक्ट्रॉनिक युग में ऑटो–ट्यून तबला का भी वादन हो रहा है जो इस वाद्य के विकास तथा बदलाव को दर्शाता है।

मुख्य शब्द– *तबला, वादन–शैली, वादन–सामग्री, अवनद्ध वाद्य, बदलाव*

अध्ययन की विधि– *प्रस्तुत शोध–पत्र में विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है।*

अध्ययन का क्षेत्र– प्रस्तुत शोध–पत्र में तबले की उत्पत्ति के पश्चात् से वर्तमान समय तक की वादन–शैलियों, स्वरूप व वादन–सामग्रियों का विश्लेषण किया गया है।

प्राचीन काल से ही भारतीय वाङ्मय में विविध प्रकार के वाद्यों का वर्णन हमें ग्रन्थों, प्रस्तर शिल्पों, भित्ति चित्रों आदि में देखने को मिलता है। समय के साथ परिवर्तन स्वाभाविक है, अतः समय के साथ–साथ इन वाद्यों में भी परिवर्तन आए। कुछ वाद्यों में आकृति व स्वरूप के साथ नाम भी परिवर्तित हुए और कुछ की वादन–शैलियाँ। हम कह सकते हैं कि वर्त्तमान के जो वाद्य हैं उनके मूल में प्राचीन वाद्य रहे होंगे, जिसके उदाहरण के लिए हम सितार, शहनाई, ढोलक, तबला के स्वरूप को देख सकते हैं। विद्वानों ने वाद्यों को उनकी विशेषता के अनुसार चार वर्गों तत, सुषिर, घन व अवनद्ध में विभाजित किया है। तबला अवनद्ध श्रेणी का वाद्य है, अवनद्ध वाद्य भीतर से पोले अर्थात् खोखले होते हैं और उसके मुख पर किसी जानवर (बकरी, भेड़, गाय, बैल इत्यादि) की खाल का चर्माच्छादन किया जाता है, जिस पर आघात (ताड़न) करने या रगड़ने से ध्वनि उत्पन्न होती है। प्राचीन काल से वर्तमान काल तक के विभिन्न ग्रन्थों में अवनद्ध श्रेणी के वाद्यों का गायन, वादन तथा नृत्य में रंजकता बढ़ाने के रूपमें वर्णन है। ऐसा इस कारण कहा जा रहा है क्योंकि इन वाद्यों से केवल एक स्वर ही उत्पन्न होता है, जिससे इनमें स्वर की अपेक्षा लय प्रधान होती है। अवनद्ध वाद्यों को जानवर की पूँछ, लकड़ी आदि के प्रहार से बजाया जाता था किन्तु जब से अवनद्ध वाद्यों का वादन अंगंलियों से किया जाने लगा तब उनमें वादन की सम्भावनाओं, बजाए जाने वाले वर्णों की मात्रा तथा वाद्य की मधुरता में विस्मियकारी परिवर्तन आया।

'तबला' नामक वाद्य का वर्णन हमें 17 वीं शताब्दी के आस–पास मिलता है। हम ये नहीं कह रहे कि इससे पूर्व तबला वाद्य नहीं था, लेकिन उसके नाम में परिवर्तन रहा होगा। क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि 'तबला के मूल में त्रिपुष्कर वाद्य है, जिसके तीन भाग आंकिक, आलिंग्यक और ऊर्ध्वक थे। 8वीं–9वीं शती के पश्चात् त्रिपुष्कर के स्वरूप में परिवर्तन हुआ जिसमें आंकिक आज के मृदंग के रूप में प्रचलित है और खड़े रहकर बजने वाले भरत कालीन मृदंग (आलिंग्यक और ऊर्ध्वक) के दो भागों का प्रयोग ख्याल गायकी के साथ एक स्वतन्त्र ताल वाद्य के रूप में होने लगा होगा जो यवन–काल में कुछ परिवर्तन के पश्चात् तबला जोड़ी के नाम से प्रसिद्ध हुआ होगा (मिस्त्री,

*शोधार्थी, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, बी. एच. यू.

**शोध निर्देशिका ,आचार्या (गायन), महिला महाविद्यालय, बी. एच. यू.

आबान, 2006, पृ. 113)। यहाँ शोध–पत्र का विषय तबला की उत्पत्ति न होकर तबला के प्रयोग में हुए बदलाव है। अतः विषय की क्षेत्र–सीमा को ध्यान में रखते हुए हम सिर्फ तबला वाद्य में मध्यकाल के उत्तरार्द्ध से अब तक के बदलावों की चर्चा करेंगें।

तबला शब्द का तार्किक अर्थ बताते हुए कथक आचार्य पं० ओमप्रकाश मिश्र कहते हैं– ''वाद्यों के जो शब्द होते हैं वो वाद्य के महत्व के परिचायक होते हैं, जैसे– तबला तीन शब्दों से मिलकर बना है– त – ब– ला जिसमें 'त' ताल को, ब बल को, 'ल' लय को सम्बोधित करता है।" (सरल, भीमसेन, 2014, पृ. 90–91)

तबला का जन्म चाहे भारत वर्ष में कहीं भी हुआ हो या यह वाद्य किसी अन्य देश से भारत लाया गया हो, इसका प्रयोग कई स्थानों पर कई भिन्न नामों से किया जाता रहा हो, किन्तु यह वाद्य मध्य काल के शासक मोहम्मद शाह रंगीले के समय विशेष ख्याति व सम्मानित पद प्राप्त कर सका। साथ ही, इस वाद्य के प्रयोग, रचनाओं, कलाकार तथा घरानों का क्रमबद्ध इतिहास हमें सिद्धार खां के काल से ही प्राप्त होता चला आ रहा है। इस क्रम में हमें तबला की संरचना, उसकी वादन सामग्रियों व शैलियों में समय–समय पर विद्वानों व कलाकारों द्वारा परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होता दिखाई देता है जो इस प्रकार है–

1. **तबला की संरचना में परिवर्त्तन**– तबला की संरचना में जो बदलाव हमें मध्यकाल से वर्तमान काल तक दिखाई देते है वे दो आधारों पर हुए हैं–

(क) आकार में परिवर्तन (ख) निर्माण–सामग्री में परिवर्तन

(क) आकार में परिवर्तन– कहते हैं दिल्ली के उस्ताद सिद्धार खां ने कुछ परिवर्तन कर मृदंग, ताशा, ढोलक, दुक्कड़ व नक्कारा के बोलों की निकासी तबला पर कर अपनी पृथक वादन–शैली उत्पन्न की तथा दिल्ली घराना की नींव डाली । इसके पूर्व तबला कैसा था, इसका केवल अनुमान लगा सकते हैं किन्तु इसके पश्चात् तबला के आकार व इसके निर्माण में जो परिवर्तन हुआ, उसके विषय में कुछ जानकारियाँ मिलती हैं।

मध्यकाल में तबला की जो आकृति चित्रों के माध्यम से प्राप्त होती है, उससे यह कहा जा सकता है कि मध्यकाल में तबला का दाहिना बाएं से अपेक्षाकृत ऊंचा होता था परन्तु जब हम 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के रिकार्डेड विडियो को देखते हैं तो यह ज्ञात होता है कि मध्यकाल के बाद तबला के आकार में कुछ परिवर्तन हुआ होगा जिस कारण 20 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध आते–आते तबला–जोड़ी की एक समान ऊंचाई हमें देखने को मिलने लगी और आज भी तबला–जोड़ी की ऊंचाई एक समान है।

(ख) निर्माण सामग्री में परिवर्तन– आकृति के अतिरिक्त तबला–निर्माण में प्रयुक्त पदार्थ में भी मध्यकाल के उपरान्त काफी बदलाव आए। जहाँ मध्यकाल में तबला केवल मृदा से निर्मित किया जाता था वहीं धीरे–धीरे इसके निर्माण–धातु में परिवर्तन कर दाहिना केवल लकड़ी का और बांया लकड़ी, लोहा, पीतल, तांबा, एल्यूमिनियम का बनाया जाने लगा जो आज भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त आधुनिक समय में कई प्रकार के ऑटो–ट्यून व इलेक्ट्रॉनिक तबला भी विकसित हुए हैं।

2. **तबला की वादन–शैली में परिवर्तन**– तबला की वादन–शैली में भिन्नता का मुख्य कारण घराना तथा कुछ नवीन सोच रखने वाले संगीत मर्मज्ञ रहे जिन्होंने इस वाद्य की रचना में नवीनीकरण कर अवनद्ध वाद्यों में तबला को सर्वोच्च स्थान पर स्थापित किया। सर्वप्रथम उस्ताद सिद्धार खां ने तबला–शैली व शास्त्र का निर्माण किया। इनके द्वारा निर्मित शैली दिल्ली घराना के नाम से विख्यात है। इस घराना में हाथ की दो अंगुलियों से वादन करना इसकी मुख्य वादन–शैली है जिसमें परिवर्तन कर अन्य घरानों की शैली निर्मित हुई है। दिल्ली घराना में दाहिने में मध्यमा व तर्जनी से वादन करने और बांए पर घिस्सा या मींड का काम न दिखाने की प्रथा रही। साथ ही, बंदिशों को अधिक बढ़ी लय में न बजा कर मध्य लय में वादन, मुलायम हाथों द्वारा चांटी के बोलों का बाहुल्य, मुख्यतः चतुस्र जाति की बंदिशें ही देखने को प्राप्त होती है।

इसके पश्चात् हमें अजराड़ा के कलाकारों द्वारा तबला की वादन–शैलियों पर नवीन प्रयोग देखने को प्राप्त हुए जिसमें दाहिने पर निकासी के लिये तर्जनी मध्यमा के साथ अनामिका का प्रयोग व बाएं पर मींड और घिस्से का प्रयोग प्रारम्भ हुआ और दिल्ली घराना की चतुस्त्र जाति की रचनाओं को ड्योढ़ी लय में सजाकर उनकी जाति–रूप परिवर्तन कर उन्हें सुलभ की लय में बजाने योग्य बनाया। कायदे में जो बोल भरी बजाने की प्रक्रिया में रहते है वे मुंदी में भी रहे, इस नियम का खण्डन किया। तबला के इन दोनों घरानों को पश्चिम बाज के अन्तर्गत रखा गया । इसके अलावा लखनऊ, फर्रूखबाद और बनारस

में भी वादन–शैलियों में भरपूर परिवर्तन किया गया जिसमें पूरे पंजे से वादन और जोरदारी का प्रयोग होने से पूरब बाज का निर्माण हुआ।

लखनऊ में कथक और ठुमरी का बाहुल्य था जिस कारण तबला में कथक–नृत्य से जोरदारी व ठुमरी से लग्गी–लड़ी का प्रारम्भ हुआ । जोरदारी के लिए दाहिने हाथ के पूरे–पंजे से वादन तथा बांए पर गुमकदार ध्वनि निकाली जाती है। लव का काम अधिक होने के कारण यह सुर–प्रधान कहलाया। कुछ बंदिशों में 'ते टे' की निकासी उल्टी की जाने लगी अर्थात् 'ते' तर्जनी उंगलि से व 'टे' अनामिका, मध्यमा व कनिष्ठिका से बजाया जाता है।

इसके पश्चात् फर्रूखाबाद ने गतों के माध्यम से खुद को पृथक् वादन–शैली के रूप में स्थापित किया। साथ ही, 'नगाड़ा एवं ढोल वाद्यों पर निकलने वाले अक्षरों का कलात्मक प्रयोग किया व अहमदजान थिरकवा ने पेशकार का परिवर्तित रूप चलन या चाला को हिन्दुस्तान भर में लोकप्रिय बनाया। (माईणकर, सुधीर, 2000, पृ. 229)

बनारस में तबला की वादन–शैली में जो परिवर्तन किए गए, वह तो अवर्णनीय है। यह पहला हिन्दू घराना बना जो पूरी तरह भक्ति–भाव से ओत–प्रोत रहा। बनारस में कथक का घराना होने कारण यहाँ के तबला–वादन में जोरदारी दिखाई दी, जहाँ तबला का वादन केवल दो अंगुलियों से मध्यकाल में होता था आधुनिक काल में बने इस घराना में उसकी जगह पूरे हाथ ने ले ली। स्तुति–परन जैसी बंदिशों का सृजन हुआ और 'प्रस्तुतिकरण में बाएँ के दबाव–घिसाव से कलात्मक घुमारे के जरिए और नाजुक तथा सुमधुर चाट के गूंजयुक्त मदद से की गई प्रस्तुति महफिल में रंग भर जाती है। (माईणकर, सुधीर, 2000, पृ. 229–230) इसी घराना के पं. सामता प्रसाद मिश्र ने बाएं को घुमा कर बजाना प्रारम्भ किया।

अन्त में, पंजाब घराना की वादन–शैली पर एक नजर डालें करें तो यह ज्ञात होता है कि यह किसी भी अन्य घराना से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्बन्धित नहीं रहा। इसकी वादन–परम्परा पूर्णतः पखावज से प्रभावित है। इसमें पखावज की बंदिशों व वादन–शैलियों को आत्मसात किया गया।

3. **वादन–सामग्री में संवर्द्धन**– विद्वानों और कलाकारों ने अपने वंश को अन्य घराना से पृथक करने के लिए तथा अपनी अलग पहचान बनाने की चेश्टा में नवीन रचनाओं का निर्माण एवं प्रचार–प्रसार किया। तबला की वंश–परम्परा दिल्ली के उस्तादों द्वारा आरम्भ हुई जिनके अथक प्रयत्नों के द्वारा दिल्ली घराना की नींव पड़ी। दिल्ली के बाद अजराड़ा घराना बना, इन दोनों घरानों को पश्चिम बाज और लखनऊ, फर्रुखाबाद, बनारस को पूरब बाज के अंतर्गत रखा गया। पंजाब इनसे थोड़ा भिन्न माना जाता है जिसकी चर्चा आगे करेंगे।

दिल्ली घराना में रचनाओं और बोल–समूहों का गठन अन्य अवनद्ध वाद्यों, जैसे– मृदंग, नगाड़ा, दुक्कड़, ताशा, ढोलक के आधार पर किया गया, मृदंग के खुले बोलों का परिवर्तन कर तबला पर बजाया गया, जैसे– परन, टुकड़ा, मुखड़ा–मोहरा, रेला इत्यादि। ये रचनायें पहले केवल मृदंग पर ही बजायी जाती थीं, फिर तबले पर भीं इनका वादन होने लगा। इन रचनाओं के अतिरिक्त उस्ताद सिद्धार खां ने तबला की निजी विशेषताओं में पेशकार, कायदा इत्यादि रचनाओं का गठन किया जो तबला की अपनी मौलिक रचनायें हैं अर्थात् अन्य किसी अवनद्ध वाद्य पर इनका वादननहीं होता। दिल्ली घराना में ही अंगुस्ताना के कायदे बहुत बजाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त अजराड़ा घराना से तबला–वादन में त्र्यस्त्र जाति की बंदिशों का संवर्द्धन हुआ जिसमें नवीन कायदों और टुकड़ों का तबला वाद्य की वादन–सामग्री के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रहा।

इसके बाद लखनऊ घराना में कथक और ठुमरी के कारण बंदिशों के पहले पढंत करने की और फिर उसके वादन करने की प्रथा आरम्भ हुई, साथ ही, इसमें लम्क्षण कायदों, लग्गी–लड़ी, गत, रंगरेला, अनेक शब्दों की रव द्वारा लखनऊ घराना की वादन–सामग्री समृद्ध हुई। इस घरानाके कायदेदिल्ली और अजराड़ा की अपेक्षा लम्बे और अलग शब्द–संपत्ति से रचित होते हैं।

लखनऊ या पंजाब घरानों की अपेक्षा कुछ कम जोरदार किन्तु दिल्ली और अजराड़ाकी अपेक्षा निश्चय ही अधिक जोरदार वादन–शैली रखने वाले फर्रुखाबाद घराना में भी तबला की वादन–सामग्री को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया जिसमें गत, गत परन प्रमुख हैं। पेशकार को रंगतदार बनाकर चाला या चलन के रूप में प्रस्तुत किया। इस घराना ने धिरधिर किटतक तकितधाऽ, तकतक, घात्रक धिकिट, क्डॉ, धिडॉन इत्यादि बोलों से युक्त सौंदर्यात्मक बंदिशें तबला जगत को प्रदान की।

तबला के सभी घरानों की विशेषताओं को लेकर बनारस घराना तबला के अंतिम घराना के रूप में स्थापित हुआ जिसमें नवीन–नवीन बंदिशों का सृजन किया गया। इन बंदिशों में स्तुति–परन, पेशकारके स्थान पर उठान के वादन से प्रारंभ, तीनताल के ठेका और उसकी बोल–बाँट से पेशकार सदृश रचना, गत, फर्द, जोरदार परन (पड़ाल), छन्द रेले से तबला की वादन–सामग्री को समृद्व किया।

अंत में पंजाब घराना की चर्चा करेंगें जो पूर्णतः पखावज की विशेषताओं को समेटे हुए है । पंजाब घराना के कलाकारों ने विविध जातियों की तिहाइयों और भिन्न–भिन्न लयकारियों की रचनायें प्रदान की। इस घराना में गत–टुकड़े की मिश्र जाति की गतें बहुत ही सुन्दर ढंग से रचित हैं। धाड़धाऽ, दुंग दुंग, नगनग, धिटत, धिडत, कडधान, धडन्नाऽऽ, (माईणकर, सुधीर, 2000, पृ. 231) इत्यादि खास पंजाबी शब्द प्रयोगों से पंजाबी तबला की रचनाएँ बाँधी गईं। पंजाबी बोली की, भाषा की छाया अंकित होने से इनकी पढंत सुनने में एक अवर्णनीय आनंद की अनुभूति प्राप्त होती है। इस घराना में उस्ताद अल्लारक्खा खां, उस्ताद जाकिर हुसैन खां ने तबला की रचनाओं में नवीन प्रयोग किये।

निष्कर्ष– लोकसंगीत से तबला में दादरा, कहरवा, खेमटा, धुमाली, दीपचन्दी और पश्तों जैसी कई तालों का समावेश हुआ। जिस प्रकार टप्पा, ठुमरी, माण्ड जैसी गायन–विधाएँ; कथकली, उड़ीसी, कुचिपुड़ी, मणिपुरी, कथक जैसी नृत्य शैलियाँ; शहनाई, बाँसुरी जैसे वाद्यों ने लोकसंगीत से शास्त्रीय संगीत की ओर अग्रसर होते हुये आज इस क्षेत्र में सम्मानित स्थान प्राप्त किया। ठीक उसी प्रकार, तबला भी जो कभी ऊर्ध्वक व आंलिग्य नाम से मार्ग संगीत की शोभा था, कालान्तर में तबला आदि नाम से देशी संगीत के साथ जुड़ा और फिर पुनः शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गया लेकिन लोकसंगीत से जुड़ाव आज भी है।

जहाँ तक घरानों की विशेषता और निश्चित बोल–समूहों का प्रश्न है तो दिल्ली घराना में दाएँ–बाएँ पर तर्जनी और मध्यमा से वादन अधिक देखा जाता है। हालॉकि अजराड़ा घराना जो दिल्ली घराना की शाखा कहा जाता है, इसमें दाएँ पर अनामिका अंगुली को भी तर्जनी और मध्यमा के साथ वादन हेतु प्रयोग किया जाता है। जिस प्रकार पिछले कुछ दशकों में दिल्ली घराना के कलाकार भी अपने वादन में अनामिका का प्रयोग करते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि सभी घरानों के कलाकार अब सभी घरानों की विशेषताओं को आत्मसात कर वादन करते हैं।

समय के साथ बदलाव ही विकास की निशानी है, अतः विद्वानों द्वारा समय के साथ परिवर्तन को स्वीकारते हुए विविध वादन–शैलियों का निर्माण व वादन–सामग्री में परिवर्तन तथा संवर्द्धन कर तबला वाद्य को आज अवनद्ध वाद्य का श्रेष्ठ वाद्य बनाया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1) सक्सेना, वसुधा, ताल के लक्ष्य–लक्षण स्वरुप में एकरूपता, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006
2) मिस्त्री, आबान ई., पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें, पं. केकी. एस. जिजिना, स्वर साधना समिति, मुंबई, द्वितीय संस्करण 2000
3) शुक्ल, योगमाया, तबले का उद्गम, विकास और वादन शैलियाँ, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संशोधित संस्करण 2003
4) वनिता, वेणु, तबला ग्रन्थ मंजूषा, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004
5) मराठे, मनोहर भालचंद्रराव, ताल–वाद्य शास्त्र (एक विवेचन), शर्मा पुस्तक सदन, द्वितीय परिवर्धित संस्करण 1991
6) वशिष्ठ, सत्यनारायण, तबले पर दिल्ली और पूरब, संगीत कार्यालय, हाथरस, पंचम आवृत्ति–अगस्त 1994
7) सरल, भीमसेन, तबला संगत एवं कलाकार स्थान, स्थिति और योगदान, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014
8) माईणकर, सुधीर, तबला–वादन कला और शास्त्र, अ. भा. गान्धर्व महाविद्यालय मण्डल, मिरज, 2000

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

बनारस घराना और 'पद्मभूषण' पं. छन्नूलाल मिश्र

डॉ. इन्द्रेश कुमार मिश्र*

सारांश

बनारस की संगीत परम्परा जग प्रसिद्ध है। यहाँ गायन, वादन और नृत्य के साथ–साथ शास्त्र–चिन्तन का भी अद्‌भुत समागम है। यहाँ के संगीतज्ञ कलाकारों ने विश्व–भर में अपनी पहचान बनाई है। यहाँ के जन–जन में संगीत व्याप्त है। शास्त्रीय हो, उपशास्त्रीय हो अथवा लोक संगीत हो– हर क्षेत्र में यहाँ कलाकार मिल जाएँगे । यहाँ की पाण्डित्यपूर्ण संगीत–परम्परा में कोई विधा ऐसी नहीं जो छूट गई हो । बनारस में अनगिनत संगीतज्ञ विद्वान् हुए हैं। ऐसे ही एक विद्वान् संगीतज्ञ गायक हैं– पं. छन्नूलाल मिश्र जिनका सांगीतिक योगदान यहाँ उल्लेखनीय है।

सूचक शब्द : *संगीत, बनारस, घराना, गायकी, गायन*

प्रविधि : *इस लेख को तैयार करने के लिए अनेक पुस्तकों का अध्ययन कर सामग्री संकलित की गई है। साक्षात्कार एवं व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा भी अपेक्षित सामग्री जुटाई गई है।*

हमारे देश भारत की ऐतिहासिक नगरी बनारस का सांस्कृतिक वैभव विश्व पटल पर आच्छादित है। यहाँ की सांगीतिक पृष्ठभूमि गौरवान्वित करती है। विश्व के प्राचीनतम नगरों से इसकी तुलना की जाती है। यह एक धार्मिक नगरी भी है। काशी, वाराणसी, बनारस इत्यादि नामों से सुशोभित यह अर्द्धचन्द्राकार नगर गंगा के किनारे बसा हुआ है। वाराणसी 'वरुणा' और 'असि' नामक दो नदी वाचक शब्दों से युक्त है। जातकों में भी वाराणसी का विस्तृत वर्णन मिलता है। जैन साहित्य में भी इसका विवरण मिलता है। पालि साहित्य में यह काशी नामक राज्य के रूप में वर्णित है तो बुद्ध के काल में यह शिक्षा का मुख्य केन्द्र रहा है।[1] यह सांस्कृतिक संग्रहालय है। बनारस शैव धर्म का सुप्रसिद्ध स्थान है। साहित्य का केन्द्र भी रहा है यह। असंख्य मन्दिर, मन्दिरों में भजन, कीर्तन, पदगान, मन्त्रोच्चारण आदि इसके धार्मिक पक्ष के साथ–साथ सांगीतिक स्वरूप को भी दर्शाते हैं। यहाँ का संगीत जग प्रसिद्ध है। लोक जीवन हो अथवा अभिजात्य–संगीत यहाँ के जन–जीवन में स्पन्दित होता है। संगीत की गोष्ठियाँ, महफिलें, सम्मेलन आदि इसकी सांगीतिक विरासत के प्रमाण हैं। गायन, वादन और नृत्य तीनों के क्रियात्मक व शास्त्र पक्ष के विद्वानों की लम्बी शृंखला है। रियासतों की अनुपलब्धता के बावजूद यहाँ अद्यतन संगीत की निरन्तर धारा प्रवाहित हो रही है।

बनारस घराना एक विशालकाय परम्परा और प्रयोग का द्योतक है। 'परम्परा और प्रयोगात्मकता के सम्मिश्रण से ही घराने जड़ पकड़ते हैं और बढ़ते जाते है।'[2] बनारस घराना में कल्पनाशीलता और सृजनशीलता भरपूर है। बनारस घराना के सम्बन्ध में पं. राजन मिश्र का कथन है कि बनारस में संगीत की परम्परा बहुत पुरानी है।'[3] इस घराना के संगीतज्ञों ने प्रत्येक विधा को अपनाया है जिसकी लम्बी शृंखला है– पं. दिलाराम मिश्र, पं. बख्तावर मिश्र, पं. शिव सहाय मिश्र, पं. रामसेवक मिश्र, पं. दरगाही मिश्र, बड़े रामदास मिश्र, छोट रामदास मिश्र, महादेव मिश्र, पं. हरिशंकर मिश्र, पं. जालपा प्रसाद मिश्र, पं. अमरनाथ–पशुपति नाथ मिश्र के अतिरिक्त असंख्य महिला कलाकारों ने भी बनारस घराना को सुप्रतिष्ठित किया है– सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी, सविता देवी, पूर्णिमा चौधरी, बागेश्री देवी आदि। गायन के असंख्य कलाकारों ने बनारस घराना की गायकी को शिखर तक पहुँचाया है। यहाँ की रसपूर्ण गायकी सहज ही आकर्षित करती है। 'बनारस के संगीत की एक बहुत बड़ी विशेषता रही है कि पुराने गुणीजनों ने लोकधुनों को क्लासिकल शैली में अपना कर बेमिसाल मजेदारी से उसको सजा दिया। फलतः कजली, झूला, चैती, चैतागौरी, होली के प्रकारों के साथ विवाह के अवसर पर समधी को सुनाये जानेवाली गालियों के गीत और सेहरा आदि सभी यहाँ बनारस के क्लासिकल संगीत में है और तो और बारहमासा भी इन गुणीजनों ने अपना लिया।'[4]

बहुत पूर्व से ही संगीत के संरक्षण का दायित्व घरानों के पास था, इसका सवर्द्धन भी घरानों के द्वारा होता

*सेक्टर 14, वसुन्धरा, गाजियाबाद, उ.प्र.

रहा है। इन घरानों में ही गुरु–शिष्य–परम्परा पुष्पित–पल्लवित हुआ। घरानों के अधीन एक निश्चित परम्परा का विकास हुआ। बनारस घराना में भी संगीत की सभी शैलियों को अपनाया, संगीत की इस धरोहर को सँवारा। बनारस घराना में कलासाधकों की अटूट परम्परा है जिसका सम्पूर्ण समाज शीर्षस्थ स्थान है। यहाँ की गायकी चारों पट की गायकी है। ''काशी के घरानेदार संगीतज्ञों में एक ओर जहाँ ध्रुपद, धमार, होरी, खयाल, अंग के अनेक विशिष्ट कलाकार थे, वहीं कुछ अधकचरे संगीतज्ञों की टिप्पणी के अनुसार क्षुद्र गायन शैली की संज्ञा प्राप्त ठुमरी–टप्पा गायकी के ऐसे–ऐसे रससिद्ध कलाकार थे, जिनकी सूझबूझ, पैनेपन और मधुकरी गायकी का सिक्का कलाकारों से लेकर जनसामान्य तक सभी पर था। यही कारण है कि सभी प्रकार की गायन–वादन शैली की समुचित शिक्षा देने वाले विशिष्ट विद्वानों की जितनी विशाल संख्या इस नगरी को प्राप्त रही, उतनी संख्या में किसी अन्य नगर में मूर्धन्य विद्वान् कलाकारों का मिलना दुष्कर रहा।''[5] ऐसी ही एक विभूति का नाम है– पं. छन्नूलाल मिश्र। किसी परिचय की आवश्यकता नहीं। ये अभूतपूर्व गायकी के स्वामी हैं। पं. कामेश्वर नाथ मिश्र ने लिखा है– 'घर के संगीतमय वातावरण में इन्हें संगीत कला विरासत में मिली किन्तु अन्य घरानों के उस्तादों से भी आपने शिक्षा ग्रहण करने में कोई संकोच नहीं किया और अपने स्वविवेक से उचित परिमार्जन, परिशोधन करते हुए अपनी गायकी को परिष्कृत कर मोहक स्वरूप प्रदान किया। अपने पैतृक स्थान से कार्य व्यवस्था के निमित्त निकलकर आपने अनेक नगरों को अपनी कार्यस्थली का केन्द्र बनाया और अन्त में काशी के सिद्धगिरि मुहल्ले में अपना निजी आवास बनाकर स्थायी रूप से काशी आ बसे। गायन–शैलियों की प्रस्तुति करते समय उनकी व्याख्यात्मक विवरणिका सहज ही श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। खयाल, ठुमरी, चैती, होली, कजली, दादरा, भजन, गजल सभी के अत्यन्त कुशल गायक छन्नूलाल मिश्र अपनी सुरीली, लुभावनी, चपल कंठ–माधुरी से अलग पहचाने जाते हैं।''[6] यहाँ बहुत सही चित्रण किया गया है पंडित छन्नूलाल मिश्र का।

ऐसे महान् संगीतज्ञ मनीषी का मुझे शिष्यत्व ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। 15 अगस्त 1936 को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिला के एक छोटे–से गाँव हरिहरपुर में पं. बद्री प्रसाद मिश्र एवं श्रीमती रानी देव के पुत्र के रूप में एक अत्यन्त गरीब परिवार में बालक छन्नूलाल मिश्र का जन्म हुआ। यह एक धर्मिक एवं सांगीतिक परिवेशवाला कृषक परिवार था। इनके पिता अत्यन्त कुशल तबला वादक के साथ–साथ गायन की विभिन्न विधाओं के भी ज्ञाता थे। ठुमरी के विद्वान् पं. जगदीप प्रसाद मिश्र के प्रपौत्र होने के कारण परिवार को संगीत विरासत में मिला। उनकी माता भी रामायण आदि धर्मिक ग्रन्थों का नियमित सस्वर पाठ करतीं, भजन, लोकगीतों का भी सुन्दर गायन करतीं। पं. छन्नू लाल मिश्र के पिता पं. बद्री प्रसाद मिश्र सभी पाँच भाइयों में सबसे बड़े थे। शेष चार भाई क्रमशः पं. चद्रिका मिश्र (सारंगी वादक), पं. श्याम लाल मिश्र (कथक नर्तक), पं. छांगुर प्रसाद मिश्र (कृषक) और पं. मणिका प्रसाद मिश्र (तबला वादक) थे। पूरे परिवार में शारीरिक श्रम, अनुशासित जीवन और संगीत का ही वर्चस्व था। अर्थाभाव के कारण विपरीत परिस्थितियों की भरमार थी। पं. मिश्र की शिक्षा कक्षा आठ तक ही हो पाई। उसके बाद उन्होंने स्वयं को संगीत को ही समर्पित कर दिन–रात कठोर परिश्रम और रियाज ही को दिनचर्या बना लिया जिसका सुपरिणाम आज पूरे विश्व में दिखाई देता है। पिता के कठोर अनुशासन में शिक्षा और संगीत का परिणाम अद्‌भुत है। सुमधुर बोली और कुशल व्यवहार उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। रहन–सहन, खान–पान सब कुछ बनारस के रंग में साराबोर है। हमेशा ही उचित–अनुचित, निष्पक्ष विचार–व्यवहार, मर्यादाओं का ध्यान रखा है।

पंडित जी को उनके पिता आठ वर्ष की उम्र में उन्हें लेकर बिहार के मुजफ्फरपुर चले गए। जहाँ से दरभंगा राज दरबार के दरबारी गायक किराना घराना के श्री कुमार साहब के गुरु उस्ताद अब्दुल गनी खान साहब मुजफ्फरपुर में ही निवास करते थे। उनके सामने पुत्र का गायन प्रस्तुत करवाया गया, उन्होंने तत्क्षण ही पंडित जी के पिता से कहा कि अपने पुत्र को मुझे सौंप दीजिए, आगे की इसकी संगीत शिक्षा का दायित्व निर्वहण करना चाहता हूँ और ऐसा ही हुआ। पं. मिश्र ने बौद्धिक और मानसिक श्रम के साथ शारीरिक श्रम भी खूब किया। गाँव आगमन पर खेती का कार्य भी करते। ग्रामीण महिलाओं से असंख्य लोकगीतों को सीखा जिसमें 'प्यारी बुआ' नाम की महिला का नाम वे निश्चित लेते हैं। परिणामस्वरूप आज पूरे भारतवर्ष में 70 प्रकार के लोकगीत गाने वाले वे एकमात्र कलाकार हैं। इन गीतों की प्रस्तुतियों के बाद श्रोता–दर्शक आनन्दविभोर हो उठते हैं। इन्होंने अपने उस्ताद से नौ वर्षों तक गुरु–शिष्य–परम्परा के अधीन शिक्षा ग्रहण किया।

सादा जीवन–उच्च विचार के धनी पंडित छन्नू लाल मिश्र का बनारस से खून का रिश्ता है। पं. बड़े रामदास बनारस के कलाकारों के गुरु और पूज्य संगीतकार थे। उनकी बेटी की शादी पं. बग्गड़ महाराज से हुई। पं. बग्गड़ महाराज की बहन पुनीता देवी पं. छन्नूलाल मिश्र की दादी थी। पंडित जी तबला सम्राट अनोखेलाल मिश्र के दामाद हैं।[7] काशी से उनका अद्‌भुत लगाव है, वे कहते हैं– 'चना चबेना, गंग जल जो पूरबै करतार/काशी कबहूँ न छोड़िए विश्वनाथ दरबार'।

पंडित जी ने देश–विदेश में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमों में अपनी असंख्य प्रस्तुतियाँ दी हैं। उन्हें विद्वान संगीत शास्त्रज्ञ ठाकुर जयदेव सिंह और संकटमोचर मंदिर के महंथ पं. बीरभद्र मिश्र आदि का आपार स्नेह मिला। पंडित जी ने अपने कमरे में गुरु महाराज की तस्वीर के बगल में अपने उस्ताद अब्दुल गनी खान और ठाकुर जयदेव सिंह की भी तस्वीर लगा रखी है। वहाँ भगवान राम का दरबार भी आसन्न है।

पंडितजी का परिवार संगीतमय है, इनके दो अनुज पं. हनुमान मिश्र (तबला वादक) और पं. शिव प्रसाद मिश्र (नर्तक) हैं। पुत्र पं. राम कुमार मिश्र विद्वान् तबला वादक हैं तो एक पुत्री डॉ. नम्रता मिश्र वर्त्तमान में मिरजापुर में गायन की व्याख्याता हैं। साथ ही, पंडित जी असंख्य शिष्य–शिष्याओं को संगीत की शिक्षा दे रहे हैं। इनके सांगीतिक योगदान को देखते हुए इन्हें अनेक सम्मान प्राप्त हुए हैं जिनमें 'पद्मश्री', 'पद्मभूषण' उल्लेखनीय है।

सन्दर्भ सूची :

1. जौहरी, रेनू, भारतीय सांगीतिक जगत में वाराणसी का योगदान, 2004, क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी, दिल्ली, पृ. 4–5
2. मिश्र, शम्भूनाथ, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की घराना परम्परा, प्रकाशन विभाग, दिल्ली, पृ. 2
3. वही, पृ. 165
4. पर्वतकर, डॉ. वनमाला, संगीतमय बनारस, पृ.– 170–171
5. मिश्र, कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परम्परा, पृ. आमुख
6. वही, पृ. 126
7. श्रद्धेय गुरुजी पं. छन्नूलाल मिश्र जी की सुपुत्री डॉ. नम्रता मिश्र को वृहद् जानकारी उपलब्ध कराने के लिए हार्दिक आभार।

श्रीकपिल के गीतों में पाखंड-परिमार्जन

डा0 सतीश कुमार सिंह** **अमितेश कुमार***

सारांश

योगर्षि श्रीकपिल 21वीं सदी के आधुनिक योगी संत हैं जिन्होंने अपने ओजमय गीतों से मानवता में दिव्यता के संदेश प्रसारित किए हैं। उन्होंने अपने साहित्य के द्वारा तैंतीस ग्रंथों की रचना कर अध्यात्म का सूक्ष्म संदेश दिया है। विशेषतः धर्म एवं अध्यात्म के नाम पर स्वांग करने वाले मिथ्याचारी, प्रपंची, साधुवेशी बहुरूपिये का बहुत ही विशद् विवेचन कर आम जनता को मिथ्याचारियों के चंगुल में न फँसने के लिए यथेष्ट संकेत दिया है।

संकेत शब्द : *योगर्षि, संत, काव्य, गीत, पाखंड, अध्यात्म*

शोध–माध्यम : *प्रस्तुत शोध–आलेख योगर्षि श्रीकपिल की रचनाओं के अध्ययन को आधार बनाकर तैयार किया गया है ।*

प्रस्तावना

योगर्षि श्रीकपिलदेव मिश्र आधुनिक योगी संत हैं। अपने तपोमय ब्रह्मचर्य जीवन में उन्होंने महती आध्यात्मिक उपलब्धि अर्जित की है। अपने प्रत्यक्ष आध्यात्मिक ज्ञान, सामंजस्यकारी दर्शन एवं निष्काम भक्ति–भाव की जाग्रत अवस्था से उन्होंने आज की पीढ़ी को प्रत्यक्ष प्रभावित किया हैं। आपने 69 वर्ष की आयु में 11 जून 2020 ई. को समाधि लाभ किया है, अतः आज के समकालीन आध्यात्मिक पीढ़ी के गुण–अवगुण से आप भली–भाँति परिचित थे। इनके काव्य–संसार में ऐसे बहुत से स्थल हैं जहाँ अध्यात्म के ढ़ोंग, पाखंड, प्रदर्शन, चतुराई को बहुत ही सूक्ष्मता से उकेरा गया है। प्रस्तुत लघु शोध–निबन्ध में इसी तथ्य का विशद् विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

योगर्षि श्रीकपिल का रचना संसार :

योगर्षि श्रीकपिल ने कुल 33 ग्रंथों की रचना की है जिनमें उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैः– (1) अमृत–पराग (2) पंखुरी के हंस (3) माँझी और झील (4) गुलाल (5) अंकुर (6) अंगार का अंजन (7) शिखा (8) क्रीड़ा एवं (9) श्रद्धा। इन ग्रंथों के अलावा भी 'विवेक सरिता' नामक गद्य–पद्य संग्रह में योगर्षि श्रीकपिल की कुल पैंतीस काव्य रचनाएँ प्रकाशित हैं। इन सभी काव्य–ग्रंथों का प्रकाशन श्रीकपिल कानन आश्रम, मधेपुर के द्वारा किया गया है। इसका प्रकाशन वर्ष 2000 ई0 से लेकर 2020 ई0 तक रहा। यद्यपि इनकी प्रकाशन अवधि बीस वर्षों की ही है, तथापि इनका सृजन–काल एक–दूसरे से काफी पृथक है। श्रद्धा की रचना जहाँ योगर्षि ने बाल्यावस्था में ही की तो 'गीता के दो शब्द' उनके देहत्याग से मात्र दो महीने पूर्व ही लिखी गई है। इस कारण से उनकी रचनाओं का विपुल भंडार हमें प्राप्त होता है जिनमें भाव–विचार की अभिव्यक्तियों की बहुविध विधा है। काव्य–संग्रह के अतिरिक्त योगर्षि श्रीकपिल के गद्य लेखन में कई लघु ग्रंथ एवं शोध–कार्य प्रकाशित हैं जिनमें (1) प्रेत रहस्य, (2) तत्त्व बोध, (3) सूक्तिशतक (एक से चार खण्ड तक), (4) कपिलोपनिषद भाग 1 एवं 2, (5) शिक्षा–शती (6) कवच–संग्रह (7) मृत्यु चक्र (8) योगर्षि के पथ में प्रभु ईसा (9) योगर्षि की साधना–धारा आदि प्रमुख हैं। इन रचनाओं में भी योगर्षि ने सूक्ष्मता से आध्यात्मिक स्वांग, कूट–कपट, बड़प्पन, यशोलिप्सा एवं अन्य पाखंड कृत्य का विशद् प्रकाशन किया है।

'पाखंड' शब्द परिचय :

पाखंड शब्द संस्कृत के 'पा' संज्ञा जिसका अर्थ रक्षा करना होता है में क्विप्+न खंड (खंडन करना) क+अण् के मेल से बना है। पाखंड में इनि प्रत्यय के मेल से पाखंडी शब्द बना है जिसका अर्थ वेद विरूद्ध आचार करने वाला, वेदाचार का खंडन या निंदा करने वाला, दूसरों को ठगने के लिए आडंबर एवं ढोंग को रचनेवाला है।

पाखंड के लिए शब्द सबसे पहले प्राचीन रोम से

*शोधार्थी (हिन्दी), ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा
**सहायक प्राध्यापक, (हिन्दी), एम.एल.एस.एम. कालेज, दरभंगा

चलन में आया था। यह उन अभिनेताओं का नाम था जो मुखौटा के द्वारा हर्ष, क्रोध या उदासी के भाव को दिखलाने में सक्षम थे। इस शब्द का निहितार्थ ऐसे व्यक्ति से था जो परिस्थिति के आधार पर अपना चेहरा बदलने में माहिर थे। इस्लाम में पाखंडी के लिए एक शब्द प्रयोग होता है मुनाफ़िकी जिसका अर्थ यह है कि मुनाफ़िक ख़ुद को एक धर्मनिष्ठ मुसलमान दिखाता है लेकिन वो आस्तिक नहीं है। इस्लाम पाखंड को अविश्वास से भी बड़ा पाप मानता है। यहूदी धर्म में भी पाखंड एक नकारात्मक एवं अशोभनीय कार्य है। ऐसे उदाहरण टोरा, तल्मूडा और हलाखा में पाए जा सकते हैं। अंग्रेजी में पाखंड के लिए 'हाइपोक्रिसिस' शब्द है जो ग्रीक शब्दावली से आया है। इसके कई अर्थ हैं जिनमें प्रमुख है–ईर्ष्या, नाटक–अभिनय, अभिनय करना, कायर या विघटन। यदि ग्रीक शब्द का संधि–विच्छेद करें तो यह दो शब्दों हाइपो और क्रिसिस के मेल से बना है। हाइपो का अर्थ है 'अंडर' और 'क्रिसिस' क्रिनिन क्रिया से निःसृत है जिसका अर्थ है झारना या निर्णय लेने की क्षमता में कमी को इंगित करना। यह कमी किसी भी क्षेत्र की स्थापित मान्यताओं में हो सकती है। योगर्षि श्रीकपिल ने नैतिक और धार्मिक मान्यता के साथ–साथ अन्य व्यावहारिक पक्ष में उपस्थित पाखंड को लक्ष्य कर काव्य–कथन किया है। इस क्षेत्र में वे अक्सर ऐसे लोगों को लक्ष्य करते हैं जो दावा तो भगवान के शांतिदूत होने का करते हैं किंतु सही मायने में वे उस नैतिक उच्चता एवं आध्यात्मिक श्रद्धा–संयम को धारण नहीं करते हैं।

योगर्षि श्रीकपिल के काव्य में पाखंड का चित्रण– 'श्रद्धा' ग्रंथ में कवि एक दोहा में लिखते हैं–

कर की घंटी टन–टन बाजे मन की घंटी नाँहि
कपिला मन–घंटी बिना हरि मिलत हैं नाँहि[1]

प्रस्तुत दोहा में योगर्षि श्रीकपिल प्रभु भक्ति के नाम पर मात्र धार्मिक कर्मकांडों का विरोध कर रहे हैं। हम समाज में ऐसे व्यक्ति को बहुधा देखते हैं जो पूजा–पाठ करने में किसी उपचार को नहीं छोड़ेंगे– सुबह स्नान करना हो, चंदन–टीका लगाना या घंटी डुलाना अथवा शंख फूँकना– वे सभी कार्यों में पारंगत होंगे किंतु भगवद्भक्ति से भींगे हृदय की नैसर्गिक कोमलता, सरलता से वे वंचित होते हैं। इन कर्मों के द्वारा वे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं पर उन विकारों को झाड़ने के लिए प्रतिबद्ध नहीं होते हैं जो आध्यात्मिक जीवन की सच्चाई की अनिवार्य शर्त है। यही पाखंड बाहरी वेश–भूषा को सजाता है लेकिन आंतरिक सज्जा के प्रति लापरवाह रहता है:–

चंदन खाक लगाय के जट्टा लियो बढ़ाय
कर कमंडल खनती धिये झोरी बगल लियो लपटाय
बहुरूपिया बन बौराय .....हो बहुरूपिया बन बौराय[2]

पंखुरी के हंस (2002) में प्रकाशित इन काव्यांश में योगर्षि ने मात्र बाहरी वेश–भूषा से साधु दृष्टिगोचर होने वाले की तुलना बहुरूपिया से किया है। बहुरूपिया जैसे अलग–अलग रूप बनाकर लोगों को प्रभावित कर अपना गुजर–बसर करता है वैसे ही साधुवेश में पाखंडी अपना गुजर करते हैं। धार्मिक क्षेत्र में सूक्ष्मता से तौलता योगर्षि श्री कपिल का एक गीत है 'मौसम चोली बदले माय'।

पैसा भजाबे हिजरनी हाट बाजार में जाय
मंदिर मूर्ति बास बनावे घर–घर तिलक लगाय
मौसम चोली बदले माय!
टीला चढ़कर पोथी बाँचे केला भोग लगाय
मजमा लगाबे ताली पीटे बंदर नाच दिखाय
मौसम चोली बदले माय!
पापड़ तोड़े राजमहल में खुर पर दुनिया–लुटाय
चाँद सूरज से बचा नहीं वह कूप में गोता खाय
मौसम चोली बदले माय![3]

ईश्वर भक्ति के नाम पर धर्म, अर्थ, काम के अभिलाषी, मान–सम्मान के इच्छुक व्यक्ति साधु–रूप में बड़ा–बड़ा आश्रम बनाते हैं, पूजा–स्थल बनाते हैं, कोई फलाहारी होकर तो कोई जलाहारी होकर तपस्या भी करते हैं किंतु जगत में विपुल धन, मान–सम्मान के अधिकारी ऐसे व्यक्ति यमालय में गोता ही खाते हैं। जगत में एक दिन जब उनके कुकृत्यों का भांडाफोड़ होता है तो जन आस्था ही आहत होती है। योगर्षि इन पाखंड वृत्तियों से आच्छादित साधु–समाज को देखकर दुखी हैं। भरतभूमि में जहाँ त्यागी, तपस्वी, वैरागी, अकिंचन भगवद्भक्त की महिमा का यशोगान हुआ है वहाँ इन धनाढ्य, राजपोषित, राजा के ही समान ऐश्वर्यशाली भेषधारी को ही लोग श्रेष्ठ मानते हैं। इसी पाखंड, ढोंग एवं बनावटीपन से धर्म के ध्वजवाहक जब तमसाच्छन्न होते हैं तो कई प्रकार की धार्मिक कुवृत्तियों का समावेश धर्मस्थलों में हो जाता है–

भोज–भंडारा, शहर नगाड़ा
नयना काजल धारी
मौज क्रीड़ा तृषित बत्तख
क्षिति–क्षितिज दिया बिगारी[4]

इन पंक्तियों में योगर्षि श्रीकपिल कहना चाह रहे हैं कि वे साधु निकृष्ट कोटि के हैं जो अपने तमोगुण प्रकृति का पोषण करते हुए ही तपस्यारत रहते हैं। स्वयं को साधु घोषित कर ये प्रपंची अपनी क्षुद्र लालसा, तृष्णा एवं कामना को तुष्ट करने में संलग्न रहते हैं। ये अपना लोक एवं परलोक दोनों बिगाड़ लेते हैं। अपने तमोगुण के काजल से इनकी आँखे काली रहती हैं। सूक्ति शतक के द्वितीय भाग में योगर्षि श्रीकपिल का कथन है– 'Morality and good conducts are the eyes of religion which yield you the contribution of divine love'[5] अर्थात् नैतिकता एवं सदाचार धर्म की आँखें हैं जो भगवत–प्रेम प्रदान करता है। जब तक हमारा चरित्र निर्मल नहीं है तब तक हम देवी–देवताओं की पूजा के नाम पर चाहे जितना भोज भंडारा कर लें, पूरे शहर में नगाड़े बजाकर, प्रचार–प्रसार कर लें किंतु हमारी उपलब्धि शून्य ही रहेगी। न तो हम इस जगत में किसी विश्वासी को भगवद्प्रेम का उपहार दे सकते हैं और न हि देवता को प्रसन्न कर उनका आशीष ले सकते हैं। इसी संदर्भ में योगर्षि श्रीकपिल का दूसरा कथन है–निर्मल चरित्र ही इष्ट और उपासना है।[6] अर्थात् हमारे इष्ट मूर्ति में नहीं हैं, हमारे निर्मल चरित्र में हैं और उनकी उपासना के स्रोत भी हमारे सदाचरण ही हैं। भले ही हम उन्हें फल–फूल, नैवेद्य, अक्षत चंदन आदि अर्पित न करें किंतु यदि हम सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अस्तेय, अद्रोह, अद्वेशादि वृत्तियों को तपपूर्वक अपने चित्त में प्रतिष्ठित कर लेते हैं तो हमारी वास्तविक उपासना संपन्न हो जाती है। हम बाहरी कर्मकांड एवं प्रदर्शन से जगत को प्रभावित कर सकते हैं किंतु देवता तो हमारा कठोरता से निरीक्षण करते हैं–

शशि दिवाकर जूता खोले तरूवर की पहचान
चंदन माला हाँफ रहे है ताल–तलैया ज्ञान[7]

कवि कहते हैं कि शरीर के छूटते ही सूर्य और चंद्रमा जीव के दिन–रात में किये गए पुण्य–पाप का साक्षित्व देते हैं तब बाह्य आडंबर में लिप्त धर्माचार्य को धर्म–अधर्म का ठीक–ठीक ज्ञान हो जाता है। उनके अनुसार वास्तविक धर्म की कसौटी तो वैराग्य है। इसे धारण करने वाला ही यशलिप्सा, धनलिप्सा या पुत्रलिप्सा से मुक्त हो सदाचरण को धारण करता है। इसे किसी एकान्त प्रदेश में भी धारण किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि बड़े–बड़े मंदिर–मस्जिद आदि देवालयों में ही भगवद्भक्ति प्राप्त किया जा सके बल्कि वहाँ प्रदर्शन, पाखंड की ही अधिक संभावना है–

बाजे पायल धुआँधर में पास पड़ोस अनजान
डूब गया सब मस्जिद गिरिजा चीटी चढ़े विमान[8]

योगर्षि श्रीकपिल चींटी के विमान चढने की कल्पना से यह जता रहे हैं कि भले ही कोई इस जगत में चींटी जैसा अदना, उपेक्षित, दीन–हीन क्यों न हो किंतु यदि उसमें उत्तम चरित्र, भगवद्भक्ति और सत्य आचरण है तो वही स्तुत्य है। 'शिक्षा शती' की बारहवीं उक्ति में योगर्षि लिखते हैं कि दृश्य जगत से अदृश्य जगत का पुरस्कार पाना अधिक महत्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट है कि वे ऐसे व्यवहार, नीति या मनोदशा को निन्दनीय मानते हैं जो संसार में स्वयं की श्रेष्ठता सिद्ध करने का स्वांग मात्र हो।

केहर नृत्य अंबुद पाकर यह जानत सब कोय
बायस वृथा स्वांग करे मृगा चौकड़ी सोय[9]

अर्थात् सदाचारी तो उस मोर के समान है जो प्रभु रूपी बादल को पाकर हर्षातिरेक में नृत्य करते हैं। वहीं पाखण्डी कागा यदि मोर का स्वांग करे तो क्या हो– फिर तो साधुजन को हँसी ही आती है:–

वायस नृत्य जलद देख केहर रहे मुस्काय
बक ग्रीवा कंठी लख मराल अचंभा जाय[10]

पाखंड का कारण एषणा ही है, जो तीन प्रकार की होती है– लोकैषणा, पुत्रैषणा एवं वित्तैषणा। लोकैषणा से ग्रस्त मनुष्य यश–मान हेतु पाखंड का सृजन करता है। भले ही उसने धन एवं कुटुम्ब–परिवार का त्याग कर अन्य दो एषणाओं पर विजय प्राप्त कर लिया हो किंतु लोक में पूज्य होने का दंभ त्यागना अति कठिन है। योगर्षि श्रीकपिल ऐसे साधक की सूक्ष्म मनोवृत्ति का अध्ययन कर कहते हैं–

काया को क्लेश देवे मनसा व्योम उड़ाय
नगर शहर को जीत लेवे इन्द्रिय जीती न जाय।[11]

अर्थात्, कोई अपने स्थूल शरीर को संयम, तपस्यादि के द्वारा क्लेश दे परंतु मन को बेलगाम संसार में रमण करने दे तो फिर तपस्या का क्या मतलब? एषणा पर विजय प्राप्त नहीं हुआ तो नगर–शहर में जगत्प्रसिद्ध होने का क्या फायदा? भगवान श्री कृष्ण भी गीता में ऐसे साधक की साधना को मिथ्याचरण कहते हैं जो ऊपर से भोग का त्याग किए रहते हैं किंतु मन–ही–मन उनकी तृष्णा भोग में रमती रहती है। उनके मिथ्याचरण के द्वारा न तो लोक में ही कुछ

पाया जा सकता है और न हि परलोक में। अतः भगवद् श्रद्धा के लिए योगर्षि श्रीकपिल सम्मान की इच्छा को परम बाधा मानते हैं–

जहाँ श्रद्धा सम्मान चाहे भक्ति कहाँ से होय
बिन पूर्ण समर्पण के पिया न पावे कोय[12]

अर्थात् जहाँ श्रद्धा को सम्मान की आवश्यकता होने लगती है वहाँ समर्पण में कमी आने लगती है। हमें अपने इष्ट से मात्र प्रेम की कामना रखनी चाहिए न कि सम्मान या प्रशंसा की। भक्ति में औपचारिकता तो बाधक ही है। जो वास्तविक साधु नहीं है अपितु साधु का भेष बनाकर धन एवं यश कमाने की इच्छा रखते हैं, वे वास्तविक साधु से द्वेष रखते है–

गणिका पल्लो बक चाप से, तीर्थ वाटिका जाय
मराल चन्द्रमुखी देखकर, तिल–तिल कर जल जाय[13]

जो बक की तरह पाखण्डी हैं वे हंस के समान पवित्र साधु के समक्ष स्वयं को हीन देखकर उनसे ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रतिस्पर्धा की भावना रखकर साधु से बैर–विरोध रखते हैं। प्रतिशोध की भावना में स्वयं को अतिश्रेष्ठ साधु घोषित करने के लिए वे और भी सूक्ष्म से सूक्ष्मकोटि का पाखंड धारण करते हैं–

मौनव्रत में बगुला बैठे निहारे गहीर तरंग
मत्स्य बेचारा साधु जानकर फँसे चोंच बेढंग[14]

उनका बाह्याचरण एकदम पवित्र साधुओं जैसा होता है जैसे मौनव्रती बगुला सरोवर में ध्यानस्थ योगी के समान एकाग्रचित दिखलाई पड़ता है और उसके शिकार होती हैं भोली–भाली भक्त–रूपी मछलियाँ जो बक को साधु के समान ही जानकर उसके चोंच में फँसे जाते हैं। ऐसे धूर्त समय, पात्र एवं परिस्थिति का अपने हितार्थ उपयोग करना बखूबी जानते हैं। भले ही, वे चील और गिद्ध की तरह आकाश में उड़ान भरते हों, आकाश की विशालता की जानकारी रखते हों लेकिन उनका मन जानवर के देह माँस पर रहता है। पाखंडीजन बड़े–बड़े शास्त्रोपदेश, नीति एवं ज्ञान की चर्चा करते हैं लेकिन उनका मन दूसरों की धन–संपत्ति के हरण पर ही टिका रहता है।

चील गिद्ध उड़े अनंत करे सैर घन देश
दिल उसका मरघट रहे अजीब नीति उपदेश[15]

पाखंडी अपनी लालसापूर्ति हेतु दूसरों को लाभ का झांसा देते हैं। आजकल धर्म, ज्योतिश आदि के क्षेत्र में आर्तजनों को उनके मनोनुकूल लाभ का झांसा देकर धूर्त व्यक्ति अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं–

लाभ दिखाबे कुरंग को गहरे विपिन घास
उर में कंटक वृक्ष लगाकर करे शशक का नाश[16]

सामान्य व्यक्ति प्रारब्ध, ग्रहादि से पीड़ित हो ऐसे साधु, पंडित, ज्योतिश के शरणागत होते हैं तो वे भले ही जातक की पीड़ा की प्रकृति और उपचार के बारे में कुछ भी न जानते हों लेकिन उन्हें नाना प्रकार के अनुष्ठान और उपाय से शीघ्र लाभ होने का जोरदार आश्वासन देते हैं जिसका एकमात्र उपदेश उनसे पैसा ऐंठना एवं अन्य प्रकार के लाभों को उठाना ही रहता है।

आजकल धर्म के नाम पर सुनियोजित पाखण्ड का ही परिणाम है कि आम जनता धर्म, सम्प्रदाय के नाम पर बँटकर धार्मिक, साम्प्रदायिक गुटबाजी का अंग बन रही है। सच्चे धर्मोपदेशक इनके विशाल शिष्य–समूह एवं भौतिक ऐश्वर्य के समक्ष कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं रखते–

भेड़ा वाले कोटि सहस्त्र अरण्य करे विकास
बिढ़नी राजा भय से गुड़िया रहे उपास[17]

यदि कोई विवेकवान इन पाखंडियों के प्रपंच को उद्घाटित करने हेतु इनकी आलोचना करता है तो गुरू महाराज के लाखों शिष्य ततैये की झुंड की तरह उन पर धावा बोल देते हैं। इनके सामर्थ्य प्रभाव को देखकर सत्पुरूष सत्यवचन भी कहने में सहमते रहते हैं किंतु योगर्षि श्रीकपिल ऐसे मिथ्या धर्माचार्यों के पाखण्ड के परिणाम के प्रति आगाह करते हुए कहते हैं–

भेड़–बटेर खूब लडेंगे देखेगी रानी खेल
भीगेगी लहू से धरती कुत्ता कागा हेल[18]

सम्प्रदाय के नाम पर समाज में कटुता, द्वेश के भावों को फैलाने वाले धर्माचार्यें के कुकृत्यों का बड़ा ही दुष्परिणाम होगा। एक दिन अपने मत के समर्थन एवं दूसरे मत के विरोध में करोड़ों अनुयायी भेड़–बटेर की तरह लड़ेंगे। एक–दूसरे के लहू के प्यासे हो जाएँगे। इनसे फायदा उठाकर पाखंडी सत्ता की रोटी सेकेंगे।

उपसंहारः

पाखंड, मिथ्याचरण एवं नैतिक अवमूल्यन की इन सूक्ष्म व्याख्याओं से यह स्पष्ट है कि योगर्षि श्रीकपिल अध्यात्म एवं धर्म के धवल–पंथ पर पाखंडगत एक भी पंक

को पनपते नहीं देखना चाहते हैं। वे साधक से यह अपेक्षा रखते हैं कि दिव्य प्रकृति को अंगीकार करने की सभी शर्तों को स्वीकार करे। अपने चित्त की वृत्तियों का पूर्ण शोधन करे और अध्यात्म का एक गंभीर अन्वेषक बने, न कि हल्की–फुल्की साधना से, भाव के एक लहर से अनुप्राणित होकर जरा–सा भगवान के नाम पर आँख में आँसू आ गए, लोम सिहर गया तो समझ लिए कि अब अपना काम हो गया फिर अपने गुणावलोकन का त्याग कर प्रचार–प्रसार में लग गये–

अश्रु बहाया नेत्र से लोम सिहरे यार
दो चार चित्र देखकर फिर–फिर करे प्रचार[19]

भगवद्भक्ति की लता को पुष्ट कर सतत् नवधा अंग से भगवद्–प्रेम की आराधना कर ही जीव के अज्ञानी, शुष्क, विषयी चित्त का भावान्तरण होता है जिसे प्राप्त करने में एक सुदीर्घ साधना की आवश्यकता होती है। इसे प्राप्त किये बिना ही स्वयं को संत घोषित कर प्रचार–प्रसार करना मानवीय अपूर्णता ही है।

धर्म का क्षेत्र अत्यंत श्रद्धा का है। यहाँ चारित्रिक शुद्धि सर्वोच्च स्तर पर होनी चाहिए। आधुनिक युग में धर्म के बड़े–बड़े आचार्यों पर भी अंगुली उठ रही है। सभी युग में युगद्रष्टा धर्माचार्यों ने मिथ्या आचरण की पोल खोली है किंतु आधुनिक काल में मिथ्याचरण के क्षेत्र और भी सूक्ष्म हो गए हैं। अतः समसामयिक संदर्भ में योगर्षि श्रीकपिल ने साधक के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर मिथ्याचरण को इंगित कर यथार्थ अध्यात्म प्रकाशित किया है। आत्मतत्व इतना गहन है कि बड़े–बड़े ऋषि–मुनि, आचार्य से शिष्य दीक्षा प्राप्त कर भी आमजन उसकी ठीक–ठीक धारणा नहीं कर पाता है। उसके सहज अनुशीलन के लिए यह आवश्यक है कि अपने समर्पण को अधिक–से–अधिक दोषमुक्त, पाखंड एवं प्रदर्शन से रहित सच्चा बनाए। तदर्थ योगर्षि द्वारा किया गया पाखंड परिमार्जन अत्यंत उपयोगी है। चाहे प्रतिष्ठा के सिहांसन पर विराजमान साधक के समर्पण में कमी हो या एक अकिंचन तपस्वी के– योगर्षि ने दोनों का बहुत ही गंभीर अध्ययन किया है। उनकी रचनाओं के विपुल संसार से उन संदेशों को चुनने की आवश्यकता है जो हमें सत्पथ पर आरूढ़ करे। अंत में उन्हीं के शब्दो में यह संदेश प्रासंगिक है–

कहता कहता जात हूँ सुना नहीं संसार
पीछे तो पीछे रहा आगे दुख अपार

संदर्भ सूची :

1. श्रीकपिल, योगर्षि, श्रद्धा, प्र. श्रीकपिल कानन आश्रम, मधेपुर, वर्ष 2015, पृ. 31
2. श्रीकपिल, योगर्षि, पंखुरी के हंस, प्र. श्रीकपिल कानन आश्रम, मधेपुर, वर्ष 2005, पृ. 44
3. श्रीकपिल, योगर्षि, माँझी और झील, प्र. श्रीकपिल कानन आश्रम, मधेपुर, वर्ष 2003, पृ. 278
4. वही, पृ. 335
5. श्रीकपिल, योगर्षि, सूक्ति शतक भाग–2, प्र. श्रीकपिल कानन आश्रम, मधेपुर, वर्ष 2012, पृ. 35
6. श्रीकपिल, योगर्षि, सूक्ति शतक भाग–1, प्र. श्रीकपिल कानन आश्रम, मधेपुर, वर्ष 2011, पृ. 35
7. श्रीकपिल, योगर्षि, माँझी और झील, प्र. श्रीकपिल कानन आश्रम, मधेपुर, वर्ष 2003, पृ. 278
8. वही
9. श्रीकपिल, योगर्षि, गुलाल, प्र. श्रीकपिल कानन आश्रम, मधेपुर, वर्ष 2008, पृ. 418
10. वही पृ. 419
11. श्रीकपिल, योगर्षि, शिखा, प्र. श्रीकपिल कानन आश्रम, मधेपुर, वर्ष 2014
12. वही
13. श्रीकपिल, योगर्षि, अंगार का अंजन, प्र. श्रीकपिल कानन आश्रम, मधेपुर, वर्ष 2006, पृ. 359
14. वही, पृ. 375
15. वही, पृ. 76
16. श्रीकपिल, योगर्षि, गुलाल, प्र. श्रीकपिल कानन आश्रम, वर्ष 2008, पृ. 264
17. वही, पृ. 378
18. वही, पृ. 379
19. वही, पृ. 403

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

स्तोम 2022

पारंपरिक लोक संगीत और चिकित्सा

डा. ममता रानी ठाकुर**

रीना दत्त*

शोध सारांश

लोक–जीवन में जो कई प्रकार के संस्कार गीत, लोक गीत एवं उत्सव गीतों की छटा दिखाई पड़ती है उसमें लोक जीवन के उल्लास–विषादमय भावाभिव्यंजना के साथ–साथ संगीत चिकित्सा का भी सूक्ष्म स्वरूप दिखाई देता है। सोहर गीत से प्रसवोपरांत पीड़ा एवं अवसाद से उबरने में सहायता मिलती है तो पराती गीत हमें दिनभर तरोताजा रखने में सहायक होता है। गोदना गीत का माधुर्य गोदना गुदवाने की पीड़ा को सहने की शक्ति देता है। लोरी गीत, पचनियाँ गीत, विरहा गीत, समदाउन गीत, झिझिया गीत, जट–जटिन आदि गीतों के द्वारा आधिदैविक, आदिभौतिक एवं आध्यात्मिक तापों का शमन होता है।

कुंजी शब्द– *लोक संगीत, संगीत चिकित्सा, पारंपरिक गीत।*

शोध–माध्यम– *प्रस्तुत शोध–आलेख द्वितीयक स्रोतों के साथ–साथ लोक परम्परा के विभिन्न गीतों के अध्ययन को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया है ।*

प्रस्तावना

लोक–संगीत लोक–जीवन की आत्मा है। इसके बिना किसी भी लोक–परंपरा का उत्सव विधि–विधान, रीति–रिवाज, संस्कार निर्वहण निष्प्राण होता है। ये उतने ही प्राचीन हैं जितना वेदों की दिव्य और चेतना से परिपूर्ण ऋचाएँ जिनमें जीवन मात्र को त्रिताप से मुक्ति के मंत्र संयोजित हैं। ये त्रिताप दैहिक, दैविक और भौतिक रूप से तीन प्रकार के कहे गए हैं।

मनुष्य जब अपने आचार–विचार, आहार–विहार में असंयमित व्यवहार करने लगता है तब उसका प्राण दोषयुक्त हो जाता है। हमारी संपूर्ण सत्ता अधोगामी हो जाती है। चेतना प्रकृति–विमुख हो जाती है, मन विषय–संवेदना से पीड़ित हो जाता है जो मानसिक संताप का जनक होता है।

कभी–कभी हमें ऐसे क्लेष और दुखों को झेलना पड़ता है जो देश, काल और परिस्थितिजन्य होता है जो इस संसार में जीवन–यापन के क्रम में दूसरे जीवों और निर्जीवों से प्राप्त होता है, जैसे–कभी साँप–बिच्छू आदि सरीसृपों का भय तो कभी शेर–बाघ आदि हिंसक पशुओं के द्वारा मानव को क्षति पहुँचाया जाना। कभी बाढ़, भूकंप, वज्रपात, अकाल, महामारी इत्यादि के द्वारा मानव दुखों को झेलने हेतु बाध्य होता है। यही बाध्यता मनुष्य को अस्वस्थ बनाती है।

आचार्य चरक और सुश्रुत जो आयुर्वेद विशारद कहे गए है के अनुसार स्वास्थ्य और आरोग्यता का दृष्टिकोण समझना आवश्यक है। आचार्य चरक के अनुसारः–

समदोशः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।[1]

अर्थात्– वात, पित्त एवं कफ आदि शारीरिक दोषों की समता, शरीर की तेरह प्रकार की अग्नियाँ, सप्त धातुएँ तथा शरीर की संपूर्ण मल–क्रियाएँ जब सटीक कार्य कर रही हों तथा आत्मा, इंद्रिय एवं मन प्रसन्न हों तब ऐसी अवस्था को स्वास्थ्य एवं ऐसे जीव को स्वस्थ कहा जाता है। आचार्य चरक के अनुसार :–

धर्मार्थकाममोक्षाणांआरोग्यं मूलमुत्तमम्।[2]

अर्थात् आरोग्य ही धर्म, अर्थ, काम तथा मो़क्ष की जड़ है।

मनुष्य अपने शरीर के बाहरी और भीतरी दोनों ही परिस्थितियों से प्रभावित होता रहता है। अनुकूल परिस्थितियाँ जहाँ सुख देती हैं वहीं प्रतिकूल परिस्थितियाँ दुख का कारण होती हैं किंतु यदि संवेदनशीलता का संतुलन ही बिगड़ जाता है तो फिर मनुष्य का विषादग्रस्त होना अवश्यंभावी है। गीता के प्रथम अध्याय के श्लोक संख्या 28 तथा 30 को 'विषाद' के उदाहरण के रूप में हम प्रस्तुत कर सकते हैं।

*शोधार्थी, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

**शोध निर्देशिका, संगीत विभाग, एम.एल.एस.एम. महाविद्यालय, दरभंगा

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे में रोमहर्षश्च जायते ।। 28 ।।[3]

युद्ध क्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी अपने स्वजनों को देखकर अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं कि मेरे अंग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीर में कम्प और रोमांच हो रहा है।

गाण्डीवं संस्रते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भमतीव च मे मनः।।30।।[4]

हाथ से गांडीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जल रही है तथा मेरा मन भ्रमित–सा हो रहा है, इसलिए मैं खड़ा रहने में भी समर्थ नहीं हूँ। यहाँ अर्जुन का संपूर्ण व्यक्तित्व विषाद के कारण बिखरता हुआ प्रतीत होता है । इसलिए गीता के प्रथम अध्याय का नाम ही 'अर्जुन विषादयोग' रखा गया है ।

मुख्य रूप से विषाद की दो अवस्थाएँ मानी गई हैं–

1. **प्रतिक्रियात्मक विषाद**– कुछ लोगों का मन अधिक तनाव सहन नहीं कर पाता है, वे प्रतिकूल परिस्थिति में समझौता नहीं कर पाते हैं और विषादग्रस्त हो जाते हैं ।

2. **आंतरिक विषाद**– विषाद का यह प्रकार बिना किसी स्पष्ट कारण के दिन–प्रतिदिन बढता रहता है तथा इसके उत्पन्न होने का कारण आंतरिक होता है । अतः कहा जा सकता है कि यह मस्तिष्क में होने वाले रासायनिक परिवर्तनों के कारण होता है। कुछ लोग अच्छे हालात में भी विषादग्रस्त रहते हैं ।[5]

ऐसे में जब लोक संगीत चिकित्सा की ओर हम दृष्टिपात करते हैं तब पाते हैं कि विपरीत परिवेश और स्थिति में सकारात्मक ऊर्जा और वैचारिक संतुलन यह बड़ी सहजता से ऐसे प्रदान करता है जैसे कोई जादू हो। इतना ही नहीं, अनुकूल परिस्थितियों में यह हमारे मन में उत्साह का संचार करते हुए हमारे सुखानुभूति को कई गुणा बढा देता है। डा. मनोरमा शर्मा ने अपने ग्रंथ स्पेशल एजुकेशन 'म्यूजिक थैरेपी' मे लिखा है: 'Music works like a sedative and acts as a trenquilizer for the human being, It can direct a man's behaviour on positive tunes and can help in making the patient more co-operative.'[6] डा. उमाशंकर शर्मा के अनुसार–''मधुर उत्तेजनापूर्ण संगीत सुनने से कई पुरानी स्मृतियाँ और संवेग पुनर्जीवित हो जाते है।[7]

अब हम कुछ ऐसे गीतों पर नजर डालते हैं जो अंतः अथवा बाह्य रोगोत्पादक तत्त्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए उन्हें नष्ट कर डालते हैं और जीव मात्र को स्वास्थ्य प्रदान कर उनके चित्त को निर्मल कर देते हैं ।

सोहर गीत– मातृत्व का संवहन स्त्रीत्व की पूर्णता मानी गई है। एक ओर, जहाँ विवाहिता स्त्री अपने गर्भस्थ शिशु को अनुभूत कर प्रफुल्लित होती है, दूसरी ओर, कई प्रकार के हार्मोनल एवं फिजिकल चेंजेज से वह आशंकित भी होती है। शिशु के जन्म से जुड़ी जटिलताओं से भी वह शनैः शनै परिचित होती रहती है। ऐसी अवस्था में गर्भिणी नारी के अवसादग्रस्त होने की पूरी संभावना रहती है । फिर भी, अंतः वेदना एवं अकुलाहट से त्राण देकर, आनंद का संचार कर शिशु के स्वागत हेतु उसके मन को नवचेतना प्रदान करता है सोहर गीत। उदाहरण :

सोहर गीत

कहमा जनम लेल राम जी की कहमा कृष्ण जी रे ललना रे कहमा जनम लेल गणेश जी कि तिनु घर सोहर रे अयोध्या मे जनम लेल राम जी की मथुरा मे कृष्ण जी रे ललना रे कैलाश में जनमल गणेश जी कि तिनु घर सोहर रे आहे किनका के जनमल राम जी कि किनका के कृष्ण जी रे ललना रे किनका के जनमल गणेश जी कि तिनु घर सोहर रे

शीतला माता गीत– लोक में रोग–व्याधि विशेषकर 'स्मॉल पॉक्स' एवं 'चिकेन पॉक्स' से निजात देने हेतु शीतला माता का स्तुति–वंदना की जाती है। उदाहरण के लिए, योगर्षि श्रीकपिल रचित ग्रंथ 'धर्म विज्ञान' को लिया जा सकता है जिसमें योगर्षि ने भगवती शीतला की, ऋषि वंदनीया महामारी नाशिनी कह कर स्तुति की है। द्रष्टव्य है योगर्षि रचित मंत्र–

ऊँ ऋषिवंदनीया महामारीनाशिनी शीतलायै देव्यै नमः।[8]

शोध से यह भी पता चलता है कि बाँझपन से मुक्ति देने हेतु भी उनकी अर्चना की जाती है जिससे रोगी को देवी की कृपा तो प्राप्त होती ही है, रोगी सकारात्मक ऊर्जा के स्पंदन को ग्रहण करने के योग्य भी हो जाता है और इस प्रकार वह अतिशीघ्र रोग से मुक्ति पा जाता है। हम जानते है कि 'पॉक्स' विषाणुजनित रोग है और इसे निष्क्रिय करने हेतु शरीर में प्रतिरोधक क्षमता को ये गीत बढाते रहते हैं। चिकित्सा जगत में विषाणुओं से रोगमुक्ति हेतु कारगर औषधि नहीं है। अतः संगीत के स्वर औषधि की भूमिका बखूबी निभाते हैं–

शीतला माता गीत

कहवाँ से आवेली शीतला मैया
कहवा से काली मैया हो, अरे हो कहवा
से आवेली दुर्गा मैया त शेर के सवरियाँ लिहले हो।
पूरब से आवेली शीतला मैया पश्चिम से काली मैया हो अरे उत्तर से
आवेली दुर्गा मैया त शेर के सवरियाँ लिहले हो।
कवनी पूजनीया शीतला मैया कवनी काली मैया हो अरे हो कवनी
पूजनीय दुर्गा मैया त शेर के सवरियाँ लिहले हो।
पियरा करहिया शीतली मैया अंगना में काली मैया हो अरे हो नारियर
चुनरिया दुर्गा मैया त शेर के सवारियाँ लिहले हो।
कहवा जे बैठली शीतली मैया कहवा जे काली मैया हो अरे हो कहवा
जे बैठेली दुर्गा मैया त शेर के सवारियाँ लिहले हो।
निमिया के छईया शीतला मैया अंगने में काली मैया हो अरे हो मंदिर में
बैठे ली दुर्गा त शेर के सवरियाँ लिहले हो।

पराती गीत– ध्वनि–तरंगो में ऐसी सुरम्यता होती है जो मन में विभिन्न रसों का संचार कर भाव से अनुभावित कर देते हैं। ये भाव हमारे अंतःकरण को प्रभावित कर हमारे अन्दर काल एवं परिस्थिति विशेष के प्रति गंभीरता अथवा चंचलता का मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न करते हैं और हमारे बौद्धिक विकास को प्रखरता प्रदान करते हैं। हमारे शरीर के सूक्ष्म केंद्रों को सक्रिय कर सुचालित करते है। प्राती गीतों में रात्रि तंद्रा से मुक्ति हेतु, आलस्य छोड़ नव सृजन हेतु, संपूर्ण दिवस के स्वागत–प्रतिष्ठा हेतु उत्प्रेरित करने वाले स्वर–संयोजन एवं शब्द संयोजन होते हैं जो हमें अनुप्राणित करते हैं–

गीत

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है
जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है
जो कल करना है आज कर ले, जो आज करना है अब कर ले
जब चिडियों ने चुग खेत लिया फिर पछताये क्या होवत है।[9]

गोदना गीत– अपने शरीर के विभिन्न अंगो की त्वचा पर सुंदर कलात्मक डिजाइनों से आकृतियों को स्थायी रूप से उत्कीर्ण करना ही 'गोदना' कहलाता है जिसे आजकल 'टेटू' कहते हैं। सामान्यतः इनका रंग काला होता था किंतु आजकल इनका रंग लाल, नीला इत्यादि भी होता है। इस सजावटी शरीर संशोधन प्रक्रिया में पीड़ा को झेलना आज भी सहज नहीं है, फिर पूर्वकाल में तो इन क्षतचिन्हों को अपनी त्वचा पर अंकित करवाना एक जटिल प्रक्रिया थी। अतः गोदना गोदने वाली स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के गीतों को गाया करती थीं और इन्हीं हास–परिहास से युक्त गीतों को सुनकर हँसते–हँसते लोग गोदना गुदवा लिया करते थे और ये गीत दर्द निवारक का काम करते थे।

गोदना गीत

उत्तरी राज से जे एलै एक नटिनियाँ रे जान
रे जान बैसि रे गेलै कदम बीरीछिया रे जान
झिहिर झिहिर बहलय शीतल बसतिया रे जान
रे जान घर से बहरेलै सुंदर पुतहुआ रे जान
झाड़ लगलै सुनरी अपन नामि नामि केसिया रे जान
रे जान पैड़ि रे गेलै नटिन के नजरिया रे जान
कहाँ गेलें किये भेलें सुनरी पुतहुआ रे जान
रे जान कोने सुनरी गोदना गोदेतै रे जान
गोदना गोदौनि की तू लेमैं गे नटिनियाँ रे जान
रे जान किए लेमें दान बख्शीशबा रे जान
गोदना गोदौनि लेबै कान दूनू सोनमा रे जान
रे जान लेबै हम गिनती मोहरबा रे जान

लोरी गीत– लोरी गीत एक ऐसी लोक गायन–शैली है जिसके द्वारा शिशु को बेचैनी से मुक्ति दिलाकर, निद्रा दिलाने हेतु कोमल प्रयास किया जाता है। इससे माँ और बच्चे के बीच प्रेम की प्रगाढता बढ़ती है, बच्चा निर्भय बनता है, अनिद्रा दूर होती है। यह बच्चे के बौद्धिक विकास में सहायक होता है और इससे बच्चों में भाषा की पकड़ भी बढती हैं। बच्चों में तर्क क्षमता में बढोत्तरी के लिए संगीत का सुनना अत्यंत लाभकारी माना गया है।

लोरी गीत

सुतू–सुतू बौआ हमर सोन लाल रे
आएत निंदिया बौआ के कमाल रे
साँझ भेल सूइत रहल सब जग प्राणी
हमरो बौआ सूइत रहू अहाँ बड ज्ञानी
अहाँके नींद स भेल आँखि लाल रे
सुतु–सुतु बौआ हमर .....

विषहरा (मनसा देवी) गीत– ग्राम्य क्षेत्रों में सर्पों से मानव का सामना अक्सर होता ही रहता है क्योंकि सर्पों के निवास हेतु उपयुक्त आवास स्थल उसे गाँवों में उपलब्ध हो जाता है किंतु साँप का जिक्र होते ही लोग काल्पनिक खतरे की धारणा के कारण अप्रिय होने की भावना से भयभीत हो जाते हैं। इस भयरूपी रोग के कारण मन उचित निर्णय नहीं ले पाता है और जो सर्प हमारे पर्यावरण के एक अहम हिस्से के रूप में कार्य करता है उसकी जान

ही ले लेते हैं। विशहरा गीतों के माध्यम से पारम्परिक रूप से लोक में सर्पदंश के भय से निजात पाने के लिए चिकित्सा करते हुए ओझा गणों को देखा जाता है। अतः मानव स्वयं के साथ–साथ सर्प की रक्षा हेतु भी विषहरा गीतों का अभ्यास करता रहता है। विषहरा माता जिन्हें मनसा देवी के रूप में भी पूजा जाता है, सर्वमंगलकारिणी हैं, यह विश्वास उसके लिए सुरक्षा कवच का काम करता है और उसे कई प्रकार के मानसिक विकारों से मुक्त रखता है तथा दृढ आत्मबल से आपूरित करता है। योगर्षि श्रीकपिल रचित पुस्तक 'धर्म विज्ञान' में मनसा देवी का मंत्र देखा जा सकता है :– **ऊँ दिव्य सर्पस्वरूपा सर्वमंगलप्रदायिनी मनसा देव्यै नमः।**[10]

लोक जीवन में रहस्यवादी कवियों ने सर्प के प्रतीक के रूप में दिव्य कुंडलिनी शक्ति की अवधारण की है। ऐसा माना जाता है कि कुंडलिनी जागरण के उपरांत लोग समस्त रोग, दोष, एवं कष्ट से मुक्ति पा जाते हैं। इन रहस्यवादी गीतों से हमें आध्यात्कि स्फूर्ति मिलती है।

नागिन जाल बुनती आयी
लिपटी दरिया मंदिर महफिल
सूरत अजीब बनायी
नागिन जाल.....
चुम्बन खेती भय को दिखाती
अट पट प्रीत जताती
नागिन जाल.....
चूजा मुख ले नजर बचाती
नगर हाट दिखलाती
नागिन जाल.....[11]

बटगमनी गीत– इन गीतों के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि ये मार्ग में गमन करते हुए गाये जाने वाले गीत हैं। रास्ते पर चलते हुए विचलन को रोक कर, मार्ग में होने वाले थकान एवं कष्ट को विस्मृत कर, उमंग–उत्साह एवं प्रेम का सृजन ही इन गीतों का लक्ष्य होता है और मानव शारीरिक एवं मानसिक क्लेश को भूल कर बड़ी ही कुशलता के साथ आसानी से लंबी दूरियों को भी तय कर लिया करते हैं।

बटगमनी गीत

चहुँदिश हरि पथ हेरि हेरि सजनी गे
नयन बहय जलधार सजनी गे
भवनों ने भावय दिवस निशि सजनी गे
करब में कोन परकार सजनी गे[12]

पचनियाँ गीत– टीकाकरण में दर्द–निवारण हेतु कुछ समय पहले तक यह गीत टीकाकारों द्वारा गाया जाता था किंतु अब इनका गायन कम ही सुनने को मिलता है।

निमियाँ की डरिया बैठे दुई रे सुगनवाँ हो, कि भोरे होते ना
बोले मधुरी बचनियाँ हो कि भोरे होते ना
जाओ सुगना जाओ ओही कदली के बनवाँ हो, जगाई लावो ना
सोवय सातो रे बहिनियाँ, जगाई लावो ना

बिरहा गीत– प्रियतम के बिरह के दंश को सहज ही सहन करने की शक्ति देता है यह गीत।

राम भइले जोगिया लखन बैरगिया
कि दूनो भैया हो गइले फकीर
गरबा में डार लिहले तुलसी जी के मलवा हे
अरे दूनो भैया माँगले अजोध्या में भीख

समदाऊन गीत– बेटी विदाई के समय वर और वधू दोनों पक्षों को हर्ष और विषाद से परिचित करवाने हेतु इन गीतों को गाया जाता है–

सून भवन केने जाय छी हे बेटी अयोध्या में बाजत बधाई हे
हरियर गोबर अंगना निपाओल गज मोती अरिपन देल हे
अंगना में बोलि–बोलि अम्मा जे कानथि जनक जी भेला अचेत हे
नगरक सखिया बड़ा रे निर्मोहिया धीया देल डोलिया चढाई हे
भनही विद्यापति सुनु हे सुनयना सब बेटी सासुर जाय हे

झिझिया गीत– संपूर्ण रोग–द्वेष एवं नजर–निवारण हेतु गाया जाने वाला यह गीत विशेष रूप से महिलाओं द्वारा संपादित किया जाता है।

तोहरे भरोसे बरहम बाबा झिझड़ी बनेलियै हो
बरहम बाबा झिझड़ी बनेलियै हो
बरहम बाबा झिझड़ी पर होइयौ असबार
अबोधबा बालक तोहर किछुओ ने जानै छह हो
माछ मार गेलें जोगिनियाँ बाबा के पोखरिया
मारि लेलें कोतरी मछरिया गे
चल चल गे डाइनि कदम तर
तोरा बेटा के खेबौ बरहम तर

जट–जटिन– मानवीय मनोभाव को संतुलन देने हेतु इन गीतों को विशेष रूप से बरसात के मौसम में तथा मनोरंजन हेतु किसी भी ऋतु में कृषकों के द्वारा गाया जाता है।

टिकबा जब–जब मँगलियौ रे जटबा टिकबा किए ने अनले रे
मोरी बाली उमिरिया रे जटबा टिकबा किए ने अनले रे
टिकबा जब–जब अनलियौ जटिनिया टिकबा किए ने पेन्हले गे

तोरा बाली उमिरिया जटिनिया नहिरा किए गमौले गे
हंसुली जब–जब अनलियौ जटिनिया हंसुली किए ने पेन्हले गे
तोरा बाली उमिरिया जटिनिया पौती में धए रखले गे

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन के सामान्य परिप्रेक्ष्य से लेकर विशिष्ट अवस्थाओं तक जहाँ कहीं भी कोमल अथवा जटिल मनोभावों से मानव को गुजरना पड़ता है वहाँ सहज ही उन क्षणों को सुगमता से यापन करने हेतु कोई गीत वह गढ ही लेता है। उपर्युक्त गीतों के अलावा भी गीत के कई ऐसे प्रकार हैं जो पीड़ा से मुक्ति दिलाकर मनुष्य को नव–जीवन की चेतना से युक्त करते हैं। लोक संगीत को चिकित्सा के रूप में नहीं देखा जाता है किंतु इसका सूक्ष्म मनोभौतिक प्रभाव जीवन के विभिन्न आघातों एवं संघर्षो को प्रत्यक्षतः न्यून करता है। हमारे नैसर्गिक आनंद को स्थिर रखने एवं खोए हुए आनंद की पुनर्प्रतिष्ठा में संगीत चिकित्सा के अन्य विधा की तरह ही लोक संगीत भी अत्यंत प्रभावकारी है।

संदर्भ सूची :

1. आचार्य सुश्रुत, सुश्रुत सहिंता, सूत्रस्थानं, 15वां अध्याय, 48वां श्लोक, प्र. चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस–1, वर्ष 1954, पृ. 65
2. आचार्य चरक, चरक संहिता सूत्रस्थानं, 1 ला अध्याय का, 14वां श्लोक, प्र. श्रीवेंकटेश्वर मुद्रण यंत्रालय, बम्बई, वर्ष 1967 पृ. 15
3. श्रीमद्भगवद गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, (गोबिन्द भवन कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) कोड– 20, संवत् 2077, पृ. 25
4. वही, पृ. 26
5. संगीत, मासिक पत्रिका, अक्टूबर 2002, पृष्ठ संख्या 26
6. शर्मा, डा. मनोरमा, स्पेशल एजूकेशन म्यूजिक थैरेपी, पृ. 29, प्र. व्हाइट लोटस प्रेस, नई दिल्ली, वर्ष 1996
7. शर्मा, डा. उमाशंकर, संगीत (मासिक पत्रिका) अगस्त 2008 ई., पृ.–08
8. श्रीकपिल, योगर्षि, धर्म विज्ञान, श्रीकगिपल कानन, मधेपुर, वर्ष 2013, पृ. 38
9. भजनामृत / गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 80, कोड–144, संवत् 2072
10. श्रीकपिल, योगर्षि, धर्म विज्ञान, श्रीकपिल कानन, मधेपुर, वर्ष 2013, पृ. 39
11. श्रीकपिल, योगर्षि, माँझी और झील, संकलन साध्वी हिमाद्रिजा, प्र. श्रीकपिल कानन, मधेपुर, पृ. 75, वर्ष 2003
12. झा, डा. इन्दकांत, मैथिली व्यवहार गीत संग्रह, प्र. कमल प्रकाशन, नयाटोला, पटना, वर्ष 2000, पृ. 163

मानव जीवन में गजल का वैचारिक महत्त्व

डॉ. अंशु वर्मा** **सुरुचि गहलोत***

सार

संगीत मानव–जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है। कला व साहित्य मनुष्य के जीवन में सदैव एक विशेष भूमिका रखते हैं। जब संगीत व साहित्य किसी काव्य–विधा के रूप में एक साथ आते हैं तो मानव–हृदय पर विशेष प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार की एक विधा है ग़ज़ल। ग़ज़ल एक इतनी संजीदा काव्य व गायन–शैली है, जिसके शब्द व धुनें मानव–मन को गहराइयों तक छू लेते हैं। ग़ज़ल में एक दर्शन है जो मनुष्य की सोच व भावनाओं पर गहरा प्रभाव डालता है। यह प्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व व चरित्र–निर्माण में भागीदारी निभाता है। ग़ज़ल का साहित्य शायरी से अलंकृत है। यही कारण है कि संजीदा भावनाओं से परिपूर्ण ग़ज़ल अपने शुरुआती दौर से ही एक अभिजात्य वर्ग से जुड़ी रही। आज यह प्रसिद्ध शैली के रूप में विकसित हो चुकी है। ग़ज़ल का श्रोतावर्ग बहुत ही संजीदा व कोमल हृदयी है। इस भागती–दौड़ती जिंदगी में आज भी मानवता के सिद्धांतों व भावनाओं को लोगों के मन में जगाने का जज्बा रखती है। ग़ज़ल मानवीय भावनाओं का स्त्रोत है।

सूचक शब्द *: ग़ज़ल, गायकी, कला, साहित्य, दर्शन, मानव–जीवन*

शोध–प्रविधि : *इस लेख को तैयार करने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है ।*

संगीत मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शायद ही कोई मनुष्य ऐसा हो जिसका जुड़ाव संगीत से न हो। वे व्यक्ति जो कला व साहित्य में कोई रुचि नहीं रखते, वे भी कहीं–न–कहीं संगीत के साथ जुड़ाव महसूस करते हैं। भारतीय संस्कृति में मनुष्य जीवन का लक्ष्य व्यक्ति का आध्यात्मिकता के शिखर पर पहुँचना माना गया है। इस उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सात्विक जीवन, उच्च आदर्श, मानवतावादी विचार व आध्यात्मिक दृष्टिकोण साधन माने गये हैं। आज के भौतिकतावादी माहौल में मनुष्य के जीवन के मूल्य बदल गए हैं। जीवन का उद्देश्य भौतिक संसाधन जुटाना रह गया है। इस प्रतियोगिता के दौर में व्यक्ति अधिकाधिक धन कमाने की होड़ में लगा है। ऐसे में कला व साहित्य ही है जो हमेशा से मनुष्य के मानसिक विकास का जरिया रहा है। चाहे धार्मिक व आध्यात्मिक पुस्तकें हों या कहानियाँ, काव्य हों, साहित्य हर रूप में मानव के लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है।

किसी देश की सामाजिक विचारधारा को समझने के लिये उसके साहित्य को देखा जाना चाहिए। साहित्य के दो भागों– गद्य और पद्य–में से पद्य साहित्य छंद व गेय तत्व के होने से प्रत्येक व्यक्ति मात्र से जुड़ता है, यहाँ तक कि किसी अनपढ़ व्यक्ति को भी साहित्य गेय रूप में सुनाया जाए तो यह उस पर भी प्रभाव डालता है। लोक संगीत के प्रचलन का भी यही कारण है क्योंकि सुंदर, आसान व जानी–पहचानी धुनों व तालों मे बंधा यह संगीत लोक साहित्य से भी जुड़ा है और लौकिक साहित्य व उन किरदारों, जिनका उल्लेख इन गीतों में हुआ है, वे लोगों के दिलों की गहराईयों से जुड़े हुए हैं। वहीं गद्य प्रायः समाज के शिक्षित वर्ग के जीवन से ही जुड़ा। पद्य में काव्य आता है, काव्य में छंद है, अतः वह अपने अंदर एक ताल व धुन लिए होता है, जिससे वह मेलोडी में घुल कर लोगों के अंतर्मन पर स्थान बनाता है। विभिन्न काव्य विभिन्न प्रकार के छंदों व नियमों में बाँधकर लिखे जाते हैं। इसी प्रकार की एक उर्दू काव्य विधा है 'ग़ज़ल'।

ग़ज़ल एक बहुत ही संजीदा काव्य, गायन व श्रवण है। ग़ज़ल अपने शुरुआती दौर में दरबारों व महफिलों में काव्य–पाठ के रूप में पढ़ी जाती रही, फिर धीरे–धीरे तरन्नुम में पढ़ी जाने लगी और विकसित होते हुए यह वर्तमान ग़ज़ल गायकी के रूप में हमारे सामने स्थित है लेकिन ग़ज़ल का प्रस्तुतिकरण निम्न तीनों तरीकों काव्यपाठ, तरन्नुम व विशिष्ट ग़ज़ल गायकी के रूप में किया जाता है। ग़ज़ल का गेय रूप अधिक प्रचलित होने का कारण यह है कि उसे जब सांगीतिक धुनों के ताने–बाने में बाँधा जाता

*शोधछात्रा, संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

**सहायक आचार्या, संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

है, वह साधारण श्रोता के लिए भी भाव–अनुभूति का स्त्रोत बनती है। जबकि अदबी महफिलों में काव्यपाठ या तरन्नुम में शायरों द्वारा मुशायरों में कही गई ग़ज़ल प्रायः एक विशेष संजीदा सोच वाले व उर्दू साहित्य में रुचि रखने वाले श्रोतावर्ग को ही अधिक आकर्षित कर पाई लेकिन किसी भी प्रस्तुति में वह श्रोताओं को प्रेरित किए बिना नहीं रही।

गजल के मायने क्या हैं? यदि काव्य–रचना की दृष्टि से देखा जाए तो एक समान रदीफ़ व भिन्न भिन्न क़वाफ़ी (क़ाफ़िया का बहुवचन) से सुसज्जित एक ही वज़न अथवा बहर में लिखे गए अश्आर के समूह को ग़ज़ल कहते हैं, जिसमें शायर किसी चिंतन, विचार या भावना को प्रकट करता है (ग़ज़ल की बाबत, अध्याय 2, पेज सं. 15) । यह ग़ज़ल की तकनीकी व व्याकरण की दृष्टि से परिभाषा है, किन्तु यदि भावनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाय तो दिल के पाकीजा भाव को अभिव्यक्त करने की कला है ग़ज़ल, एक बहुत ही भीतरी अहसास, एक जबर्दस्त संवेदनाशीलता की अभिव्यक्ति करने वाली, अपनी बात श्रोता के दिल तक उतार देने वाली विधा का नाम है ग़ज़ल। जिस प्रकार के दर्शन व आदर्शों की बात हम विभिन्न धर्मों के माध्यम से करते हैं, आदर्श व्यवस्था, व्यक्ति की गरिमा, मर्यादा, सुख–दुःख के एहसास, एक–दूसरे का होना और अंतरतम मन से एक–दूसरे को समझ लेने की बात हमें ग़ज़ल में देखने को मिलती है। संस्कार, आस–पास का वातावरण व परवरिश ही व्यक्ति का निर्माण करते हैं। ग़ज़ल के माहौल में बड़ा होने वाला व्यक्ति, मनुष्य के बहुत ही संवेदनशील व्यवहार को जानता और अभिव्यक्त करता है। उच्च आदर्श हमें सिखाते हैं कि मनुष्य–मात्र को किसी के लिए क्या करना चाहिये। दो प्रकार की ग़ज़ल, इश्क–ए–हकीकी और इश्क–ए–मजाजी दोनों तरह से अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करती है। एक अच्छे व्यक्तित्व के गुण और व्यवहार और समाज के उच्चतम आदर्श ग़ज़ल के जरिए साथ देख सकते हैं। व्यक्ति स्वयं के विकास के लिए जब कुछ करना चाहता है, जब स्वयं को परेशानियों से उबारना चाहता है, जब आत्मकेंद्रित होकर स्वयं के उत्थान के लिए सोच रहा होता है, तो संगीत और विशेषकर गजल उसकी भावनाओं को शब्द देते हैं। जब व्यक्ति समाज से अलग होकर आत्मवालोकन के लिए अंतर्मुखी होता है व बाहर के विषयों से स्वयं को अलग कर सोचता है तो उस आत्मावलोकन के लिए गजल सबसे अधिक सहायक हो सकती है। मनुष्य गजल को जीवन की वास्तविकता व स्वविवेक को जाग्रत करने के साधन के रूप में व चिकित्सा पद्धति के रूप में इस्तेमाल कर सकता है। ग़ज़ल मनुष्य के रूह को भीतर तक छूता है और हमारी परेशानियों व बीमारियों की ओर से हमारा ध्यान हट जाता है और हम राहत महसूस करते हैं। इस भागदौड़ व चिंता से भरी जिंदगी में यदि अचानक कोई गालिब की गजल का यह शेर कह दे कि

"न था कुछ तो खुदा था, कुछ ना होता तो खुदा होता,
डुबोया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता"

गालिब कहते हैं कि जब संसार में कुछ नहीं था तो ईश्वर मौजूद थे, अगर कुछ नहीं होता तो भी वे होते। मेरे डूबने यानि तबाह होने का कारण मेरा होना है, मेरे मानव अस्तित्व का होना है, अगर मैं होता ही नहीं तो मैं क्या होता, अर्थात् मैं भी खुदा होता और सोचता है कि फिर ये भाग–दौड़ क्यों? पहले आसान जिंदगी जी रहा था यह किस झमेले में पड़ गया। ग़ज़ल में एक दर्शन है जो एक बहुत सशक्त व भाव–प्रधान गायकी के रूप में श्रोता के सामने आती है, जिसे समझने व अपनाने में साधारण मनुष्य को भी कठिनाई नहीं होती। धार्मिक गुरुओं के पास जाकर हम अपना मन हल्का करते हैं, वही काम ग़ज़ल मनुष्य के लिए करती है। मन शांत होने से चिंता से उपजी समस्याओं व बीमारियों से निजात मिलता है। मनुष्य के व्यक्तित्व में जब बाह्य व आंतरिक कारकों में असंतुलन होता है तो उसका व्यक्तित्व विकृत हो जाता है। संगीत में उपचरात्मक गुण है, और उसमें जब ग़ज़ल के शब्द भी जुड़ जाते हैं तो उसका असर दुगुना हो जाता है और वह औषधीय रूप में काम आ सकती है। कई उदाहरण मिलते हैं जैसे– मुसोलिनी को नींद नहीं आती थी और पं. ओंकारनाथ ठाकुर ने राग पूरिया गाया और वह सो गया था। इतिहास में ऐसे और भी कई उदाहरण मिलते हैं जहाँ लोगों को अपने मानसिक और यहाँ तक कि शारीरिक दुःख से भी संगीत के माध्यम से निजात मिला है।

गालिब की गजल के मतले में इसी प्रकार की मनःस्थिति दिखाई देती है। यदि ऐसे में कोई पूछे कि क्या दुःख है, हम कैसा महसूस कर रहे हैं, तो हम बताने की स्थिति में नहीं होते, तब कोई सटीक ग़ज़ल हमारे मन के भाव से मेल खाते हुए वही बात कहती है तो हम उस भाव से स्वयं को जोड़ पाते हैं। किसी कविता या गजल की तारीफ हम प्रायः तब करते हैं जब वह हमारे आंतरिक भाव

से मिलते–जुलते भाव प्रेषित करती है। इस प्रकार हमारी भावनाओं व अभिव्यक्ति को शब्द मिल जाते हैं। ग़ज़ल आपको एक ऐसे स्थान पर ले आती है जहाँ कहने वाला व सुनने वाला एक ही धरातल पर विचरण करते हैं।

"तन्हा तन्हा मत सोच कर,
मर जाएगा मत सोचा कर"

प्रमुख शायर फरहत शहज़ाद के इस शेर में एक दार्शनिक दृष्टिकोण है। शायर मनुष्य को वजह–बे–वजह न सोचने के लिए कह रहे हैं। इसी ग़ज़ल को मेंहदी हसन साहब राग रागेश्री की स्वरावलियों में सजाकर मानव के अंतरतम मन तक अपनी गायकी द्वारा पहुंचाते हैं, कि अधिक सोचने से कोई लाभ नहीं है। हम किसी आश्रम, धर्मगुरु, योगगुरु आदि के पास जाते हैं, क्योंकि हम परेशान व टूटा हुआ महसूस कर रहे होते हैं और अपनी समस्याओं के समाधान के लिए इन स्थानों पर योग, ध्यान, आध्यात्म आदि के माध्यम से समाधान ढूँढने जाते हैं। यही समाधान हमें गजल के समृद्ध साहित्य में मिलता है जो जीवन के सुख–दुःख के हर भाव को अभिव्यक्त करता है। अच्छा साहित्य आपके भीतर कई अपराधबोध, कुंठाएँ, नासमझियों को मिटाता है। कई बार हम भावनात्मक स्तर पर कुछ समझने में सक्षम नहीं हो पाते हैं, निर्णय नहीं ले पाते हैं, संगीत व साहित्य हमें वह रास्ता दिखाता है और हमारे मन से भार कम हो जाता है।

इस बात का प्रमाण है कि वर्तमान के इस डिजिटल युग में जहाँ हर विषय–वस्तु ऑनलाइन उपलब्ध है, फिर भी 'जयपुर लिटरेचर फेस्टिवल' जैसे साहित्य सम्मेलन इतने प्रचलित इसीलिए हैं क्योंकि वहाँ होने वाली साहित्यिक चर्चाएँ एक प्रकार से विचार उद्दीपन का प्लेटफॉर्म हैं, जो हमारी विचार–प्रक्रिया को इतना उद्दीप्त कर देती हैं कि जहाँ हम अपनी समस्याओं का समाधान पा जाते हैं। लिटरेचर फ़ेस्टिवल में विभिन्न विषयों पर बातें होती हैं। छोटे–से–छोटे किस्से कहानियों से लेकर युद्ध व सुरक्षा जैसे गंभीर मुद्दों पर भी चर्चा करते हैं। जीवन में जितनी भी घटनाएँ हमारे इर्द–गिर्द घटती हैं, वे सभी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं। हम जिस परिवार, समाज, देश व शहर में रहते हैं, वहाँ कैसी राजनीति है, कैसा तंत्र है, ये सभी हमें प्रभावित करते हैं। ग़ज़ल मनुष्य को एक–दूसरे के साथ हाथ से हाथ मिलाकर साथ चलने के लिए प्रेरित करती है, अच्छे आदर्शों, अच्छी जिंदगी व श्रेष्ठ व्यवहार के लिए प्रेरित करती है।

जनाब फरहत शहजाद से एक साक्षात्कार में ग़ज़ल के मानव जीवन से जुड़ाव के बारे में बताते हुए शायर कहते हैं कि दुःख, दुःख को सहलाता है और मरहम बन जाता है। हम दुःख–भरी कहानियाँ क्यों पढ़ते हैं, स्वयं दुःखी होकर भी दुःख–भरी गजलें सुनते हैं। शोकपूर्ण ड्रामा जिसमें आँसू भी निकल आते हैं, दोबारा देखना चाहते हैं, जबकि उससे तो व्यक्ति दुःख महसूस करता है, किन्तु उसमें भी एक आनंद है क्योंकि उसमें एक सहानुभूतिक अनुयोजन होता है कि लेखक या गायक भी उसी दर्द का जिक्र कर रहा है, जैसा मैं महसूस कर रहा हूँ।

"बाज़ीचा–ए–अतफाल है दुनिया मेरे आगे
होता है शब–ओ–रोज़ तमाशा मेरे आगे"

ग़ालिब कहते हैं– यह संसार मुझे किसी बच्चे के खेल के मैदान की तरह लगता है, जहाँ रोज नये–नये खेल–तमाशे हो रहे हैं, तो हम भी संसार को उस नजर से देख पाते हैं और अपने गमों को जीवन के इस खेल–तमाशे की तरह देखने के लिए प्रेरित होते हैं। जगजीत सिंह जी की गाई यह गजल जब कानों में पड़ती है तो हम इस पीड़ा का अनुभव कर पाते हैं। ग़ज़ल मानव हृदय में ऐसी संवेदनाओं को उद्दीप्त करती है जो उसके अंतर्मन में कहीं सुषुप्त थी।

ग़ज़ल में एक खास बात है जो मनुष्य की सोच के दायरे को बढ़ाती है, यह एक इशारिया बात है और हर शेर अपने आप में मुकम्मल (पूर्ण) होता है। अतः गजल के हर शेर में अलग मुद्दे पर बात कही जा सकती है। प्रमुख शायर बशीर बद्र साहब की गजल जो जगजीत सिंह जी सहित कई कलाकारों ने गाई है, उदाहरणार्थ–

"परखना मत परखने में कोई अपना नहीं रहता
किसी भी आईने में देर तक चेहरा नहीं रहता"

बशीर बद्र साहब ग़ज़ल के मतले (ग़ज़ल का पहला शेर) में लोगों को परखने व उनके बारे में राय बनाने के लिए मना करते हैं। गजल का आखिरी शेर देखें :

"मोहब्बत एक खुशबू है हमेशा साथ चलती है,
कोई इंसान तन्हाई में भी तन्हा नहीं रहता"

गजल सीधी बात नहीं कहती, किसी बात की ओर इशारा करती है। विभिन्न लोगों के लिए एक ही शेर

के मायने अलग–अलग हो सकते हैं। कई शेरों के तो बड़े–बड़े शायर भी अलग–अलग अर्थ निकालते हैं–

"मीर के दिन–ओ–मजहब को अब पूछते क्या हो उनने तो
कशका खींचा दैर में बैठा, कब का तर्क इस्लाम किया"

शेर में मीर तकी कहते हैं कि मेरे धर्म–ईमान की बात मत करो, क्योंकि मैं तो कशका (तीन लकीरों वाला तिलक जो पंडित लगाते हैं) लगा चुका हूँ, दैर (मंदिर) में जाकर बैठ गया हूँ और इस्लाम का त्याग कर चुका हूँ। लेकिन, सत्य यह है कि यहाँ मीर अपने गैर–मजहबी होने की बात नहीं कर रहे हैं। वो मनुष्य को धर्म से ऊपर उठकर गुणों से जानने की बात पर जोर देते हुए खुद को धर्म आदि बातों से उबरा हुआ बता रहे हैं। इस प्रकार, यह गजल मनुष्य को उसके जाति–धर्म से ऊपर उठकर मानवता के धरातल पर दूसरे मनुष्य से जोड़ने का कार्य करती है।

निष्कर्ष :

ग़ज़ल एक बहुत ही संजीदगी से जुड़ा काव्य है, जिसमें मानव संवेदनाओं का एहसास है, मनुष्य के सुख व दुःख की अभिव्यक्ति है व जीवन का मर्म है। गजल मनुष्य की सोच व अंतर्मन तक जाकर मनुष्य को मनुष्य के लिए प्रेम व सद्भावना का भाव सिखाती है। इस प्रकार के भावनात्मक विकास से व्यक्ति का चरित्र निर्मल होता है, व्यक्तित्व का विकास होता है व तब वह सुंदर समाज का निर्माण करता है।

संदर्भ सूची :

1. प्रमुख गायिका व पूर्व विभागाध्यक्षा प्रो. सुमन यादव व प्रमुख शायर जनाब फरहत शहजाद से साक्षात्कार के क्रम में बातचीत के अंश
2. केसरी, वीनस, गजल की बाबत, अंजुमन प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2015
3. जाफरी, अली सरदार, दीवान–ए–मीर, राजकमल पब्लिशर, 2008
4. जाफरी, अली सरदार, दीवान–ए–गालिब, राजकमल पब्लिशर, 2018
5. शहजाद, फरहत,कहना उसे, वाणी प्रकाशन, 2017
6. बद्र, बशीर, मुसाफिर, संकलन और सम्पादन– सचिन चौधरी, मंजुल पब्लिशर, 2015
7. Salil, Kuldip, A treasury of Urdu poetry, Rajpal publisher, 2018

कथक नृत्य व योग में सम्बन्ध

प्रो. नीलू शर्मा** **रूबी वर्मा***

सारांश

योग शारीरिक व्यायाम व श्वास की क्रियाओं का अनूठा मिश्रण है जो शरीर को स्वस्थ व मन को शांत तथा सुखी रखने में सहायक सिद्ध होता है। यह प्राचीन काल की वह तकनीक है जो कथककार के अभिनय कौशल को और अधिक स्पष्ट अभिव्यक्त करने की कुशलता प्रदान करती है। योग द्वारा नर्तक के शरीर में लचीलापन व आकर्षण को बढ़ाया जा सकता है इससे कलाकार के आत्मविश्वास में भी वृद्धि होती है और वह आत्मानन्द को प्राप्त कर पाता हैं। योगाभ्यास द्वारा नर्तक अपने नृत्य की समयावधि व नृत्य करने की क्षमता का भी विकास कर सकता है।

***सूचक शब्द** : संगीत, नृत्य, योग, कथक, सम्बन्ध*

शोध–प्रविधि : *प्रस्तुत लेख को तैयार करने हेतु प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है ।*

''क्षितौ रत्नछायाफलनमुदके वीचिललितं
शिखिन्यार्चैः प्रेड.खा सहजगतिवैचित्रयमिनले।
तटित्कीडाव्योम्निप्रकटसुभगः पंचसु परः
प्रविष्टो भूतेषु प्रभवति हि नृत्स्य महिमा।।''

–द्वारका महात्म्य

धरती पर रत्नों की आभा, जल में लहरों की अठखेलियाँ, अग्नि में लपटें, वायु में आन्दोलन की विचित्रता तथा आकश में बिजली की क्रीड़ा है, इस प्रकार पंच महाभूतों में पूरी तरह व्याप्त मनोहर नृत्त की ही महिमा प्रतिष्ठित है। इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण सृष्टि संगीतमय है। नृत्य के विषय में कहा जाये तो आनन्द की चरम अवस्था को नृत्य की संज्ञा दी गई है। मनुष्य जब अपने मन की प्रसन्नता को किसी भी अन्य माध्यम से व्यक्त नहीं कर पाता तब वह खुशी से झूमकर नृत्य करने लगता है।

कथक नृत्य

भारत के प्राचीन परम्परागत शास्त्रीय नृत्यों की श्रृंखला में कथक नृत्य का प्रमुख स्थान है किन्तु जैसा श्री केशव चन्द्र वर्मा ने लिखा है "विगत शताब्दियों में यह नृत्य जिस रूप में उभरा, उसमें लोक रंजन पक्ष का प्रतिनिधित्व ही अधिक था तथा इसके परिणामस्वरूप लोगों में यह धारणा बन गई कि कथक नृत्य भारतीय नृत्य का निकृष्टतम उदाहरण है जो वैभवसंपन्न मुस्लिम शासकों के आश्रय में पनपा है। कथक नृत्य उत्तर भारत का लोकप्रिय नृत्य है। कथक नृत्य अपने संपूर्ण व्यक्तित्व बोध के लिए 'कथक' शब्द पर ही अविलंबित है। शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ के नृत्य अध्याय में 'कथक' शब्द का उल्लेख मिलता है–

''कथका बन्दिनश्चात्र विद्यावन्तः प्रियम्वदाः।
प्रशंसाकुशलश्चान्ये सर्व मातुषु।।''

अर्थात् कथक का अर्थ है– कथा कहने वाला। संस्कृत, पाली, प्राकृत के अतिरिक्त नेपाली भाषा के साहित्य व शब्दकोषों में प्राप्त अर्थ–परम्परा कथक शब्द की मुख्य तीन विशेषताओं से सम्बन्ध रखती है– कथा, अभिनय व उपदेश। इन तीन विशेषताओं के संयुक्त रूप के आधार पर कथक वह व्यक्ति विशेष है जो लोकोपदेश के लिए अभिनय के माध्यम से कथा प्रस्तुत करे।

कथकों द्वारा 'कथक' शब्द को परिभाषित करने हेतु एक प्रसिद्ध सूक्ति कही जाती है–**"कथन करे सो कथक कहिये"** 'The oxford dictionary of dance' में कथक को इस प्रकार परिभाषित किया गया है– "Its name came for 'katha' meaning story and it originates from the kathak or storyteller who used to give religious and moral instruction in narrative form."

योग–

'योग' शब्द संस्कृत भाषा के 'युज्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'जोड़ना'। यह जोड़ केवल योग व कथक तक सीमित नहीं अपितु आत्मा का परमात्मा से, व्यक्ति की व्यष्टि चेतना का उसकी समष्टि चेतना से तथा एक साधक

*शोध छात्रा, संगीत विभाग, दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा
**मार्गदर्शिका, संगीत विभाग, दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा

का अपनी कला से होता है। कथक व योग का जुड़ाव आध्यात्मिक पक्ष का जुड़ाव है। कला का सृजन इत्यादि का मुख्य कारण ही परमानन्द की प्राप्ति है, फिर वह चाहे संगीत कला हो, वास्तु कला या श्रृव्य–दृश्य कोई अन्य कला, तथा प्राचीन ग्रंथों पर नज़र डालें तो यही ज्ञात होता है कि कथक नृत्य व योग दोनों का अन्तिम लक्ष्य परमानन्द को प्राप्त कर मोक्ष की प्राप्ति ही होता है। योग को कुछ बिन्दुओं द्वारा और अधिक स्पष्ट समझा जा सकता है जो इस प्रकार है–

योग के विभिन्न मार्ग– योग का प्रत्येक मार्ग मानव–जीवन को और अधिक जागरुक एवं जीवन जीने के प्रति अनेक मार्ग प्रशस्त करना, जैसे– तंत्र, मंत्र, लय, कुंडलिनी अर्थात् मानव–जीवन में प्राणायाम शक्तियों पर नियंत्रण, आसन, मंत्रोच्चारण, ध्यान, शरीर व मन की सफाई करना है।

योग एक विज्ञान– योग एक विज्ञान ही है। जिस प्रकार विज्ञान के किसी भी तथ्य की प्रामाणिकता के साथ सिद्ध किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार योग के किसी भी तथ्य को प्रमाण सहित सत्य ठहराया जा सकता है। उदाहरण– यदि हम रोज मन को एकाग्र करने का योग करते हैं तो हम अपने मन को औरों से अधिक प्रतिशत शान्त कर पाते हैं।

मानसिक संशोधनों का अवरोध– राज–योग पद्धति में महान ऋषि पतंजलि द्वारा योग की सर्वोत्तम परिभाषाओं में से एक है। उन्होंने कहा, 'योग मानसिक संसाधनों (चित्त वृत्ति) का अवरोध है ताकि दृष्टा स्व के साथ फिर से पहचान कर सके। पतंजलि की प्रणाली शास्त्रीय योग–दर्शन का प्रतीक बन गई है, व भारत के 6/7 प्रमुख दर्शनों में से एक है।

शांत रहने की क्रिया– योग श्वास–नियंत्रण तथा शारीरिक व्यायाम या कसरत है जिससे मन प्रफुल्लित व शांत रहता है।

स्वयं का संयोग– हिंदु शास्त्र में योग विश्वात्मा से स्वयं का संयोग करने का लक्ष्य साधक यंत्र है।

निष्कर्षतः योग वह क्रिया है जिसके द्वारा मानव वैज्ञानिक ढंग से प्राणायाम, आसन इत्यादि से अपने जीवन की सूक्ष्म शक्तियों पर नियन्त्रण बना सकता है, ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता बढ़ा सकता है, मानसिक संसाधनों के अवरोध में सहायक है, मन को प्रफुल्लित कर विश्वात्मा से स्वयं का संयोग सम्भव करा सकता है। जिस प्रकार योग का प्रमुख उद्देश्य आत्मा का परमात्मा से मिलन है, ठीक उसी प्रकार किसी भी ललित का मुख्य लक्ष्य परमानन्द की प्राप्ति होता है। इन्हीं ललित कलाओं में से एक अंग है 'नृत्य कला' (कथक) जिसका योग से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। कथक नृत्य को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए कथककार व्यायाम करते हैं जिससे वह अपने शरीर को अधिक लचीला व स्फूर्तिदार बना सकें। इसके लिए वह कुछ योग का भी प्रयोग करते हैं जिससे कलाकार में आकर्षण के साथ उसके आत्मविश्वास में भी वृद्धि होती है तथा वह भी अपने नृत्य से आत्मानन्द की प्राप्ति कर सकता है। योग करने का एक मुख्य लाभ यह भी है कि योग द्वारा कथककार अपने नृत्य की समयावधि के साथ अपने नृत्य करने की क्षमता का भी विकास करता है। कथक नृत्य में सहायक कुछ योगासन इस प्रकार है–

1. **त्रिकोणासन**–यह आसन मनुष्य के पैरों व रीढ़ की हड्डी को दृढ़ता प्रदान करता है। कथक नृत्य में पद–संचालन का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है जिसके लिए कथक नृत्यकार को यह योगासन अधिक कारगर सिद्ध होता है। इसके द्वारा कथककार अपने घुटनों, कूल्हों, टांगों, टखनों के साथ–साथ कंधों व छाती सहित रीढ़ की हड्डी को भी मजबूत बनाता है। योग भी तप के समान ही है

"तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानिक्रियायोगः।"

–(श्रीपातंजलयोगदर्शनं–2/1)

महर्षि पतंजलि ने भी तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान को 'क्रियायोग' की संज्ञा दी है।

2. **पूर्वोन्तानासन**– यह आसन मुख्य रूप से कलाकार की कलाई को लचीला बनाने का कार्य करता है। यह बाजू, पीठ, कंधे और रीढ़ की हड्डी को भी मजबूत करता है तथा शरीर में लचीलापन लाता है।

3. **उत्कटासन**– यह आसन कुर्सी पर बैठने जैसा होता है। व्यक्ति कुर्सी पर बैठने की मुद्रा में होता है। यह आसन कथककार की पीठ व धड़ के साथ–साथ पैरों की मांसपेशियों को पुष्ट करता है। इस आसन द्वारा नर्तक शारीरिक बल के साथ–साथ मन की संकल्प–शक्ति को भी बढ़ाता है जिससे कथककार की नृत्य समयावधि में वृद्धि करने में सहायता प्राप्त होती है। चूँकि कथक नृत्य में शारीरिक बल के साथ मानसिक शांति की भी उतनी ही आवश्यकता है

तथा इस संतुलन का कार्य नर्तक योग द्वारा कर सकता है। श्रीमदभागवतगीता में भी कहा है–

"समत्वं योग उच्यते।" अर्थात् संतुलन का नाम ही योग है। (श्रीमद्भगवतगीता– 2/48)

4. **सेतुबंधासन**– यह आसन ज़मीन पर लेटकर किया जाता है। नर्तक की पीठ–दर्द को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यह आसन ही है। इस योग द्वारा नर्तक अपनी छाती, गर्दन व रीढ़ की हड्डी में आए खिंचाव को दूर कर सकता है।

5. **अधोमुख श्वानासन**– यह आसन दोनों पैरों से सीधा खड़े हो, फिर दोनों हथेलियों को जमीन पर रख कमर के हिस्से को ऊँचा उठाया जाता है। यह आसन सम्पूर्ण मानव शरीर को शान्ति प्रदान कर, रक्त–संचार बढ़ाता है। इसके अभ्यास द्वारा मन को शान्ति तथा सिरदर्द से भी मुक्ति मिलती है । नर्तक इस आसन का अपनी थकान दूर करने के लिए प्रयोग कर सकता है।

6. **शवासन**– जैसा कि नाम से ही विदित है– शव+आसन अर्थात् जिस प्रकार एक पार्थिव शरीर अपने चक्षु बन्द कर जमीन पर बिना हिले–डुले लेटा रहता है ठीक उसी प्रकार यह आसन जमीन पर लेटकर, आँखें बन्द कर, बिना हिला–डुले बिल्कुल मन को शान्त करने के लिए किया जाता है। यह आसन सभी आसनों के अंत में नर्तक के सम्पूर्ण शरीर को गहन विश्राम व ध्यान की स्थिति प्रदान करने के लिए कराया जाता है।

उपरोक्त योगासनों को समझने के पश्चात् व इन योग–अभ्यासों का नृत्य के साथ सम्बन्ध देखने से ज्ञात ही हो गया कि योग व नृत्य का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जिस प्रकार एक नर्तक नृत्य करता है, अपनी भावनाएँ व्यक्त करने तथ परमानन्द की प्राप्ति के लिए, ठीक उसी प्रकार एक योग साधक भी योग करता है उसी परमानन्द की प्राप्ति के लिए। नृत्य में योग अभ्यास द्वारा नर्तक शरीर व मन के बीच सही सामंजस्य स्थापित कर सकता है। अपने अभ्यास में नृत्य–साधना के साथ योग–साधना जोड़ने से वह अपने नृत्य में समयावधि के विस्तार के साथ अपने भाव व्यक्त करने के अंदाज को और अधिक आकर्षक व लचीला बना सकता है। व्यक्तिकरण में कोई व्यवधान न आए, इसीलिए एक नृत्य साधक को योग आसन करना आवश्यक है, तथा नृत्य साधक से जो व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य अविरति, भ्रान्ति दर्शन आदि को दूर करने में सहायक हो, वही योग है। जो कार्य में कुशलता लाए, वही योग है।

"योगः कर्मसु कौशलम्" (भारतीय योग सिद्धान्त 66)

गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कार्यं में कुशलता को ही 'योग' कहा है। सही मायने में देखा जाए तो योग मानवता के विकास का सर्वोत्तम मार्ग है।

कथक नृत्य व योग आसन के सम्बन्ध में कुछ नृत्यकारों से विचार–विमर्श भी किया गया, जो इस प्रकार है–

1. **विदुषी प्रो. काजल शर्मा** (अन्तर्राष्ट्रीय नृत्यांगना)– सदैव से ही नृत्य व योग का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा हैं। एक व्याख्यानमाला में आई विदुषी काजल शर्मा ने कहा कि एक नर्तक नृत्य में योगाभ्यास का प्रयोग कर स्वयं के शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्वास्थ्य को दृढ़ कर सकता है तथा इनमें सामंजस्य भी स्थापित कर सकता है। योग द्वारा नर्तक अपनी स्मरण–शक्ति का भी विकास कर सकता है जिससे उसके अभिनय पक्ष अर्थात् पढ़न्त की क्रिया जो नृत्य के समय की जाती है, उस पर गहरा प्रभाव पड़ेगा।

2. **प्रो. नीलू शर्मा** (डी.ई.आई., आगरा)– सभी कलाएँ हमारी अभिव्यक्ति से जुड़ी होती हैं। मानव–मन को व्यक्त करने की एक अनूठी कला नृत्य कला है। नृत्य द्वारा मनुष्य परमानंद की प्राप्ति भी कर सकता है। अतः आनन्द की चरम अवस्था का नाम ही नृत्य है। नृत्य के बोल निरर्थक होते हैं जिन्हें अभ्यास के माध्यम से सार्थकता प्रदान की जाती है। नृत्य भी एक योग ही है। ये दोनों ही आपस में जुड़े हुए हैं। एक नर्तक को योगाभ्यास अवश्य ही करना चाहिए। वैसे कथक स्वयं में ही एक योग है चूँकि कथक करने से हमारी कुछ यौगिक क्रियायें स्वतः ही संचारित होती हैं जिससे मानव–शरीर पर कुछ सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं, जैसे– स्मरण शक्ति तेज होना, शरीर में लचीलापन, शारीरिक तनाव से मुक्ति, आत्मविश्वास में वृद्धि, सकारात्मक सोच में वृद्धि, अनुशासन, सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास, सृजनशीलता का विकास, साथ ही आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति इत्यादि। नृत्य में योगाभ्यास द्वारा नर्तक अपने नृत्य की समयावधि में भी वृद्धि कर दर्शकगण को मोह सकता है।

3. **प्रो. विधि नागर** (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)– नर्तक एक गायक भी है– क्यूँकि वह ताल पढ़ रहा है, एक वादक भी है– क्यूँकि वह घुँघरुओं से भी बोलों की ध्वनि कर रहा है तथा नर्तक है– क्यूँकि वह नृत्य कर रहा है। 'नाद ऑरा' द्वारा आयोजित एक वेबिनार में प्रो. विधि नागर

ने बताया कि प्राचीन काल में गुरु कथक की शिक्षा योग–भेद द्वारा ही दिया करते थे। नृत्य एक योग ही है जिससे नर्तक अपने शरीर में एक विशेष ऊर्जा का संचालन करता है। उदाहरण से और अधिक इस प्रकार समझा जा सकता है। कथक नृत्य में 'थाट' का प्रयोग किया जाता है। यह खड़े होने की एक क्रिया है। इसमें कसक–मसक क्रिया का प्रयोग किया जाता है अर्थात् श्वास लेना तथा श्वास छोड़ना जैसे योग में भी श्वास लेने व छोड़ने का एक नियम है। किसी भी रचना को नृत्य करने के बाद सम पर आते ही तथा सम पर आकर श्वास छोड़ आराम की श्वास लेते हैं, यह 'मत्स्य के प्राणायाम' से ही प्रेरित है। नृत्य में नर्तक अलग–अलग प्रकार की भ्रमरी (चक्कर) का प्रयोग करता है जिसमें नर्तक को श्वास का संचालन भी भिन्न–भिन्न प्रकार से करना होता है, यह योग ही तो है। एक नर्तक इन सब क्रियाओं को योग–अभ्यास द्वारा और अधिक सरल व कारगर बना सकता है। नृत्य योग ही है जिससे कथककार शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य को भी संतुलित कर उसमें सकारात्मक वृद्धि भी कर सकते हैं।

4. **रुद्र शंकर मिश्र** (बनारस घराना)– बनारस घराना के रुद्र शंकर मिश्र कहते हैं कि योग व नृत्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि एक नर्तक को अपने नृत्य में और अधिक सुधार चाहिए तो योग अभ्यास की आवश्यकता होती ही है। योग अभ्यास द्वारा एक नर्तक अपने नृत्य के समय शारीरिक सन्तुलन बनाए रखता है। मानव–चित्त को शान्त भी योग द्वारा किया जा सकता है। पैरों से ततकार हो या भ्रमरी, नृत्य में उछाल हो– ये सभी योग से सम्बन्धित हैं। यह कहना भी अनुचित न होगा कि नर्तक के शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक संतुलन को बनाए रखने में योग का बहुत बड़ा योगदान है।

5. **गौरेश वसन्त वर्षा शेतकर, पुणे**– कथक नृत्य व योग दोनों का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है तथा आज नर्तक को दोनों की समान आवश्यकता है। कथककार को दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित कर चलना ही चाहिए। मानसिक व शारीरिक संतुलन बनाने के लिए यह अति आश्यक है। मराठी में एक शब्द है– सौष्ठव। हमारा शरीर पंचमहाभूत तत्वों से मिलकर बना है अंग, उपांग, प्रत्यांग। प्रत्यांग इन सभी को जोड़ने का कार्य करता है। यदि किसी कारण प्रत्यांग में किसी प्रकार की क्षति हो तो नर्तक के अभिनय पर भी उसका प्रभाव देखने को मिलता है तथा इन्हीं कमियों से बचने के लिए अति आवश्यक है– योग, व्यायाम, पौष्टिक अन्न व पूर्ण निद्रा। आपका मानना है कि योग द्वारा मानसिक स्वास्थ्य, शारीरिक स्वास्थ्य व आन्तरिक मन की शान्ति का सन्तुलन बना सकते हैं। योग द्वारा नर्तक अपनी शारीरिक शक्ति में वृद्धि करता है । साथ ही, शरीर में लचीलापन, भावाभिव्यक्ति में सहायक श्वास की तकलीफों को दूर करना, रक्तचाप को स्थिर रखना आदि सभी में सहायक होता है।

6. **अमन पाण्डेय**, दिल्ली (पं. राजेन्द्र गंगानी के शिष्य)– नृत्य की सुन्दरता को बढ़ाने का कार्य योग द्वारा किया जाता है। कथक नृत्य के लिए शरीर में लचीलापन अति आवश्यक है, इसे योग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ये दोनों आपस में जुड़े हुए हैं। जो सुन्दर है वह नृत्य है और वर्तमान समय में इस सुन्दरता को और अधिक सुन्दर व सजीला बनाने के लिए एक नर्तक को योग का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिए। योग द्वारा ही नर्तक स्वयं को शारीरिक व मानसिक शक्ति प्रदान कर उनमें संतुलन बना सकता है।

उपरोक्त विद्वानों के विचार से स्पष्ट होता है कि कथक नृत्य व योग, दोनों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह कहना अनुचित न होगा कि कथक नृत्य स्वयं में एक योग ही है जिसके द्वारा नर्तक अपनी सृजनशीलता में वृद्धि, मानसिक स्वास्थ्य व शारीरिक स्वास्थ्य को अच्छा करने के साथ–साथ आध्यात्मिक ज्ञान की भी प्राप्ति कर सकता है।

निष्कर्ष : एक कुशल नर्तक को नृत्य अभ्यास के साथ योग अभ्यास करना अति आवश्यक व महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

सन्दर्भ सूची :

1. दाधीच, पुरु, कथक नृत्य शिक्षा, भाग–1
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, कथक नृत्य
3. पतंजलि, महर्षि, श्रीपातंजलयोगदर्शनं
4. रमन, इन्द्र नारायण, भारतीय योग सिद्धान्त (योग, मुद्रा एवं शरीर रचना क्रिया विज्ञान)
5. प्रो. काजल शर्मा– साक्षात्कार, दिनांक 21.10.2020, नृत्य कार्यशाला, डी.ई.आई., आगरा
6. प्रो. नीलू शर्मा– साक्षात्कार द्वारा
7. प्रो. विधि नागर– 23, 24 मार्च, 2021 Naad Aura द्वारा आयोजित एक व्याख्यानमाला द्वारा
8. रुद्र शंकर मिश्र– दूरभाषीय सम्पर्क द्वारा, दिनांक 28.08.2022
9. गौरेश वसन्त वर्षा शेतकर– दूरभाषीय सम्पर्क द्वारा, दिनांक 26.08.2022
10. अमन पाण्डेय– दूरभाषीय सम्पर्क द्वारा, दिनांक 26.08.2022

जनजातीय महिलाओं के दमित संवेगों को उजागर करने में संगीत की भूमिका

डॉ. संतोष मीणा** वर्षा मीणा*

सारांश

अनुसूचित जनजाति की महिलाएँ पूरे देश में पिछड़ेपन की शिकार है। इनका तुलनात्मक विकास नगण्य है। समाज में इनके साथ भेद–भावपूर्ण रवैया अपनाया जाता रहा है परन्तु इस अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के जीवन में संगीत की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। जनजातीय महिलाओं के मन में निहित दमित संवेग संगीत के माध्यम से किस प्रकार अभिव्यक्ति प्राप्त करने में सहायक होते हैं, इस विषय पर यहाँ विस्तृत व्याख्या की गई है ।

शब्द कुंजी– *संगीत, अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति, दमित संवेग, मानसिक स्वास्थ्य*

शोध–प्रविधि– *प्रस्तुत लेख विभिन्न द्वितीयक स्त्रोतों के माध्यम से तैयार किया गया है ।*

भारत में अनुसूचित जनजाति की महिलाएँ कई शताब्दी पूर्व से ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हाशिए पर रखी गई हैं। शुरू से ही इनके साथ भेदभावपूर्ण दोहरा व्यवहार किया गया है। समाज में अन्य जाति तथा वर्ग की महिलाओं से प्रत्येक क्षेत्र में ये पिछड़ापन झेलती आ रही हैं। वर्तमान समय में इनको सरकार द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक, आधिकारिक, कानूनी, धार्मिक इत्यादि अधिकार प्राप्त होने के बावजूद आज भी अन्य महिलाओं से इनका विकास तुलनात्मक रूप से कम ही मिलता है।

अनुसूचित जनजाति की सामाजिक, सांस्कृतिक प्रथाएँ हिंदू धर्म की अन्य महिलाओं से भिन्न होती हैं। विकास के विभिन्न क्षेत्रों में इनकी भागीदारी कम होने का कारण विभिन्न शोधकर्ता इस प्रकार अनुमान लगाते हैं कि समाज द्वारा इन पर अनावश्यक रूप से विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध लगे होते हैं । फलस्वरूप इनकी स्वतंत्रता और आत्माभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाता है। 73वें संशोधन के बाद अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के पक्ष में आरक्षण नीति की शुरूआत कर सरकार ने विभिन्न गतिविधियों में इस वर्ग की महिलाओं की भागीदारी आवश्यक कर दी है जिसके परिणामस्वरूप इनको आर्थिक प्रगति के अवसर प्राप्त हुए हैं तथा समानांतर रूप से ये जागरूक भी हुई हैं। (Bainwad, R.R. (2020))

फ्रॉयड के अनुसार दमित संवेग :

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिग्मंड फ्रॉयड ने मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत का प्रतिपादन किया। फ्रॉयड ने व्यक्ति की अचेतन मन की भावनाओं को उजागर करने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनका मानना था कि कुछ व्यक्ति अपने मन की भावनाओं को खुलकर अभिव्यक्त कर पाने में सक्षम हो पाते हैं तथा कुछ मन में उपजे भावों को छिपाने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति समाज द्वारा अस्वीकृत भावों, विचारों तथा आवेगों को सक्रिय रूप से आंतरिक मन में दबाए एवं छिपाए रखते हैं जिसके परिणामस्वरूप दमन की अवधारणा का विकास होता है।

दमन पहला रक्षा तंत्र है जिसे सर्वप्रथम फ्रॉयड ने पहचाना। वे पहले विद्वान हैं जिन्होंने व्यक्ति की दमित भावनाओं तथा आग्रहों को चेतन अवस्था में लाकर सचेत रूप में निपटाने का प्रयास किया क्योंकि कई बार दमित भावनाओं का दमन करने से स्वास्थ्य संबंधी विकार उत्पन्न होने लगते हैं। जाने–अनजाने अधिकांशतः मनुष्य दर्दनाक भावनाओं, विचारों एवं कटु यादों को अपनी चेतना से बाहर धकेलने की कोशिश करता है। इस प्रकार एक तरह से वो अपनी सकारात्मक छवि को नुकसान पहुँचाने से डरते हैं। (Mund, M. & Mitte.K. (2012))

दमित संवेगों का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव :

दमित संवेग व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को आवश्यक रूप से प्रभावित करते हैं। शोधकर्ताओं ने विभिन्न शोधों के माध्यम से इस तथ्य की पुष्टि भी की है। अमेरिका और हांग–कांग ने चीनी प्रतिभागियों पर किये

*शोधार्थी (मनोविज्ञान), वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, टोंक, राजस्थान

**एसोसिएट प्रोफेसर (मनोविज्ञान), वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, टोंक, राजस्थान

गए एक शोध के अनुसार पता लगाया गया कि भावनाओं के दमन से जीवन संतुष्टि पर प्रभावकारी असर पड़ता है। शोध के अंतर्गत उच्च दमन और कम दमन के साथ नियंत्रण की स्थिति का अवलोकन किया गया। भावनाओं के दमन से अमेरिकियों के जीवन संतुष्टि को कम करता है, इसके विपरीत कम दमन बनाम नियंत्रण में उच्च जीवन संतुष्टि देखी गई और उच्च दमन बनाम नियंत्रण में कोई खास अंतर नहीं देखने को प्राप्त हुए तथा कम दमन और कम नियंत्रण की स्थिति में भी कोई अंतर नहीं देखा गया। (Nam. Y. Kim. Y.H. & Tam, K.K.P. (2018))

भावात्मक दमन के मनोवैज्ञानिक और शारीरिक स्वास्थ्य परिणामों में सांस्कृतिक अंतर की जाँच के अनेक शोध–कार्यों का उल्लेख देखने को मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि हमारी संस्कृति किस प्रकार भावनाओं के दमन में अनेक मनोवैज्ञानिक और शारीरिक स्वास्थ्य परिणामों को प्रभावित करती है। हमारे भावात्मक संयम को प्राथमिकता देने वाले सांस्कृतिक समूहों के लिए भावना प्रकटीकरण में मदद करते हैं। (Kumar, B.K. (2014))

राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट, भारत की जनगणना, भारत के विभागों द्वारा प्राप्त आँकड़ों के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के बीच साक्षरता व स्कूली शिक्षा में भव्य अंतर देखने को मिलता है। शोध–कार्यों से पता चलता है कि भारत में अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के बीच साक्षरता और शिक्षा के विस्तार में बाधा डालने वाला मुख्य कारक उच्च गरीबी दर तथा सामाजिक–सांस्कृतिक मानदंड है । जनजातीय महिलाओं की संपूर्ण स्थिति में सुधार करने हेतु साक्षरता अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षा का प्रचार–प्रसार कर इनमें जागरूकता संबंधी आवश्यक कदम उठाए जाने संभव हैं। (Mitra, A. and Sign P. (2008))

राजस्थान की अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की महिलाओं में प्रजनन स्वास्थ्य प्रोफाइल जानने हेतु एक क्रॉस–सेक्शनल अध्ययन किया गया। शोध के अंतर्गत 600 महिलाओं का समूह शामिल कर उनमें विवाह आयु, गौना और प्रथम गर्भधारण की उम्र इत्यादि के आधार पर आँकड़े संग्रहित किए गए। निष्कर्ष के तौर पर यह ज्ञात होता है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं का प्रजनन स्वास्थ्य, अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य से बेहतर है। प्रजनन अवस्था में प्रसव के दौरान देखभाल, बच्चे का प्रसव स्थान, प्रसवपूर्व देखभाल, विटामिन, आयरन की दवाइयों का सेवन इत्यादि तुलनात्मक रूप से अनुसूचित जाति की महिलाओं में बेहतर पाया गया। (Bhardwaj, A. and Tungdim, M.G. (2010))

पंचायतों के अंतर्गत अवसर की समानता होने के बावजूद अनुसूचित जनजाति की महिलाओं का राजनीतिक समावेश और राजनीतिक भागीदारी हाशिए पर है। अनुसूचित जनजाति की महिलाओं का राजनीतिक क्षेत्र में पिछड़ेपन का कारण भी उनके सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र के वृहद् और सूक्ष्म स्तर पर बहिष्कार का परिणाम है। शासन में अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ करने हेतु संस्थागत रणनीति विकास में आवश्यक सुधार, प्रशिक्षण तथा विस्तार का उनकी पहुँच में होने, राजनीतिक प्रतिबद्धता और नागरिक समाज संघों द्वारा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की जानी चाहिए। (Vijayalakshmi, V. (2001))

जनजातीय महिलाओं के दमित संवेग :

अनुसूचित जनजाति की महिलाएँ बहुत मेहनती होती हैं। कुछ मामलों में ये पुरूषों से भी अधिक कर्मठ होती हैं। ये केवल 'घरनी' न होकर बराबर की कमाऊ सदस्य भी हैं। आदिवासी महिलाएँ मेहनत करने में पुरुषों से ज्यादा क्षमतावान होती हैं। आदिवासी स्त्रियाँ स्वावलंबी होती हैं। वे स्वयं कमाकर अपना और अपने परिवार का भरण–पोषण कर सकती हैं।

जनजातीय महिलाएँ पारंपरिक तौर–तरीकों पर आश्रित रहकर जीवन–यापन करती हैं। ये आधुनिक भौतिक सुख–सुविधाओं से परे रहकर प्रकृति प्रदत्त संसाधनों से अपने जीवन–संबंधी तमाम कार्य संपादित करती हैं। ऐसी कठोर परिस्थिति में भी जनजातीय महिलाएँ पुरूषों के समतुल्य न रहकर उनसे अधिक कार्यभार का निर्वहन खुशीपूर्वक संपादित करती हैं। सामाजिक तौर पर तमाम अधिकारों, स्वास्थ्य साधनों से विमुख रह कर भी प्रत्यके सामाजिक स्थिति में विनम्र भूमिका निभाती हैं।

आदिवासी समाज पितृसत्तात्मक पद्धति से संचालित होता है हॉलाकि विभिन्न शोधों के माध्यम से पता चलता है कि जनजातीय पुरूष अपनी दुनिया में स्वीकारते हैं कि महिलाओं को स्वतंत्रता एवं आत्माभिव्यक्ति है किंतु साक्षरता–दर में सभी सामाजिक समूहों की महिलाएँ पुरूषों की तुलना में निरक्षर हैं। शोध आँकड़े दर्शाते हैं कि पुत्र की

वरीयता सदैव बनी रहती है। उत्तराधिकारी की अवधारणा ने कन्या–भ्रूण–हत्या को उच्च अनुपात में धकेला हुआ है। यदि इस संदर्भ में महिलाओं के पास विकल्प भी होता है तो वे पुरूष बच्चे का ही चुनाव करती हैं, क्योंकि उनकी सोच भी कुछ इस प्रकार बुन दी जाती है कि पुत्र के जन्म के उपरांत उनको उच्च पद प्राप्त होगा।

पुरूष–केंद्रित मुद्दे मानसिकता पर हावी हो जाने के कारण महिलाएँ अपने व्यक्तित्व को भाई, पिता, पति व पुत्र से प्राप्त करती हैं। यह जटिल प्रक्रिया संस्कृति के माध्यम से पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रसारित होती रहती है जो समाज मे महिलाओं की स्थिति का निर्धारण करने का कार्य करती है। पुरूष अथवा लड़के को परिवार में 'चिरस्थाई' के रूप में देखा जाता है तो एक लड़की को 'मार्ग की चिड़िया' के रूप में। (Veena, B. (2003))

शिशु–काल से ही इन महिलाओं की समग्र आंतरिक भावनाओं को विकसित होने से पूर्व ही दबा दिया जाता है जो जीवन पर्यन्त पल्लवित होने के लिए छटपटाती रहती हैं। पुरूष–प्रधान समाज निरन्तर नारी की लगाम अपने हाथों से नियंत्रित किए रखता है। इन कुंठाओं से निकल पाना अत्यंत मुश्किल कार्य है। समाज तथा परिवार में पुरूषों की तुलना में कम समझना, तमाम सामाजिक–सांस्कृतिक कार्यों में अपेक्षाकृत कम भागीदारी रखना, रूढ़ियों से जकड़े रहना, जीवन के विभिन्न पड़ावों में प्रस्फुटित होने वाले द्वंद्वात्मक भाव जैसेः– सुख–दुःख, आशा–निराशा, प्रेम–घृणा, हर्ष–विषाद, राग–द्वेष, विरह–मिलन, चिंता–निश्चिंता इत्यादि भावों को अभिव्यक्त करने हेतु ये महिलाएँ सांगीतिक कलाओं का सहारा लेती हैं।

दमित संवेगों की अभिव्यक्ति में संगीत की भूमिका :

आदिम काल से ही संगीत जन–जीवन के आत्मिक उल्लास और सुखानुभूतियों की ललित अभिव्यक्तियों का मधुरतम माध्यम रहा है। जीवन की जटिल समस्याएँ जहाँ एक ओर जनजातीय महिलाओं के जीवन में चिंता को जन्म देती हैं, वहीं दूसरी ओर संगीत इनकी दमित भावनाओं को उजागर करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। दैनिक जीवन के कठोर श्रम के उपरांत स्त्रियाँ शांत चित्त होकर सामूहिक सामवेद गायन में तल्लीन हो जाती हैं जो उनके हृदय के तारों को झंकृत कर आनंद–विभोर कर लाभान्वित करते हैं।

लंदन में प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'हॉस्पिटल एण्ड हैल्थ मैनेजमेंट' में प्रकाशित लेख का उदाहरण देकर यह सिद्ध जा सकता है कि किसी रोगी व्यक्ति को अगर नियमित रूप से कुछ समय के लिए मधुर संगीत का श्रवण करवाया जाए तो वह व्यक्ति यथाशीघ्र आरोग्य लाभ प्राप्त कर सकता है। न्यूयॉर्क के डॉ. एडवर्ड पोरेलास्की और इंग्लैण्ड के डॉ. मिथु के अनुभवों को आधार बनाकर कहा जा सकता है कि संगीत के स्वरों से शरीर में एक विशेष प्रकार का कंपन पैदा होता है, जो रक्त–संचारण तीव्र करने में सहायक होता है । परिणामस्वरूप शरीर में उपस्थित विषैले एवं विजातीय तत्वों का विचलन होकर निसर्ग मार्गों से निष्कासन होता है, जिसके फलस्वरूप रोगी को शीघ्र स्वास्थ्य लाभ मिलता है। (माथुर, क. (2009))

संगीत–प्रशिक्षण और साक्ष्य आधारित संगीत–चिकित्सा के द्वारा गैर सांगीतिक क्षेत्रों में भाषा, संज्ञानात्मक कार्यों और सेंसरीमोटर गतिविधियों में सुधार किया जा सकता है। विभिन्न संस्कृतियों के सांगीतिक तत्वों में समानता पाई जाती है। लोक संगीत को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान कर शोध–कार्यों में नवाचार लाया जा सकता है। संगीत की मधुर ध्वनि अनुपम शक्ति से निहित होती है जो हृदय के कड़े विचारों को समाप्त कर सहृदयता एवं सद्भावना को जन्म देती है। संगीत कला से जुड़े व्यक्ति दर्द–भरी आवाज, उल्हास, उन्माद और उत्साहित कर देने वाली विभिन्न भावपूर्ण आवाजों का आसानी से अवलोकन कर लेने की क्षमता रखते हैं। विभिन्न प्रकार की आवाजों में छिपे भावों की समझ संगीत सीखने अथवा जानने वाले व्यक्तियों में अधिक होती है। (बाघेला, वि. (2010))

जन्म से ही हमारा मन सुंदर अभिव्यक्तियों को उत्तेजित करता है। बालको में बचपन से ही संगीत के द्वारा मानवता के प्रति प्रेम, समाज–कल्याण, लोक–कल्याण, बंधुत्व की भावना तथा समस्त मानव–जाति के प्रति प्रेम का विस्तार किया जाना चाहिए जिसके फलस्वरूप बालक में शुरू से ही नैतिक शिक्षा का विकास किया जाना संभव है। महान् दार्शनिक प्लेटो का कहना है– ''मैं उस व्यक्ति को कभी किसी पाठशाला में शिक्षक नहीं बनाऊंगा, जो संगीत की जानकारी न रखता हो।''

प्रकृति के अंग–प्रत्यंग तथा मानव हृदय सदैव संगीत से प्रभावित रहे हैं। संस्कृत के एक श्लोक में कहा गया है कि ''साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुपुच्छ

विषाणहीनः'' अर्थात् जिस मनुष्य में साहित्य, संगीत और कला से प्रभावित होने की क्षमता नहीं है, उसे पुच्छरहित साक्षात् पशु समझना चाहिए। मानव हृदय व प्रकृति पर संगीत का चिरस्थायी प्रभाव पड़ता है। अदृश्य नाद–तरंग मनुष्य के भावुक हृदय के मर्म–स्थलों को स्पर्श करते हुए उसके समस्त हृदय तारों को झंकृत कर देते हैं तथा पशु–पक्षियों का संगीत द्वारा प्रभाव होना सर्वविदित है। (रक्षक (1981))

संगीत का प्रयोग विभिन्न शारीरिक और मानसिक उपचारों में सफल रूप से किया गया हैं। शोर मनुष्य में तनाव उत्पन्न करता है तो संगीत मन के तनाव को दूर करता है। मन पर पड़ने वाले संगीत के प्रभाव का सीधा परिणाम स्थूल शरीर पर दिखाई देता है। आलसी मनुष्य को श्रमशील बनाने में भी संगीत उपयोगी होता है तो इसके विपरीत संगीत का प्रयोग अनिद्रा के इलाज में भी किया गया है। संगीत के माध्यम से विभिन्न रोगों को दूर किये जाने क्षमता होती है। विभिन्न रोगों पर हुए सांगीतिक प्रयोगों से सिद्ध होता है कि संगीत द्वारा असाध्य समझे जाने वाले रोगों तथा मानसिक संतुलन पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। (पाण्डेय कृतानन्द (2014)) संगीत सामूहिक एकता का विश्वास जाग्रत कर आपस में सहानुभूति व सहयोग की भावना का विकास करता है।

निष्कर्ष :

संगीत के इस मनोवैज्ञानिक पक्ष पर वैज्ञानिक प्रयोग अथवा परीक्षण किए जा चुके हैं जिससे मानव के आचरण, प्रकृति, क्रिया, थकावट और दमित भावों को उजागर करने में संगीत की महती भूमिका सिद्ध होती है।

संदर्भ सूची :

1. Bainwad, R.R. (2020). Analytical study of the empowerment of scheduled tribe women in PRIs. International journal of multidisciplinary research, 6(11). https://doi.org/10.36713/epra2013
2. Mund, M., & Mitte, K. (2012). The costs of repression: A meta-analysis on the relation between repressive coping and somatic diseases. Health Psychology, 31(5), 640–649. https://doi.org/10.1037/a0026257
3. Nam.Y., Kim, Y.H., & Tam, K.K.P. (2018), Effects of emotion suppression on life satisfaction in Americans and Chinese. Journal of Cross-Cultural Psychology, 49 (1), 149-160. https://doi.org/10.1177/0022022117736525
3. नाम, ये. किम, यं और टाम, के. (2017). इफैक्ट ऑफ इमोशन सप्रेशन ऑन लाइफ सेटिस्फेक्शन इन अमेरिकन एण्ड चाइनीज. जर्नल ऑफ क्रॉस कल्चर साइकोलॉजी. 01 (49), 149–160.
4. Kakati, B.K. (2014). Cultural and empowerment in the study of tribes in india. A journal on tribal life and culture, 17 (1). 27-35.
5. Mitra, A., and Singh, P. (2008). Trends in literacy rates and schooling among the scheduled tribe women in India. International Journal of Social Economics, 35(1/2), 99-110. https://doi.org/10.1108/03068290810843864
6. Bhardwaj, A., and Tungdim, M.G. (2010). Reproductive Health Profile of the Scheduled Caste and Scheduled Tribe Women of Rajasthan, India. The Open Anthropology Journal. DOI: 10.2174/1874912701003010181
7. Vijayalakshmi, V. (2001). Politics of Inclusion: Scheduled Tribe Women in Local Governance. Institute for Social and Economic Change.
8. Veena, B. (2003), Status of tribal women in India, studies on home and community science, 1 (1). 1-16. https://doi.org/10.1080/09737189.2007.11885234
9. माथुर, क. (2009). मनोरोगों की औषधि है संगीत. संगीत कला विहार, 73 (03), 41–42.
10. बाघेला, वि. (2010). मानव जीवन और संगीत. संगीत कला विहार, 63 (02), 30–31.
11. रक्षक. (1981). आरोग्य के लिये संगीत. संगीत कला विहार, 34 (11), 425–429.
12. पाण्डेय, कृतानदं. (2014). मानव के आचरण, प्रकृति, क्रिया और थकावट पर संगीत का प्रभाव. संगीत कला विहार, 67 (01). 31–34.

साहित्य, संगीत तथा सिनेमा का आधुनिक दौर

डॉ. सिम्मी आर. सिंह** **अमृतपाल सिंह***

सारांश

साहित्यकार जीवन के सत्य को सुन्दर रूप से निरूपित कर समाज के कल्याण के लिए उसके सम्मुख रचना रूप में प्रस्तुत करता है। उसका लक्ष्य भी 'स्वांतः सुखाय' के साथ–साथ 'बहुजन हिताय' होता है। साहित्य के दो पक्ष सर्वमान्य हैं– गद्य और पद्य। गद्य का प्रयोग साहित्य के कहानी और लेख–पक्ष में किया जाता है और पद्य का तात्पर्य गेय कविता से है। संगीत की अभिव्यक्ति के लिए एक कविता या पद्य जिसको हम सांगीतिक भाषा में रचना कहते हैं, आवश्यक अंग है। हमारे संकल्प तथा विचार कला और साहित्य में ध्वनित होते हैं। अभिव्यक्ति के माध्यम से आन्तरिक अनुभूतियों का उच्छलन साहित्य के रूप में जन्म लेता है।

अगर आज के गीतों के सन्दर्भ में देखा जाय तो ये गीत साहित्य की परिभाषा पर किसी भी स्तर से पूरे नहीं उतरते। इन गीतों पर असभ्य समाज कुछ क्षण के लिए आनन्दित जरूर होता होगा परन्तु ये गीत कभी भी व्यक्ति को गहराई से नहीं छूते जिन्हें वह अपनी जिंदगी में प्रेरणा के रूप में ले सके। वे ही गीत बन सके जो व्यक्ति को उसकी उदासीनता से उभार कर सुकून की लहर दे।

संकेत शब्द– *साहित्य, गीत, संगीत, चलचित्र*

शोध–माध्यम : *इस लेख को तैयार करने में उपलब्ध पुस्तकों की सहायता ली गई है।*

'ध्वनि' एवं 'शब्द' का मूल नाद है, इस प्रकार संगीत और साहित्य दोनों ही कलाओं का माध्यम भी नाद है। यदि गम्भीरता से देखें तो वास्तव में ये दोनों कलाएँ एक–दूसरे से इतना अधिक जुड़ी हुई हैं कि इनको पृथक करना कठिन है, साहित्य शब्द–प्रधान है। उसके पास भाव व्यक्त करने के लिए शब्द है। शब्द प्रकट करने के लिए स्वर का आश्रय लेना ही होगा। शब्द का आश्रय नाद ही है। दो अक्षरों के मध्य कुछ समयान्तराल होता है जो लय का काम करती है। यही स्वर और लय संगीत के भाव को प्रकट करने का माध्यम है। स्पष्ट है कि लय और स्वर के बिना संगीत नहीं हो सकता। साहित्य के दो पक्ष सर्वमान्य हैं– गद्य और पद्य। गद्य का प्रयोग साहित्य के कहानी और लेख पक्ष में किया जाता है और पद्य का तात्पर्य गेय कविता से है जिसे हम साधारण बोलचाल में 'काव्य' कहते हैं। जब हम संगीत और साहित्य की बात करते है तो पद्य की बात करते हैं।

फिल्म संगीत भी संगीत के प्रचलित रूपों में से एक है जिसमें साहित्य अहम् भूमिका निभाता है। ''यदि भ्रष्ट साहित्य देखना हो, तो सिनेमा देखो, यह आम धारणा है हिन्दी वालों की। इसके कारण भी हैं। प्रेमचन्द की कृतियाँ सिनेमा में आकर भ्रष्ट हुईं। सुदर्शन जी की साहित्यिक प्रतिभा को सिनेमा खा गई। भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उग्र, अश्क– कौन–कौन न आए और इस पहाड़ से लहूलुहान घर लौटे। तो भी हिन्दी वाले सिनेमा देखते ही हैं और हिन्दी के साहित्यिक भी यदा–कदा इस कूचे की झाँकी लेने से बाज नहीं आते।''[1] फिल्म लोक कला का एक सशक्त माध्यम है जिसमें जीवन का ऐसा कोई पक्ष अछूता नहीं रहता जो फिल्म के माध्यम से दर्शकों तक ना पहुंचाया जा सके। अतः संगीत इन भावों को, जीवन के हर पहलू को श्रोता, दर्शक तक पहुंचाने का माध्यम होता है। ''सिनेमा के शैशव में ही शॉ ने यह अनुभव कर लिया था कि आविष्कार के रूप में सिनेमा प्रिंटिंग प्रेस से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण साबित होगा क्योंकि यह शिक्षित और अशिक्षित दोनों को समान रूप से आकर्षित करेगा। उन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि सिनेमा भविष्य में लोगों के दिलो–दिमाग को गढ़ेगा और उनके आचरण को प्रभावित करेगा। साथ ही, उन्होंने यह भी पहचान लिया था कि सिनेमा का विराट विस्तार कला और जीवन को सबसे हल्की नैतिकता के स्तरपर उतार कर मामूलीपन को अनिवार्य बनाता है।''[2]

*शोधार्थी, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ

**शोध–निर्देशिका (अवकाशप्राप्त), एम.सी.एम.डी.ए.वी. कॉलेज, चण्डीगढ

यदि हम 1950 से 1970–80 के दशक तक की बात करें तो इस समय यदि एस. डी. बर्मन, नौशाद, शंकर जयकिशन, खय्याम साहब जैसे संगीतकारों ने संगीत जगत को अविस्मरणीय खजाना दिया तो इसी समय साहित्यकार/गीतकार लुधियानवी, गुलजार, कैफी आजमी, निदा फाजली जैसे गीतकार हुए जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से लाखों श्रोताओं तक हृदय को छूने वाली ऐसी रचनाएँ दी कि हर व्यक्ति को लगे कि यह गीत उसकी ही कहानी व्यक्त कर रहा है। ''हिन्दी फिल्मी गीतों का समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा है और उसने भले ही 'कल्चर्ड' सुसंस्कृत घरानों पर प्रभाव बहुत ज्यादा न छोड़ा हो पर व्यापक जन–जीवन में काफी प्रभाव पड़ा है।''[3]

यदि हम इन गीतों में से कुछ की बात करें तो कई अर्थपूर्ण गीत जैसे 'जिंदगी का सफर'', ''कभी किसी को मुकम्मल'', ''कहीं दूर जब दिन ढल जाए'', ''पराया दर्द जो समझे'', ''इक दिन मिट जाएगा माटी के मोल'', कुछ दशभक्ति का जज्बा लिए हुए गीत ''मेरी देश की धरती'', ''ए मेरे वतन के लोगों'' कहीं भक्तिपूर्ण गीत 'हरि ओम'', ''जागो मोहन प्यारे'' कहीं लोक–जीवन को व्यक्त करते गीत तो कहीं समाज के लिए प्रेरणादायी गीत हैं। इन सभी गीतों में साहित्य मुखर है जिसमें गीतकार हृदय की गहराई तक डूब कर कार्य करते हैं और वो गीत अमर हो गए । समय की गति के साथ–साथ संगीत का स्वर बदला अर्थात् पहले जहाँ रागों की झलक गीतों में मिलती अर्थात् राग आधारित गीत सुनने को मिलते, वह कम होता गया और हल्की–फुल्की धुनों पर आधारित गीत आने लगे, वहीं साहित्य का स्वरूप बिगड़ते–बिगड़ते आज जिस दशा तक पहुँच गया है उसे हम निदंनीय व सोचनीय स्थिति में कहें तो अनुचित नहीं होगा।

आज गीतों में साहित्य की परिभाषा का कोई अर्थ नहीं रहा। गीतों में न केवल गाली–गलौज का स्थान आया है बल्कि अश्लील शब्दों का प्रयोग भी खूब हुआ है, यहाँ तक कि देवी–देवताओं के नाम का प्रयोग करने में भी कोई आपत्ति नहीं है।

''कर दे मुश्किल जीना, ईश्क कमीना,'' ''सैक्सी राधा'', 'मुन्नी बदनाम हुई', 'दिल मेरा बदमाश' आदि गीत हर समय रेडियो तथा टी. वी. पर प्रसारित होते हैं। ऐसे गीत जिन्हें आप अपने परिवार के साथ बैठ कर सुन नहीं सकते, जिन्हें सभ्य समाज में कभी भी स्वीकारा नहीं जा सकता, जो शालीन समाज की हर मर्यादा का उल्लंघन करते हैं– खुले तौर पर इस तरह के गीत प्रसारित होते हैं और सैंसर बोर्ड इन पर कोई पाबंदी नहीं लगाता।

इसके साथ–साथ आजकल 'रैप संगीत' प्रचलन में है। इस संगीत के बारे में क्या कहा जाए। यह संगीत ही है? या वास्तव में कुछ और! अथवा संगीत के नाम पर कोलाहल जिसे युवा–वर्ग केवल डिस्को थैक कर, झूम कर ही आनन्द प्राप्त करता है, जो केवल क्षणिक है। यह न तो संगीत, न हि साहित्य की परिभाषा के साथ न्याय करता हुआ प्रतीत होता है। ''आज मैंने ब्रेक अप की पार्टी करनी है,'' "नाम मेरा सुपर स्टार" जैसे फूहड़ गीतों के माध्यम से ये गीत क्या संदेश देना चाहते हैं, यह सोचनीय विषय है। हालॉकि इन गीतों के निर्माता ये भली–भांति जानते हैं कि ये रचनाएँ कभी इनको उस अमरतत्व की प्राप्ति नहीं करवा सकतीं कि 50 साल बाद भी व्यक्ति इन गानों को सुने। इनकी अवधि केवल 10–15 दिनों तक की होती है। फिर ये कहकर संगीत–निर्माता अपनी जिम्मेदारी से पीछे भागते हैं कि श्रोता यही पसन्द करते हैं जबकि यह सत्य नहीं है। यह तर्क देकर कोई भी व्यक्ति सामाजिक कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकता। ''सिनेमा आधुनिक विज्ञान का वह वरदान है जो सस्ता मनोरंजन देता है। दिन–भर की दौड़–धूप, मेहनत–मशक्कत से परेशान इन्सान शाम को दिलबस्तगी का कोई सामान खोजता है। गरीब देश है। उसे ऐसा ही मनोरंजन चाहिए, जो कम–से–कम पैसे में प्राप्त हो सके, सब जगह प्राप्त हो सके और जिसके अपनाने में 'अंगुली' भी नहीं उठाई जाए। सिनेमा इन सभी शर्तों को पूरा करता है। इसीलिए यह इतना जनप्रिय है।''[4]

डॉ. विद्यानिवास मिश्र साहित्य के दो अर्थ मानते हैं। पहला जो हित के साथ हो, वह साहित्य है और दूसरा यह कि जहाँ शब्द और अर्थ साथ चलते हैं, जहाँ रचनाकार और पाठक साथ–साथ चलते हैं, जहाँ कवि का व्यक्ति उसकी समष्टि चेतना के साथ–साथ चल सकता है और जहाँ आज की रचना बीते कल की और आने वाले कल की रचना के साथ चल सकती हो, वो साहित्य है।

किसी ने खूब कहा है गीतों ने हमें जीना सिखाया, गज़ल ने मोहब्बत सिखाई है, हर गीत हमारा अपना है, हर गीत हमारी कहानी है। कलाकार यदि समाज के प्रति अपने

दायित्व को समझें तो गीतों का वह भाव पुनः जागृत हो सकता है। जहां हर व्यक्ति यह कहे कि हर गीत हमारा अपना है हर गीत हमारी कहानी है।

सन्दर्भ सूची :

1. बेनीपुरी, रामवृक्ष, सिनेमा की उपेक्षा नहीं कर सकते, वर्त्तमान साहित्य, सदी का सिनेमा, वर्ष–19, अगस्त–दिसम्बर, 2002, पृ.– 7
2. शॉ, बर्नार्ड, सिनेमा ही कसौटी होगा, सिनेमा के सौ बरस, शताब्दी साहित्य माला, पृ.– 3
3. खरे, विष्णु, गीत और संगीत की भूमिका, वर्त्तमान साहित्य, सदी का सिनेमा, वर्ष–19, अगस्त–दिसम्बर, 2002, पृ.– 327
4. बेनीपुरी, रामवृक्ष, सिनेमा की उपेक्षा नहीं कर सकते, वर्त्तमान साहित्य, सदी का सिनेमा, वर्ष–19, अगस्त–दिसम्बर, 2002, पृ.– 7

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. डॉ॰ रामशंकर, उत्तर भारतीय संगीत की बंदिशों में भाषा का स्थान
2. चर्तुवेदी, मंजुला, भारतीय लोककला से अभिप्राय
3. मिश्र, विद्यानिवास, साहित्य का प्रयोजन

Fundamentals of Kashmiri Sufiana Music

Waseem Raja*

Abstract

Kashmir has its own music in origin & presentation reflects the cultural legacy & music heritage of Kashmir. The music of Kashmir called Sufiana Kalam is probably borrowed from central asian countries. Muslim era in Kashmir imbibed musical influences from Arabia, Iran, Samarkand & tashkand. Sufiana Music has its own terminology like that of Classical music of India. The language, expression, parlance defines & advocates the absolute depth & existence of Sufiana music world.

The research paper states the nomenclature & vocabulary used in sufiana music of Kashmir. Introductory basic terms of sufiana music is the epicenter of this research paper.

Key Words:- *Music, sufiana music, Bandh, Maqams.*

Introducation

Sufiana Music of Kashmir has its own cultural heritage. It needs to explain some terms used with :

Naad/Nada:- Naad is the base of all vibrations and much more than just frequency. Nada is of two types, Aahat & Anahat. Aahat naad is whatever we hear, speak or sing; frequency of sound that we can hear & Anhad/ Anaahat naad which we cannot hear.

Shruti:- The shruti is the smallest gradation of pitch available called microtones.

Swara:- Swaras are the selected pitches from which the musician constructs the scales, melodies and ragas, Maqams in Sufiana music is also made up of Swaras.

Saptak:- Saptak literally means "containing seven" and is derived from the Sanskrit word Sapta which means "seven". The Saptak comprises the Sapta Svaras, i.e. the seven svaras or the seven notes of music. Saptak is of three types Mandra, Madhya & Taar.

Thata/Thaat:- Thata is a system of organization & classification of Ragas of Indian Classical music, also in sufiana music of Kashmir.

Aalap/Bol Aalap:- The opening section (prelude) of a typical north Indian classical music is called the Aalap. It is a form of melodic improvisation that introduces & develops a raga. Aalap is followed by structured progression during song rendition with rthym in it called as Bol Aalap. The same rule applies to sufiana music of kashmir.

Nasr:- Bol aalap of Indian Classical music is equivalent to Nasr of Sufiana music, in Kashmir.

Shakl :- Shape of Maqam equivalent to Indian aalap.

Balai/Balayee:- Balai is the ascending order of notes in sufiana music of kashmir. In Indian music it is called as Aroh/Arohi.

Pasti/Pastee:- Pasti is the desending order of notes in sufiana music of kashmir. In Indian music it is called as Avroh/Avrohi.

Shinakhat/Shinaakht:- Pakad of Indian music is called Shinakhat in Sufiana Music of Kashmir.

Song:- Song in Sufiana Music is called **Bandish** same as in Classical Music of India.

Zameen:- The first line & the initial phrase of Song/Bandish is called Sthayi but in Sufiana Music it is Called as **Zameen**.

*Research Scholar, Deptt. of Music, University of Kashmir

Baet :- The second part of song is called Antara & in Sufiana music it is called **Baet**.

Time /Waqt:- Time is the singing period of Raga, same procedure applies in presenting Maqams of Sufiana Mosiqui i,e Time Theory is the same in Sufiana Music as that in Indian music.

Tala:- As in Indian music, Sufiana music of Kashmir also includes Talas like Yek/Ek Tala, Do Yek Tala, Chap Andaaz, Hijiz etc.

Baaz Gash/Baaz Gasht:- Repetition of Phrases/ Notes(Sthayi). When a line/phrase of song is repeated again & again it is called Baaz Gasht in Sufiana music.

Alankaar:- Alankars are the ornaments of Sufiana music of Kashmir.

Nashaib faraz(Kan Swara):- Kan swar is called the grace note borrowed from an adjacent note in a musical phrase to add extra melody to the song. It is called Nashaib i faraz in sufiana music as Anulangan Kan & Poorvalangan kan.

Jati:- According to the numbers of notes used in a raga is called its Jati. Jati determines the no.of notes employed in the ascending & descending order of maqam/raga. There are three main jatis viz, Audav, Shadav, Sampoorna whose combination forms nine jaties in total by which 484 ragas are generated in Indian music & in Sufiana music 180 maqams are formed out of these jaties.

Taan:- Taan is a technique in vocal music, it involves very fast melodic syllables using vowels, targeting improvisation & extending the weaving of notes together at a rapid pace. Tanas are meagerly used in sufiana music.

Bagai (Aavartan) :- In sufiana music, Bagai is the distribution of notes or beats in a song/Tala.

Aavartan:- when a group of beats are repeated multiple times, each repetition is called a recursion. The time between each inversion is exactly the same as the time between each beat. Aavartan is a general term applied to any repetitive circle. Aavartan is a full cycle of any tala composed of measures (vibhag) which are in turn composed of beats (matras).

Ragas/Thata/Maqams of Sufiana music :

Aahangs:- Six basic sounds of Sufiana Music from which all other Sounds are made. Each Aahang gives birth to two Maqams. Therefore from Six Aahangs, twelve Maqams are originated.

Maqams:- Maqams are the melodic modes in Sufiana Music of Kashmir. There are various terms which are commonly used in defining all the Maqams. Maqams derives from Aahangs, from Each Aahang, two Maqams are derived, therefore there are 12 Maqams in total.

Shobas:- Maqams gives birth to Shobas, each Maqam produces two Shobas, there from twelve Maqams, 24 Shobas get birth.

Goshas:- Further Shobas gives birth to Goshas, which are 48 in number by getting originated from each 24 Shobas.

Pardas:- Finally Goshas splits into Pardas, from every Gosha (48) Ninety Six Pardas get birth.

Maqams = 12
Shobas = 24
Goshas = 48
Pardas = 96
Total = 180

Swaras: There are alphabets to which every form of Music is relied upon, these are called Notes/ Tones & in Indian Music these are called Swaras/ Surs. They are seven in number through out the universe may differ in names but always remains same & constant in Sound & Appeal.

In Western Music/solfage they are named as **do, re, mi, fa, so, la, ti** and also denoted as **C, D, E, F, G, A, B.** In Asia the names of Notes are like **Sa, Re, Ga, Ma, Pa, Dha, Ni.** Sufiana music of Kashmir has also it's terminology as for as the names of notes are concerned which are shown in the chart given :

West	Asia/India	Sufiana Music
C/Do	Shadja (Sa)	Sur Bandh/Saraj
D/Re	Rishab (Re)	Gudnuk Bandh/Rikhaf/ Rakhab/Rashad
E/Mi	Gandhar (Ga)	Doyim Bandh/Gandhar
F/Fa	Madhyam (Ma)	Trayum Bandh/Madhyam
G/So	Pancham (Pa)	Chorum Bandh/Pancham
A/La	Dhaivat (Dha)	Poonchum Bandh/Dhaivat
B/Ti	Nishad (Ni)	Sheyum Bandh/Nishaad
C/Do	Shadaj (ṡa)	Shah Bandh / Shadhaj

Various types of Notes/Swaras :

Natural/Shudh:- When Notes sound at their designated places without changing their place of posting are called Natural Notes. In Asia, & also in Sufiana music of kashmir, they are called Shudh Swaras. These are Seven in Number i,e Sa, Re, Ga, Ma/ma, Pa, Dha, & Ni. In Western music they are called do, re, mi, fa, so, la, ti & C, D, E, F, G, A, B.

Hidden/Vikrit:- When a note appeals other than it's original place is called a Vikrit Swar i, e Hidden Notes. They are Five in number & are of two types. Same applies to the Sufiana music of Kashmir.

I) **Flat Note:-** When a Note speaks at lower than it's original place it is called Flat Note in Music. It is also called Komal Swara in Indian & Sufiana Classical Music. There are Four Komal Swaras i,e Re, Ga, Dha, Ni Or re, ga, dha, ni. & in West they are represented by putting a beta sign (β) on the left top corner of the note e.g Bb.

II) **Sharp:-** When a note is stretched higher it is called Sharp note. It is also called Teevra/Tivra Swara & is only one note i,e Madhyam Swara. Which is represented as a line is sketched on the top of the note e.g Ma|/Ma. In Western music it is shown as C#, F# etc.

Seven Principal Notes of Sufiana Music

Sur Bandh (Sonat):- Sur Bandh is the Ist & the most important note. It is known as **Shadja (Sa)** in Indian terminology, Shadja, the father of all the notes because Shadja is made up of two letters Shad (six) & Ja (Janme i.e. birth) means all other six notes got birth from Shadja. It is the first note of an Octave. It comes in shudh form only neither komal nor teevra i,e Fixed/immovable note.

Gudnuk Bandh :- Gudnuik Bandh is the Second note of sufiana Sargam & is equivalent to Rishab (Re) of Indian music.

Doyim Bandh:- The third note of the Sufiana Sangeet is called Doyim Bandh which is called as Gandhar (Ga) in Indian Classical music of equal shruitis.

Trayum Bandh:- It is the fourth & the middle note which divides an octave into two equal parts in the scale of kashmiri sufiana music. It is Madhyam/Ma is Indian Music which is of two types **Shudh ma & teevra Ma**.

Churim Bandh:- Churim Bandh is the fifth note of the scale. In Indian music this note named as Pancham, appears in one form only (fixed/ immovable note). There are 5 shruitis in it.

Poochum Bandh:- The immediate next swar after Churim Bandh is Poonchim Bandh & is the sixth note of sufiana music. In Indian music, this note is as **Dhaivat** which is of 3 shruitis.

Sheyum Bandh:- It is the Seventh & the last note of an octave which belongs to the Venus Planet. In Indian music it is named as **Nishad** made out of 2 shruitis.

Sapta Bandh (Upper Shadja):- It is the highest note of an Octave upper shadja as Taar Shadja.

Two types of Notes/Swaras :

I) **Fixed:-** Fixed Notes are the Notes which doesn't change their position of place & remains stick to their place. There are only two such Notes in an Octave Sur bandh & Churim bandh i,e Sa & Pa these are called Achal Swaras.

II) **Movable:-** Notes which are not fixed & moves

either up or down a step. All the notes other than Sur bandh & Churim bandh (Sa & Pa) changes their places & are called Chal Notes.

Notes with the role they Play :

Baadshah Swara (Sonnat /Tonic) :- Chief/king note in Raga/maqam equivalent to Vadi swara of Indian classical music.

Wazir Swara(Consonat):- Second most prominant note in Raga/maqam which is called Samvadi Note in Indian Music.

Anuvadi (Assonant):- Neither vadi nor samvadi but used as companion/ Auxillary notes.

Dushman Swar:- Dissonant/Vivad/Enemy note of raga/maqam. In Indian music it is called as Vivadi swara. But sometimes it has an aesthetical value when it is used showing its importance in presentation by legend Artists.

Categories of the Instruments :

Tat Vadya (Chordophones)- Stringed instruments which produces sound by way of vibrating strings (plucking/striking).

Types:- Fretted & Fretless, Plucked & Bowed. E.g Ek Tara,Veena, Tanpura, Sitar, Sarod, Guitar etc. Tat vadyas of Sufiana music are, the famous Santoor, setar, madham/madhyam.

Santoor – was introduced by Persian traders & Sufis in Kashmir. It is the favourite melodic instrument of sufiana music appears as Solo along with vocal recitation as well as accompaniement for sufi, the Islamic mystic falls in the category of Tat Vadya.

Setar– Earlier the instrument was consisting of 03 strings only & now the number has been increased to 07 strings, setar has been invented by the great Amir Khusro from Central Asia in 13th century & was different than Indian setar - in size, shape and body structure. It had long cylindrical wooden body but is shorter in size than the Sitara of current India. It is played with mystical music for humming, droning and maintains much thoughtful performance with the song used in Sufiana music usually in other genres of music like folk and Light also in the centre of Persia for accompaniment & not as Solo like Indian Sitar.

Madham/Madhyam(Indian Sitar)- is also used in Sufiana Music of Kashmir. This instrument is called Madhyam in Sufiana Legacy because of being tuned to Madhyam note i,e it's first string is tuned to Madhyam Note.

Vitat vadya:- The stringed instruments which are played with Bow(Gaz) e.g Sarangi, Violin, Mandolin etc. In Sufiana music of Kashmir the example of vitat vadya is the famous Saaz i Kashmir.

Sushir vadya (Aerophones):- Sushir means hollow, are the wind instruments produce sound primarily by a body to vibrate by passing a blow of air into it e.g Harmonium, Flute, Shehnai, Shankh, Pungi, Naad Swara etc. (As such no Aerophonic instrument is used in Sufiana music of Kashmir)

Avanaddha vadya (Membrophones):- The percussion instruments made out of animal skin are Tabla, Pakhawaj, Mirdangam, Dholak, Congo, Drum etc. In Sufiana music of Kashmir the example of Avanadha vadya is the Wasool/Dokra/ Tabla which is of larger size than the Tabla used in Indian Classical performances.

Ghan Vadya (Idiophones):- Non-membranous solid percussion instruments produces sound by stricking,shaking etc. These are usually played with a striker or hammer e.g Jal tarang, kartal, bells, rattle, gong, cymbals, chimta, chittika etc. (As such no idiophonic instrument is used in Sufiana music of Kashmir but a Sufiana music exponent of famous Saaz Nawaz family called Ud. M Sidique Joo uncle of late Ud G M Saaz Nawaz used to play Jal Tarang (Ghan Vadya) around early 1930-1940.

CONCLUSION:- The inheritors & the practioners of Sufiana music of Kashmir are using their own language & terminology for communication. In this research paper all the terms used in sufiana music are explained in detail that will be helpful for Researchers.

References :

1. Tang, Mohammad Yousuf Shiraza, (1992). Sufiana Mosiqui aur Kasmir, J&K Academy of Art Culture & Languages Kashmir.
2. https://www.google.com/search?q=swara+%26+shruiti&rlz=1C1JJTC_enIN968IN968&oq=swara+%26+shruiti&aqs=chrome..69i57j0i22i30l9.8581j0j15&sourceid=chrome&ie=UTF-8
3. Aziz, Sheikh Abdul Kashur Sargam, (1963). Kashir hinz Sufiana Mosiqui, J & K Academy of Art, Culture & Languages, Kashmir.
4. https://www.google.com/search?client=firefox-b-d&q=instruments+of+sufiana+music+of+kashmir

Interview :

Ustaad Shabir Ahmad Saznawaz, Head, Sufiana Music Deptt, University of Kashmir.

भिखारी ठाकुर द्वारा रचित लोक नाटकों में उल्लेखित विस्थापन का आधुनिक स्वरूप एवं निरूपण

डॉ. अशोक कुमार सिंह** **संजीत कुमार***

शोध–सार

भिखारी ठाकुर का रंगकर्म भोजपुरी लोकजीवन के विविध पक्षों का साहित्य है और उनका नाट्य भोजपुरी लोकजीवन की सांस्कृतिक पहचान। उनकी रचनाओं और रंगकर्म में एक पूरी सामाजिक परंपरा और इतिहास का दर्शन होता है। भिखारी ठाकुर ने कवि, नाटककार, गायक, अभिनेता, समाजसुधारक और एक भक्त के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह किया है। भिखारी के ग्रंथों की संख्या 30 से अधिक है जिसमें नाटक, गीत, भक्तिपद तथा खण्ड–काव्य शामिल हैं। 'बिदेसिया' नाटक अपनी प्रसिद्धि, व्याप्ति और समकालीन प्रासंगिकता के कारण एक महत्त्वपूर्ण लोकनाट्य बन गया है। भिखारी ठाकुर ने अनेक स्तरों पर भोजपुरी जनता के लोकाचार, संस्कार, स्वाभिमान, संघर्ष और उसकी मनस्विता को प्रभावित किया तथा हिन्दी की सबसे बड़ी भाषिक इकाई भोजपुरी को उसके स्वत्व से जोड़ा।

भिखारी ठाकुर ने जिस पूर्वांचल समाज की पीड़ा को कलात्मक स्वर दिया वह समाज पलायन के दंश से पीड़ित रहा। लम्बे समय से पूर्वांचल के लोग घर का गुजारा चलाने हेतु गाँव से नगरों की ओर विस्थापन करते रहे और इस स्थिति में गाँव में ब्याहता पत्नी समेत परिजन प्रभावित होते हैं। हिंदी पट्टी ने ब्रिटिश उपनिवेश काल में अनेक मुसीबतें झेलीं। इनकी दो मुसीबतें अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, जिन्होंने मिलकर हिंदी क्षेत्र का वर्तमान रचा है– एक तो 1857 का विद्रोह, दूसरा गिरमिटिया विस्थापन, जिसे प्रवास, उत्प्रवास कुछ भी कहा जा सकता है। भोजपुरी के प्रसिद्ध नाटककार भिखारी ठाकुर ने इसे बिदेसिया हो जाना भी कहा है। भिखारी ठाकुर का समय औपनिवेशिक समय था आज उत्तर औपनिवेशिक दौर में भी भिखारी के उठाये प्रश्न हमारे समाज में विद्यमान हैं। चाहे वह दलित वर्ग के हों या स्त्रियों के पक्ष। आज भी लाखों पुरबिये रोजी–रोजगार के फेर में दर–ब–दर भटकने को मजबूर हैं।

सूचक शब्द *: नाटक, रंगकर्म, बिदेसिया, लोक, भोजपुरी*

शोध माध्यम : *इस लेख में द्वितीयक स्रोतों से सामग्री एकत्र की गई है ।*

उद्देश्य : भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों में जिस विस्थापन को दर्शाया है उसे उजागर करना इस शोध का मुख्य उद्देश्य है।

भिखारी ठाकुर एवं उनकी रचनाएँ

भिखारी ठाकुर भोजपुरी के समर्थ लोक कलाकार, रंगकर्मी लोक जागरण के सन्देश वाहक, नारी विमर्श एवं दलित विमर्श के उद्घोषक, लोक गीत तथा भजन कीर्तन के अनन्य साधक थे। वे भोजपुरी गीतों एवं नाटकों की रचना एवं अपने सामाजिक कार्यों के लिये प्रसिद्ध हैं। वे एक महान लोक कलाकार थे जिन्हें 'भोजपुरी का शेक्सपीयर' कहा जाता है। वे एक ही साथ कवि, गीतकार, नाटककार, नाट्य निर्देशक, लोक संगीतकार और अभिनेता भी थे। भिखारी ठाकुर की मातृभाषा भोजपुरी थी और उन्होंने भोजपुरी को ही अपने काव्य और नाटक की भाषा बनाया। भिखारी ठाकुर को 'भोजपुरी का शेक्सपियर' कहा जाता है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने उन्हें भोजपुरी का 'अनगढ़ हीरा' से संबोधित किया है। बिहार के राज्यपाल श्री अनंत अयंगर ने उन्हें 1954 में 'बिहार रत्न' की उपाधि और ताम्र–पत्र से सम्मानित किया था। भिखारी ठाकुर का जन्म 18 दिसंबर 1887 को बिहार के सारण जिले में कुतुबपुर गांव में हुआ था। उनकी मां शिवकली देवी और पिता दलसिंगार ठाकुर थे। वह भारतीय समाज में सबसे पिछड़ी जातियों में से एक जाति नाई थे। उनकी जाति का

*पीएच.डी., प्रदर्शनकारी कला विभाग, लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, पंजाब

*शोध निर्देशक, सहायक प्रोफेसर, प्रदर्शनकारी कला विभाग, लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, पंजाब

पारंपरिक कार्य बाल–दाढ़ि काटना और शादी–व्याह तथा मौत के समारोह में ब्राह्मणों के साथ मिलकर सहायता करना होता है। साथ ही, गांव और आसपास के इलाकों में औपचारिक (विवाह और मौत के मामले) तथा अन्य संदेशों को भेजने और वितरित करने का भी कार्य होता है। अपनी एक लेखनी में वे कहते हैंः ''जाति हज्ज अधिक कुतुबपुर मोकाम। जाति पाशा बेट, बीड़ी नहिन बाट बाबुजी... (मैं जाति द्वारा नाई हूं और मैं कुतुबपुर से आ रहा हूं। मेरी जाति केवल मेरा काम है। यह मेरी शिक्षा जैसी नहीं है)। भिखारी ठाकुर ने भी अपनी पारंपरिक–सामंती गांव सेटअप में डाक मजदूरों की तरह कार्य किये लेकिन कुछ समय बाद अन्य लोगों की भाँति अपनी आजीविका के लिए विदेश (कलकत्ता) चले गये। वहाँ उन्हें कभी पैसों की कोई कमी न थी लेकिन उनका मन कभी काम में नहीं लगता था। वे रामलीला, यात्रा आदि कार्यक्रम देखने के शौकीन थे। कार्यक्रम देखने का मौका कभी गँवाते नहीं थे। एक समय बाद उन्होंने रामलीला करना आरंभ किया। साथ ही, विदेश में रहने के बाद उन्होंने जो पलायन तथा विस्थापन का दर्द देखा था, उसे अपने शब्दों तथा अपनी मातृ भाषा भोजपुरी में लिखना आरंभ किया। साथ ही, एक नाट्य मंडली तैयार कर रामलीला का प्रदर्शन करना शुरू किया और सामाजिक कार्यों में रुचि ले ली। इसके बाद उन्होंने नाटक, गीत और उपन्यास आदि लिखना शुरू किया। भिखारी ठाकुर का कृतित्व पक्ष अत्यंत समृद्ध है, यह अपने भीतर व्यापाक सांस्कृतिक दस्तावेज समेटे हुए है। भिखारी ठाकुर की रचनाओं के भीतर हर जगह एक आंतरिक करुणा और व्यथा पसरी हुई महसूस होती है। एक ऐसी करुणा और व्यथा जो मन को तोड़ती नहीं, भरोसा देती है कि रास्ता कहीं से भी खुल सकता है। अपनी रचनाओं में कहीं–कहीं सामंती मूल्यों के समर्थन के बावजूद उन्होंने हमेशा एक सामंतवादी समाज का सपना देखा। सामाजिक चेतना के उद्घोषक भिखारी ठाकुर को भोजपुरी में स्त्री–विमर्श और दलित–विमर्श का जन्मदाता माना जाता है।

उनके नाटक और उनकी थियेटर–शैली उनकी लयबद्ध भाषा, मीठे गीतों और आकर्षक संगीत के लिए बहुत लोकप्रिय हैं। आज भी उनकी साहित्यिक कृतियों सहित नाटक (बिदेसिया, बेटी–बेचवा, बिधवा–बिलाप आदि) और गाने सराहे जाते हैं तथा उसका प्रदर्शन भी किया जाता है। भिखारी ठाकुर को बीसवीं शताब्दी के थियेटर फार्म बिदेसिया के निर्माण के लिए श्रेय दिया जाता हैं। कई अन्य लोक रूपों की तरह, बिदेसिया में स्त्री भूमिका भी पुरुष अभिनेता द्वारा किया जाता है । आम तौर पर वे धोती या शर्ट पतलून पहनते हैं लेकिन वे लंबे बाल रखते हैं और आभूषण पहनते हैं। भिखारी ठाकुर की कलात्मक प्रतिभा और कड़वे अनुभव के माध्यम से, रामलीला, रासलीला, बिरहा यात्रा और अन्य प्रस्तुतिकरण तत्वों को उठाकर इसे विकसित किया और इसे अब पूरी तरह से नई और अद्भुत शैली के रूप में जाना जाता है जिसे अब बिदेसिया कहा जाता है। बिदेसिया का तात्पर्य है, लोगों को आजीवन खोज के लिए घर छोड़ जाना, लेकिन बड़े संदर्भ में केवल वे अपनी जगह से ही नहीं बल्कि उनकी संस्कृति से भी चले जाते हैं। बहुत से लोगों को बिदेसिया शैली और उनकी नाटक बिदेसिया के बीच भ्रमित किया जाता है। असल में, उन्होंने अपने सभी नाटकों को बिदेसिया शैली में किया जो नौटंकी के समान ही है, लेकिन बाद में उनकी शैली को एक अलग ही पहचान मिली और रंगकर्म के क्षेत्र में यह काफी लोकप्रिय भी है। भिखारी ठाकुर की कुछ मुख्य रचनाओं उन्हें सबसे अलग पहचान दिलायी तथा समाज में बहुत बदलाव भी किया। आज रंगकर्म में मुख्य रूप से इनकी मुख्य रचनाओं को ही खेला जाता है। इनकी मुख्य रचनायें– बिदेसिया, भाई–बिरोध, बेटी–बियोग या बेटि–बेचवा, कलयुग प्रेम, गबरघिचोर, गंगा–स्नान, बिधवा–बिलाप, पुत्रबध, ननद–भौजाई, कलियुग–प्रेम, राधेश्याम–बहार, बिरहा–बहार आदि है। साथ ही, इनकी अन्य रचनायें भी प्रसिद्ध हैं, जैसे शिव–विवाह, भजन–कीर्तनः राम, रामलीला गान, कृष्ण, माता भक्ति, आरती, बुढशाला के बयाँ, चौवर्ण पदवी, नाइ बहार, शंका समाधान, विविध आदि। भिखारी ठाकुर का जीवन एवं उनकी रचनाएँ केवल पूर्वांचल भारत ही नहीं, बल्कि अपनी जड़ों से कटे सम्पूर्ण समाज का बिम्ब है। भिखारी ठाकुर की रचनाएँ जितनी बारीकी से अपने समाज की प्रत्येक विसंगतियों पर प्रहार करती हैं, वह विरले हैं। यूं ही नहीं, भिखारी ठाकुर को न केवल भोजपुर समाज बल्कि वैश्विक स्तर पर माना जाता है।

10 जुलाई 1971 को, 83 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। मनीष हरिशंकर द्वारा निर्देशित आगामी हिंदी फिल्म चौधुतिया चौककर ने अपने एक गीत 'कौन सी नगरिया' को अपने काम के लिए समर्पित किया जो उनके बेटी–बेचवा के गीत पर आधारित है। बिहार कोकिला शारदा सिन्हा ने इस गाना को अपनी आवाज से निखारा है।

भिखारी ठाकुर की रचनाओं में विस्थापन

समान्यतः किसी एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे भौगोलिक क्षेत्र में सापेक्षतः स्थायी गमन की प्रक्रिया प्रव्रजन के नाम से जानी जाती है। अन्य शब्दों में मनुष्य के निवास स्थान में परिवर्तन की घटना को ही पलायन कहा जाता है। रोजगार हासिल करने और बेहतर जीवन की उम्मीदों के चलते पूरी दुनिया में देश की सीमा से बाहर और सीमा के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान जाकर रहने और वहां बस जाने की परंपरा बहुत पुरानी है। पलायनकर्ता मुख्य रूप से अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु अपने मूल निवास स्थान को छोडकर अन्यत्र कहीं पलायन करता है। उसका मूल उद्देश्य अपना और अपने परिवार का जीवन–यापन करना होता है और अधिकांश पलायनकर्ता अपने जीवन का अधिकांश भाग सिर्फ दो वक्त की रोटी और तन ढकने के संघर्ष में जीवन व्यतीत कर देते हैं। समान्यतः ग्रामीण श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर (ऐसे क्षेत्रों की ओर) जहां औद्योगिक क्षेत्र उपलब्ध हो, विस्थापन करते हैं। विस्थापन शब्द में स्थान जो सिर्फ एक जमीन का टुकड़ा भर नहीं होता, एक मानवीय जीवन की संपूर्णता का जीवंत परिवेश होता है, वहाँ के कण–कण के साथ व्यक्ति का आंतरिक जुड़ाव होता है, जिससे उसका विस्थापन किया जा रहा होता है।

अंग्रेजी–शासन के दौरान कलकत्ता और बम्बई (आज का कोलकाता और मुम्बई) के कल–कारखानों में जाकर काम करने वाला व्यक्ति 'परदेसी' कहलाता था। तब के संयुक्त प्रान्त और आज के बिहार और उत्तर–प्रदेश के असंख्य लोग अपने–अपने गांवों से निकलकर कलकत्ता–बंबई के कारखानों में मजदूर हो गए थे और उनका घर–परिवार 'देश' में यानि गांवों में रहकर मानसिक और शारीरिक कष्ट भोगता रहता था। उसी कष्ट और मानसिक पीड़ा की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति बिहार के प्रसिद्ध जन–कवि–अभिनेता भिखारी ठाकुर के 'बिदेसिया' में मिलती है।

भोजपुरी लोक–जीवन और समाज अपने राजनीतिक परिवेश से नावाकिफ नहीं था लेकिन यह भी बड़ी सच्चाई थी कि इस समाज के सामने जीवन जीने के संघर्ष का प्रश्न भी मुँह बाये खड़ा था। भौगोलिक दृष्टि से देखें तो यह अंचल गंगा, घाघरा और गंडक से आस–पास बसा हुआ है, इसलिए यह दोहरी मार से ग्रस्त था। एक प्राकृतिक और दूसरा राजनीतिक, जिसके परिणामस्वरूप भोजपुरिये गभरू जवानों का पूरब देश के चटकलजूट मीलों में काम करना मजबूरी भी थी। एक और बड़ा कारण था कि भोजपुरी अंचल का कास्तकार वर्ग मजदूरी में नकद के बदले अनाज देता था। जबकि बंगाल से लौटे, बिदेसियों को वहाँ नकद मिलता था। ऐसी ही स्थिति में पेशेवर नाई भिखारी ठाकुर का प्रवासन बंगाल की ओर हुआ। भिखारी ठाकुर उनके बीच कार्य कर चुके थे इसलिए वे विस्थापन के दर्द से भलि–भाँति वाकिफ थे। उस विस्थापन में एक ही परिवार को कई भाग होकर टूटते–बिखरते देखा था और इसे अपने समाज, दुनिया को दिखाकर उसे जागरूक करना चाहते थे। और यही कारण है कि भिखारी ठाकुर ने लोक नाटकों में जो मुख्य केंद्र रखा या जिस बिंदु को केंद्र में रखकर रचना की वो 'विस्थापन' है।

बिदेसिया

शायद आधुनिक उत्पादन के संदर्भ में उनका सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय काम, बिदेसिया एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जिसे कलकत्ता शहर में नौकरी तलाशने के लिए अपने गांव और परिवार को पीछे छोड़कर जाना पड़ता है और वहाँ कार्य करते–करते युवक को किसी अन्य स्त्री से प्रेम हो जाता है।..... यह नाटक आज भी प्रासंगिक है क्योंकि आजकल बिहारी एक प्रवासी समुदाय बन गया हैं।

गबरघिचोर

यह गबरघिचोर और गलिज की पत्नी के नाजायज पुत्र की कहानी है। गलिज विदेश से गाँव आता है। वह घिचोर को अपने साथ कलकत्ता वापस ले जाना चाहता है। लेकिन गबड़घिचोर पर अपना हक जताता है और गलीज की पत्नी अपना हक। इसी पर तीनों में झगड़ा होता है। इसके बाद पंचायत को बुलाया जाता है और वे तय करते हैं कि घिचोर को तीन टुकड़ों में बांटा जाये। अंत में पंचायत घिचोर को माँ के साथ रहने का फैसला सुनाती है।

इस तरह से भिखारी ठाकुर के द्वारा लिखे गये नाटकों में जो समस्या उत्पन्न हुई है उसका मुख्य कारण विस्थापन या फिर विस्थापन को मुख्य केंद्र में रखकर नाटक की रचना की गई है।

आधुनिक विस्थापन के कारण का निरूपण

नगरों से भी लोग महानगर की ओर विस्थापन कर रहे हैं लेकिन आधुनिक समय में ग्रामीण इलाकों से नगरी इलाकों की तरफ विस्थापन ज्यादा हो रहा है जिसका सीधा असर

विस्थापन कर्ता तथा उसके परिवार को झेलनी पर रही है। वर्षों पहले भिखारी ठाकुर के द्वारा उठाये गये सवाल आज भी सवाल के रूप में ही है।

गाँवों में कृषि भूमि के लगातार कम होते जाने, आबादी बढ़ने और प्राकृतिक आपदाओं के चलते रोजी–रोटी की तलाश में ग्रामीणों को शहरों–कस्बों की ओर रूख करना पड़ा। गांवों में बुनियादी सुविधाओं की कमी भी पलायन का एक दूसरा बड़ा कारण है। गांवों में रोजगार और शिक्षा के साथ–साथ बिजली, आवास, सड़क, संचार, स्वच्छता जैसी बुनियादी सुविधाएँ शहरों की तुलना में बेहद कम हैं। इन बुनियादी कमियों के साथ–साथ गांवों में भेद–भावपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के कारण शोषण और उत्पीड़न से तंग आकर भी बहुत से लोग शहरों का रुख कर लेते हैं। गांवों से विस्थापन के प्रमुख कारणः–

परम्परागत जाति–व्यवस्था का शिकंजा–

परम्परागत जाति–व्यवस्था का शिकंजा इतना मजबूत है कि शासन और प्रशासन भी सामूहिक अन्याय का मुकाबला करने वालों के प्रति उदासीन बना रहता है। जैसाकि पिछले दिनों उत्तर भारत के कुछ राज्यों हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि में खाप पंचायतों के अन्यायपूर्ण क्रूर आदेशों को देखने पर स्पष्ट हो जाता है जिसमें सड़ते और दबते रहने की बजाय लोग गांव से पलायन करना पसंद करते हैं।

शहरों में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना–

औद्योगीकरण शहरीकरण की पहली सीढ़ी है। आजादी के बाद भारत ने देश के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के इरादे से छोटे–बड़े उद्योगों की स्थापना का अभियान चलाया। ये सभी उद्योग शहरों में लगाए गए जिसके कारण ग्रामीणों को रोजगार की तलाश एवं आजीविका के लिए शहरों की ओर पलायन करना आवश्यक हो गया।

नगरीय चकाचौंध–

भारत में गांवों से शहर की ओर पलायन की प्रवृत्ति बेहद ज्यादा है। जहां गांव में विद्यमान गरीबी, बेरोजगारी, कम मजदूरी, मौसमी बेरोजगारी, जाति और परम्परा पर आधारित सामाजिक रुढ़ियाँ, अनुपयोगी होती भूमि, वर्षा का अभाव एवं प्राकृतिक प्रकोप इत्यादि कारणों ने न सिर्फ लोगों को बाहर भेजने की प्रेरणा दी, वही शहरों ने अपनी चकाचौंध सुविधाएँ, युवाओं के सपने, रोजगार के अवसर, आर्थिक विषमता, निश्चित और अनवरत अवसरों में आकर्षित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

शिक्षा और साक्षरता का अभाव–

शिक्षा और साक्षरता का अभाव ग्रामीण जीवन का एक बहुत बड़ा नकारात्मक पहलू है। गांवों में न तो अच्छे स्कूल होते हैं और न हि वहां ग्रामीण बच्चों को आगे बढ़ने का अवसर मिल पाता है। इस कारण हर ग्रामीण माता–पिता अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा प्रदान करने के लिए शहरी वातावरण की ओर पलायन करते हैं। हालांकि सरकारी एवं निजी तौर पर भी आज ग्रामीण शिक्षा को बढ़ाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं लेकिन जब रोजगार प्राप्ति एवं उच्च–स्तरीयता की बात आती है तो ग्रामीण परिवेश के बच्चे शहरी बच्चों की तुलना में पिछड़ जाते हैं। ग्रामीण बच्चे अपने माता–पिता के साथ गांव में रहने के कारण माता–पिता के परम्परागत कार्यों में हाथ बंटाने में लग जाते हैं जिससे उन्हें उच्च–शिक्षा का अवसर सुलभ नहीं हो पाता है। इस कारण माता–पिता उन्हें शहर में ही दाखिला दिला कर शिक्षा देना चाहते हैं और फिर छात्र शहरी चकाचौंध से प्रभावित होकर शहर में ही रहने के लिए प्रयास करता है जो पलायन का एक प्रमुख कारण है।

रोजगार और मौलिक सुविधाओं का अभाव–

गांवों में कृषि–भूमि का लगातार कम होते जाना, जनसंख्या बढ़ना और प्राकृतिक आपदाओं के कारण रोजी–रोटी की तलाश में ग्रामीणों को शहरों–नगरों की तरफ जाना पड़ रहा है। गांवों में मौलिक आवश्कताओं की कमी भी पलायन का एक बड़ा कारण है। गांवों में रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, आवास, सड़क, परिवहन जैसी अनेक सुविधाएँ शहरों की तुलना में बेहद कम हैं। इन बुनियादी कमियों के साथ–साथ गांवों में भेद–भावपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के चलते शोषण और उत्पीड़न से तंग आकार भी शहरों का रुख कर लेते है।

संदर्भ सूची :

1. सिंह, नागेन्द्र प्रसाद, भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना–2011
2. माथुर, जगदीशचंद्र, परंपराशील नाट्य, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना–2000
3. अमितेश, संचालक, रंग विमर्श ब्लॉग
4. हस्ताक्षर, ई–पोर्टल

भारतीय चित्रपट में ठुमरी का प्रयोग एवं स्थान

प्रो. संगीता सिंह** **श्यामा चरण गुप्ता***

सार

बिना संगीत के चित्रपट की कल्पना ही नहीं की जा सकती । जब मूक फिल्में बनीं तब फिल्मों के दृश्यों एवं भावों के अनुरूप परदे के पीछे से संगीत दिया जाता था, और जब सवाक् फिल्में बनना प्रारंभ हुईं तो चलचित्र के अंतर्गत ही संगीत दिया जाने लगा। शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत की समस्त विधाओं में ठुमरी ने अपनी छवि को शीर्षस्थ स्थान पर स्थापित किया है। इसे चित्रपट ने भी अपनाया है । एतदर्थ प्रस्तुत शोध–पत्र में विभिन्न शैलियों के अंतर्गत उपशास्त्रीय संगीत की विधा ठुमरी का चित्रपट में प्रयोग एवं महत्व का वर्णन किया गया है ।

सूचक शब्द : *ठुमरी, चित्रपट, संगीत, गायन–शैली*

शोध–माध्यम : *इस शोध–पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों से सामग्री संकलित की गई है।*

ठुमरी मूल रूप से ब्रज–भाषा का शब्द है। शाब्दिक रूप से इसका अर्थ बलखाना, रुक–रुक कर चलना या ठुमक–ठुमक कर चलना इत्यादि है। विभिन्न विद्वानों ने इसके शाब्दिक अर्थ के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त किये हैं।

इसकी उत्पत्ति के विषय में बात करें तो ठुमरी को लगभग सभी विद्वानों ने ठुम+री शब्द के मेल से उद्धृत हुआ माना है, जिसका अर्थ होता है ठुमकना, मंद गमन या पैर पटक–पटक कर चलना इत्यादि परन्तु प्रोजेश बनर्जी जी ने ठुमरी को ठु+म+री में विभक्त कर अपना भिन्न मत एवं अर्थ रखा है, इनके मतानुसार प्रथम अक्षर 'ठु' का अर्थ ठुमक, जो चाल, लय इत्यादि को दर्शाता है, द्वितीय अक्षर 'म' मन का प्रतीक जिसके साथ हृदय भी जुड़ा है तथा आखिरी एवं अंतिम अक्षर 'री' का अर्थ इन्होंने रिझाना से लिया है।

ठुमरी को विद्वानों ने स्त्रीलिंग वर्ग से जोड़ा है, विद्वानों द्वारा ठुमरी विधा/शब्द को स्त्रीलिंग से जोड़ा जाना या उस वर्ग के अंतर्गत रखना कहीं–न–कहीं ठुमरी के अर्थ एवं प्रकृति से है, क्योंकि ठुमरी में शृंगार रस एवं भाव की प्रधानता रहती है, अतः इन सभी गुणों एवं लक्षणों से कही–न–कहीं स्त्री वर्ग सम्बन्ध रखता है क्योंकि शृंगार करना, रिझाना, भावात्मक होना, मंद गमन चलना इत्यादि स्त्रीवाची हैं। ठुमरी का प्रयोग कथक नृत्य में प्रमुख माना गया है ।

ठुमरी, उपशास्त्रीय संगीत की वह उत्तम विधा है, जो वर्तमान में उपशास्त्रीय संगीत के पर्याय रूप में जानी जाती है। जिस प्रकार वर्तमान में शास्त्रीय संगीत में विभिन्न शैलियाँ है परन्तु फिर भी जब हम शास्त्रीय संगीत का नाम लेते हैं तो 'ख्याल' विधा ही हमारे जहन में आती है, ठीक उसी प्रकार उपशास्त्रीय संगीत का नाम लेते ही 'ठुमरी' शैली ही हमारे मस्तिष्क को स्पर्श करती है। इसमें भाव की अति प्रधानता है, ठुमरी में शृंगार, करुण एवं शांत रस इत्यादि प्रधान है, इसी कारण इसे चंचल प्रकृति के रागों अथवा जिन रागों में नियमों का बंधन कम हो, ऐसे रागों में गाया–बजाया जाता है, जैसे– पीलू, पहाड़ी, खमाज, काफी, झिंझोटी, देश इत्यादि।

ठुमरी की उत्पत्ति के विषय में इसका प्रमाण एवं उल्लेख 18वीं शताब्दी के पहले प्राप्त नहीं होता है। भरत मत के 'राग–रागिनियों में श्री राग की प्रमुख रागिनी' को ठुमरी कहा गया है। ठुमरी–शैली के सृजनकर्ता गुलाम नबी शोरी ''शोरी मियां'' को माना जाता है। इसका स्वरूप तथा इसको जनमानस में लोकप्रिय करने का श्रेय लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह (1848–1858 ई0) को जाता है । इनके शासन–काल में अत्यधिक प्रचार–प्रसार हुआ एवं उन्होंने अनेक ठुमरियों की रचना एवं उनका गायन भी किया, उनके द्वारा रचित ठुमरी 'बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाय' अत्यन्त प्रचलित हुई।

चित्रपट संगीत में ठुमरी का प्रयोग :– ठुमरी भाव, रस, सौन्दर्य तथा शृंगार से पूर्णतृप्त उपशास्त्रीय संगीत की

*शोध छात्र, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। इसको गाने एवं बजाने के लिए शास्त्रीय संगीत के कुछ नियमों को शिथिल किया जा सकता है, यही कार्य चित्रपट संगीत की रचनाओं में अधिकांशतः किया जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि ऐसा करने से संगीत रसिकजन (शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत को जानने वाला अथवा इनसे अनभिज्ञ साधारण जन) तक अत्यधिक मात्रा में तथा बड़ी ही सुगमता से शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत को जन–मानस तक पहुँचाया एवं समझाया जा सकता है जिससे वह वर्ग/व्यक्ति उस रचना का आनंद ले सके। मध्यकाल में ठुमरी को संरक्षण प्रदान करने का कार्यभार नृत्य में कत्थक विधा को ही प्राप्त था। यही कार्य चित्रपट के द्वारा भी किया गया, चित्रपट में ठुमरी को नृत्य के साथ अथवा नृत्य आधारित करने से सामान्य जन में अधिक एवं स्मरणीय प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार शिक्षण–पद्धति की गुणवत्ता बढ़ाने तथा उसको स्मरणीय बनाने के लिए छात्रों को ब्रूस जायस और मार्शा वेइल की शिक्षण–योजना TLM (Teaching Learning Material) का प्रयोग किया जाता है जिससे छात्रों को ज्यादा समझ आये और लम्बे समय तक याद रहे, उसी प्रकार चित्रपट में ठुमरी का भी प्रयोग उस फिल्म के तथा उनके गीतों की रचना के लिए किया जाता है, जिससे उस फिल्म की कहानी अथवा उनके गीतों को लम्बे समय तक स्मरण रख सकें एवं आसानी से सभी के समझ आ जाये और तृप्त आनन्द प्राप्त हो सके ।

भारत में चित्रपट का निर्माण सन 1913 में मूक फिल्म ''राजा हरिशचंद्र'' के रूप में प्रारंभ हुआ। लोगों की रूचि तथा मांग के कारण सवाक् फिल्मों का निर्माण करना आवश्यक हो गया, शायद इसी को कहते है कि ''आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है।'' सन् 1931 में ''आलमआरा'' के रूप में प्रथम सवाक् फ़िल्म का निर्माण हुआ उसमें गीतों की संख्या 12 थी जिसको फ़िरोज़ शाह मिस्त्री ने संगीतबद्ध किया था। इसी वर्ष 1931 में आर्ट फिल्म 'ट्रैप्ड' में चित्रपट की सबसे पहली ठुमरी गायी गयी जिसके बोल थे, नवाब वाजिद अली शाह द्वारा रचित ''बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाये'', जिसमें गायिका तथा अभिनेत्री दोनों का निर्वहन सुप्रसिद्ध अभिनेत्री तथा गायिका ''दुर्गा खोटे'' के द्वारा किया गया, परन्तु दुःखद ये है कि इसका कोई भी रिकार्ड उपलब्ध नहीं है, परन्तु वरिष्ठ म्यूजिकोलॉजिस्ट के0एल0 पाण्डेय जी से चर्चा करने पर ज्ञात हुआ कि इस फिल्म की पुस्तक में इस ठुमरी का वर्णन है, जिसमें इसकी गायिका, गायक, संगीतकार, रचनाकार इत्यादि की जानकारियाँ दी गयी हैं, इसके निर्देशक थे ''मोहन दयाराम भवनानी'' तथा इसमें अन्य कलाकार के रूप में जलखाम्बता, जे0 सुशीला, बसंत, बसंत राव पेहलवान इत्यादि। यहीं से हिन्दी सिनेमा संगीत में ठुमरी का चलन प्रारंभ हुआ जो सन् 1940–1960 के मध्य बनी फिल्मों की एक आवश्यकता के रूप में उभर आई। इन दो दशकों में अधिकांशतः फिल्मों में ठुमरी का एक गीत अवश्य होता था और इन ठुमरियों की रचना तथा संगीतबद्ध करने की जिम्मेदारी उत्कृष्ट गीतकारों एवं संगीतकारों को दी जाती थी क्योंकि उनको सभी वर्गों का ध्यान रखना पड़ता था जिनको संगीत का ज्ञान है तथा जिनको संगीत का ज्ञान नहीं भी है, इन फिल्मों में दोनों प्रकार (पारंपरिक तथा नवसृजित) की ठुमरियों की रचना को संगीतबद्ध किया जाता था, जैसे पारंपरिक ठुमरी ''बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाये'' को समय–समय पर भिन्न–भिन्न धुनों एवं राग के स्वरों में बांधा गया है, सर्वप्रथम 1931 की 'ट्रैप्ड' में दुर्गा खोटे जी ने इसको अपनी आवाज दी । इसके बाद 1937 में आयी 'स्ट्रीट सिंगर' में के0एल0 सहगल जी द्वारा इसे गाया गया, फिर 1973 में राजेश खन्ना पर फिल्मायी गयी 'आविष्कार' फ़िल्म में जगजीत सिंह तथा चित्रा सिंह ने इस ठुमरी को अपनी आवाज दी तथा 20वीं सदी की 2017 में बनी एल्बम 'पूर्णा' में अरिजीत सिंह ने इसको गाया और इसका संगीत निर्देशन सलीम–सुलेमान ने किया।

चित्रपट में ठुमरी का स्थान :– चित्रपट में ठुमरी के सफर को इस प्रकार देखा जा सकता है, कि 1931 में चित्रपट की पहली ठुमरी ''बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाये'' से प्रारंभ हुआ और वर्तमान में 2022 तक 91 सालों के सफ़र में ऐसा कोई वर्ष नहीं होगा जिसमें ठुमरी का प्रयोग चित्रपट में न किया गया हो, कुछ ऐसी पारंपरिक ठुमरियाँ हैं जिनका प्रयोग धुन अथवा स्वर बदल कर भी किया गया। इस सफर में ऐसी बहुत–सी ऐसी फिल्में हैं जो सिर्फ ठुमरी–शैली के कारण ही प्रचलित हो सकीं।

हिन्दी फिल्मों में प्रारम्भ से ही ठुमरियों का प्रयोग मिलता है। कहानी की दृष्टि से इन्हें शास्त्रीय गायन एवं नृत्य प्रस्तुतियों, संवेदनशील दृश्यों एवं मुजरों में समावेशित किया जाता रहा है। कुछ चित्रपटों की प्रचलित, स्मरणीय एवं अमिट छाप छोड़ने वाली चयनित ठुमरियों की सूची यहाँ दी जा रही है–

क्र.सं.	ठुमरी	फ़िल्म	गायक / गायिका	राग	वर्ष
1.	लग गई चोट करेजवा में	यहूदी की लड़की	के.एल. सहगल	काफ़ी	1933
2.	पिया बिन नहीं आवत चैन	देवदास	के.एल. सहगल	झिंझोटी	1935
3.	बाबुल मोरा नैहर	स्ट्रीट सिंगर	के.एल. सहगल	भैरवी	1938
4.	पा लागूँ कर जोरी रे	आपकी सेवा में	लता मंगेशकर	पीलू	1947
5.	चल जइहो बेदरदा	बेक़सूर	राजकुमारी	खमाज, यमन कल्याण	1950
6.	सौतन घर ना जा	वारिस	राजकुमारी	खमाज	1954
7.	ना जाने ना जाने रे	बिराज बहू	शमशाद बेगम	खमाज	1954
8.	जा जा रे जा बालमवा	बसंत बहार	लता मंगेशकर	खमाज, रागेश्री, काफ़ी	1956
9.	कदर जाने ना मोरा बालम	भाई भाई	लता मंगेशकर	भैरवी	1956
10.	छोटा सा बालमा		लता मंगेशकर	पहाड़ी, तिलंग, माँझ खमाज	1958
11.	मोहे पनघट पे नंदलाल	मुगल–ए–आज़म	लता मंगेशकर	गारा	1960
12.	जा मैं तोसे नाहीं बोलूँ	सौतेला भाई	लता मंगेशकर	अड़ाना, बहार, गारा, मियाँ की मल्हार, काफी, शहाना	1962
13.	जा रे बेईमान तुझे जान लिया	प्राइवेट सेक्रेटेरी	मन्ना डे	बागेश्री	1962
14.	तोरे नैना लागे	ममता	संध्या मुखर्जी	गौड़ सारंग, मेघ, देस, आभोगी	1966
15.	आयो कहाँ से घनश्याम	बुड्ढा मिल गया	मन्ना डे	खमाज	1971
16.	कौन गली गयो श्याम	पाकीज़ा	परवीन सुल्ताना	पहाड़ी	1971
17.	मोरा साजन सौतन घर जाए	पाकीज़ा	वाणी जयराम	पहाड़ी, मारू बिहाग	1971
18.	नजरिया की मारी	पाकीज़ा	राजकुमारी	मारू बिहाग, पहाड़ी, खमाज	1971
19.	नदिया किनारे हेराय आई कंगना	अभिमान	लता मंगेशकर	पीलू	1973
20.	घर नहीं हमरे श्याम	सरदारी बेगम	आरती अंकलिकर	नंद	1997
21.	घिर घिर आई बदरिया कारी	सरदारी बेगम	आरती अंकलिकर	नंद	1997
22.	मोरे कान्हा जो आए पलट के	सरदारी बेगम	आरती अंकलिकर / आशा भोंसले	पीलू	1997
23.	बावरा मन देखने चला	हजारों ख्वाहिशें ऐसी	शुभा मुद्गल	छायानट	2005
24.	चले आओ सैयाँ	खोया खोया चाँद	श्रेया घोषाल	पीलू, गारा, खमाज	2007
25.	मोहे रंग दो लाल	बाजीराव मस्तानी	श्रेया घोषाल एवं पं. बिरजू महाराज	पूरिया धनाश्री, पूरिया, कल्याण, काफ़ी, यमन	2015

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, रीना, शोधगंगा
3. पाण्डेय, के.एल., हिन्दुस्तानी संगीत में ठुमरी एवं उसके बदलते स्वरूप, पृ. 07
4. सहगल, डॉ. सुधा, बेगम अख्तर व उपशास्त्रीय संगीत, पृ. 3–4
5. राग, पंकज, धुनों की यात्रा, पृ. 129

साक्षात्कार :

श्री के.एल. पाण्डेय, 28 जुलाई 2022, रात्रि 10.24 बजे, व्हाट्सएप कॉल द्वारा

ग़ज़ल गायकी के उम्दा कलाकार गुलाम अली खाँ

डॉ. सौरव कुमार नाहर**

योगेश गर्ग*

सारांश

ग़ज़ल अपने आप में एक सम्पूर्ण शैली है। ग़ज़ल का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह मनुष्यों के दिलों पर बड़ी जल्दी अपना असर दिखाती है और इसे गाने के लिए हर छोटा–बड़ा गायक हमेशा तैयार रहता है। ग़ज़ल का अर्थ प्रेम–भरे गीतों से है। पाकिस्तान पंजाब में गुलाम अली ग़ज़ल गायकी में विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपनी ग़ज़ल गायकी से बहुत प्रसिद्धि पाई है। वे अपनी ग़ज़लों में प्रायः खुद संगीत देते हैं। इसके अलावा इन्होंने दूसरों की स्वरबद्ध ग़ज़लें भी गाई हैं। इन्होंने उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ साहिब से तालीम ली है और इन्होंने उनसे विद्या पाकर अपनी कला और समृद्धि से विश्वभर के संगीत जगत में अपना स्थान बनाया है।

बीज शब्द :– *गीत, ग़ज़ल, स्वर, संगीत, गायकी*

शोध–माध्यम : *इस शोध–पत्र के लिए उपलब्ध पुस्तकों को आधार बनाया गया है ।*

संगीत स्वरों का एक जादू है। दुनिया में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं, जिस पर इस जादू रूपी शक्ति का कोई प्रभाव न पड़ा हो। प्रकृति के कण–कण में संगीत सदैव विद्यमान है। यह एक ऐसा जादू है जिससे मनुष्य ही नहीं, पशु–पक्षी भी आकर्षित हो जाते हैं। कहा गया है, जिस व्यक्ति पर संगीत का प्रभाव नहीं पड़ता, वह बिना सिंग और पूंछ के पशु के समान है इसलिए मनुष्य के जीवन में संगीत की बड़ी महत्ता है। उत्तर भारतीय संगीत में बहुत–सी गायन–शैलियाँ प्रचलित हैं– जैसे गीत, ग़ज़ल, भजन, ठुमरी, ध्रुपद, धमार, टप्पा, ख्याल आदि। प्रस्तुत लेख में हम ग़ज़ल गायकी के प्रख्यात ग़ज़ल गायक गुलाम अली के जीवन से संबंधित कुछ बिंदुओं को जानेंगे।

प्रारंभ में ग़ज़ल गायकी उप–शास्त्रीय गायन के अंतर्गत थी, परंतु आधुनिक समय में यह विधा सुगम संगीत की प्रमुख धारा बन चुकी है। 'ग़ज़ल' अरबी भाषा का शब्द है जो उर्दू एवं फारसी भाषा में अधिक मिलता है, यह उर्दू शायरी की सबसे लोकप्रिय विधा है जिसका शाब्दिक अर्थ अपनी भावनाओं को अलग–अलग रूपों में व्यक्त करना है। इस गायन–शैली की प्रथा सबसे पहले अरब–मिश्र से प्रारंभ हुई, इसके पश्चात् इसका प्रचार–प्रसार भारत में हुआ। ग़ज़ल की कविता जिसे हम शायरी कहते हैं, इसके शब्द अत्यंत आनंदमयी एवं संगीतमय होते हैं। इस विधा के प्रचार–प्रसार का सबसे बड़ा श्रेय 13वीं ईसवी के प्रसिद्ध सूफ़ी संत ख्वाज़ा मोइनुद्दीन चिश्ती को है, जिन्होंने स्वयं फारसी तथा हिंदी भाषा में अनेक ग़ज़लें कलमबद्ध कीं, जिनकी रचनाएँ हमें प्राचीन पुस्तकों से प्राप्त होती हैं। ग़ज़ल को प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित करने में खिलज़ी तथा तुगलक साम्राज्य के राज्य कवि अमीर खुसरो का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा तथा वे शायर होने के साथ–साथ एक अच्छे ग़ज़ल गायक भी थे।

आधुनिक समय में ग़ज़ल–गायन के क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले गुणीजन कलाकारों का वर्णन प्राप्त होता है– जिसमें बेगम अख्तर, तलत अज़ीज, मेहंदी हसन, जगजीत सिंह, चित्रा सिंह, आदि का नाम प्रमुख है। उपरोक्त उच्च कोटि के कलाकारों के अलावा गुलाम अली इसी परंपरा के विश्वविख्यात गायक हैं जिन्होंने अपनी कला और समृद्धि से विश्व–भर के संगीत जगत में ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त की, कि ग़ज़ल और गुलाम अली– दोनों ही एक–दूसरे के पूरक बन गए। उस्ताद गुलाम अली, जिनकी जन्म भूमि बेशक पाकिस्तान में है, मगर उनको चाहने वाले और मोहब्बत करने वाले सिर्फ पाकिस्तान या हिंदुस्तान में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में फैले हुए हैं।

गुलाम अली पाकिस्तान के एक ग़ज़ल गायक एवं हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के पटियाला घराने के जाने–माने संगीतकार हैं। इनका जन्म 5 दिसंबर 1940 में पंजाब के जिला सियालकोट, गांव कालेकी में हुआ। इन्होंने उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ साहब से शास्त्रीय संगीत की तालीम

*शोधार्थी, संगीत बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

**सहायक आचार्य, संगीत बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

ली। इनके पिता अली बख्श ख़ाँ जो एक नामवर सारंगी नवाज़ होने के साथ–साथ दिलकश आवाज़ के मालिक भी थे, और इनके चाचा भी एक प्रसिद्ध गायक और संगीतज्ञ थे। इनको भी संगीत विरासत में मिला। गुलाम अली के गीत–संगीत का सफर बचपन से ही शुरू हो गया था। आपके पिता ने आपकी सांगीतिक लगन को देखते हुए आपको किसी बड़े उस्ताद से संगीत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया, अंततः पटियाला घराने के विश्वविख्यात ख्याल गायक उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ साहब के पास लेकर गए, चूँकि आपके पिता उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ साहब के बेहद मुरीद थे, इसी मोहब्बत की वजह से आपके पिता ने आपका नाम भी उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ साहब के नाम पर ही रख दिया और तभी से आपको गुलाम अली के नाम से जाना जाने लगा।

गुलाम अली वाद्य–यंत्रों में भी बहुत दिलचस्पी रखते, जैसे– हारमोनियम, तबला आदि। छोटी उम्र से ही इन्हें आगे बढ़ने की लगन थी, इसलिए वह तभी से ही दादरा, ठुमरी, ग़ज़ल आदि को याद कर अपने गुरु को सबसे पहले सुनाते थे। गुलाम अली के बचपन की 12–13 वर्ष की उम्र में जीते पुरस्कार उन्हें इतने प्रिय हैं कि उन्होंने यह आज भी संभालकर रखा है और ख़ाँ साहब कहते हैं कि पूरी दुनिया की दौलत भी इनके सामने कम पड़ जाए।

गुलाम अली ने उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ के तीनों भाइयों से भी संगीत की शिक्षा प्राप्त की है जिनके नाम उस्ताद बरकत अली ख़ाँ, मुबारक अली ख़ाँ एवं अमान अली ख़ाँ हैं। इन्होंने 14 साल अपने गुरुओं के पास रहकर संगीत की शिक्षा प्राप्त की और पटियाला घराना की गायकी को अपने गले में उतारा। एक बार की बात है कि उस्ताद बरकत अली ख़ाँ साहब ने गुलाम अली की सेवा से खुश होकर आशीर्वाद के रूप में ये शब्द कहे ''गुलाम अली एक समय ऐसा आएगा कि तुम्हें संगीत जगत के विद्वानों के साथ–साथ जन साधारण भी तुम्हारी कला को सराहेगा''। गुलाम अली की सच्ची लगन, अनेक वर्षों की मेहनत के उपरांत पटियाला घराना की गायकी का सफर चलता रहा और आगे चलकर उस्ताद द्वारा कहे शब्द सच साबित हुए। गुलाम अली को पहली बार 13 वर्ष की उम्र में बाल सांगीतिक समारोह में रेडियो पाकिस्तान पर गायन प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुलाम अली को रेडियो पाकिस्तान में जो बतौर कलाकार काम कर रहे थे, उनसे भी सीखने का अवसर प्राप्त हुआ, जैसे– उस्ताद नियाज़ हुसैन ख़ाँ साहब जो रेडियो पाकिस्तान में ही एक संगीत निर्माता के रूप में कार्यरत थे, तबला नवाज़ उस्ताद शौकत हुसैन ख़ाँ और साथ ही नासिर काज़मी साहब जिनका पूरा नाम सैय्यद नासिर काज़मी था, जो बहुत उम्दा शायर थे, जिनसे गुलाम अली ने हर एक लफ्ज़ की इज़्ज़त करना और लफ्ज़ को किस तरह बयां करना है, यह भी उन्होंने रेडियो पाकिस्तान में रहकर बखूबी सीखा और उर्दू ज़ुबान की शायरी को भी अपने लफ्ज़ों में पिरोया। गुलाम अली के बारे में ये दो पंक्तियां सटीक हैं :–

''अपनी धुन में रहता हूँ,
मैं भी तेरे जैसा हूं''।

इनकी गाई ग़ज़लें और इनकी मखमली आवाज़ इन्हें औरों से जुदा कर जाती हैं। यह कहना बिल्कुल भी गलत नहीं है कि बहुत से लोगों को ग़ज़ल गायकी को सुनने और सीखने की लगन इनकी ग़ज़लों से ही मिली।

सन् 1980 में गुलाम अली पहली बार भारत आए और उन्होंने दिल्ली शहर में अपने गायन की प्रस्तुति दी, इसके उपरांत मुंबई शहर में भी 15 दिनों तक ग़ज़लों की महफिलें चलीं। वहाँ इनके चाहने वालों में कलाकार, गुणीजन और फिल्मी दुनिया के बड़े–बड़े सितारे भी शामिल हुए। गुलाम अली की आवाज़ की जादू से फिल्म जगत भी अछूता नहीं रहा। इन्होंने कई भारतीय फिल्मों में अपनी ग़ज़लों से आकर्षित किया है, यथा–

1) 1982 में फिल्म ''निकाह'' की ग़ज़ल –''चुपके–चुपके रात दिन आँसू बहाना याद है''
2) 1990 में फिल्म ''आवारगी'' की ग़ज़ल –''चमकते चांद को टूटा हुआ तारा बना डाला''

इसके अलावा गुलाम अली ने 1983 में भारत की कोयल कहलाने वाली श्रीमती आशा भोंसले के साथ कई एल्बम बनाए, जिनमें से एक ''मिराज–ए–ग़ज़ल'' शामिल है और इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए गुलाम अली ने कविता कृष्णमूर्ति के साथ ''माहिया'' एल्बम रिकॉर्ड की। इस एलबम की खास बात यह है कि कविता कृष्णमूर्ति ने पहली बार गुलाम अली के साथ पंजाबी भाषा में गीत रिकॉर्ड किए।

गुलाम अली ने अपनी जिंदगी में बहुत से ग़ज़लों की महफिलें की जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण इस प्रकार हैं–

1) ''लाल बादशाह दरबार, नकोदर (जालंधर)'' में।

2) 2005 में ''श्री संकट मोचन संगीत समारोह'' बनारस, 13 अप्रैल को।

3) 2012 में 'हेरिटेज फेस्टिवल' जो हर वर्ष फरवरी महीना में पटियाला शहर में आयोजित किया जाता है।

गुलाम अली ने भारत के अलावा अन्य देशों में भी ग़ज़ल–गायकी को अपनी आवाज़ के माध्यम से शिखर तक पहुंचाया है। इनकी ग़ज़ल–गायकी के अंदाज को सुनकर आम जन आनंदित हो उठता है, ग़ज़ल से इश्क करना इनकी गायकी और अंदाज ने सिखाया है। गुलाम अली की इसी दिलकश आवाज़ के कारण इन्हें कई पुरस्कारों से भी नवाज़ा गया। गुलाम अली को अनेक उच्च स्तरीय सम्मान प्राप्त हुए हैं, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं–

1) 1979 में पाकिस्तान के राष्ट्रपति द्वारा प्रदर्शन का ''गौरव सम्मान पत्र''।

2) 2013 में पाकिस्तान के राष्ट्रपति द्वारा ''सितारा–ए–इम्तियाज़ पुरस्कार (स्टार ऑफ डिस्टिंक्शन)

3) 2022 में पाकिस्तान लाहौर में ''फख्र–ए–पंजाब'' पुरस्कार।

परन्तु गुलाम अली का यह मानना है कि उनके चाहने वालों का प्यार और उनके गुरुओं या उस्तादों का आशीर्वाद ही उनके लिए सबसे बड़ा पुरस्कार है।

गुलाम अली अनेक शागिर्दों को संगीत की तालीम देते रहे हैं मगर कुछ शागिर्द ऐसे भी हैं जो उनकी गायकी को, उनके घराने के अंदाज़ को बहुत ऊंचाइयों तक पहुंचा रहे हैं। सबसे पहले उनके अपने बेटे आमिर गुलाम अली, नईम अली थिरकवा और हिंदुस्तान से सरदार भाई निर्मल सिंह खालसा ने भी इनकी गायकी की परंपरा को शिखर तक पहुंचाया है।

गुलाम अली ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने हिंदुस्तानी संगीत की ग़ज़ल शैली को आगे बढ़ाया है। आज के युग में जहाँ हिप–हॉप जैसे संगीत का प्रचलन है, वहां गुलाम अली जैसे कलाकारों को सुनने वाले और चाहने वाले श्रोताओं की तादात आज भी अधिक है, जो इस गायकी को प्यार, मान–सम्मान देकर इस परंपरा का प्रवाह कर रहे हैं।

संदर्भ सूची :

1) वसंत, संगीत विशारद, जय लक्ष्मी नारायण प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली, मार्च 2007

2) शर्मा, यशपाल (डॉ.), गायन कला, पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 2011

3) शर्मा, मृत्युंजय (डॉ.), संगीत मैनुअल, एच.जी. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2017

4) यमन, अशोक कुमार, संगीत रत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशन, चंडीगढ़/नई दिल्ली 2018

कुमार प्रिन्टर्स
लाह बाजार, शिल्पी पोखरा, छपरा, सारण (बिहार)
(निबंधित कार्यालय : प्रभुनाथ नगर, छपरा)
Mob. : 9431090666